अध्याय 1

विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ

आधुनिक सभ्य जीवन लम्बे एवं सतत विकास का परिणाम है। मानव समुदाय की प्रारम्भिक उपस्थिति से लेकर आज तक विश्व में अनेक सभ्यताओं का विकास एवं पतन हुआ है। इन सभ्यताओं का इतिहास एक तरह से मानवता का ही इतिहास है, इसलिए विश्व में विकसित इन प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन उन्नत सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है। भारत हजारों वर्ष पूर्व से ही सभ्यता सम्पन्न राष्ट्र रहा है। भारत के साथ ही मेसोपोटामिया, मिस्र, चीन, यूनान आदि प्रमुख प्राचीन सभ्यताएँ हैं।

भारत की सभ्यता

(क) सिन्धु सरस्वती सभ्यता

भारत विश्व के सबसे प्राचीन देशों में से एक है। इसका इतिहास, इसकी सभ्यता तथा इसकी संस्कृति बहुत प्राचीन है। पुरातात्विक आधारों पर पुरातत्वविदों ने यह पता लगा लिया है कि आज से लगभग पाँच–सात हजार वर्ष पहले भारत की प्रमुख नदियों जैसे सरस्वती, सिन्धु व उसकी सहायक नदियों के किनारों पर विचरण करने वाले मानव समूहों ने अपनी स्थाई बस्तियाँ बसा कर रहना आरंभ कर दिया था और इन बस्तियों में रहते हुए उन्होंने उन्नत सभ्यता व संस्कृति का विकास कर लिया था।

सिन्धु नदी का उद्‌गम तिब्बत के कैलाश मानसरोवर के उत्तर में स्थित सेन्गेखबब, सिंहमुख व हिमनद से माना जाता है। सरस्वती नदी का उद्‌गम शिवालिक की पहाड़ियों से माना जाता है। यहाँ से यह आदिबद्री के पास मैदान में प्रवेश करती है। तथा यह दक्षिण–पश्चिम दिशा में बहती हुई कुरुक्षेत्र, घग्घर, हाकड़ा होती हुई हरियाणा के सिरसा स्थान से राजस्थान के नोहर में प्रवेश करती है। यहाँ से बीकानेर व जैसलमेर होती हुई, गुजरात के कच्छ के रन में प्रवेश कर प्रभासपत्तन के पास समुद्र में गिरती थी। वर्तमान में सरस्वती

नदी भौतिक रूप से अस्तित्व में नहीं है। भू–संरचना में परिवर्तन के कारण यह विलुप्त हो गई। वर्तमान में अस्तित्व में नहीं होने के कारण कतिपय विद्वान सरस्वती नदी को मात्र कल्पना मानते रहे हैं, लेकिन भू–उपग्रह द्वारा खींची गई तस्वीरों से सरस्वती नदी के बहाव क्षेत्र का अब पता लग गया है तथा अन्तः सलिला के रूप में आज भी यह प्रवाहित है। वैदिक साहित्य, रामायण व महाभारत में सरस्वती नदी के अस्तित्व के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं। महाभारत युद्ध के समय कृष्ण के भाई बलराम ने सरस्वती नदी पर स्थित तीर्थों की यात्रा की थी, इसका विवरण प्राप्त होता है। राजस्थान के मरुप्रदेश में भी सरस्वती नदी के किनारे बसे कई नगरों के पुरातात्विक अवशेष आज भी विद्यमान हैं। कालीबंगा उनमे से एक है।

सिन्धु व सरस्वती नदी तथा इनकी सहायक नदियों के विस्तृत भू–भाग में विकसित मानव सभ्यता को सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस विकसित सभ्यता के बारे में पहले किसी को पता नहीं था कि भारत भी प्राचीन सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा है। यह सभ्यता मिट्टी के टीलों में दबी हुई थी। मिट्टी के टीलों में दबी इस सभ्यता का काल कौन सा था? यह कब चरमोत्कर्ष पर थी और कब इसका अवसान हुआ? इस बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, लेकिन मोटे तौर से यह माना जाता है कि इस सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का जन्म काफी पहले हुआ था और 3250 ईसा पूर्व तक यह पूर्ण रूप से विकसित हो गई थी। इसके बाद यह 3250 से 2750 ईसा पूर्व तक चरम विकास पर पहुँच गई थी। फिर 2750 ईसा पूर्व के बाद इस सभ्यता का अवसान आरंभ हुआ और 1500 ई. पूर्व तक आते–आते यह विलुप्त हो गई।

सिन्धु– सरस्वती सभ्यता का उत्खनन

सन् 1921 में रायबहादुर दयाराम साहनी ने अविभाजित भारत के पंजाब प्रान्त के मान्टगोमरी जिले में हड़प्पा नामक कस्बे के पास बहने वाली रावी नदी के बाएँ किनारे पर बने हुए एक पुरातात्विक टीले की खोज की। रायबहादुर दयाराम साहनी की तरह ही भारत के एक दूसरे पुरातत्ववेत्ता राखलदास बनर्जी ने सन् 1922 में अविभाजित भारत के सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले में बहने वाली सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित मोहनजोदड़ो नामक टीले की खोज की। मोहनजोदड़ो का अर्थ होता है– 'मुर्दों का टीला।'' इस टीले की खुदाई से नौ बार बसने और नौ बार उजड़ने वाले एक व्यवस्थित नगर के अवशेष बाहर निकल आए। खोज के क्रम में ऑरलस्टाइन ने पूर्वकालीन बहावलपुर रियासत (अब पाकिस्तान में) हाकरा नदी, जो भारत की विलुप्त प्राचीन सरस्वती के विस्तार का क्षेत्र था, के सूखे रास्ते में ग्यारह पुरातात्विक स्थल खोज निकाले। सिन्धु सरस्वती सभ्यता से सम्बंधित अब तक 1500 स्थल खोजे गये हैं उनमें से 900 स्थल भारत में हैं तथा 600 स्थल पाकिस्तान में हैं। सन् 1947 में भारत के विभाजन के बाद सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के कुछ पुरातात्विक बड़े स्थल हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, गनवेरीवाला आदि पाकिस्तान के हिस्से में चले गए। कालीबंगा, राखीगढ़ी, धोलावीरा, लोथल, रंगपुर आदि बड़े पुरातात्विक स्थल भारत में हैं।

भारत के पुरातत्व विशेषज्ञों और इतिहासकारों ने स्वतंत्र भारत में सन् 1947 के बाद नये ढंग से कार्य प्रारम्भ किया। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात में सिन्धु घाटी और उसके पहले तथा समानान्तर प्रणाली पर विकसित होने वाली सरस्वती दृषद्वति नदी घाटी से सम्बन्धित कई स्थल खोज निकाले। सन् 1953 में अमलानन्द घोष ने राजस्थान के बीकानेर संभाग में लगभग 25 पुरातात्विक स्थलों की खोज की, जिसमें सबसे प्रमुख कालीबंगा है। पंजाब में रोपड़, बाड़ा, संधोल, गुजरात में रंगपुर, लोथल, रोजदी, हरियाणा में राखीगढ़ी, बनवाली, मीताथल आदि स्थानों पर सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के अवशेष मिले हैं।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की विशेषताएँ

(अ) नगर नियोजन– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के विकसित और उन्नत स्तर को प्रकट करने वाले अवशेषों में सबसे महत्वपूर्ण अवशेष इस सभ्यता से सम्बंधित नगरों के हैं। ऐसे नगरावशेषों में हड़प्पा व मोहनजोदड़ो (दोनों अब पाकिस्तान में) कालीबंगा (राजस्थान) राखीगढ़ी (हरियाणा) तथा धोलावीरा लोथल (गुजरात) के अवशेष अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन नगरों के अवशेषों से यह तथ्य भी उद्घाटित होता है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता काल के भारतवासी पहले योजना बनाकर अपने नगरों और नगरों में निर्मित किए जाने वाले भवनों व आवासों का निर्माण करते थे। उनका भवन निर्माण कला सम्बंधी ज्ञान आधुनिक स्थापत्य अभियांत्रिकी (सिविल इंजीनियरिंग) के स्तर का

था।

आवास योजना का दृश्य

(i) नगर की आवास योजना– सिन्धु– सरस्वती सभ्यता के नगरों की सुव्यवस्थित सड़क प्रणाली के परिणामस्वरूप स्वतः नगरों की आवास योजना में एक व्यवस्था उत्पन्न हो गयी थी और नगर कई खण्डों और मोहल्लों में विभक्त होकर सुनियोजित स्वरूप में उभर गए थे। सामान्यतया प्रत्येक मकान में बीच में खुला आंगन रखा जाता था और आँगन के चारों तरफ कमरे बनाए जाते थे। लगभग सभी मकानों में पानी रखने के फिरोने या परेंडे, शौचालय और स्नानघर अलग से निर्मित होते थे।

(ii) सड़क व्यवस्थाः– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से सम्बद्ध नगरों की सड़कें पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ सीधी समानान्तर निर्मित की गयी थी। सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती थी, जहाँ चौराहे बने हुए थे। नगरों की मुख्य और बड़ी सड़कें सामान्यतया 10 मीटर, छोटी सड़कें 5 मीटर तथा गलियाँ एक से दो मीटर तक चौड़ी होती थी। सड़कों के किनारों पर स्थान–स्थान पर कूड़ा–कचरा डालने के लिये कूड़ादान रखे रहते थे।

(iii) नगर की सफाई, जल निकास प्रणाली और स्वच्छता का प्रबन्धः– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से सम्बंधित नगरों और नगरों के मकानों में स्वच्छता और सफाई की समुचित व्यवस्था देखने को मिलती है। नगरों की गलियों, सड़कों और मुख्य सड़कों पर बनी छोटी–बड़ी नालियों और गटरों से सहज में ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मकानों, मोहल्लों और पूरे नगर से गन्दा पानी बाहर निकालने की समुचित व्यवस्था थी। रोजमर्रा का कूड़ा –कचरा डालने के लिए सड़कों पर जगह–जगह कूड़ापात्र रखे जाते थे। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के नगरों में निजी मकानों एवं नगरों में सार्वजनिक सफाई और स्वच्छता का जो प्रबन्ध नजर आता है, उससे यह साफ जाहिर होता है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता काल में भारतवासियों का जीवन उच्च स्तर का था। वे शोभा और दिखावे के स्थान पर सुविधा और उपयोगिता को अधिक महत्व देते थे और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक थे।

(iv) विशेष निर्मितियाँः– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के काल के विभिन्न नगरों की पुरातात्विक खुदाई में कुछ विशेष प्रकार की निर्मितियाँ, भवन और इमारतों के भग्नावशेष निकले हैं। इसमें नगर की गढ़ी वाले भाग में रक्षा प्राचीर, धातु पिघलाने के स्थान, भट्टियाँ, यज्ञ वेदियाँ, विशाल स्नानागार तथा विशाल अन्नागार आदि प्रमुख हैं। ये अवशेष सभ्यता की उन्नत अवस्था व वैज्ञानिकता का प्रमाण हैं।

(आ) सामाजिक जीवनः– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से सम्बंधित विभिन्न स्थानों पर खुदाई में ऐसी कई वस्तुएँ मिली हैं, जिनसे यह पता चलता है कि उस काल में समाज कई प्रकार के काम–धन्धे करने वाले लोगों से मिलकर बना था। व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार विभिन्न कार्य कर सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में अपना योगदान देता था। धार्मिक, प्रशासनिक, चिकित्सा, सुरक्षा तथा उत्पादन प्रमुख कार्य थे।

(इ) परिवार व्यवस्था :– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता काल के भवनों व मकानों की व्यवस्था के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उनके समाज की प्रमुख इकाई परिवार था। बहुत अधिक संख्या में नारियों की मूर्तियाँ मिलने से यह माना जाता है कि सिन्धु –सरस्वती सभ्यता के काल के समाज और परिवार में नारी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। पर्दा प्रथा प्रचलित नहीं थी। स्त्रियाँ चाँदी व तांबे के

आभूषण पहनती थी। ये लोग सूती वस्त्र पहनते थे। इन्हें अस्त्र–शस्त्र का ज्ञान भी था। मनोरंजन के साधनों में संगीत, नृत्य व शिकार प्रमुख थे। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के लोग गेहूँ , जौ, चावल, दूध तथा मांसाहार का भोजन में उपयोग करते थे।

(ई) आर्थिक जीवन :–

(I) कृषि व पशुपालन– कालीबंगा में जुते हुए खेत के अवशेष मिले हैं। इससे लगता है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के लोग खेती करते थे। वस्तुओं पर बने चित्रों के आधार पर पता चलता है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता काल के लोग गेहूँ, जौ, चावल, तिल आदि की खेती करते थे। फल भी उगाते थे। कृषि के साथ पशुपालन सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से सम्बद्ध लोगों का दूसरा मुख्य व्यवसाय था। पालतू पशुओं में गौ वंश का महत्व अधिक था।

(ii) व्यापार व वाणिज्य– यहाँ के निवासी तांबे व कांसे के बर्तन व औजार बनाने के साथ ही मिट्टी के बर्तन व मटके बनाने की कला में निपुण थे। चन्हुदड़ो तथा कालीबंगा की खुदाई में तोल के अनेक बाट मिले हैं। मोहनजोदड़ो में सीप की एक टूटी पटरी (स्केल) मिली है। ये अवशेष उनके उन्नत और विकसित व्यापारिक एवं गणित सम्बंधी ज्ञान के परिचायक हैं। गुजरात में लोथल नामक स्थान पर खुदाई में निकली एक गोदी (बन्दरगाह) के अवशेषों से पता चलता है कि यह समुद्री यातायात का प्रमुख केन्द्र था। मिस्र, सुमेर, सीरिया आदि दूर देशों से इनके घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे। भारत व मेसोपोटामिया की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं में समानता का मिलना इस बात का प्रमाण है कि उनमें आपस में वस्तुओं का क्रय–विक्रय होता था। व्यापार की उन्नत व्यवस्था के कारण ही सिन्धु–सरस्वती सभ्यता को व्यापार प्रधान सभ्यता कहा जाता है।

(उ) धार्मिक जीवनः–सिन्धु–सरस्वती सभ्यता काल के लोग प्रमुख रूप से प्राकृतिक शक्तियों के उपासक थे तथा पृथ्वी, पीपल, नीम, जल, सूर्य, अग्नि आदि में देवी शक्ति मानकर उनकी उपासना करते थे। मूर्तियों और मुद्राओं तथा ताबीजों के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बलि प्रथा तथा जादू–टोना आदि अन्धविश्वास भी प्रचलित थे। लोथल, बनावली एवं राखीगढ़ी से प्राप्त अग्नि वेदिकाओं से लगता है कि वहाँ यज्ञों व अग्नि पूजा का प्रचलन रहा होगा। मूर्तियों की उपासना के लिए धूप जलाई जाती थी। मातृदेवी व शिव की उपासना भी की जाती थी। मृतक संस्कार शव को गाढ़कर या दाह–कर्म करके किया जाता था।

(ऊ) सभ्यता का अवसान– सिन्धु लिपि अभी सही ढंग से पढ़ी नहीं जा सकी है। अनुमान है कि इस सभ्यता का पतन प्राकृतिक कारणों से हुआ। वहाँ उस युग में रहने वाले निवासियों द्वारा परिश्रम से बनाए गए नगर भूपरिवर्तन से खण्डहर बन गए किन्तु उस अतीत में विकसित सभ्यता और संस्कृति के तत्त्व नष्ट नहीं हो सके। उनका आगे आने वाले युगों में भारतीय जन–जीवन में परोक्ष प्रभाव बना रहा । भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक चरणों के निर्माण में सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

(ख) वैदिक सभ्यता

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के अवसान के पश्चात् भारत में वैदिक सभ्यता का उदय हुआ। विद्वानों ने इस वैदिक सभ्यता का विकास करने वाले जन समुदाय को आर्य कहकर पुकारा है तथा इन आर्यों को ही वैदिक सभ्यता का संस्थापक व प्रसारक बताया गया है। कतिपय विद्वानों ने यह भी कहा है कि ये आर्य भारत में बाहर से यथा– उत्तरी ध्रुव, मध्य एशिया, तिब्बत या यूरोप से आये, लेकिन वर्तमान पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह सिद्ध हो गया हैं कि आर्य मूलतः भारत के ही निवासी थे। इससे यह भी सिद्ध हैं कि वैदिक सभ्यता सिन्धु सरस्वती सभ्यता की निरन्तरता में ही विकसित हुई। इस वैदिक सभ्यता का वर्णन वैदिक साहित्य में विस्तार से आता है।

वस्तुतः आर्य किसी जाति का बोध कराने वाला शब्द नहीं है। यह तो गुणवाचक शब्द है जिसका अर्थ उत्तम, श्रेष्ठ, अच्छे आचरण करने वाले अथवा सुसंस्कृत व्यक्ति है। शास्त्रों में बताया गया है कि जो व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते हुए समुचित व्यवहार करता हो, विचार व वाणी में

शुद्धता व पवित्रता रखता हो, ऐसे अच्छे आचरण वाले व्यक्ति को आर्य कहा जाता है। वैदिक सभ्यता के जनक भारत के ऐसे ही सुसंस्कृत लोग थे। ये वे लोग थे अथवा वह मानव समुदाय था, जिसने तत्कालीन व्यवस्था व संस्कृति के उपयोगी पक्षों को अपनाकर अपने उन्नत रहन–सहन को विकसित किया। इस जन समूह को यदि आर्य शब्द का सम्बोधन दिया जाता है तो यह वास्तविक तथ्य उद्घाटित करता है। एक तथ्य यह भी है कि सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का अवसान भले ही हो गया हो, किन्तु इस सभ्यता की अच्छाइयाँ सिन्धु–सरस्वती नदी क्षेत्र से बाहर भी प्रभावी थी, उन अच्छाइयों का ही विकास आगे चलकर वैदिक सभ्यता के रूप में हुआ।

वैदिक साहित्य – आर्य विद्वानों ने जिस साहित्य की रचना की वह 'वैदिक साहित्य' के नाम से विख्यात है। भारत में विकसित होने वाली वैदिक सभ्यता की जानकारी कराने वाले स्रोतों में प्रमुख स्थान वैदिक साहित्य का है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक, षट् वेदांग आदि वैदिक साहित्य के प्रमुख ग्रंथ है। वेद चार हैं–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद। इस साहित्य के माध्यम से तत्कालीन वैदिक सभ्यता की विशेषताओं को इस स्वरूप में देखा जा सकता है:–

वैदिक सभ्यता की विशेषताएँ

(अ) राजनैतिक संगठन– वैदिक काल के राजनैतिक जीवन का आधार परिवार थे। कई परिवारों से मिलकर ग्राम बनते थे। कई ग्रामों समूह का समूह 'जन' होता था। जन के नेता को 'गोप' 'रक्षक' या 'राजन्' कहते थे। राजन् का निर्वाचन प्रजा करती थी। शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजन् होता था। समिति, सभा व मंत्रणा (मंत्रिपरिषद्) नामक जनतांत्रिक संस्थाएँ राज्य कार्य में राजन् का सहयोग करती थीं।

कालान्तर में सहज जनतंत्र वाले राजनैतिक संगठन के स्थान पर भारत का समाज राजतंत्रात्मक राजनैतिक संगठन की तरफ अग्रसर हुआ और भारत में कई जनपद राज्य स्थापित हो गए। ऐसे जनपदों मे कुरु, पांचाल, गांधार, कैकय, मद्र, काशी, कलिंग, अंग, मगध, लिच्छवी, मल्ल, अवन्ति, कौशल, शिवि आदि जनपद प्रमुख थे।

(आ) सामाजिक जीवन

(I) वर्ण व्यवस्था– वैदिक काल में समाज में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। वर्ण चार माने गये हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित थी, जिसमें व्यक्ति की योग्यता व कायां से उसका वर्ण निर्धारित होता था। इस तरह वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप बहुत अच्छा था। वह कर्म और श्रम के सिद्धान्त पर आधारित था।

(ii) परिवार– समाज की मूल इकाई परिवार थी। इस काल में संयुक्त परिवार की प्रधानता थी। परिवार में सबसे बड़ा पुरुष मुखिया होता था। उसे गृहपति कहा जाता था। वैदिक समाज में स्त्री का बहुत सम्मान था। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। विवाह एक अनुबन्ध न होकर धार्मिक संस्कार था। विवाह परिपक्व अवस्था में ही होता था। पुत्र की भांति पुत्री को भी उच्च शिक्षा का अधिकार था। स्त्री शिक्षा को समुचित सम्मान दिया जाता था। वैदिक साहित्य में ऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है, जो ज्ञान एवं विद्या के लिए प्रसिद्ध थी। गार्गी, मैत्रेयी, गन्धर्वगृहीता आदि विदुषी महिलाएँ इसी युग में हुई।

(iii) आश्रम व संस्कार व्यवस्था– वैदिक काल में सामाजिक संचालन के लिए आश्रम व्यवस्था प्रचलित थी। मनुष्य की आदर्श आयु 100 वर्ष की मानकर जीवन को चार कालों ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम में विभाजित किया गया था यह आश्रम व्यवस्था विश्व में जीवन प्रबन्धन का अनुपम उदाहरण है।

व्यक्ति के जीवन में श्रेष्ठ गुणों को पैदा करने के लिए उस काल में 16 संस्कारों का विधान था जिनमें पुंसवन संस्कार, अन्न प्रासन संस्कार, मुंडन संस्कार, नामकरण संस्कार, विद्यार्जन संस्कार, विवाह

संस्कार आदि प्रमुख संस्कार थे जो सामाजिक संस्कार पद्धत्ति का कार्य करते थे।

(इ) भोजन, वेशभूषा व मनोरंजन– वैदिक काल के लोग भोजन में जौ, गेहूँ, चावल, उड़द, दूध, दही का विशेष प्रयोग करते थे। जहाँ तक वेशभूषा का सवाल है– सूती, ऊनी और रेशमी तीनों तरह के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। स्त्री व पुरुष दोनों आभूषण पहनते थे। आभूषणों में कर्ण –फूल, कण्ठहार, कंगन आदि पहने जाते थे।

रथदौड़, घुड़दौड़, शिकार व मल्लयुद्ध मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। संगीत व नृत्य लोकप्रिय थे तथा प्रमुख वाद्ययंत्रों में वीणा, बाँसुरी, शंख, झाँझ व मृदंग आदि प्रचलित थे।

(ई) आर्थिक जीवन

(I) कृषि व पशुपालन– वैदिक काल में आजीविका के मुख्य साधन थे– कृषि, पशुपालन, घरेलू उद्योग–धन्धे, व्यापार एवं वाणिज्य। खेती का काम हल –बैल से किया जाता था। गाय, हाथी, घोड़ा, भैंस, हिरण, भेड़, बकरी व गधा प्रमुख पालतू पशु थे। गाय को पवित्र व आर्थिक समृद्धि का केन्द्र मानते थे। गायों की संख्या उन्नति का एक पैमाना था।

(ii) उद्योग व व्यापार–उद्योग धन्धों में लकड़ी, धातु, वस्त्र व चमड़े के काम प्रमुख थे। ऋग्वेद में भिषक नाम से चिकित्सक का उल्लेख भी मिलता है। व्यापार का माध्यम वस्तुओं का लेन–देन था। गाय को मूल्य की इकाई माना जाता था। ऋग्वेद में निष्क नामक सोने के सिक्के के संकेत मिलते हैं। यह न केवल उन्नत धातु विज्ञान की जानकारी का प्रमाण है अपितु यह आधुनिक मुद्रा व्यवस्था का प्रारम्भिक संकेत भी है। दूर देशों व भारत के बीच जल व थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था। वस्त्र उद्योग काफी उन्नत था। वस्त्रों से विदेशी व्यापार होने के प्रमाण भी उपलब्ध है।

(उ) धार्मिक जीवन– वैदिक युग के निवासी मूलतः प्रकृति के उपासक थे और विभिन्न देवीय शक्तियों की उपासना करते थे। जिन प्राकृतिक शक्तियों से उन्हें जीवन शक्ति व प्रेरणा प्राप्त होती थी, उनको उन्होंने अपने देवता के रूप में स्वीकार कर लिया था। इनमें इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, ऊषा, वरुण प्रमुख थे। प्रार्थना, स्तुति व यज्ञों द्वारा वे देवताओं को प्रसन्न करते थे। उनका धार्मिक जीवन सरल व आडम्बर रहित था। वैदिक काल के अन्त में उपनिषदों ने ज्ञान का मार्ग प्रतिपादित किया था।

3. मेसोपोटामिया की सभ्यता

मेसोपोटामिया युनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है– दो नदियों के बीच की भूमि । इस देश का आधुनिक नाम ईराक है। इस प्रदेश को दजला और फरात नदियाँ सींचती हैं। मेसोपोटामिया को इसकी अर्द्धचन्द्र सी आकृति तथा खेती की दृष्टि से अत्यधिक उर्वर होने के कारण 'उपजाऊ अर्द्धचन्द्र भी कहा गया है। प्राचीनकाल में इस प्रदेश का दक्षिणी भाग 'सुमेर' कहलाता था जो मेसोपोटामिया की सभ्यता का मुख्य केन्द्र था। सुमेर के उत्तर–पूर्व की तरफ के भाग को बाबुल (बेबीलोन) तथा अक्कद कहते थे और उत्तर की ऊँची भूमि असीरिया कहलाती थी।

मेसोपोटामिया के राज्यों का उत्थान और पतन

कालान्तर में उत्तर के पर्वतीय प्रदेशों से आए सुमेरियन लोग मेसोपोटामिया में बस गए और उन्होंने एक अत्यन्त समृद्ध सभ्यता का विकास किया। सुमेरियन लोगों ने नगर राज्य की सरकार स्थापित की। उर, लगाश, एरेक तथा एरिडू प्रसिद्ध नगर राज्य थे। 2500 ई.पू. लगभग सार्गॉन प्रथम ने, जो अक्कद से आया था, सुमेरियन लोगों को जीत लिया। सुमेर और अक्कद दोनों राज्यों को मिलाकर उसने एक सुदृढ़ राज्य स्थापित किया, किन्तु 2100 ई.पू. के लगभग ये अक्कादियन लोग भी पराजित हो गए। बाबुल या बेबीलोन में एक नए सामी राजवंश का उदय हुआ। बेबीलोन नगर अब इस नए साम्राज्य की राजधानी बन गया। बेबीलोनिया के सबसे प्रसिद्ध सम्राट हम्मूराबी ने विभिन्न नगर राज्यों में होने वाली लड़ाइयों को रोककर तथा समस्त देश में एक जैसे कानून लागू कर एक दृढ़ राज्य स्थापित किया।

बेबीलोनिया की सभ्यता भी सुमेरियन सभ्यता पर आधारित थी। इसके अनन्तर मेसोपोटामिया में असीरियाई लोगों ने अपना साम्राज्य (लगभग 1100 से 612 ई.पू.) स्थापित किया। असीरियाई लोगों ने सीरिया, फिलस्तीन फिनिशिया आदि प्रदेशों को जीतकर विशाल साम्राज्य स्थापित किया। इसके बाद काल्डियाई लोगों ने असीरियाई लोगों को पराजित कर एक दूसरे शक्तिशाली बेबीलोनियन साम्राज्य (612 ई.पू. से 539 ई.पू.) का निर्माण

किया, किन्तु 539 ई. पूर्व उन्हें पारसियों के हाथों पराजित होना पड़ा। सुमेरिया, बेबीलोनिया, असीरिया तथा कोल्डिया की सभ्यताओं को समग्र रूप में मेसोपोटामिया की सभ्यता के नाम से जाना जाता है।

मेसोपोटामिया सभ्यता की विशेषताएँ

(i) हम्मूराबी की विधि संहिता –

बेबीलोन के सम्राट हम्मूराबी ने अपनी प्रजा के लिए एक विधि संहिता बनाई थी जो इस समय उपलब्ध सबसे प्राचीन विधि संहिता है। सम्राट ने इसे एक 8 फुट ऊँची पत्थर की शिला पर उत्कीर्ण कराया था। हम्मूराबी का दण्ड विषयक सिद्धान्त यह था कि ''जैसे को तैसा और खून का बदला खून।''

(ii) मेसोपोटामिया का सामाजिक जीवन–

मेसोपोटामिया सभ्यता में राजा पृथ्वी पर देवताओं का प्रतिनिधि माना जाता था। राजा व राजपरिवार के बाद दूसरा स्थान पुरोहित वर्ग का था जो संभवतः राजतंत्र की प्रतिष्ठा से पूर्व शासक रहे थे। मध्यम वर्ग में व्यापारी जमींदार एवं दुकानदार थे। समाज में दासों की स्थिति सबसे नीचे थी। लगातार युद्ध होते रहने के कारण समाज में सेना का महत्वपूर्ण स्थान था।

(iii) आर्थिक जीवन–

(अ) कृषि व पशुपालन – इस सभ्यता के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। वहाँ के किसान भूमि की जुताई हलों से करते थे और बीज एक कीप द्वारा बोते थे। खेतों की सिंचाई के लिए वे नदियों के बाढ़ के पानी को नहर द्वारा ले जाकर बड़े–बड़े बाँधों में इकट्ठा कर लेते थे। हलों से जुताई हेतु मवेशी काम में लेते थे और उनकी नस्ल सुधार के लिए पशुओं का प्रजनन भी किया जाने लगा था।

(आ) व्यापार व उद्योग– मेसोपोटामिया की सभ्यता मूलतः एक व्यावसायिक सभ्यता थी। वहाँ देवता का मंदिर एक धार्मिक स्थल ही नहीं एक व्यावसायिक केन्द्र भी था। यहीं सर्वप्रथम बैंक प्रणाली का विकास हुआ। मेसोपोटामिया का भारत की सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से व्यापारिक सम्बन्ध था। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की कई वस्तुएँ मेसोपोटामिया के उर नगर की खुदाई में मिली हैं।

(iv) धार्मिक मान्यताएँ–

मेसोपोटामिया के लोग अनेक देवताओं में विश्वास करते थे। प्रत्येक नगर का अपना संरक्षक देवता होता था। उसे 'जिगुरात' कहते थे जिसका अर्थ है ''स्वर्ग की पहाड़ी'। उर नगर मेसोपोटामिया के सबसे बड़े नगरों में से था । उर नगर में जिगुरात का निर्माण एक कृत्रिम पहाड़ी पर ईंटों से हुआ था। उर के 'जिगुरात में तीन मंजिलें थी और उसकी ऊँचाई 20 मीटर से अधिक थी। मेसोपोटामिया के लोग परलोक की अपेक्षा इस लोक के जीवन में अधिक रुचि रखते थे। उनका ध्यान इस लोक के जीवन की व्यावहारिक समस्याओं पर केन्द्रित था। उनके पुरोहित भी व्यवसाय में रत रहते थे

(v) ज्ञान–विज्ञान–

विज्ञान के क्षेत्र में मेसोपोटामिया के लोगों की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण थीं। खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने काफी उन्नति कर ली थी। उन्होंने सूर्योदय, सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय और चन्द्रास्त का ठीक समय मालूम कर लिया था । उन्होंने दिन और रात्रि के समय का हिसाब लगाकर पूरे दिन को 24 घण्टों में बाँटा था । साठ सैकेण्ड का मिनट और साठ मिनट के एक घण्टे का विभाजन सबसे पहले इन्होंने ही किया। रेखागणित के वृत्त को उन्होंने 360° डिग्री में विभाजित करना प्रारम्भ किया था। इस तरह मेसोपोटामिया के निवासी विज्ञान और गणित की उन्नत परम्पराओं से अवगत थे।

(vi) स्थापत्य कला–

मेसोपोटामिया के कलाकारों ने मेहराब का भी आविष्कार किया। मेहराब स्थापत्य कला की एक महत्वपूर्ण खोज थी क्योंकि यह बहुत अधिक वजन सम्भाल सकती थी और देखने में आकर्षक लगती थी

(vii) कीलाक्षर लिपि–

मेसोपोटामिया की पहली लिपि का विकास सुमेर में हुआ। सुमेरियन व्यापारियों ने अपना हिसाब–किताब रखने के लिए कीली जैसे चिह्न बनाकर लेखन कला का विकास किया। इसे कूनीफार्म या कीलाक्षर कहते हैं।

4. मिस्र की सभ्यता

मिस्र की सभ्यता का विकास नील नदी की घाटी में हुआ था। अफ्रीका के लोग नील नदी को गंगा की भांति पवित्र मानते थे, क्योंकि प्राचीनकाल में मिस्र के सुख और समृद्धि का कारण नील नदी ही रही है। मिस्र की सभ्यता बहुत प्राचीन थी।, किन्तु, इसके सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं। प्रामाणिक आधार पर मिस्र के राजनैतिक इतिहास का ज्ञान 3400 ई.पू. से ही प्राप्त होता है। मिनीज नाम शासक ने 3400 ई.पू. ही मिश्र

का राजनैतिक ढांचा खड़ा किया था। इथियोपी , नूबी एवं नीलियम जाति के लोगों ने इस सभ्यता का निर्माण किया था। मिस्र की सभ्यता के इतिहास में पिरामिड़ युग, सामन्तशाही युग एवं साम्राज्यवादी युग विशेष उल्लेखनीय है। इनमें से पिरामिड़ युग सर्वाधिक गौरवपूर्ण था।

मिस्र सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँः–

(i) मिश्र का सामाजिक जीवन–

मिस्र के शासक फराओं कहलाते थे और प्रजा पर उनकी सत्ता निरंकुश थी। लोग उसे ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे। उच्च वर्ग में सामन्त व पुरोहित, मध्यवर्ग में व्यापारी, व्यवसायी तथा निम्न वर्ग में कृषक तथा दास थे। स्त्री व पुरुषों में लगभग उच्च वर्ग के लोग आभूषण पहनते थे। संगीत ,नृत्य, नटबाजी, पशु, जुआ आदि उनके मनोरंजन के साधन थे। हाथीदाँत जड़ित मेज और कुर्सियाँ तथा बहुमूल्य पर्दे व कालीन सामन्तों के भवनों की शोभा बढ़ाते थे।

(ii) आर्थिक जीवन

(अ) कृषि व पशुपालन– मिस्र के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। जौ, प्याज, बाजरा व कपास की खेती की जाती थी। मिस्र को प्राचीन विश्व का ''अन्न का भण्डार कहा जाता था, क्योंकि वहाँ वर्ष में तीन बार फसलें बोयी जाती थी। बकरी, गधा, कुत्ता, गाय, ऊँट, सूअर आदि पालतु पशु थे।

(आ) व्यापार व उद्योग – मिश्र में धातु, लकड़ी, मिट्टी, काँच कागज तथा कपड़े का काम करने वाले कुशल कारीगर थे। मिस्रवासियों को ताम्बे के अतिरिक्त अन्य धातुएँ बाहर से मंगवानी पड़ती थीं। मिस्रवासी लकड़ी पर नक्काशी तथा काँच पर चित्रकारी कार्य से भी अवगत थे। वे वस्तु विनिमय द्वारा व्यापार करते थे। अरब व इथोपिया से उनके व्यापारिक सम्बन्ध थे।

(iii) धार्मिक जीवन– मिश्रवासियों के प्रमुख देवता रा (सूर्य), ओसरिम (नील नदी) तथा सिन (चन्द्रमा) थे। उनके देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक थे। सभ्यता के प्रारम्भिक काल में मिश्रवासी बहुदेववादी थे किन्तु साम्राज्यवादी युग में अखनाटन नामक फराओ ने एकेश्वरवाद की विचारधारा को महत्व दिया तथा सूर्य की उपासना आरम्भ की।

(iv) ज्ञान–विज्ञान– मिश्र के लोगों ने तारों व सूर्य के आधार पर अपना कलेण्डर बना लिया था तथा वर्ष के 360 दिन की गणना कर ली थी। मिस्रवासियों ने धूप घड़ी का आविष्कार कर लिया था। उन्होंने अपनी वर्णमाला विकसित करके पेपीरस वृक्ष से कागज का निर्माण भी किया था।

(v) पिरामिड –मिस्रवासियों का विश्वास था कि मृत्यु के बाद शव में आत्मा निवास करती है। अतः वे शव पर एक विशेष तेल का लेप करते थे। इससे सैकड़ों वर्षों तक शव सड़ता नहीं था। शवों की सुरक्षा के लिए समाधियां बनाई जाती थी जिन्हें वे लोग पिरामिड कहते थे। पिरामिडों में रखे शवों को 'ममी' कहा जाता था।

गिजे का पिरामिड

मिश्र के पिरामिडों में गिजे का पिरामिड प्राचीन वास्तुकला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। गिजे का यह पिरामिड 481 फीट ऊँचा तथा 755 फीट चौड़ा है। इसमें ढाई–ढाई टन के 23 लाख पत्थर के टुकड़े लगे है। इसके बाहर पत्थर की एक विशालकाय नृसिंह की मूर्ति जिसे स्फिंक्स कहा जाता है, बनी है। पिरामिड मिश्रवासियों के गणित व ज्यामिति के ज्ञान के साक्षी है। मिश्र में अब भी ऐसे कई पिरामिड विद्यमान है।

5. चीन की सभ्यता

चीन की प्राचीन सभ्यता हवांग्हो और चांग जियांग (याग्टीसीक्यांग) नदियों की घाटियों में विकसित हुई थी। चीनी लिपि आरम्भ में चित्रात्मक थी। धीरे –धीरे इसकी स्वयं की वर्णमाला का निर्माण हुआ। मंगोल जाति के लोगों ने इस सभ्यता को जन्म दिया एवं विकास में सहयोग दिया। उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर चीन का व्यवस्थित राजनैतिक इतिहास ई.पू. 2852 से फूसी नामक शासक से प्रारम्भ होता है। चीन के शासकों के राजवंशों में शांग वंश, चाऊ वंश, हान वंश, सुई वंश, तांग वंश, शुंग वंश प्रमुख थे।

चीनी सभ्यता की विशेषताएँ

(I) सामाजिक जीवन – चीन का प्राचीन समाज मंडारिन, कृषक, कारीगर, व्यापारी तथा सैनिक वर्ग में विभाजित था। सेना में भर्ती होने वाले लोग या तो अत्यन्त निर्धन, अपरिश्रमी या समाज में अवांछनीय चरित्र के माने जाने वाले होते थे। एच.ए. डेविस का कथन है कि ''प्राचीन

सभ्यताओं में चीन ही एक देश है जो शांति के लिये संगठित रहा तथा वहां सैनिक होना अपमानजनक समझा जाता था।

चीनी सभ्यता में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। परिवार का मुखिया वयोवृद्ध व्यक्ति होता था। वहाँ के जीवन में नैतिकता पर विशेष बल था। समाज में स्त्रियों को कोई गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। पर्दा प्रथा व तलाक प्रथा भी प्रचलित थी।

(ii) आर्थिक जीवन

(अ) कृषि व पशुपालन– चीनी लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। चावल की खेती तथा चाय की खेती बहुतायत से की जाती थी। नहरों द्वारा सिंचाई होती थी। भेड़, सुअर, गाय, बैल, कुत्ते आदि पालतु पशु थे।

(आ) व्यापार उद्योग– चीनी हस्तकला एवं उद्योग के अन्तर्गत रेशम तैयार करना और कपड़ा बुनना प्रमुख था। अन्य महत्वपूर्ण उद्योग चीनी मिट्टी के बर्तन बनाना था। चीन से नमक, मछली, लोम (फर), सूती तथा रेशमी कपड़ों का व्यापार बड़े पैमाने पर होता था । प्राचीन बेबीलोन, मिस्र एवं भारत से चीनी लोग विभिन्न वस्तुओं का व्यापार करते थे।

(iii) धार्मिक जीवन– चीनी लोग प्रकृति के उपासक थे। वे सूर्य, आकाश, पृथ्वी, वर्षा की पूजा करते थे। चीन में राजा को परमात्मा का पुत्र माना जाता था। वे जादू–टोना, बलि आदि में भी विश्वास करते थे। कालान्तर में चीनवासियों की धार्मिक विचारधारा कन्फ्यूशियस के सुधारवादी ऐकेश्वरवाद एवं लाओत्से की शाश्वत आत्मा के "ताओवाद' तथा बुद्ध धर्म से प्रभावित हुई।

(iv) ज्ञान–विज्ञान – प्राचीन चीन में ज्ञान–विज्ञान की खूब उन्नति हुई । कागज, छापाखाना, स्याही, बारूद, चित्रकला तथा दिशासूचक यंत्र का आविष्कार सर्वप्रथम चीन में ही हुआ था। कन्फ्यूशियस और लाओत्से चीन के महान विचारक थे। लीयो वहाँ का प्रसिद्ध कवि था।

(v) चीन की दीवार – चीन की दीवार प्राचीन चीनी स्थापत्य

चीन की दीवार

कला का विश्वप्रसिद्ध नमूना है। इसका निर्माण चीन के शासक शीहवांगती द्वारा हूणों के निरन्तर आक्रमणों से रक्षा के लिए करवाया था । यह दीवार 1800 मील लम्बी व 20 फीट चौड़ी व 20 फीट ऊँची है। इस दीवार पर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बुर्ज जैसे छोटे–छोटे किले बने हुए हैं।

6. युनान की सभ्यता

सभ्यता के विकास की दृष्टि से युनान पहला यूरोपीय देश था। इतिहासकारों का मत है युनान के आदिनिवासी माओनियम लोगों को पराजित करके उन्हें गुलाम बना लिया था। उन्होंने अपने मौलिक चिन्तन तथा निष्ठा से एक महान सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण किया। अनुमान है कि युनानी सभ्यता का जन्म 1500 ई. पू. हुआ था।

विभिन्न पहाड़ों और खाइयों के कारण प्राचीन युनानी लोग कभी भी एक संयुक्त राष्ट्र स्थापित नहीं कर पाए। सम्पूर्ण युनान में कई नगर–राज्यों में दो प्रमुख नगर राज्य स्पार्टा और एथेंस थे। स्पार्टा में सैनिक शासन था तथा एथेंस में लोकतंत्र। शेष युनानी नगर राज्य या तो एथेंस की तरह थे अथवा स्पार्टा का अनुसरण करते थे।

युनानी सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ

(i) स्पार्टा का जीवन – स्पार्टा नगर राज्य को सदैव पड़ौसी देशों के आक्रमण का भय बना रहता था। इसलिये वहाँ सैनिक शासन स्थापित हुआ। वहाँ का शासन स्वेच्छाचारी था। स्पार्टा का प्रथम व्यवस्थापक एवं विधान निर्माता लाइकर्मस था। उसने वहाँ के निवासियों के लिए कठोर अनुशासन में रहने की व्यवस्था की थी। बच्चों को कठिनाइयों का सामना करने की शिक्षा दी जाती थी। निर्बल बच्चों को टेसिटस पहाड़ी की चोटी से गिराकर मार दिया जाता था।

स्पार्टा को साहसी एवं योद्धा सैनिक और आँखें मूँदकर आज्ञापालन करने वाले नागरिक तैयार करने में तो निश्चय ही सफलता मिली किन्तु दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में स्पार्टा की देन नही के बराबर है।

(ii) एथेन्स का जीवन

एथेन्स का नगर राज्य स्पार्टा के नगर राज्य से सर्वथा भिन्न था । एथेंस में जनतांत्रिक शासन था। राजा का बहुत सम्मान था। न्यायाधीश ड्रेको ने 621 ई.पू. लिखित कानूनों का संग्रह तैयार किया था। उसके कानून उच्च वर्ग के हितों की रक्षा करने वाले थे। तत्पश्चात् क्लाईस्थनीज

ने एथेंस में जनतंत्र की जड़ें जमा दीं। ईरान के महत्वकांक्षी सम्राट दारा ने ग्रीक को जीतने के बाद युनान पर आक्रमण किया । एथेंस व ईरानियों के मध्य मैराथन मैदान में युद्ध हुआ। इस युद्ध में युनान की विजय हुई और युनानियों ने अपनी सभ्यता का स्वतंत्रतापूर्वक विकास किया।

(iii) पेराक्लीज युग – पेराक्लीज युनान (एथेंस) का महान जनतांत्रिक नेता था। पेराक्लीज ने अपने सुधारों के द्वारा एथेन्स के प्रजातंत्र को व्यापक एवं सुदृढ़ बनाया। पेराक्लीज का मत था कि सारे व्यक्तियों को न्याय का समान अधिकार है। उसके शासनकाल में कला, साहित्य, संगीत तथा दर्शन का बहुत विकास हुआ। एथेंस में दुखान्त व सुखान्त नाटकों तथा संगीत के कई आयोजन होते थे। होमर की विश्व प्रसिद्ध रचनाएँ इलियट व ओडेसी इसी काल की थी। उसके समय में गणित, ज्योतिष व दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। इसी काल में विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने ज्ञान व चरित्र के विकास पर बल दिया। दार्शनिक प्लेटो व अरस्तु भी इसी काल के विद्वान थे। देवी एथिना का मंदिर भवन निर्माण कला का अनुपम नमूना है। हिरोडोटस व थ्यूसीडिडीज इस युग के महान् इतिहासकार थे। पाईथोगोरस तथा हिपोक्रेटीज इस काल के प्रसिद्ध गणितज्ञ थे। इन्हीं उपलब्धियों के कारण पेराक्लीज के युग को युनान के इतिहास में स्वर्ण युग कहा जाता है। प्रोफेसर डेविड के अनुसार "पेराक्लीज का युग, युनान के इतिहास का ही नहीं वरन् विश्व के इतिहास का स्वर्ण युग था।

7. राजस्थान की प्राचीन सभ्यताएँ

(I) कालीबंगा –उत्तरी राजस्थान में घग्घर नदी के किनारे सिन्धु– सरस्वती सभ्यता के 25 स्थल खोजे गये हैं जिनमें से कालीबंगा एक है। यह स्थल हनुमानगढ़ जिले में सरस्वती (घग्घर) के तट पर 4500 वर्ष पहले बसा हुआ था। कालीबंगा में मुख्य रूप से नगर योजना के दो टीले प्राप्त हुए हैं। इनमें एक पूर्वी टीला है, जहाँ से साधारण बस्ती के साक्ष्य मिले हैं। पश्चिमी टीले में दुर्ग हैं जिसके चारों और सुरक्षा प्राचीर है।

दोनों टीलों के चारों ओर भी सुरक्षा प्राचीर बनी हुई थी। कालीबंगा में जुते हुए खेत के साक्ष्य मिले हैं, जो संसार में प्राचीनतम है। दीवारें ईंटों से बनती थी और इन्हें मिट्टी (गारे) से जोड़ा जाता था। जिससे दीवारें मजबूत व टिकाऊ बन जाती थीं। व्यक्तिगत और सार्वजनिक नालियाँ तथा कूड़ा डालने के मिट्टी के बर्तन नगर की सफाई की असाधारण व्यवस्था के अंग थे।

वर्तमान में यहाँ घग्घर नदी बहती है जो प्राचीनकाल में सरस्वती के नाम से जानी जाती थी। यहाँ से धार्मिक प्रमाण के रूप में अग्निवेदियों के साक्ष्य मिले हैं। यहाँ सम्भवतः धूप में पकाई गई ईंटों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ से प्राप्त मिट्टी के बर्तनों और मुहरों पर जो लिपि अंकित पाई गई है वह सैन्धव लिपि है जिसे अभी पढ़ा नहीं जा सका है। कालीबंगा से पानी के निकास के लिए लकड़ी व ईंटों की नालियाँ बनी हुई मिली हैं। ताम्र से बने कृषि के कई औजार भी यहाँ की आर्थिक उन्नति के परिचायक हैं। कालीबंगा की नगर योजना सिन्धु घाटी की नगर योजना के अनुरूप है। कालीबंगा के निवासियों की मृतक के प्रति श्रद्धा तथा धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करने वाली तीन समाधियाँ मिली हैं। इस समृद्ध सभ्यता के ह्रास कारण संभवतः सूखा, नदी मार्ग में परिवर्तन इत्यादि माने जाते हैं।

(ii) आहड़– वर्तमान उदयपुर जिले में स्थित आहड़ दक्षिण–पश्चिम राजस्थान की कांस्ययुगीन संस्कृति का मुख्य केन्द्र था । यह संस्कृति बेड़च बनास की घाटियों में विकसित हुई थी। यह संस्कृति पाँच हजार वर्ष पुरानी है। विभिन्न उत्खनन के स्तरों से पता चलता है कि प्रारम्भिक बसावट से लेकर 18वीं सदी तक यहाँ कई बार बस्तियाँ बसी और उजड़ी। ऐसा लगता है कि आहड़ के आस–पास तांबे की उपलब्धता होने से सतत रूप में इस स्थान के निवासी इस धातु के उपकरणों को बनाते रहे और उसे एक ताम्रयुगीन कौशल केन्द्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लगभग 500 मीटर लम्बे धूलकोट का टीला आहड़ सभ्यता का प्रमुख केन्द्रीय स्थान था। ताम्बे की कुल्हाड़ियाँ प्रस्तर के औजार, अर्धकीमती प्रस्तर की वस्तुएँ आदि सामग्री यहाँ से प्राप्त हुई है।

यहाँ नगर योजना के अन्तर्गत मकानों की योजना में आँगन या गली या खुला स्थान रखने की व्यवस्था थी। एक मकान में 4 से 6 बड़े चूल्हों का होना आहड़ में वृहत् परिवार या सामूहिक भोजन बनाने की व्यवस्था पर प्रकाश डालते हैं। आहड़ से खुदाई से प्राप्त बर्तनों तथा अनेक खंडित टुकड़ों से हमें उस युग में मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

इस आहड़ संस्कृति की व्यापकता एवं विस्तार गिलूँड, बालाथल, बागौर तथा अन्य आसपास के पुरातात्विक स्थानों से प्रमाणित है। इसका सम्पर्क नवदाटोली, नागदा, एरन, कायथा तथा उत्तर गुजरात में कच्छ तक अर्थात् इस सभ्यता का सम्पर्क चार हजार वर्ष पुरानी सभ्यता से भी था, जो यहाँ

से प्राप्त काले व लाल मिट्टी के बर्तनों के आकार, उत्पादन व कौशल की समानता से पता चलता है।

(iii) बालाथल

उदयपुर नगर से पूर्व में 42 किलोमीटर दूर ऊँठाला गाँव वर्तमान में वल्लभनगर नाम से बसा हुआ है। यह उपखण्ड मुख्यालय है। इसके उत्तर में बालाथल गाँव है। इस गाँव की पूर्वी दिशा में एक टीला है। इस टीले के उत्खनन का कार्य मार्च 1993 में डक्कन कॉलेज, पूना के डॉ. वी.एन. मिश्रा के नेतृत्व में डॉ. वी. एस. शिन्दे, डॉ. आर.के. मोहन्ती तथा इन्स्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज, राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर के डॉ. देव कोठारी, डॉ. ललित पाण्डे एवं डॉ. जीवन खरकवाल की देख–रेख में किया गया। यहाँ पर उत्खनन कार्य 7 वर्षों तक किया गया। यहाँ ताम्र–पाषाण युग की संस्कृति के दर्शन होते हैं। वैसे यह स्थल आहड़ का ही एक विस्तार है। यह सभ्यता लगभग 3200ई. पू. तक अस्तित्व में आ चुकी थी।

बालाथल की विशेषताएँ

(अ) ताम्र–उपकरण– बालाथल के निवासी तांबे से बने हुए उपकरणों और अस्त्रों का प्रयोग करते थे। इनमें कुल्हाड़ी, चाकू,छैनी, उस्तरा तथा बाण के फलक का प्रयोग करते थे। पत्थर के बने हुए औजार भी मिले हैं। इसका कारण यहाँ के लोगों को ताम्बा सुगमता से उपलब्ध होना माना जा सकता है।

बालाथल निवास के अवशेष

(आ) मिट्टी के बर्तन– बालाथल से प्राप्त विशेष आकार–प्रकार के चमकदार मिट्टी के बर्तन दो प्रकार के हैं– एक खुरदरी दीवारों वाले तथा दूसरे चिकनी मिट्टी की दीवारों वाले। काले, लाल और गहरे लाल रंग लिये ऐसे बर्तनों के बाहर और भीतर चमकदार लेप किया हुआ मिलता है। काले तथा लाल बर्तनों पर सामान्यत: सफेद रंग के चित्र मिलते हैं। यहाँ विशेष प्रकार के बर्तन बनाए ही नहीं जाते थे, अपितु अन्य क्षेत्रों को निर्यात भी किये जाते थे।

(इ) निर्माण कार्य

बालाथल के टीले के मध्य में एक विशाल दुर्ग स्वरूप संरचना खोजी गई जिसकी दीवारें 3.15 मीटर ऊँची तथा लगभग 5 मीटर मोटी हैं, यह दुर्ग 5600 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैला था। यह दुर्ग मिट्टी तथा पत्थरों से बनाया गया। बालाथल की खुदाई में ग्यारह कमरों के बड़े भवन की रचना भी प्राप्त होती है जो ताम्रपाषाण काल की द्वितीय अवस्था में निर्मित हुए थे। जिस प्रकार आहड़ की ताम्रपाषाण काल की सभ्यता में ताम्बा गलाने की भट्टियों के अवशेष मिले हैं, उसी प्रकार बालाथल में लोहा गलाने की भट्टियों के अवशेष मिलें हैं। आहड़ सभ्यता के लोग दक्षिणी राजस्थान के पहले किसान, पशुपालक, मिट्टी के बर्तन बनाने वाले तथा धातु के औजारों के निर्माता थे।

(iv) चन्द्रावती

सिरोही जिले में माउण्ट आबू की तलहटी में आबू रोड़ के निकट चन्द्रावती के नाम से एक प्राचीन शहर के अवशेष हैं। यह प्राचीन शहर सेवाणी नदी के दायें तट पर बसा हुआ था तथा लगभग 50 हेक्टेयर के क्षेत्र में फैला हुआ था। इसकी खोज सन् 1822 में कर्नल जेम्स टॉड द्वारा की गई। सन् 1980 में महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा के पुरातत्व विभाग द्वारा इस प्राचीन शहर तथा सम्बद्ध क्षेत्र का गहन सर्वेक्षण किया गया।

चन्द्रावती

सन् 2013 एवं 2014 में इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज (साहित्य संस्थान) जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय , उदयपुर एवं राजस्थान राज्य पुरातत्व विभाग, जयपुर के संयुक्त तत्वावधान में डॉ. जीवन खरकवाल के नेतृत्व में चन्द्रावती का पुरातात्विक उत्खनन किया गया। शहर के पश्चिमी भाग में एक विशाल किले के अवशेष हैं, जो लगभग 26 बीघा में फैला है। मध्य भाग में 33 मन्दिर समूहों के अवशेष हैं, जो हिन्दू तथा जैन धर्म से सम्बंधित हैं। अधिकांश मन्दिर ईंटों

द्वारा निर्मित ऊँची जगती पर निर्मित हैं। यहाँ से बड़ी संख्या में प्राप्त मूर्तियाँ माउण्ट आबू संग्रहालय में सुरक्षित हैं। स्थापत्य के दृष्टिकोण से इन्हें 8वीं से 15 वीं शताब्दी के मध्य रखा जा सकता है। उत्खनन में शहर के पूर्वी भाग में दो किले खोजे गये हैं, इनमें से एक किला वर्गाकार हैं तथा 60′x 60′ मीटर क्षेत्र में फैला है। इसमें आयताकार तथा गोल बुर्ज बनाकर सुरक्षा दीवार को मजबूती प्रदान की गई है।

उत्खनन में तीन विशाल भवनों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। एक कमरे में बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार के अनाजों के जले हुए बीज तथा अनाज पीसने की घट्टी का भाग भी खोजा गया। भवनों में घोड़े व मनुष्यों की मृण मूर्तियाँ, मिट्टी व लोहे की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। सभी भवन व फर्श ईंटों के बने हुए थे।

किले के प्रवेश द्वार पर संवत् 1325 का एक अभिलेख भी मिला है। चन्द्रावती के अभिलेख तथा ताम्रपत्र माउण्ट आबू संग्रहालय में सुरक्षित हैं। यह परमार शासकों की राजधानी थी, जिनमें यशोधवल तथा धारा वर्ष जैसे प्रतापी राजा हुए हैं। परमारों के पश्चात् इस स्थल पर चौदहवीं शताब्दी में देवड़ा राजपूतों का अधिकार हो गया तथा 15वीं शताब्दी में आक्रमणों के कारण यह नगर ध्वस्त हो गया।

चन्द्रावती के उपर्युक्त अवशेषों के नीचे एक अन्य प्राचीन बस्ती के अवशेष भी हैं। यह उत्खनन से स्पष्ट हुआ है उपलब्ध पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर यह बस्ती छठी से नवीं शताब्दी के बीच की हो सकती है।

चन्द्रावती के क्षेत्र से पाषाणकालीन उपकरण तथा शैलचित्र भी मिले हैं। अतः यह स्पष्ट है कि पाषाणकाल से ही मानव समाज चन्द्रावती में उपस्थित था। मध्यकाल में यह व्यापार का भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा था।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. सिन्धु व उसकी सहायक नदियों तथा सरस्वती नदी क्षेत्र के मध्य विकसित सभ्यता सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का विकास हुआ था।
2. सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के मुख्य स्थल हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा बहावलपुर अब पाकिस्तान में स्थित है। तथा कालीबंगा, राखीगढ़ी, धोलावीरा, रंगपुर, लोथल भारत में है।
3. सिन्धु–सरस्वती सभ्यता नगर नियोजन के लिए प्रसिद्ध थी।
4. मोहनजोदड़ो का अर्थ होता है ''मुर्दों का टीला।''
5. वेद चार हैं– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद।
6. वैदिक समाज में वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी।
7. वैदिक काल का धार्मिक जीवन सरल व आडम्बर रहित था।
8. मेसोपोटामिया युनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है– दो नदियों के बीच की भूमि ।
9. मेसोपोटामिया के मन्दिरों (धार्मिक स्थलों) को जिगुरात कहा जाता है।
10. मिस्र की सभ्यता का विकास नील नदी घाटी से हुआ। मिस्र की सभ्यता में गिजे का पिरामिड प्राचीन वास्तुकला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कला कृति है।
11. चीन की प्राचीन सभ्यता हवांग्हो तथा चांग जियांग– नदियों की घाटी में विकसित हुई थी।
12. चीन की दीवार प्राचीन वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ नमूना है।
13. सुकरात, प्लेटो व अरस्तु युनान के प्रसिद्ध दार्शनिक है।
14. आहड़ सभ्यता ताम्रवती नगरी अथवा धूलकोट के नाम से प्रसिद्ध थी। यह बेड़च (आहड़ नदी) के किनारे बसी हुई थी।
15. कालीबंगा से पूर्व हड़प्पाकालीन और उत्तर हड़प्पाकालीन सभ्यता के साक्ष्य मिले हैं।
16. बालाथल सभ्यता उदयपुर जिले की वल्लभनगर तहसील में स्थित है।
17. चन्द्रावती सभ्यता सिरोही जिले में माउण्ट आबू की तलहटी में आबूरोड़ के निकट स्थित है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सिन्धु–सरस्वती सभ्यता का कौनसा पुरातात्विक स्थल पाकिस्तान में है–

   (अ) हड़प्पा   (ब) रंगपुर

   (स) कालीबंगा   (द) धोलावीरा

2. वैदिक सभ्यता का ज्ञान कराने वाले ग्रंथ कौनसे हैं?

   (अ) वेद   (ब) उपनिषद्

   (स) आरण्यक   (द) उपर्युक्त सभी

3. मिस्र की सभ्यता कौनसी नदी की घाटी में स्थित है?

   (अ) नील   (ब) सिन्धु

   (स) हवांग्हो   (द) दजला व फरात

4. विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ इलियड व ओडेसी के रचनाकार थे–

(अ) हीरोडोटस (ब) थ्यूसीडिडीज

(स) होमर (द) पाइथोगोरस

5. जोते गये खेत के प्राचीनतम साक्ष्य कहाँ से मिले हैं?

(अ) कालीबंगा (ब) आहड़

(स) चन्द्रावती (द) मोहनजोदड़ो

6. धूलकोट अथवा ताम्रवती नगरी के नाम से कौनसी सभ्यता प्रसिद्ध है–

(अ) बालाथल (ब) चन्द्रावती

(स) आहड़ (द) सिन्धु

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के दो प्रमुख केन्द्रों का नाम लिखो।

2 मोहनजोदड़ो का क्या अर्थ होता है?

3. आश्रम कौन–कौन से हैं ? नाम बताइये ।

4. मेसोपोटामिया शब्द का क्या अर्थ होता है?

5. उपजाऊ अर्द्धचन्द्र किसे कहा जाता है।

6. पिरामिडों में रखे शवों को क्या कहा जाता था?

7. क्या आर्य भारत के बाहर से आये थे ?

8. चीनी स्थापत्यकला का विश्व प्रसिद्ध नमूना किसको कहा जाता है?

9. कौनसी सभ्यता में सैनिक होना अपमानजनक माना जाता है?

10. युनान की सभ्यता के प्रमुख नगर राज्य कौन–कौनसे थे?

11. आहड़ (बेड़च) नदी के किनारे कौनसी सभ्यता थी?

12. घग्घर नदी का प्राचीन नाम क्या था?

13. माउण्ट आबू की तलहटी में कौनसी सभ्यता के अवशेष मिले है?

14. बालाथल सभ्यता कहाँ स्थित है?

15.कालीबंगा सभ्यता का सम्बन्ध किस सभ्यता से है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैदिक सभ्यता के सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिए। .

2 सिन्धु सभ्यता के नगरीय जीवन का वर्णन कीजिए।

3. मिस्र की सभ्यता में नील नदी का क्या योगदान है?

4. ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में मेसोपोटामिया की सभ्यता की क्या देन है?

5. स्पार्टा का सैनिक शासन कैसा था? वर्णन कीजिए।

6. युनानी सभ्यता में पेराक्लीज का क्या योगदान है?

7. कालीबंगा से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों का उल्लेख कीजिए।

निबन्धात्मक

1 सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के सामाजिक व धार्मिक जीवन का उल्लेख कीजिए।

2 मेसोपोटामिया की सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

3. चीनी सभ्यता पर निबन्ध लिखिए ।

4. मिश्र की सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

5. आहड़ सभ्यता का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(1) अ (2) द (3) अ (4) स (5) अ (6) स

अध्याय 2

विश्व के प्रमुख दर्शन

मानव सभ्यता के उदय के साथ ही सोचना, विचारना और चिन्तन करना मनुष्य का स्वभाव रहा है। इस स्वाभाविक मानसिक प्रक्रिया से मनुष्य के मन में लगातार यह विचार आता रहा है कि मैं क्या हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा भविष्य क्या है? मृत्यु के बाद मैं कहाँ जाऊँगा? विचारों की इस प्रक्रिया ने धर्म, मजहब, पंथों को जन्म दिया और इसने मनुष्य के जीवन–दर्शन को विकसित करने में मदद की। इस प्रकार धर्म तथा दर्शन दोनों संयुक्त रहे हैं। हमारा जीवन व्यवहार धर्म से शासित है। धर्म का स्वरूप आचार है, उसे मार्गदर्शन दर्शन से प्राप्त होता है। दर्शन के द्वारा कुछ तत्त्व या सिद्धान्त प्रतिपादित होते हैं। धर्म उनकी क्रियान्विति करता है तथा हेय को छोड़ने का आग्रह करता है और उपादेय को स्वीकार करने की प्रेरणा देता है।

मनुष्य के चिन्तन की यह प्रक्रिया सम्पूर्ण विश्व के मानव समुदाय में व्याप्त रही है, फलस्वरूप विश्व में समय–समय पर विभिन्न उपासना, पंथों, धर्मों का उदय हुआ। इन धर्मों की उपासना पद्धतियाँ अलग–अलग हैं, लेकिन सब का लक्ष्य ईश्वर तक पहुँचकर आत्मकल्याण करना ही है। ईश्वर तक पहुँचकर आत्मकल्याण करना अथवा मोक्ष प्राप्त करने के लिए धर्म का दार्शनिक स्वरूप तथा उसका चिन्तन साधक या बाधक तत्त्वों की व्याख्या करता है। तत्त्वों की यही व्याख्या, चिन्तन अथवा मीमांसा ने विश्व के सभी धर्मों के दर्शनों को विकसित किया है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को सद्नागरिक बनने के लिये विश्व के प्रमुख धर्मों के दर्शन पक्ष की जानकारी आवश्यक है। विश्व के प्रमुख दार्शनिक चिन्तनों में वैदिक दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, इस्लामिक दर्शन, इसाई व पारसी दर्शन मुख्य हैं।

1. वैदिक दर्शन

वैदिक दर्शन भारत के सबसे प्राचीन दर्शनों में सबसे प्रमुख दर्शन है। यह वैदिक दर्शन वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य के भाग हैं यथा– वेद, ब्राह्मण, संहिता, आरण्यक, उपनिषद् (वेदान्त) तथा वेदांग इनका सामूहिक नाम वैदिक साहित्य है। वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ है। वेद चार हैं– 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद। ऋग्वेद इनमें सबसे प्राचीन और विश्व का प्रथम ग्रंथ माना जाता है।

ऋग्वेद में प्रधानरूप से धर्मपरक सूक्त हैं। इसमें धार्मिक विचारधारा का विकास एवं सृष्टि सम्बंधी और दार्शनिक सूक्त भी हैं। देवों की स्तुति से सम्बंधित सूक्त भी हैं। यजुर्वेद और सामवेद में कर्मकाण्डपरक धर्म के उद्देश्य को बताया गया है। वैदिक युग के आरंभ में यहाँ सरल उपासना का कर्म था। सामवेद में यज्ञों में गेय मंत्रों का संकलन है। अथर्ववेद में अभिचारपरक मंत्रों का संग्रह है।

ब्राह्मण ग्रंथों में उन अनुष्ठानों का विशद रूप से वर्णन है, जिनमें वैदिक मंत्रों को प्रयुक्त किया गया है। अनुष्ठानों के अतिरिक्त इनमें वेद मंत्रों के अभिप्राय व विनियोग की विधि का भी वर्णन है।

वैदिक ऋषि आध्यात्मिक, दार्शनिक व पारलौकिक विषयों पर भी चिन्तन किया करते थे। आत्मा क्या है?सृष्टि की उत्पति किस प्रकार हुई?सृष्टि किन तत्त्वों से बनी ?सृष्टि का कर्त्ता व नियामक कौन है? जड़ प्रकृति से भिन्न जो चेतन सत्ता है, उसका क्या स्वरूप है?इस प्रकार के सभी प्रश्नों का दार्शनिक चिन्तन व विवरण वैदिक साहित्य में मिलता है। ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यकों व उपनिषदों की संख्या भी कई है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य प्रधानतया धार्मिक साहित्य है जो दार्शनिक चिन्तन का प्रतिनिधित्व करता है। वैदिक युग में लोग विविध देव शक्तिओं की उपासना करते थे। इनमें इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम आदि प्रमुख हैं। इन्हें संतुष्ट करने के लिए विविध अनुष्ठानों का अनुसरण किया जाता था। संसार का स्रष्टा, पालक व संहारक एक ईश्वर है। प्राकृतिक शक्तियों का आधार मानकर इन अधिष्ठाता देवताओं की उपासना करने का विशेष प्रचलन था। वेदों में वर्णित बहुसंख्यक देवी–देवताओं, प्राकृतिक शक्तियों व सत्ताओं के मूर्तरूप हैं। वेदों में कतिपय देवता ऐसे भी हैं, जिन्हें भाव स्वरूप समझा जा सकता है। मनुष्य में श्रद्धा, क्रोध, आदि की जो विविध भावनाएँ है उन्हें भी वेदों में देवी–देवता स्वरूप माना गया है। इन देवी –देवताओं की पूजा के लिये वैदिक युग के लोग अनेक विधियज्ञों का अनुष्ठान करते थे। वैदिक युग में देवता प्राकृतिक शक्तियों के रूप में थे, अतः उनका मूर्तियों वाला कोई स्वरूप नहीं था। दार्शनिक चिन्तन का मूलाधार भी यही था।

वैदिक दर्शन के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया हैं कि सत्य (ईश्वर या परमसत्य) एक ही है किन्तु विद्वान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। उपनिषदों के अनुसार संसार में व्याप्त ब्रह्म और व्यक्ति में व्याप्त आत्मा वस्तुतः एक ही है। व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य इसी एकत्व की अनुभूति करना है। इसी एकत्व की अनुभूति से व्यक्ति स्थाई आनन्द (सच्चिदानन्द) को प्राप्त करता है। इस मान्यता ने सम्पूर्ण मानव जाति को सहिष्णुता का संदेश दिया है। वैदिक दर्शन में मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक और भौतिक दृष्टि से उन्नत करने के लिए चार पुरुषार्थों की व्यवस्था की गई है। ये पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म का तात्पर्य कर्त्तव्यपालन और सदाचरण से है। अर्थ (धन) जीवन में भौतिक समृद्धि प्राप्त करने का साधन है। शारीरिक सुखों की प्राप्ति काम पुरुषार्थ से होती है। मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है। चारों पुरुषार्थों के समुचित समन्वय से ही व्यक्ति और समाज दोनों का विकास होता है।

वैदिक दर्शन के अनुसार कर्म के आधार पर पुनर्जन्म होता है। इससे व्यक्ति उत्तम कार्य सम्पादित कर जीवन को श्रेष्ठ बना सकता है। वैदिक दर्शन में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की बात कही गई है। इससे व्यक्ति का चरित्र संकीर्णकर्ताओं के बंधन से मुक्त होकर समस्त पृथ्वी को ही अपना परिवार समझने लगता है। वैदिक दर्शन में स्तुति और यज्ञ के माध्यम से अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु तथा आकाश जैसे प्राकृतिक तत्त्वों को स्वच्छ व सुरक्षित रखने की प्रेरणा दी गई है।

उपनिषदों में त्यागपूर्वक उपभोग करने का उल्लेख है। इससे व्यक्ति लोभ व मोह से दूर रहता हुआ अपना कर्त्तव्य पालन करता है। वैदिक दर्शन में दूसरों की सेवा करने को धर्म और दूसरों को दुःख देने को पाप कहा गया है।

इस प्रकार वेदों का दार्शनिक चिन्तन सम्पूर्ण विश्व में सौमनस्य, सदाचार, सहयोग तथा समन्वय की प्रेरणा देता है।

2. जैन दर्शन

जैन साहित्य के अनुसार जैन दर्शन का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल में हुआ था। जैन दार्शनिक परम्परा वैदिक परम्परा के ही समकालीन एक आंदोलन माना जाता है। इस दर्शन के विकास में तीर्थंकरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐसा माना जाता है कि महावीर के पहले 23 जैन तीर्थंकर और हुए थे। पहले तीर्थंकर ऋषभदेव या आदिनाथ थे तथा तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म वैशाली के समीप कुण्डग्राम में, क्षत्रिय कुल में, 599 ई.पू. हुआ था इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था। त्रिशला लिच्छवी गणराज्य के राजा चेटक की बहन थी। महावीर का बचपन का नाम वर्धमान था। वर्धमान को प्रारम्भ में ही क्षत्रियोचित शिक्षा दी गई थी। किन्तु वर्धमान का मन संसार में नहीं लगता था। उनके मन में विरक्ति के भाव पैदा हो गए थे। इसलिए 30 वर्ष की उम्र में, उनके माता–पिता के निधन के बाद इन्होंने सत्यज्ञान की खोज के लिए अपने बड़े भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा लेकर घर छोड़ दिया और तपस्या करने लगे। इस तपस्या में उन्हें घोर कष्ट सहन करने पड़े। बिना वस्त्र तथा महिनों तक बिना खाये–पीये रहे। अन्त में, बारह वर्ष की कठोर तपस्या के बाद उन्हें कैवल्य ज्ञान की अनुभूति हुई। कैवल्य प्राप्त हो जाने पर महावीर को जिन (जीतने वाला), निर्ग्रन्थ (सन्देह मुक्त) तथा महावीर आदि नामों से पुकारा जाने लगा।

महावीर स्वामी

कैवल्य ज्ञान हो जाने पर महावीर ने जनता को जीवन का सही मार्ग दिखाने का कार्य प्रारम्भ किया। अपने विचारों का जनता में प्रचार करने के लिए वे स्थान–स्थान पर घूमने लगे। उनके इस प्रचार कार्य से मगध, काशी तथा कौशल आदि राज्यों में उनके विचारों का प्रसार हुआ।

उनकी सत्य वाणी से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनुयायी बनने लगे। धीरे–धीरे उनके अनुयायियों की संख्या काफी हो गई। अन्त में इसी प्रकार अपने विचारों का प्रसार करते हुए पावापुरी (बिहार) में 527 ई.पू. में, 72 वर्ष की आयु में, महावीर का निर्वाण हुआ। अपने ज्ञान दीप को हमेशा जलाए रखने हेतु वे अपने पीछे चौदह हजार शिष्य छोड़ गए।

जैन शब्द 'जिन' शब्द से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ 'विजेता' होता है। संसार की मोह–माया व इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करना ही इस धर्म का एकमात्र उद्देश्य है।

मोक्ष प्राप्त करने के लिए महावीर स्वामी ने तीन उपाय बताए थे, जो आगे चलकर 'त्रिरत्न' कहलाए। जैन धर्म का दार्शनिक चिन्तन यहीं से आरंभ होता है–

I. सम्यक् ज्ञानः– इसका अर्थ पूर्ण और सच्चा ज्ञान होता है। महावीर ने बताया था कि सच्चे और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्यों को तीर्थंकरों के उपदेशों का अध्ययन व अनुसरण करना चाहिए।

II. सम्यक् दर्शन– इसका अर्थ है तीर्थंकरों में पूरी आस्था रखना। सच्चे ज्ञान को जीवन में उतारने के लिए प्रत्येक मनुष्य को तीर्थंकरों में पूरी आस्था और विश्वास रखना चाहिए।

III. सम्यक् चरित्रः– इसका अर्थ है मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर ही सत्य ज्ञान को प्राप्त कर सकता है, अतः उसे इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए।

मोक्ष प्राप्ति के इन तीनों साधनों का पालन करने के लिए जैन दर्शन ने गृहस्थ लोगों के लिए पाँच मुख्य नियम (महाव्रत) बताए हैं जो निम्नलिखित हैंः–

(क) अहिंसा– अहिंसा महावीर की शिक्षा और जैन धर्म के सिद्धान्तों का मूलमंत्र है। अहिंसा का अर्थ प्राणी मात्र के प्रति दया, समानता और उपकार की भावना है। मन, वचन तथा कर्म से किसी के प्रति अहित की भावना नहीं रखना वास्तविक अहिंसा है। जैनधर्म में अहिंसा की सूक्ष्म से सूक्ष्म व्याख्या की गई है।

(ख) सत्य– अहिंसा के साथ सत्य वचन पर महावीर ने बहुत जोर दिया, क्योंकि बिना सत्य भाषण के अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। अतः महावीर ने कहा था कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में सत्य ही बोलना चाहिए।

(ग) अस्तेय– अस्तेय का अर्थ, चोरी नहीं करना है। महावीर ने चोरी को अनैतिक कार्य बताया तथा इस दुर्गुण से हमेशा दूर रहने की शिक्षा दी।

(घ) अपरिग्रह– अपरिग्रह का अर्थ संग्रह नहीं करना होता है। महावीर के अनुसार जो व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं का संग्रह नहीं रखता है, वह संसार के मायाजाल से दूर रहता है अर्थात् अपने पास उतना ही रखो जितने की आवश्यकता है, शेष को वांछित लोगों में बाँट दो।

(च) ब्रह्मचर्य– इन चारों बातों का पालन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि मनुष्य विषय–वासनाओं से दूर नहीं रहता। इसलिए महावीर ने जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चारों उपायों में ब्रह्मचर्य का पाँचवाँ उपाय जोड़कर इन्हें त्रिरत्नों की प्राप्ति का साधन बताया।

महावीर कहते थे कि संसार के सुख–दुःख का कारण मनुष्य का अन्तःकरण है। यदि ऊपर बतलाए गए उपायों का मनुष्य पालन करे तो वह आत्मा पर विजय प्राप्त कर सकता है। आत्मा पर विजय प्राप्त करने से ही संसार की मोह–माया से मनुष्य को छुटकारा मिल सकता है।

तपस्या तथा उपासनाः– महावीर ने आत्मा को वश में करने तथा उपर्युक्त पाँच नियमों का पालन करने के प्रयत्न में तपस्या और उपवास पर सबसे अधिक बल दिया। उन्होंने दो प्रकार की तपस्या बताई– एक बाह्य तथा दूसरी आंतरिक। तपस्या में नम्रता, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान आदि सम्मिलित हैं। बाह्य तपस्या करने से व्यक्ति में आन्तरिक तपस्या करने की क्षमता आती है और मानव में अच्छे विचारों का विकास होता है। महावीर ने तपस्या का सबसे सरल साधन उपवास बताया। इससे शरीर एवं आत्मा शुद्ध होती है और मनुष्य को मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त होता है।

महावीर आत्मा की अमरता में विश्वास करते थे। उनके अनुसार प्रकृति में परिवर्तन हो सकते हैं किन्तु आत्मा अजर–अमर है और सदैव एकसी बनी रहती है। मनुष्य के कर्मों के कारण पैदा होने वाली सांसारिक वासना के बंधनों से आत्मा का बार–बार आवागमन होता रहता है और जन्म–मरण का चक्र चलता रहता है। इसलिए महावीर स्वामी का कथन था कि यदि वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली जाए तो कर्मों के बन्धन नष्ट हो सकेंगे और जन्म मरण के चक्र से मुक्ति मिलेगी। महावीर की इस विचारधारा से अनुमान लगा सकते हैं कि जैन धर्म आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म और कर्मवाद में विश्वास रखता है। महावीर की ये सभी शिक्षाएँ बड़ी सरल व सीधी थीं। साथ ही इन सभी बातों का उपदेश महावीर ने उस युग की जनता की भाषा अर्ध मागधी में किया। महावीर ने जातिवाद व छूआछूत का विरोध किया तथा नारी को पूरा सम्मान दिया। महावीर ने तत्कालीन हिंसा, कट्टरता व सामाजिक कुरीतियों का जमकर विरोध किया।

जैन दर्शन निवृत्तिमूलक है। इसके अनुसार सांसारिक जीवन में सुख नहीं है। अतः संसार का परित्याग कर कठोर तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। मनुष्य के सारे सुख–दुःखों का कारण उसके

कर्म ही है। कर्म ही पुनर्जन्म का कारण है। उसे कर्मों के फल को भोगे बिना जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा नहीं मिलता। जैन मतानुसार यह सृष्टि जीव व अजीव से निर्मित है। जीव चेतन है, अजीव अचेतन है। जीव व अजीव कर्म से बँधे रहते हैं। कर्म के बंधन को तोड़ना ही मोक्ष है।

जैन दर्शन में स्याद्‌वाद या अनेकान्तवाद, सहिष्णुता व समन्वय का मूल मंत्र है। महावीर ने कहा है कि किसी बात को एक ही पक्ष से मत देखो। उस पर एक तरह से ही विचार मत करो। तुम जो कहते हो वह सत्य हो सकता है। किन्तु दूसरे जो कहते हैं वह भी सत्य हो सकता है। आज संसार में जो तनाव और द्वन्द्व है, वह दूसरों के दृष्टिकोण को न समझने के कारण ही है। अतः इस सिद्धान्त से विचार समन्वय संभव है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा अजर–अमर है। जीव ही आत्मा है। कण–कण में जीवात्मा का निवास है। इस प्रकार जैन धर्म का दार्शनिक चिन्तन मूलतः आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त होने की ही प्रेरणा देता है।

3. बौद्ध दर्शन

महावीर स्वामी की तरह ही छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत में एक दूसरी महान् विभूति का जन्म हुआ। इस विभूति ने भी महावीर की तरह ही उस युग में फैली धर्म ग्लानि, रुढ़िवाद तथा सामाजिक जटिलता के विरुद्ध आवाज उठाई और भारत की जनता को जीवन का सही मार्ग बताया। यह विभूति और कोई नहीं, महात्मा बुद्ध थे।

महात्मा बुद्ध का जन्म 563 ई.पू. में उत्तरी बिहार स्थित कपिलवस्तु गणराज्य के शाक्यवंशीय क्षत्रिय कुल में हुआ था।

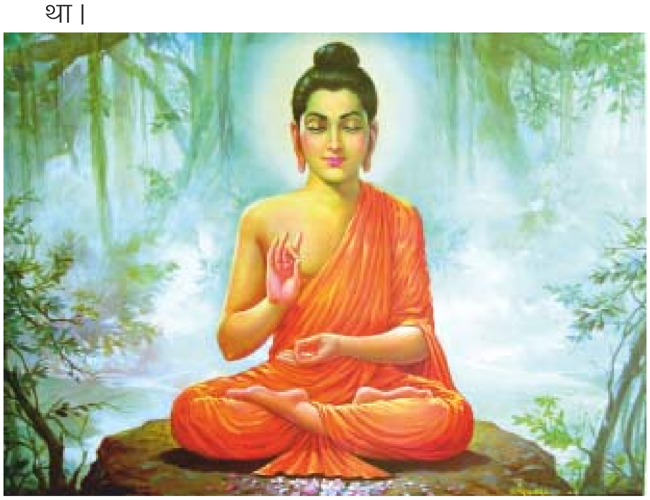

गौतम बुद्ध

इनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था। अपने कुल का गौतम गौत्र होने के कारण उन्हें 'गौतम'' भी कहा जाता है। इनके पिता का नाम शुद्धोधन एवं माता का नाम मायादेवी था। जब माया देवी अपने पिता के यहाँ जा रही थी, तब मार्ग में ही लुम्बिनीवन में बुद्ध का जन्म हुआ। दुर्भाग्यवश इनके जन्म के सात दिन बाद ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। अतः उनका लालन–पालन उनकी विमाता और मौसी प्रजापति गौतमी ने किया।

बाल्यावस्था में ही बुद्ध विचारशील एवं एकान्तप्रिय थे। वे बड़े करुणावान थे। संसार में लोगों को कष्टों में देखकर उनका हृदय दया से भर जाता था। यद्यपि उनके पिता ने सभी प्रकार से क्षत्रियोचित शिक्षा दीक्षा उन्हें दिलाई थी और उसमें वे प्रवीण भी हो गए थे, फिर भी बुद्ध का मन सांसारिक बातों में नहीं लगता था। वे इनकी ओर से उदास रहते थे। पुत्र की ऐसी मनोवृत्ति देखकर पिता शुद्धोधन ने सोलह वर्ष की उम्र में ही सिद्धार्थ का यशोधरा नाम की सुन्दर राजकुमारी से विवाह कर दिया। लगभग 10 वर्ष तक गृहस्थी का जीवन व्यतीत कर लेने पर भी सिद्धार्थ के मन में इस जीवन के सुख–दुःख की समस्याएँ बराबर उलझन पैदा करती रहीं। सिद्धार्थ का वैरागी मन इस संसार में नहीं लगा। इस वैराग्य भावना के फलस्वरूप एक दिन अपने पुत्र, पत्नी, पिता और सम्पूर्ण राज्य वैभव को छोड़कर वे ज्ञान की खोज में निकल गए। जीवन की इस घटना को बौद्ध साहित्य में 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है।

महाभिनिष्क्रमण के उपरान्त वे लगातार सात वर्ष तक संन्यासी जीवन व्यतीत करते रहे। सबसे पहले वे वैशाली के 'आलार कालाम' तपस्वी के पास ज्ञानार्जन हेतु गए, किन्तु वहाँ उनकी ज्ञान–पिपासा शांत नहीं हो सकी। अतः वे राजगृह में ब्राह्मण आचार्य 'उद्रक रामपुत' के पास गये किन्तु यह आचार्य भी उन्हें संतोष नहीं दे सका। तब सिद्धार्थ वहाँ से चले और उरूवेला वन में पहुँचे। वहाँ वे कौडिण्य आदि अपने पाँच साथियों के साथ उरूवेला के निकट निरंजना नदी के तट पर कठोर तपस्या करने लगे। कठोर तपस्या के कारण उनका शरीर सूख कर काँटा हो गया। फिर भी उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। तब उन्होंने तपस्या छोड़कर आहार करने का निश्चय किया। गौतम में यह परिवर्तन देखकर उनके साथी उन्हें छोड़कर चले गए किन्तु इससे वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने ध्यान लगाने का निश्चय किया। वे वहीं एक पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान की अवस्था में बैठ गए। सात दिन तक ध्यान–मग्न रहने के पश्चात् वैशाख माह की पूर्णिमा के दिन उन्हें आन्तरिक ज्ञान का बोध हुआ और तभी से वे 'बुद्ध' कहे जाने लगे। पीपल का वह वृक्ष जिसके नीचे सिद्धार्थ को बोध लाभ (ज्ञान प्राप्त) हुआ था, वह 'बोधिवृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् सबसे पहले ''बौद्ध गया' में ही बुद्ध ने अपने ज्ञान का उपदेश 'तपस्सु' और 'मल्लिक' नामक दो बन्जारों को दिया। इसके बाद गौतम बुद्ध अपने ज्ञान एवं विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से निकल पड़े और सारनाथ पहुँचे। वहीं उन्हेंाने अपने उन पाँचों साथियों से सम्पर्क स्थापित किया, जो उन्हें छोड़कर चले गये थे। बुद्ध ने उन्हें अपने ज्ञान की धर्म के रूप में दीक्षा दी। यह घटना बौद्ध धर्म में 'धर्मचक्रप्रवर्तन' कहलाती है। अन्त में 80 वर्ष की आयु में 483 ई.पू. में गोरखपुर के समीप कुशीनगर नामक स्थान पर गौतम बुद्ध ने अपना शरीर त्याग दिया। बुद्ध के शरीर त्यागने की घटना को 'महापरिनिर्वाण' कहते हैं।

महावीर स्वामी की तरह ही महात्मा बुद्ध भी मानवता के शिक्षक थे। उन्हेंाने अपने उपदेशों से दुःख से पीड़ित लोगों को मुक्त कर सतत शांति प्राप्त हो, ऐसा मार्ग बताने का प्रयत्न किया। दार्शनिक चिंतन का आधार चार आर्य सत्य है–

i. संसार दुःखमय हैः संसार में जन्म–मरण, संयोग, वियोग, लाभ–हानि आदि सभी दुःख ही दुःख है।

ii. दुःख का कारण : सभी प्रकार के दुःखों का कारण तृष्णा (लालसा) या वाासना है।

iii. दुःख दमन : तृष्णा के निवारण से या लालसा के दमन से दुःख का निराकरण हो सकता है।

iv. दुःख निरोध मार्गः दुःखों पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है और वह अष्टांगिक मार्ग या मध्यम मार्ग है।

महात्मा बुद्ध ने बताया था कि सांसारिक वस्तुओं को भोगने की तृष्णा ही आत्मा को जन्म–मरण के बंधन में जकड़े रखती है। अतः निर्वाण (मोक्ष) प्राप्ति के लिए तृष्णा को मिटा देना आवश्यक है। इसके लिए मनुष्य को अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। अष्टांगिक मार्ग जीवन–यापन का बीच का रास्ता है, इसीलिए इसको मध्यम मार्ग भी कहा गया है। इसमें निर्वाण प्राप्ति के लिए न तो कठोर तपस्या को उचित बताया है और ना ही सांसारिक भोग विलास में डूबा रहना उचित बताया है। अष्टांगिक मार्ग के आठ उपाय निम्नलिखित हैंः–

I. सम्यक् दृष्टि–सत्य–असत्य, पाप–पुण्य में भेद करने से ही इन चार आर्य सत्यों पर विश्वास पैदा होता है।

ii. सम्यक् संकल्प– दुःख के कारण तृष्णा से दूर रहने का दृढ़ विचार रखो।

iii. सम्यक् वाक्– (शुद्ध वचन)– नित्य सत्य और मीठी वाणी बोलो।

iv. सम्यक् कर्मान्तः– (शुद्ध कर्म) :– हमेशा सच्चे और अच्छे काम करो।

v. सम्यक् आजीव (शुद्ध आजीविका)– अपनी आजीविका के लिए पवित्र तरीके अपनाओ।

vi. सम्यक् प्रयत्नः– शरीर को अच्छे कार्यों में लगाने के लिये उचित परिश्रम करो।

vii. सम्यक् स्मृति :– अपनी त्रुटियों को बराबर याद रखकर , विवेक और सावधानी से कर्म करने का प्रयास करो।

viii. सम्यक् समाधि– (ध्यान) मन को एकाग्र करने के लिए ध्यान लगाया करो।

अपनी शिक्षाओं में बुद्ध ने शील और नैतिकता पर बहुत अधिक बल दिया। उन्होंने अपने अनुयायियों को मन, वचन और कर्म से पवित्र रहने को कहा। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित दस शील या नैतिक आचरण का पालन करने को कहा। इन्हें हम सदाचार के दस नियम भी कह सकते हैं।

(i) अहिंसा व्रत का पालन करना (अहिंसा)।

(ii) झूठ का परित्याग करना (सत्य)।

(iii)चोरी नहीं करना (अस्तेय)।

(iv) वस्तुओं का संग्रह नहीं करना। (अपरिग्रह)

(v) भोग–विलास से दूर रहना (ब्रह्मचर्य)।

(vi) नृत्य और गान का त्याग करना।

(vii) सुगंधित पदार्थों का त्याग करना।

(viii) असमय भोजन नहीं करना।

(ix) कोमल शैय्या का त्याग करना, और

(x) कामिनी कंचन का त्याग करना।

सदाचार के इन नियमों से प्रथम पाँच महावीर स्वामी द्वारा बताये गये पाँच नियमों के अनुरूप अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के हैं। बुद्ध के अनुसार इन पाँचों का पालन करना, सभी गृहस्थियों एवं उपासकों के लिए आवश्यक है। इसका पालन करते हुए संसार का त्याग नहीं करने पर भी मनुष्य सन्मार्ग की ओर बढ़ सकता है लेकिन जो व्यक्ति संसार

की मोहमाया छोड़कर भिक्षु जीवन बिताता है, उसके लिए उपर्युक्त नियमों का पालन करना आवश्यक है।

महात्मा बुद्ध ने अपने इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन उस युग में प्रचलित रूढ़िवाद का तर्क युक्त खण्डन करते हुए किया और अपने स्वतंत्र दार्शनिक चिन्तन का भी प्रतिपादन किया। बुद्ध तर्क पर बहुत बल देते थे। अन्ध श्रद्धा में उनका विश्वास नहीं था। अतः उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता का खण्डन किया। वेदों का खण्डन करने के साथ ही उन्होंने ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप में नहीं माना । इसी कारण कुछ लोगों ने बुद्ध को नास्तिक भी कहा है। महात्मा बुद्ध आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करते थे। उनके लिए आत्मा शंकास्पद विषय था। अतः आत्मा के बारे में न उन्होंने यह कहा कि आत्मा है और न उन्होंने यह कहा कि आत्मा नहीं है। बुद्ध कर्मवाद के सिद्धान्तों को मानते थे। उनका कहना था कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। मनुष्य का यह लोक और परलोक कर्म पर ही निर्भर है। कर्म फल भोगने के लिए ही मनुष्य का आवागमन होता है। बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। वे कहते थे कि मनुष्य के कर्म के अनुसार ही उसका पुनर्जन्म होता है किन्तु बुद्ध का विचार था कि यह पुनर्जन्म आत्मा का नहीं , अहंकार का होता है। जब मनुष्य की तृष्णा व वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं तो अहंकार भी नष्ट हो जाता है और मनुष्य पुनर्जन्म से निकलकर निर्वाण प्राप्त करता है।

अहिंसा बौद्ध धर्म का भी मूलमंत्र है। बुद्ध ने बताया था कि प्राणीमात्र को पीड़ा पहुँचाना महापाप है। फिर भी महावीर की भांति अहिंसा पर बुद्ध ने अधिक बल नहीं दिया, बल्कि समय और परिस्थिति को देखते हुए इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। बुद्ध ने अन्तःकरण की शुद्धि पर भी बहुत बल दिया। उनका कहना था कि तृष्णा अन्तःकरण से पैदा होती है।

बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करना है। निर्वाण शब्द का अर्थ बुझना होता है। अतः महात्मा बुद्ध का कहना था कि मन में पैदा होने वाली तृष्णा या वासना की अग्नि को बुझा देने पर निर्वाण प्राप्त हो सकता है। इस तरह जैन व बौद्ध मत ने वैदिक दर्शन में कालान्तर में शामिल हुई रूढ़ियों को दूर कर उसमें नवीनता को शामिल करने का कार्य किया।

4. इस्लामिक दर्शन

इस्लाम के संस्थापक हजरत मोहम्मद थे। इनका जन्म 570 ई. में मक्का में हुआ था। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का नाम आमिना था । पिता का देहान्त मोहम्मद साहब के जन्म से पूर्व तथा माता का देहान्त इनकी बाल्यावस्था में ही हो गया था। इनका लालन–पालन इनके दादा द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार हलीमा दाई ने किया। मोहम्मद साहब ने 25 वर्ष की आयु में एक विधवा स्त्री खदीजा से विवाह कर लिया। खदीजा की आयु उस समय 40 वर्ष की थी। वह हजरत मोहम्मद साहब की ईमानदारी से बड़ी प्रभावित थी, लेकिन विवाह के बाद हजरत मोहम्मद चिंतन में लीन रहने लगे।

मदीना की मस्जि़द

इस्लाम के पूर्व अरब की जनता बहुदेववादी थी। वे मूर्तिपूजा में भरोसा करती थी। इन्हीं परिस्थितियों में वहाँ इस्लाम का उदय हुआ। हजरत मोहम्मद को हिरा नामक गुफा में ईश्वरीय ज्ञान हुआ। उन्होंने अरबी जनता को संदेश दिया कि ''अल्लाह (ईश्वर) के सिवाय कोई भी पूजनीय नहीं है और मैं उनका पैगम्बर (दूत) हूँ।'' उन्होंने काबा में रखे हुए 360 देवताओं की पूजा का विरोध किया। इस कारण से मक्कावासी नाराज हो गए और उनका विरोध करने लगे जिसके कारण हजरत मोहम्मद को मक्का छोड़कर मदीना जाना पड़ा । यह महत्वपूर्ण घटना इस्लाम में हिजरत कहलाती है। इसी घटना से ही 622 ई. से इस्लाम का हिजरी संवत् शुरू होता है। मदीना पहुँचने पर हजरत मोहम्मद का सत्कार व स्वागत करने वाले 'अंसार' (मदद करने वाले) कहलाए। यहीं से उन्होंने इस्लाम का प्रचार शुरू किया । मक्कावासी भी धीरे–धीरे उनके विचारों को मानने के लिए तैयार हो गए तथा समस्त अरब जगत में उनके विचारों का प्रचार–प्रसार होने लगा। 632 ई. में उनकी मृत्यु के बाद उनके खलीफाओं ने विशाल साम्राज्य की नींव डाली। हजरत अबूबकर सिद्दीक, हजरत उमर फरूक, हजरत उस्मान गनी, हजरत अली आदि खलीफाओं ने इस मजहब का खूब प्रचार किया।

इस्लाम का दार्शनिक चिन्तन मुसलमानों के पवित्र ग्रंथ कुरान में संग्रहीत है। यह चिन्तन इस प्रकार से है–

1. पाँच मुख्य शिक्षाएँ निम्नानुसार हैं–

   i. मूल मन्त्र (कलमा) : अल्लाह (ईश्वर) के सिवाय कोई पूजनीय नहीं है और मोहम्मद उसके पैगम्बर (दूत) हैं। अर्थात इस्लाम एकेश्वरवाद में विश्वास करता है।

   ii. नमाजः प्रतिदिन पाँच निश्चित समयों पर अल्लाह को सजदा (नमन) करना। ये समय सूर्योदय से पूर्व (फजर), दोपहर (जोहर), तीसरा पहर (असर), सूर्यास्त (मगरिब) तथा रात्रि शयन पूर्व (इशा) है। शुक्रवार को बड़ी सामूहिक नमाज।

   iii. रोजा (व्रत): रमजान के पूरे महिने में प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक खाना–पीना नहीं करना।

   iv. जकात (दान) : यदि एक वर्ष में साढ़े सात तोला सोना या 52 तोला चाँदी के बराबर या अधिक धन हो तो इसका 40 वाँ हिस्सा दान में देना।

   v. हज यात्राः जीवन मे कम से कम एक बार मक्का में मजहबी यात्रा पर जाना।

2. इस्लाम की मान्यता है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद अल्लाह उसके कर्मों का हिसाब कर उसे जन्नत अथवा दोजख प्रदान करता है।

3. इस्लाम के अनुसार यह जीवन अंतिम है, अर्थात् इस्लाम पुनर्जन्म को नहीं मानता है।

4. इस्लाम मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करता है।

5. ईसाई दर्शन

ईसाई मजहब व दर्शन के संस्थापक ईसा मसीह थे। इनका जन्म फिलिस्तीन के पहाड़ी भाग बैथेलहम में हुआ था। उनके पिता युसुफ तथा माता मरियम बढ़ई का कार्य करते थे। ईसा मसीह ने अंधविश्वास से घिरे समाज को मुक्त करने की ठान ली। उन्होंने गाँव–गाँव जाकर लोगों को उपदेश दिया कि परमात्मा सबको समान दृष्टि से देखता है। यहूदियों को ईसा मसीह का यह संदेश खटकने लगा। एक बार ईसा मसीह ने जेरूसलम के एक उत्सव में यहूदियों के हिंसात्मक कार्यो का विरोध किया। इससे सारा यहूदी समा उनसे चिढ़ गया। ईसा मसीह के एक शिष्य जुड़ास ने उन्हें धोखे से गिरफ्तार करवा दिया। दण्ड के रूप में उन्हें तीस वर्ष की अवस्था में सूली पर चढ़ा दिया गया। अन्तिम समय में ईसा मसीह ने कहा कि ''हे ईश्वर! इन्हें क्षमा करो क्योंकि ये लोग नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं?

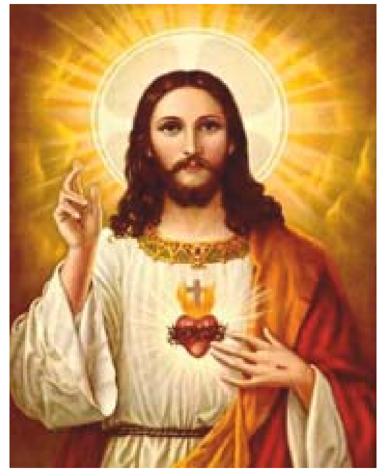

ईसा मसीह

ईसा मसीह के प्रमुख शिष्य संत पॉल व पीटर ने उनके सिद्धान्तों का बहुत प्रचार किया। ईसाई दर्शन के अनुसार ईश्वर एक है तथा उसकी दृष्टि में सभी जीव समान हैं। ईसा मसीह ने मनुष्य की सच्चरित्रता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ''पाप से घृणा करो पापी से नहीं। हमें क्रोध और बदले की भावना छोड़कर क्षमा करना सीखना चाहिए।'' उनका विचार था कि सहनशीलता से आत्मा की उन्नति होती है। उन्होंने लोगों को सत्य अहिंसा, दीन–दुःखियों की सेवा व बलिदान की शिक्षा दी। उनके उपदेश ईसाइयों के पवित्र ग्रंथ बाईबिल में संकलित है।

ईसाई मजहब बाद में दो भागों मे विभाजित हो गया। एक रोमन कैथोलिक एवं दूसरा प्रोटेस्टेंट। जो मूल मजहब पर थे वे कैथोलिक तथा जिन्होंने सुधारों का समर्थन किया वे प्रोटेस्टेंट कहलाये। प्रोटेस्टेंट लोगों ने पोप के राजनैतिक अधिकार, पतित पादरियों और क्षमादान पत्रों की ब्रिक्री का विरोध किया। बाद में मूल ईसाई मजहब में सुधार करने के लिए प्रतिवादात्मक मजहबी सुधार आंदोलन चलाया गया और क्षमादान पत्रों की बिक्री बंद कर दी गई। इस प्रकार ईसाई दार्शनिक चिन्तन के दया, करुणा, सेवा, सच्चरित्रता, सहनशीलता आदि मुख्य तत्त्व हैं।

6. पारसी दर्शन

पारसी धर्म का जन्म फारस (ईरान) में हुआ था। वहाँ के निवासियों का धर्म प्रकृति की पूजा पर आधारित था। इनके मुख्य देवता सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि थे, परन्तु सूर्य सबसे बड़ा देवता समझा जाता था।

जरथुस्ट्र

फारस का यह प्राकृतिक धर्म कालान्तर में धर्म श्रवौन के रूप में स्वीकार किया गया। इसके संस्थापक जरथुष्ट्र थे। यही श्रवौन धर्म बाद में पारसी धर्म बना। जरथुष्ट्र का जन्म पश्चिमी ईरान के अजरबेजान प्रान्त में हुआ था। उनके पिता का नाम पोमशष्पा और माता का नाम दुरोधा था। वे आरम्भ से ही विचारशील थे। तीस वर्ष की आयु में सबलान पर्वत पर उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। अधिकांश विद्वान जरथुष्ट्र का काल 600 ई. पू. मानते हैं।

जरथुष्ट्र द्वारा स्थापित दार्शनिक चिन्तन के अनुसार शरीर नाशवान है तथा आत्मा अमर है। मनुष्य को अपने कर्म के अनुसार सत्य व असत्य का पालन करने से स्वर्ग व नरक की प्राप्ति होती है। इन विचारों से पारसी दर्शन भी वैदिक दर्शन के समान ही दिखाई देता है। पारसी दर्शन के अनुसार संसार में दैवी और दानवी दो प्रकार की शक्तियाँ है। दैवी शक्तियों का प्रतीक अहूरमजदा है। यह महान देवता है जिसने पृथ्वी , मनुष्य व स्वर्ग की रचना की है। अहुरमजदा शक्ति कहती है कि ''ए मनुष्यों! बुरी बात न सोचो, सद्मार्ग न छोड़ो तथा पाप न करो।''

दानवीय शक्तियों का प्रतीक अहरिमन है। अहरिमन शक्ति मनुष्यों को शैतान बनाकर नरक की ओर ले जाती है। इन दोनों शक्तियों में संघर्ष चलता रहता है किन्तु अन्तिम विजय अहुरमजदा की ही होती है। जरथुस्ट्र का दर्शन पलायनवादी नहीं है। उसका मत है कि संसार में रहते हुए सद्कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। पारसी दर्शन के अनुसार शरीर के दो भाग है– 1. शारीरिक 2. आध्यात्मिक। मरने के बाद शरीर तो नष्ट हो जाता है किन्तु आध्यात्मिक भाग जीवित रहता है।

पारसी दर्शन के अनुसार यह संसार वायु , जल, अग्नि और पृथ्वी से बना है। पारसी धर्म का पवित्र ग्रंथ अवेस्ता–ए–जेद है। इसमें जरथुष्ट्र की शिक्षाएँ संकलित हैं। कालान्तर में ईरान पर बाहरी आक्रमण होने से पारसियों की बहुत बड़ी संख्या भारत में आकर बस गई। मुम्बई में स्थित पारसी मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से आज भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग धर्म व दर्शनों ने जन्म लिया। सब दर्शनों ने मानव जाति को बुरे कार्यों से बचने और सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी तथा अपने–अपने क्षेत्र में समाज को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। विश्व के प्रमुख दर्शनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सभी का अन्तिम लक्ष्य मानव के जीवन को आध्यात्मिक एवं अच्छा बनाना है। सभी दर्शन उत्तम चरित्र निर्माण के लिए सद्गुणों की आवश्यकता पर बल देते हैं। मानव सेवा, परोपकार, अहिंसा, प्रेम आदि भावनाएँ सभी धर्मों, महजबों में पाई जाती हैं। हमें सभी दर्शनों के प्रति सम्मान की भावना रखनी चाहिए।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. विश्व में वैदिक दर्शन जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, इस्लाम दर्शन ईसाई तथा पारसी दर्शन प्रमुख जीवन दर्शन है।
2. वैदिक दर्शन वेदों पर आधारित है। वेद चार हैं– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद।
3. जैन धर्म के पाँच मुख्य नियम (महाव्रत) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं।
4. बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य हैं – दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निवारण व दुःख निवारण का अष्टांगिक मार्ग।
5. इस्लामिक दर्शन के संस्थापक हजरत मोहम्मद साहब थे। इनकी प्रमुख शिक्षाएँ पवित्र कुरान शरीफ में संगृहीत हैं।
6. ईसाई मजहब के संस्थापक ईसा मसीह थे। उनके उपदेश ईसाइयों के पवित्र ग्रंथ बाईबिल में संकलित है।
7. पारसी धर्म के संस्थापक जरथुष्ट्र थे। पारसी धर्म का पवित्र ग्रंथ अवेस्ता–ए–जेद है।
8. जरथुष्ट्र के अनुसार संसार में रहते हुए भी सद्कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।
9. जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, 23वें पार्श्वनाथ तथा 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी थे।
10. वैदिक धर्म वसुधैव कुटुम्बकम में विश्वास करता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. महावीर स्वामी का जन्म कब हुआ?

   (अ) 699 ई.पू. (ब) 570 ई.पू.

   (स) 675 ई.पू. (द) 599 ई.पू.

2. महात्मा बुद्ध ने प्रथम उपदेश कहाँ दिया था?

   (अ) कपिलवस्तु (ब) सारनाथ

   (स) गया (द) बौद्धगया

3. हिजरी संवत् का प्रारम्भ कब हुआ?

   (अ) 622 ई.पू. (ब) 632 ई.पू.

   (स) 570 ई.पू. (द)566 ई.पू.

4. ईसाई धर्म का पवित्र ग्रंथ कौनसा है?

   (अ) गीता (ब) कुरान

   (स) अवेस्ता–ए–जेद (द) बाईबल

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पुरुषार्थ कितने हैं? नाम बताइए।
2. वसुधैव कुटुम्बकम् की बात किसमें कही गई है?
3. वैदिक दर्शन के अनुसार सृष्टि का स्रष्टा पालक व संहारक कौन है?
4. जैन धर्म के प्रथम व 24वें तीर्थंकरों का नाम बताइये।
5. पाँच महाव्रत कौन–कौन से हैं?
6. जैन धर्म में अहिंसा की व्याख्या क्या की गई है?
7. महात्मा बुद्ध के बचपन का नाम क्या था?
8. महात्मा बुद्ध ने दुःख का कारण क्या बताया ?
9. बौद्ध धर्म कितने सम्प्रदाय में विभक्त हुआ?
10. मोहम्मद साहब का मक्का से मदीना जाने की घटना को क्या कहते है?
11. हजरत मोहम्मद जन्म कहाँ हुआ?
12. ईसा मसीह के प्रमुख शिष्य कौन थे?
13. बाईबिल के प्राचीन सिद्धान्तों पर चलने वाले लोग क्या कहलाते है?
14. पारसी धर्म के संस्थापक कौन थें?
15. पारसी धर्म में दैवी शक्ति का प्रतीक किसे माना जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैदिक दर्शन में सहिष्णुता के संदेश को समझाइए।
2. जैन दर्शन के त्रिरत्न की अवधारणा का वर्णन कीजिए।
3. जैन धर्म के प्रमुख तीर्थंकर कौन– कौनसे हैं?
4. बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्य की अवधारणा का वर्णन कीजिए।
5. बौद्ध दर्शन के आत्मवाद को समझाइए।
6. मोहम्मद साहब की शिक्षाओं का अरब वासियों पर क्या प्रभाव पड़ा।
7. पारसी दर्शन के अनुसार देवी और दानवीय शक्तियों का वर्णन कीजिए?

निबन्धात्मक

1. वैदिक दर्शन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. जैन दर्शन की प्रमुख शिक्षाएँ कौन–कौनसी हैं?
3. बौद्ध दर्शन की शिक्षा का उल्लेख कीजिए।
4. मोहम्मद साहब के जीवन पर प्रकाश डालते हुए इस्लाम की शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।
5. ईसा मसीह का परिचय देते हुए ईसाई धर्म दर्शन पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द) 2. (द) 3. (अ) 4. (द)

अध्याय 3

प्राचीन भारत और विश्व

पहले प्रायः यह माना जाता था कि प्राचीनकाल में भारत का दुनिया के दूसरे देशों से कोई सम्बन्ध नहीं था, लेकिन पुरातत्व एवं इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली खोजों से अब यह स्पष्ट हो गया है कि प्राचीन भारत की सिन्धु–सरस्वती सभ्यताकाल से लेकर दसवीं शताब्दी ईस्वी तक भारत का दुनिया के दूसरे देशों से घनिष्ठ व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्पर्क रहा था।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यताकाल से लेकर गुप्तवंशी सम्राटों के समय तक मिस्र, मेसोपोटेमिया, युनान, रोम आदि पश्चिमी देशों के साथ भारत के व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। हर्षवर्धन के बाद दक्षिणी भारत में चोल साम्राज्य के विस्तार के समय ईसा की 10वीं शताब्दी तक पश्चिमी देशों के मुकाबले मध्य एशिया एवं दक्षिण–पूर्वी एशिया के साथ भारत के ऐसे घनिष्ठ व्यापारिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध थे जिस कारण भारत को 'वृहत्तर भारत' के रूप में पहचाना जाता था।

संसार के मानचित्र में आज भारत को जिन भौगोलिक और राजनैतिक सीमाओं में दिखाया जाता है, पहले भारत इतना छोटा या सीमित नहीं था। वह और भी बड़ा था। प्राचीनकाल में भारत की भौगोलिक सीमाएँ काफी विस्तृत थी। भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित आज का अफगानिस्तान भारत का ही हिस्सा था। पूरे मध्य एशिया के भू–भाग में भारत की संस्कृति और जीवन प्रणाली फैली थी। इधर पूर्व में भारत की भौगोलिक सीमाएं बर्मा (म्यानमार) तक विस्तृत थी। इसके अलावा भारत के दक्षिण–पूर्व में बंगाल की खाड़ी से और भी पूर्व दिशा में स्थित मलाया, जावा, सुमात्रा, बर्मा (म्यानमार) बोर्नियो, बाली, चम्पा, हिन्दचीन, इंडोनेशिया, स्याम, कम्बोडिया तथा सूरीनाम आदि द्वीप समूह और श्रीलंका भारत के ही अंग थे। यहाँ भारत के राजाओं का आधिपत्य था। इन द्वीपों में रहने वाले निवासी भारतीयों की तरह ही जीवन बसर करते थे। तब प्राचीनकाल से लेकर लगभग दसवीं शताब्दी तक वास्तविक स्थिति यह थी कि भारत के पश्चिम में मध्य एशिया के भूभागों से लेकर इधर पूर्व में बर्मा और दक्षिणी पूर्वी एशिया के द्वीप समूह तक और उत्तर में तिब्बत से लेकर दक्षिण में श्रीलंका तक के भूभाग में भारतीय जीवन लहराता था। जीवन के विविध पक्षों में भारत और भारत की संस्कृति ही नजर आती थी। तब भारत बड़ा और बड़ासे भी बड़ा नजर आता था। बड़ा शब्द को संस्कृत में 'बृहत्तर' बोला जाता है इसीलिए इतिहासकार एशिया के इस भूभाग को जहाँ प्रचीनकाल से लेकर दसवीं शताब्दी तक भारत की संस्कृति फैली हुई थी, बड़े से बड़ा भारत अथवा 'वृहत्तर भारत' के नाम से पुकारते हैं। संक्षेप में वृहत्तर भारत के अन्तर्गत भारत के भूभाग के साथ उन देशों को सम्मिलित माना जाता है, जहां प्राचीनकाल में भारतीयों का राजनीतिक एवं संस्कृतिक प्रभुत्व था। वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार के निम्न कारण थेः–

i. भौगोलिक कारणः–इसका सर्व प्रमुख कारण भारत की भौगोलिक स्थिति थी। भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग के मध्य में स्थित है। इस स्थिति के कारण ही भारत का अन्य देशों के साथ सम्बन्ध रहना स्वाभाविक था।

ii. आर्थिक कारण :–प्राचीनकाल में भारत एक उन्नत देश था और यहां के बने हुए सामान की विदेशों में प्रचुर मांग थी। भारतीय व्यापारी विदेशों में अपना माल बेचने जाते थे। भारत से जाने वाले कई व्यापारी विदेशों में जाकर बस गए थे और कई आते–जाते रहते थे। इन व्यापारियों के दूसरे देशों में आने –जाने और बसने के साथ उन्नत भारतीय सभ्यता और संस्कृति का उन देशों में प्रचार–प्रसार स्वाभाविक था।

iii. धार्मिक कारणः– बौद्ध धर्म के उदय से पूर्व जो व्यापारी आर्थिक कारणों से दक्षिण पूर्वी एशिया में बसे, उन्होंने हिन्दू धर्म की मान्यताओं का प्रसार किया। बौद्ध धर्म के उदय के पश्चात् भारत से कई बौद्ध धर्म प्रचारक समय–समय पर अन्य देशों में धर्म प्रचार के लिए गए। इन धर्म प्रचारकों ने विदेशों में मात्र धर्म को ही नहीं फैलाया, बल्कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का भी प्रचार किया। इसके अलावा दक्षिणी पूर्वी द्वीप समूह में चोल राजाओं ने हिन्दू धर्म के प्रचारक भेजे। उनके साथ कई भारतीय साहित्यकार, कलाकार आदि इन देशों में गए और उन सबने मिलकर वहां भारतीय संस्कृति, भाषा, साहित्य, कला, धर्म आदि का प्रचार किया।

iv. राजनैतिक कारण :– प्राचीनकाल में भारत के कई राजा और राजकुमार दक्षिण–पूर्वी एशिया के भागों में गए और वहां उन्होंने अपने राज्य एवं उपनिवेश संस्थापित किए। इन भागों में इस प्रकार के राज्यों तथा उपनिवेशों की स्थापना के साथ भारतीय विचारधारा, भाषा, संस्कृति और सभ्यता का सरलतापूर्वक विदेशों में प्रसार हुआ।

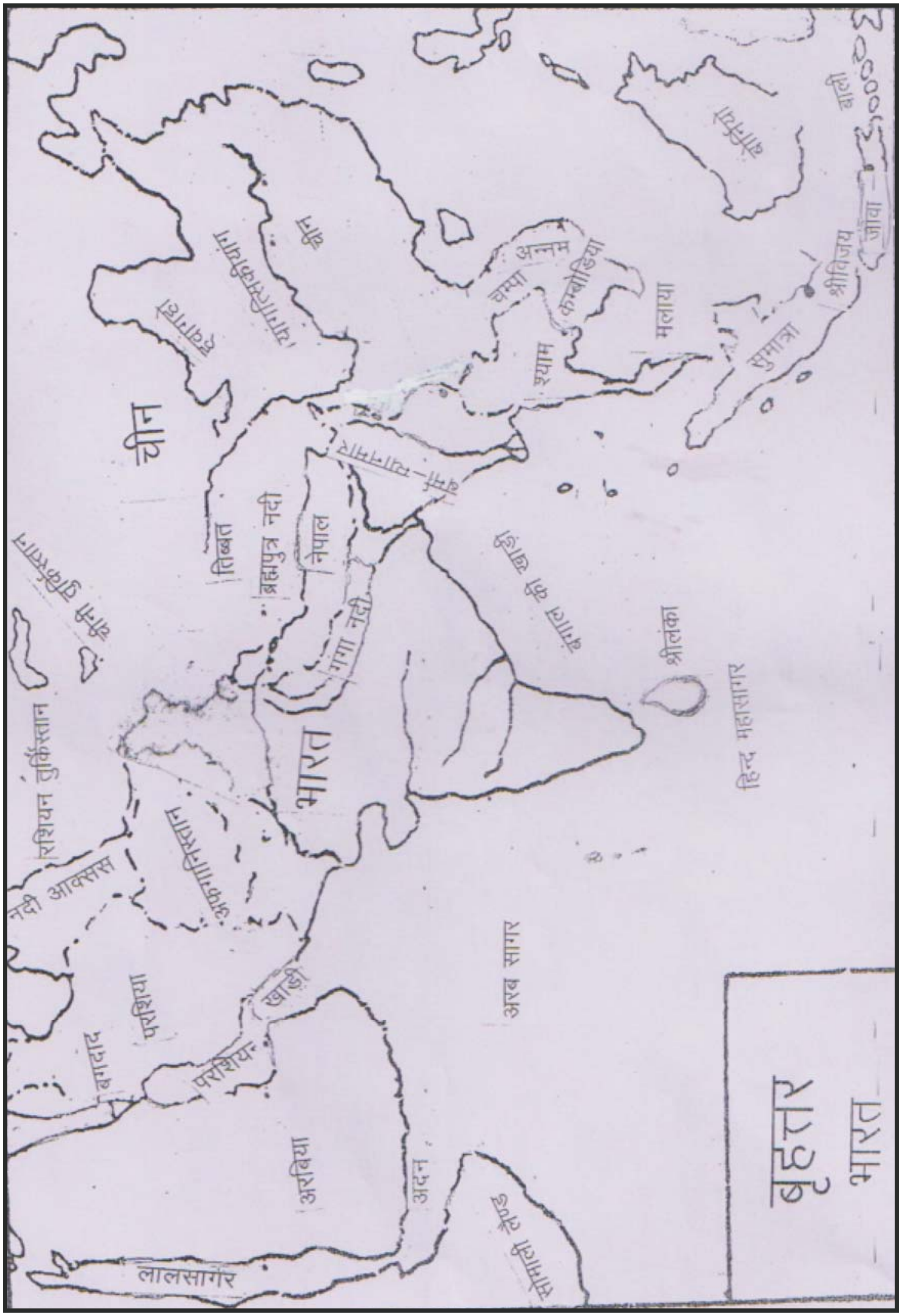

चीन
तिब्बत
ब्रह्मपुत्र नदी
नेपाल
गंगा नदी
भारत
बंगाल की खाड़ी
श्रीलंका
हिन्द महासागर
अरब सागर
अफगानिस्तान
रशियन तुर्किस्तान
नदी आक्सस
परशिया
बगदाद
परशियन खाड़ी
अरबिया
अदन
लालसागर
सोमाली लैण्ड
श्याम
चम्पा
अन्नम
कम्बोडिया
मलाया
सुमात्रा
श्रीविजय
जावा
बाली
बृहत्तर भारत

इन सभी कारणों की पृष्ठभूमि में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मध्य एशिया एवं उत्तरी पूर्वी तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में प्रसार हुआ।

मध्य एशिया :– प्राचीनकाल में सांस्कृतिक दृष्टि से मध्य एशिया का प्रदेश भारत के पूर्ण प्रभाव में था। इस प्रदेश के खोतान, कूचा, काराशहर, तुर्फान आदि स्थल भारतीय संस्कृति के प्रमुख केन्द्र थे। इन प्रदशों में हुई पुरातात्विक खुदाई में निकले अवशेषों, मूर्तियों, भित्ति चित्रों तथा वहाँ के प्राचीन साहित्य में वर्णित गाथाओं और राजाओं के नामों आदि से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इन भागों में भारतीय धर्म, भाषा, लिपि तथा कलात्मक प्रवृत्तियों का अत्यधिक प्रचार था।

खोतान भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बहुत बड़ा केन्द्र था। वहाँ बौद्ध धर्म की महायान शाखा के अनुयायी अत्यधिक संख्या में रहते थे। यहाँ इतनी अधिक संख्या में भारतीय बस चुके थे कि उन्होंने स्थानीय लोगों को भारतीय रंग में रंग दिया था। खोतान की भांति कूचा भी भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ की लगभग सम्पूर्ण जनता बौद्ध धर्म का पालन करने वाली थी। लगभग एक हजार स्तूपों एवं विहारों का यहां निर्माण किया गया था और संस्कृत भाषा, भारतीय ज्योतिष, आयुर्वेद एवं कला का प्रचलन था। यहाँ के शासकों के नाम भारतीय थे, जैसे– हरदेव, स्वर्गदेव आदि।

खोतान एवं कूचा की भाँति ही काराशहर एवं तुर्फान भी भारतीय सभ्यता के प्रमुख केन्द्र थे। ये दोनों अलग–अलग प्रदेश थे। काराशहर के लिए कहा जाता है कि यह कनिष्क के साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण भाग था। तुर्फान प्रदेश में भी पांचवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका था। यहाँ पर हुई खुदाई में बौद्ध विहारों, स्तूपों तथा मूर्तियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनसे इस क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रभाव का ज्ञान होता है। आठवीं शताब्दी में जब से इस्लाम ने यहां प्रवेश किया तो यहाँ से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति बड़ी तेजी से लुप्त हो गई।

अफगानिस्तानः– प्राचीनकाल में अफगानिस्तान तो भारत का ही एक अंग था। ऋग्वेदिक काल में भारतीयों की बस्तियां यहाँ फैली हुई थीं। मौर्य काल में भी अफगानिस्तान भारतीय साम्राज्य का अंग था। वस्तुतः प्राचीनकाल में अफगानिस्तान उत्तर भारत का एक भाग था, जहाँ के लोग मध्य भारत की भाषा बोलते थे। बौद्ध धर्म यहां फला फूला था। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त यहां हिन्दू धर्म का भी बड़ा प्रचार था।

चीनः– चीन और भारत के प्राचीन सम्बंधों का उल्लेख महाभारत, मनु स्मृति तथा कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से प्रकट होता है किन्तु ईसा की पहली शताब्दी धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से चीन और भारत का आदान–प्रदान प्रारम्भ हो गया था। लगभग 65 ई. में चीनी सम्राट मींगती, धर्मरत्न तथा मातंग नामक दो बौद्ध भिक्षुओं को भारत से चीन ले गया था। वे बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करते रहे। चीन में बौद्ध धर्म के व्यापाक प्रसार के साथ भारतीय स्थापत्यकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला का अधिक प्रभाव पड़ा। भारतीय गणित, ज्योतिष, चिकित्सा तथा संगीत का भी वहाँ काफी प्रचार हुआ। चीन में कई बौद्ध मंदिर एवं गुहा मंदिर बनाए गए। भारतीय चित्र शैली का अनुसरण कर कई भित्ति चित्र बनाए गए तथा भारतीय शैली की वहाँ कई मूर्तियां बनने लगी। चीन से ही बौद्ध धर्म कोरिया और जापान तक फैला।

तिब्बतः– उत्तर में भारत का निकटतम पड़ौसी तिब्बत भी सभ्यता और धर्म के क्षेत्र में भारत का ऋणी हैं। तिब्बत के राजा स्रोसांग नेम्पो ने भारत से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। वहाँ पर बौद्ध धर्म का खूब प्रचार–प्रसार हुआ तथा बौद्ध मंदिर एवं विहार बनवाए गए। संस्कृत भाषा तथा भारतीय लिपि ब्राह्मी एवं खरोष्ठी उन्होंने अपनाई। इसके साथ ही कई तिब्बती छात्र भारतीय विद्यालयों में आकर अध्ययन करने लगे।

श्रीलंका– भारत और श्रीलंका का सम्बन्ध प्राचीनकाल से है। भारतीय इतिहास में इसका सर्वप्रथम उल्लेख वाल्मिकी रामायण में आता है, जबकि राम ने श्रीलंका पर विजय प्राप्त की थी। मौर्यकाल के इतिहास से यह प्रकट होता है कि सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा था और वहां के राजा तिस्सा ने बौर्द्ध धर्म स्वीकार कर उसे राजकीय संरक्षण प्रदान किया था। फलतः बौद्ध धर्म वहां का सीानीय धर्म बन गया था । धर्म के साथ–साथ पाली भाषा और ब्राह्मी लिपि का भी श्रीलंका में प्रचार हुआ था। साथ ही श्रीलंका के साहित्य, कला तथा जन–जीवन पर भारतीय संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा, जिसकी झलक आज भी स्पष्ट दिखाई देती है।

बर्माः–बर्मा का वर्तमान में 'म्यानमार' नाम है। यहां प्रथम शताब्दी से भी पहले भारतीय संस्कृति का प्रसार हो चुका था। यहां के आराकान, तागोंग, श्रीक्षेत्र, यातोन और पीगू में हिन्दू जीवन शैली पर्याप्त मात्रा में विकसित थी। बर्मा के कई लेख संस्कृत व पाली भाषा में है। हिन्दू देवी–देवताओं के कई स्मारक बर्मा में पाये गये हैं। बर्मा के मान राज्य में हिन्दू धर्म का सर्वाधिक प्रभाव था। नवीं–दसवीं शताब्दी में पागन राज्य की स्थापना हुई। तब यहाँ का प्रसिद्ध राजा अनिरूद्ध था। इस पागन वंश के राज्यकाल में ब्राह्मण धर्म का स्थान बौद्ध धर्म ने लिया। बर्मा का आनन्द मंदिर भारतीय शिल्पकारों द्वारा ही निर्मित है। बर्मा (म्यांमार) में आज भी कई नाम हिन्दू संस्कृति

से मेल खाते हैं।

कम्बोजः– कम्बोज या कम्बोडिया को पहले फूनान कहा जाता था । वहाँ ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में कौडिन्य नामक भारतीय ने अपने राज्य की स्थापना की और वहाँ नागी जाति की सोभा नामक कन्या से विवाह किया। इसी ने वहाँ के निवासियों को कपड़ा पहिनना सिखाया। कौडिन्य के वंशजों के शासनकाल में कम्बोडिया की प्रगति हुई और वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ।

अंगकोरवाट मंदिर

नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जय वर्मा के वंशजों के काल में कम्बोडिया में भारतीय भाषा संस्कृत, दर्शन, साहित्य, गणित तथा ज्योतिष का वहाँ प्रचार हुआ। इसी वंश के राजा 'सूर्य वर्मा ' द्वितीय ने अंगकोरवाट नामक प्रसिद्ध विष्णु मंदिर का वहां निर्माण करवाया। यह मंदिर भारतीय स्थापत्य कला का उत्तम नमूना है। इसी तरह जय वर्मा सप्तम ने 'अंगकोरथोम' नामक एक और वैष्णव मंदिर का निर्माण करवाया। कम्बोडिया के अभिलेखों तथा अन्य ऐतिहासिक अवशेषों से ज्ञात होता है कि वहाँ के नगरों के नाम भारतीय नगरों के समान थे, , जैसे–ताम्रपुर, आढ्यपुर, विक्रमपुर आदि। कम्बोडिया में यज्ञादिक का भी प्रचार था एवं प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के अनुरूप आश्रमों में शिक्षा का कार्य होता था। वहीं प्राचीन मंदिरों में शिव , विष्णु, उमा, ब्रह्मा, सरस्वती, गंगा, चण्डी, लक्ष्मी, गणेश, आदि की मूर्ति पूजा प्रचलित थी और वेद पुराण, रामायण, महाभारत आदि भारतीय साहित्य का प्रचार था। वहां के प्राचीन मंदिरों में शिव और विष्णु के मंदिर अधिक हैं।

चम्पाः– कम्बोडिया या कम्बोज के पूर्वी भाग में प्राचीनकाल में चम्पा नामक राज्य था, जिसका आधुनिक नाम वियतनाम है। यह भी प्राचीनकाल में भारतीय उपनिवेश था। यहाँ का पहला राजा 'श्रीमार' हिन्दू था। इस राज्य में भी कई हिंदू राजवंशों ने लम्बे समय तक शासन किया था, जिनमें भद्रवर्मा, गंगराज, पाण्डुरंग भृगु और हरिवर्मा प्रमुख थे। चम्पा के प्राचीन ऐतिहासिक अवशेषों और परम्पराओं से ज्ञात होता हैं कि वहां भारत की भांति वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी और विवाह की पद्धति भारत की तरह ही थी। वहाँ यज्ञोपवीत धारण करने की प्रथा भी थी। राजकुलों में सती प्रथा प्रचलित थी और विधवाएँ सादा जीवन व्यतीत करती थीं। इस राज्य में भारतीय त्योहार मनाये जाते थे। चम्पा की राजभाषा संस्कृत थी और वहाँ भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य तथा व्याकरण आदि का खूब अध्ययन होता था। वहाँ शैव मत का सबसे अधिक प्रचार था। भद्रवर्मा ने 'माइसन' में एक मंदिर का निर्माण करवाया था। शिव के अलावा अन्य भारतीय देवता तथा राम व सीता की भी वहाँ पूजा होती थी और उनके मंदिर बनवाए गए थे। वहाँ के मन्दिरों में चालुक्यों की स्थापत्य निर्माण शैली का अनुसरण किया गया था। चम्पा में बाद में बौद्ध धर्म का भी व्यापक प्रचार हुआ और कई बौद्ध मंदिरों का निर्माण हुआ।

मलायाः– मलाया द्वीप समूह जिसे अब मलेशिया कहते है, में प्राचीन काल में कई हिन्दू राज्यों का विकास हुआ। इनमे कर्मरंग, कलशपुर, कटाह व पहंग आदि राज्य प्रमुख थे। इस प्रायद्वीप के अनेक भागों में प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर तथा मूर्तियें पर संस्कृत,, भाषा में उत्कीर्ण लेख आदि प्राप्त हुए हैं जिससे पता चलता है कि मलाया में भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था। यहाँ के राजाओं में गौतम, समुद्र विजयवर्मन आदि का भारतीय नामों के सदृश उल्लेख मिलता हैं। यहां पर भी बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और बौद्ध स्तूपों का निर्माण हुआ था। यहाँ आज भी ऐसे ब्राह्मण परिवार मौजूद हैं, जिनके पूर्वज भारत से गए थे। दक्षिण में चोल साम्राज्य के प्रतापी राजा राजेन्द्र चोल प्रथम का भी इस द्वीप समूह पर व्यापारिक नियंत्रण था।

स्यामः– स्याम को आजकल थाई जाति के नाम पर 'थाईलैण्ड' कहा जाता है किन्तु थाई जाति का प्रभाव यहाँ तेरहवीं शताब्दी से पूर्व नहीं था। इसके पूर्व यहां भारतीयों का प्रभुत्व था और यहां पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था। यहाँ हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म की महायान विचारधारा का अधिक प्रचलन था। यहाँ के शासकों ने बौद्ध मंदिर और विहारों का निर्माण करवाया था। इस प्रदेश में पाली भाषा का प्रसार भी था और वहां की स्थापत्यकला एवं तक्षणकला पर भारतीय कला प्रेरित तथा प्रभावित थी।

जावाः– वर्तमान इंडोनेशिया में स्थित जावा में भारतीयों ने 65 ई. पू. में अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था। फाह्यान के वर्णन के अनुसार पांचवीं शताब्दी के आरंभ में जावा में हिन्दू धर्म फैल चुका था और वहाँ ब्राह्मणों का बोलबाला अधिक था। शिव के उपासकों की संख्या वहाँ अधिक थी। जावा में हजारों बौद्ध एवं हिन्दू मंदिरों के अवशेष पाए गए हैं। जावा में हिन्दू राजवंशों एवं

भारतीय संस्कृति का प्रभाव पन्द्रहवीं सदी में कुबलखाँ के आक्रमण से पहले तक बना रहा। कुबलखाँ के आक्रमण के साथ वहां इस्लाम का प्रचार हुआ और भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव कम होता गया।

सुमात्राः— इसका वर्तमान नाम इण्डोनेशिया है। प्राचीनकाल में यह द्वीप स्वर्ण द्वीप के नाम से जाना जाता था। इसका प्रसिद्ध नगर 'श्रीविजय' था। यहाँ चौथी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक विजय वंश का शासन रहा। यह हिंन्दू वंश था। इस काल में सुमात्रा की बड़ी प्रगति हुई। दक्षिणी भारत के राजेन्द्र चोल प्रथम का भी यहाँ प्रभुत्व रहा था। श्रीविजय नगर भारतीय संस्कृति एवं धर्म का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ बौद्ध धर्म का भी काफी प्रचार हुआ। पन्द्रहवीं शती में यहां के हिन्दू राजा ने भी इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया, जिससे हिन्दू संस्कृति का प्रभाव कम होता चला गया।

बालीः—इंडोनेशिया स्थित बाली में चौथी शताब्दी में हिन्दू राज्य की स्थापना हुई । यहां हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ही प्रचलित थे और शिव एवं विष्णु की पूजा होती थी। यद्यपि समय के साथ यहां भी इस्लाम का प्रवेश हुआ, किन्तु उनकी संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव अधिक नहीं पड़ा। फलतः आज भी हिन्दू धर्म व भारतीय संस्कृति के अवशेष यहां विद्यमान हैं।

बोर्नियाः— चौथी शताब्दी में बोर्नियो (बकलपुर) में भी हिन्दुओं ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। उस काल में मूल वर्मा यहाँ का शासक था। वह प्राचीन भारतीय संस्कृति का भक्त था। अतः वहां भी भारतीय संस्कृति की जड़ें काफी जम गईं। बोर्नियो में शिव, गणेश, दुर्गा, नन्दी, महाकाल एवं बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनसे वहां पर भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

लवदेशः— लवदेश को वर्तमान में लाओस के नाम से जाना जाता है। यहाँ भगवान राम के पुत्र लव के नाम से एक नगरी 'लवपुरी' है। लवदेश के आदि देवता 'भद्रेश्वर' है। कभी यहां पर शैवधर्म का व्यापक प्रभाव था। लवदेश का प्रथम राजा श्रुतवर्मन था। इसका पुत्र श्रेष्ठ वर्मन था, जिसने श्रेष्ठपुर नाम से नगर बसाया। वर्ष प्रतिपदा, व्यास पूर्णिमा, विजयादशमी कभी यहाँ के लोकप्रिय त्यौहार थे। बौद्धधर्म के आगमन के बाद यहाँ कई बौद्धमठ तथा स्तूप आदि बने। यहां शालिवाहन संवत् का प्रचार भी था, जिसका प्रभाव आज भी है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि इस्लाम के उदय से पहले मध्य एशिया और दक्षिणी—पूर्वी द्वीप समूह में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अधिक प्रचार—प्रसार हुआ था। भारतीयों ने प्रेम और सहानुभूति के द्वारा अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार किया था।

1. बृहत्तर भारत में व्यापार, उद्योग एवं वाणिज्य

(क) व्यापार

प्राचीनकाल में भारत एक समृद्ध देश था। देश सोने की चिड़िया के नाम से विख्यात था। भारत के गाँव आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे। विश्व के विभिन्न कोनों से व्यापारी भारत का निर्मित माल खरीदने आते थे। विदेशों से जल व थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था। स्थल मार्ग द्वारा पूर्व में तिब्बत या चीन और पश्चिम में ईरान और अरब से व्यापार होता था। पूर्व में ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह प्रमुख था। चीन, लंका, जावा तथा सुमात्रा आदि देशों में भारतीय व्यापारी इसी बन्दरगाह द्वारा जाते थे। बन्दरगाहों पर जहाजों के आने—जाने की उत्तम व्यवस्था थी। विदेशी व्यापारी अपने साथ सोना, चांदी, लाल मणि तथा हीरे जवाहरात लाते थे और इनके बदले में भारत से सूती, रेशमी व जरी के कपड़े, तम्बाकू व मसाले आदि ले जाते थे। प्राचीन भारत में विदेशी व्यापार काफी विकसित अवस्था में था। बाहरी देशों के साथ व्यापार को जाने वाले व्यापारी वर्ग का मुखिया सार्थवाह कहलाता था।

पश्चिमी देशों से मीठी शराब और अंजीर, चीन से रेशम तथा नेपाल से ऊन मंगवाया जाता था। लौंग व चन्दन की लकड़ी लंका पहुंचाई जाती थी और वहाँ से उसका निर्यात पश्चिमी देशों में किया जाता था। मोती, बहुमूल्य पत्थर, सुगंधित पदार्थ, कपड़े, मसाले, नील, औषधियां, नारियल आदि निर्यात की प्रमुख सामग्री थी। इन वस्तुओं के बदले विदेशों से सोने के सिक्कों का भी आयात होता था।

प्राचीन भारत में आन्तरिक व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। आन्तरिक व्यापार की सुविधा के लिए राजमार्गों और जल मार्गों की समुचित व्यवस्था थी। जल मार्ग व्यापार की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक था। गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्बदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों द्वारा जलमार्ग से व्यापार होता था। इसके लिए बड़ी—बड़ी नौकाएं बनायी जाती थी। थलमार्ग से भी व्यापार होता था।

(ख) उद्योगः— प्राचीन भारत के उद्योग—धन्धे उन्नत अवस्था में थे। भारत के शिल्पियों की धाक विश्वभर में थी। भारतीय दस्तकारों की कला का परिचय इस तथ्य से उजागर होता है कि एक मलमल का थान जो 20 गज लम्बा और एक गज चौड़ा होता था उसे अंगूठी में से निकाला जा सकता था।

भारत में सबसे उन्नत उद्योग वस्त्रोत्पादन था। सूती कपड़े के व्यवसाय के लिए बनारस, वत्स, बंग, मदुरा आदि में

कारखाने थे। सूती कपड़ों के अलावा ऊनी और रेशमी वस्त्र भी पर्याप्त मात्रा में बनाये जाते थे। चाणक्य के अर्थशास्त्र में कई प्रकार के ऊनी कम्बलों का उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज के अनुसार भारतीय लोग मलमल के बारीक वस्त्र पहनते थे, जिन पर जरी का काम होता था। बंगाल मलमल के कपड़े बनाने में विख्यात था। कपड़े विविध रंगों के होते थे।

प्राचीन भारत में दूसरा मुख्य उद्योग धातु सम्बन्धी था। खानों से तरह– तरह की धातुएं निकालकर उसे पिघला–साफ कर उसके विविध बर्तन, अस्त्र– शस्त्र, आभूषण, मूर्तियां आदि बनाई जाती थीं। धातुओं में सोना, चांदी, ताम्बा, लोहा, जस्ता आदि की प्रमुखता थी। समुद्रों से विविध मणि, मुक्ता, रत्नसीप आदि निकालने का काम भी होता था। इन रत्नों का प्रयोग आभूषणों में किया जाता था।

लकड़ी का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। लकड़ी की बड़ी–बड़ी नावें तथा जहाज, घर के दरवाजे और फर्नीचर, बैलगाड़ियां, रथ, सन्दूक, घर–गृहस्थी का अन्य सामान–पलंग, खिलौने आदि बनाये जाते थे। अन्य उद्योगों में लुहार का व्यवसाय, चमड़े का उद्योग, हाथी दांत की विभिन्न वस्तुएं बनाने, भवन निर्माण, चीनी, नमक, नील उत्पादन आदि उद्योग उन्नत अवस्था में थे।

(ग) वाणिज्य व आर्थिक संस्थाएँः– प्राचीन भारत के प्रारम्भिक काल में व्यापार वस्तु–विनिमय द्वारा होता था। बाद में सिक्के का प्रचलन हो गया। व्यापारिक लेन–देन का काम सिक्कों से होता था। सोने, चांदी और ताम्बे के सिक्कों का प्रचलन था। स्वर्ण का सिक्का 'निष्क', चाँदी का सिक्का 'धरण' और तांबे का माषक तथा काकणी कहा जाता था। मुद्रा ढ़ालने का काम सरकारी टकसाल में होता था।

प्राचीनकाल में व्यावसायिक संगठनों का विकास हो चुका था। व्यावसायिक संगठनों को 'श्रेणी' या 'गण' कहा जाता था। श्रेणियों के अध्यक्ष को मुखिया कहा जाता था। ये व्यावसायिक संगठन अपने–अपने व्यावसायिक हितों की सुरक्षा करते थे। अलग–अलग व्यवसायों की अपनी अलग–अलग श्रेणियां होती थीं। अपने–अपने व्यवसायों के संचालन के लिए उनके अपने नियम थे। वे आधुनिक बैंक का कार्य भी करते थे। ऋण ब्याज पर देते थे और निधियाँ ब्याज पर अपने पास रखते थे। व्यावसायिक संगठन श्रेणियों द्वारा व्यापार और शिल्प को प्रोत्साहन प्राप्त होता था।

2. प्राचीन भारत की कला

(i) स्थापत्य कला :– भारत की स्थापत्य कला के स्मारक चार रूपों में मिलते है– स्तम्भ, स्तूप, भवन, गुहागृह।

(क) स्तम्भः– भारतीय स्थापत्य कला के उत्तम नमूने के रूप में सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गये लगभग तीस स्तम्भ भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं। भारतीय एवं विदेशी स्थापत्य कला विशेषज्ञ सम्राट अशोक के इन स्तम्भों को प्राचीन भारत की स्थापत्यकला के सर्वोत्तम प्रतिनिधि मानते हैं। ये स्तम्भ पत्थर के सूंडाकार (हाथी की सूंड के आकार के) किन्तु ऊपर की ओर पतले और नीचे की ओर मोटे हैं। आमतौर पर ये भारी और लम्बे हैं। इनकी लम्बाई लगभग 40 से 50 फीट तक है। प्रत्येक स्तम्भ एक ही पाषाण खण्ड से बना है। इन स्तम्भों पर एक विशेष प्रकार का लेप किया गया है, जिसकी चिकनाई, पालिश और चमक आश्चर्य में डालने वाली है। इनकी पालिश आज भी शीशे की भांति चमकती है। समस्त स्तम्भों में सारनाथ का पाषाण स्तम्भ सबसे अधिक सुन्दर है।

(ख) स्तूप एवं भवन :–'स्तूप' ईंटों या पत्थर के ऊँचे टीले सृदश गुम्बावदार स्मारक हैं। स्तूपों में मध्य भारत में भोपाल के निकट सांची का स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। स्थापत्य स्मारकों व भवनों की कला और सुन्दरता को देखकर भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा कि इन महल व भवनों को देखकर लगता है कि इस लोक के मनुष्य इन्हें नहीं बना सकते हैं, ये देवताओं द्वारा बनवाए गए होंगे।'' दक्षिणी–पूर्वी एशिया के देशों में कई स्तूप मिले हैं।

(ग) गुहागृहः–स्थापत्यकला स्मारकों में गुहागृहों का अपना अलग महत्व हैं। पर्वतों की कठोर चट्टानों को काटकर उन्हें निवास गृह, उपासना गृह और सभा भवनों का आकार देना भारतीय स्थापत्य कला की अपनी निजी शैली है।

(ii) मूर्तिकला– प्राचीन भारत की मूर्तिकला भावपूर्ण, ओजस्विता, आध्यात्मिकता, प्रभावोत्पादकता, सहज––प्राकृतिकता, अंग–सौष्ठवता, कलात्मक सुन्दरता तथा शिल्पीय कुशलता में अनुपम है। प्राचीनकाल में बनी मूर्तियों में उदयगिरि की वाराह अवतार' की मूर्ति, पाथारी में श्रीकृष्ण के जन्म के दृश्य की मूर्तियां, देवगढ़ के मन्दिर में शेष–शैय्या पर सोए विष्णु की मूर्ति तथा मण्डोर (जोधपुर) में श्रीकृष्ण के जीवन की कई झांकियों को प्रदर्शित करने वाली मूर्तियां बड़ी आकर्षक हैं। इसके अतिरिक्त मन्कुवर तथा सारनाथ की पत्थर की बुद्ध प्रतिमाएँ, सुल्तानगंज की विशाल ताम्बे की बुद्ध प्रतिमा, सम्राट अशोक के सारनाथ के स्तम्भ पर बने चार शेरों की मूर्तियाँ भारतीय मूर्तिकला के श्रेष्ठ नमूने हैं। बृहत्तर भारत के कम्बोडिया में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सरस्वती, लक्ष्मी, गणेश आदि की मूर्तियाँ आकर्षक रूप लिये हुए हैं।

(iii) चित्रकला– भारतीय चित्रकला के अनुपम उदाहरण अजन्ता, ग्वालियर तथा बाघ की गुफाओं की चित्रकला को माना जाता है। अजन्ता के चित्रों से यह ज्ञात होता है कि भारतीय कलाकारों ने मानव जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ा था। चित्रों में विविध प्रकार का अंग विन्यास, मुख –मुद्रा, भाव–भंगिमा, वेशभूषा, विविध केश विन्यास, रूप–रंग आदि अति सुन्दरता से चित्रित हैं। अजन्ता के चित्रों में ''मरणासन्न' राजकुमारी'' चित्र की भावाभिव्यक्ति इतनी गम्भीर है कि इसे देखकर चित्त प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अजन्ता की गुफाओं में महलों, पेड़–पौधों, लता –पत्तियों तथा बुद्ध के जीवन के बहुत से दृश्य चित्रित किए गए हैं। अजन्ता की चित्रकारी इतने उत्कृष्ट दर्जे की थी कि वास्तव में उसका कोई अनुकरण नहीं कर सकता।

(iv) संगीतकला– भारतीय कला के क्षेत्र में संगीत भी अछूता नहीं रहा। भारतीय सम्राटों का संरक्षण प्राप्त कर संगीत कला के तीनों अंगों–गायन, वादन और नृत्य के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। प्राचीनकाल में संगीत की शिक्षा के कई केन्द्र विद्यमान थे।

(v) मुद्रा कलाः– प्राचीन भारत के शासकों की मुद्राओं में भारतीयता और राष्ट्रीयता के साथ कलात्मक सौन्दर्य के प्रचुर दर्शन होते है। शासकों ने अपने स्तर पर अपने ढंग की अनेक सोने व चांदी की मुद्राओं का निर्माण करवाया।

3. प्राचीन भारत में शिक्षा – भारत को विश्वगुरू कहा जाता है। विश्व का पहला विश्वविद्यालय ईसा से 700 वर्ष पूर्व तक्षशिला में था, जहां विश्वभर के 10,000 विद्यार्थी 60 से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे। दूसरा विश्वविद्यालय ईसा से 400 वर्ष पूर्व नालन्दा में स्थापित हुआ था। ज्ञान की शिक्षा लेने के लिए ही मेगस्थनीज, ह्वेनसांग, फाह्यान आदि विदेशी विद्वान भारत आये थे। तक्षशिला, नालन्दा के अलावा उज्जैन, बनारस, राजगृह तथा पाटलिपुत्र, उच्च शिक्षा के विख्यात केन्द्र थे। इनमें धर्मशास्त्र के अलावा राजनीति, नीतिशास्त्र, व्याकरण, वेद, उपनिषद्, पुराण, साहित्य, ज्योतिष, चिकित्सा आदि विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। वृहत्तर भारतीय देशों से छात्र यहां पढ़ने आते थे।

4. प्राचीन भारत का साहित्य

प्राचीन भारत में तीन भाषाएं प्रचलित थी– संस्कृत प्राकृत तथा पालि भाषा। भाषा के आधार पर प्राचीन भारतीय साहित्य को हम तीन भागों में बांट सकते हैं–

(I) संस्कृत साहित्यः– संस्कृत साहित्य में वेद, वेदांग , उपनिषद, स्मृति, सूत्र साहित्य प्रमुख है। विशाखदत्त का ''मुदाराक्षस'' भारवी 'का किरातार्जुनियम'', भरत का 'स्वप्नवासदत्ता'' नामक नाटक तथा कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' आदि संस्कृत साहित्य की अनुपम कृतियां है। भर्तृहरि ने वाक्यदीप, श्रृंगारशतक एवं नीतिशतक नामक उच्चकोटि के नीति व व्याकरण ग्रंथ लिखे। संस्कृत के महाकवि कालिदास तो विश्व के सर्वोत्कृष्ट कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके ग्रंथों में कौनसा ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ है, नहीं कहा जा सकता। 'कुमारसम्भवम्' और रघुवंशम् कालिदास के दो महाकाव्य है। 'मेघदूतम्' और ऋतुसंहार उनके दो खण्डकाव्य और 'विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्' उनके तीन नाटक है। पंचतंत्र की कहानियाँ भारत की विश्व को बहुत बड़ी देन है। कम्बोडिया में वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों का प्रचलन था।

(ii) बौद्ध साहित्य– बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा पालि और संस्कृत भाषा में बौद्ध दर्शन और विचारधारा से सम्बंधित प्रभूत साहित्य की रचना की गई। साथ ही महात्मा बुद्ध के जीवन को आधार बनाकर संस्कृत और जन भाषाओं में साहित्य की रचना की गई। बौद्ध ग्रंथों में विनयपिटक, सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक, अवदानशतक, दिव्यावदान, मन्जूश्रीमूलकल्प, बुद्धचरित्र महाकाव्य तथा जातक कथा साहित्य प्रमुख है। इन सब ने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया और लोक भाषाओं के विकास में सहयोग दिया।

(iii) जैन साहित्य– भारतीय सभ्यता और संस्कृति को साहित्य के क्षेत्र में जैन धर्म ने महत्वपूर्ण देन दी है। जैन धर्म का आगम साहित्य प्राकृत में लिखा हुआ है। जैन विद्वानों ने विभिन्न युगों में उन्नत साहित्य का सृजन किया जो आज बड़ी निधि के रूप में उपलब्ध है। इन लेखकों में गुजरात के हेमचन्द्र बहुत प्रसिद्ध हुए है। जैन लेखकों ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश भाषाओं में ही अपने ग्रंथ नहीं रचेः बल्कि कन्नड़, तमिल व तेलुगु में भी जैन साहित्य लिखा गया। जैन साहित्यकारों ने भारत की जन भाषाओं में साहित्य

रचना कर एक तरफ भारतीय साहित्य भण्डार को भरा, वहीं भारत के आध्यात्मिक चिन्तन को सर्वसाधारण तक पहुंचाया।

5. विज्ञानः— भारत विज्ञान व तकनीकी दृष्टि से कितना समृद्ध था। इसका प्रमाण 1600 वर्ष से दिल्ली में स्थित लौह स्तम्भ है जो विश्व धातु विज्ञानियों के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

प्राचीन भारत के धातु शोधन के उच्च ज्ञान का परिचय दिल्ली में कुतुबमीनार के इस लौह स्तम्भ से होता है। 24 फीट लम्बे तथा लगभग 180 मन वजन के इस स्तम्भ को देखकर आश्चर्य होता है कि सैंकड़ों वर्षों की बरसात व धूप सहन कर लेने पर भी आज यह स्तम्भ बिना जंग खाये खड़ा है। भारतीयों के गुरूत्वाकर्षण तथा भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों के उच्च ज्ञान का उदाहरण बेलूर (कर्नाटक) में केशव मन्दिर में 40 फीट ऊँचा तथा 20 हजार किलोग्राम का एक प्रस्तर स्तम्भ है जो बिना सहारे समतल भूमि में बिना गाड़े खड़ा है। भौतिक, रसायन व वनस्पति विज्ञान का भी भारतीयों को पर्याप्त ज्ञान था।

4. गणितः— भारत का गणित में सबसे बड़ा योगदान शून्य का आविष्कार है जिसका प्रयोग पाँचवीं शताब्दी में आर्यभट्ट ने किया था। पूर्णांक के साथ अपूर्णांक (भिन्न) को व्यक्त करने के लिए दशमलव के प्रयोग द्वारा गणित के विकास का क्रान्तिकारी आधार प्रस्तुत करने वाली दाशमिक प्रणाली, मूलतः भारत में निर्मित हुई जो सातवीं शती के बाद संस्कृत से अरबी और लैटिन में हुए अनुवाद—ग्रंथों के माध्यम से संसार भर में प्रचलित हुई।

वर्गमूल और घनमूल निकालने की पद्धति, त्रिभुज, चतुर्भुज तथा वृत्त की परिधि, एक क्षेत्रफल निकालने के सूत्र चक्रीय चतुर्भुजों के परस्पर छेदने वाले विकर्ण और उनका उपयोग, समानान्तर, गुणोत्तर श्रेणी तथा उनका समाकलन आदि का ज्ञान छठी शती में आर्यभट्ट को था। इतना ही नहीं वृत्त परिधि एवं व्यास के अनुपात दर्शक सुप्रसिद्ध नियताँक 'पाई' का चार दशमलव स्थान तक यथार्थ मान भी आर्यभट्ट ने ज्ञात किया। सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में आर्यभट्ट के चार ग्रंथों के लैटिन में अनुवाद हुए है। घनात्मक संख्या को शून्य से भाग देने पर भागफल 'अनन्त' होता है, इसका ज्ञान भास्कराचार्य ने दिया। भास्कराचार्य के 'लीलावती एवं 'सिद्धान्त शिरोमणि' दोनों ग्रंथ संसार की अमूल्य निधि है। गणित के क्षेत्र में वर्तमान में प्रचलित पाइथोगोरस प्रमेय का प्रतिपादन सत्ताईस सौ वर्ष पहले बोधायन ने किया था जिसे चित्ति—प्रमेय के नाम से जाना जाता था।

7. ज्योतिष एवं खगोल— गणित के आधार पर ज्योतिष की भी प्राचीन काल में प्रगति हुई। आर्यभट्ट गणितज्ञ होने के साथ—साथ ज्योतिष का भी विद्वान था। उसने ही पृथ्वी का अपनी कीली पर चारों और घूमने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों का पता लगाकर सूर्य और चन्द्रग्रहण के कारणों को स्पष्ट किया। चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर पृथ्वी का अपने अक्ष पर भ्रमण देखकर बारह राशियाँ, सत्ताईस नक्षत्र, तीस दिन का चन्द्रमास, बारहमास का वर्ष, चान्द्र और सौर वर्ष के अन्तर को समन्वित करने हेतु प्रति तीसरे वर्ष पुरूषोत्तम (अधिक) मास द्वारा समायोजित आदि शास्त्र शुद्ध खगोल—सिद्धान्त प्राचीन ज्योतिष विद्वानों ने प्रतिपादित किये। वराहमिहिर, कणाद, नागार्जुन, वाग्भट्ट प्राचीन भारत के प्रमुख ज्योतिषाचार्य व खगोलशास्त्री थे।

8. आयुर्वेद :— आयुर्वेद विश्व की सबसे प्राचीन चिकित्सा पद्धति है जो कि भारत की देन है। धन्वन्तरि को आयुर्वेद का जनक माना जाता है। औषधि तथा रसायन विज्ञान में भारतीय दुनिया में सबसे आगे थे। भारत में धातुओं को शुद्ध करना, व भस्म बनाना जड़ी—बूटियों से औषधियों का निर्माण करना, अनेक प्रकार के प्राकृतिक रंग बनाना आदि प्राचीनकाल से ही किया जाता रहा है। नागार्जुन को कई रासायनिक क्रियाओं का ज्ञान था। नागार्जुन ने रस चिकित्सा प्रणाली (विविध धातुओं एवं अन्य वस्तुओं की भस्म बनाकर औषधि के रूप में उनका प्रयोग) का आविष्कार करके चिकित्सा के क्षेत्र में नवीन पद्धति का सूत्रपात किया।

सुश्रुत विश्व का प्रथम सर्जन (शल्य चिकित्सक) माना गया है। उन्हें सिजेरियन, मोतियाबिन्द, अंग प्रत्यारोपण, पथरी आदि की शल्य क्रियाओं के साथ बेहोशी की दवा का भी ज्ञान था। वे शल्य क्रियाओं में आने वाले 100 से भी अधिक उपकरणों का वर्णन करते हैं। औषधि विज्ञान के क्षेत्र में चरक का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार प्राचीन भारत का विश्व की सभ्यता व संस्कृति में अपना विशिष्ट व महत्वपूर्ण स्थान है। यह वृहत्तर भारत के परिवेश तथा भारतीय साहित्य, कला, विज्ञान, गणित ज्योतिष, खगोल, आयुर्वेद, व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग आदि से सम्बन्धित उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. प्राचीन काल में भारत सोने की चिड़िया के नाम से विख्यात था।
2. एशिया के उस भू–भाग को जहाँ प्राचीन काल से लेकर दसवीं शताब्दी तक भारत की संस्कृति विस्तृत थी, बृहत्तर भारत कहते हैं।
3. बृहत्तर भारत मध्यएशिया, उत्तरी–पूर्वी तथा दक्षिणी–पूर्वी एशिया के भू–भाग में फैला हुआ था।
4. बृहत्तर भारत में हिन्दू मन्दिर व बौद्ध स्तूप प्रायः सभी जगह पर पाये जाते हैं।
5. प्राचीन भारत में मोती, बहुमूल्य पत्थर, सुगंधित पदार्थ, कपड़े, मसाले, औषधियाँ आदि विदेशों में निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ थी।
6. प्राचीनकाल में व्यावसायिक संगठनों को श्रेणी, श्रेष्ठी या गण कहा जाता था।
7. भारत की स्थापत्यकला के स्मारक चार रूपों में मिलते हैंः– स्तम्भ, स्तूप, भवन या मन्दिर, गुहागृह।
8. अशोक के सारनाथ के स्तम्भ पर बनी मूर्ति भारतीय मूर्तिकला का श्रेष्ठ नमूना है।
9. प्राचीनकाल में तक्षशिला, नालन्दा विश्वविद्यालय तथा उज्जैन, बनारस, राजगृह एवं पाटलिपुत्र उच्च शिक्षा के विख्यात केन्द्र थे।
10. प्राचीन भारत में तीन भाषाएं मुख्यतया प्रचलित थी– संस्कृत, प्राकृत तथा पालि भाषा।
11. गणित के क्षेत्र में दशमलव तथा शून्य भारत की खोज है जो विश्व को भारत की देन है।
12. औषधि विज्ञान में सुश्रुत विश्व का प्रथम शल्य चिकित्सक (सर्जन) था।
13. बृहत्तर भारत में बौद्ध धर्म एवं मुस्लिम धर्म के प्रसार के कारण भारतीय संस्कृति का प्रसार कम हो गया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्राचीनकाल मे ंसोने की चिड़िया कौनसे देश को कहा जाता था?
   (अ) चीन (ब) भारत
   (स) मिस्र (द) यूनान
2. निष्क क्या है?
   (अ) सोने का सिक्का
   (ब) चांदी का सिक्का
   (स) ताम्बे का सिक्का
   (द) इनमें से कोई नहीं
3. कुमारसंभवम् और रघुवंश नामक महाकाव्य लिखे हैं–
   (अ) कालिदास ने (ब) कौटिल्य ने
   (स) भारवी ने (द) विशाखदत्त ने
4. प्रस्तर स्तम्भ कहाँ स्थित है जो समतल भूमि पर बिना गाड़े खड़ा है?
   (अ) सारनाथ में (ब) दिल्ली में
   (स) बैलूर (कर्नाटक) में (द) मन्कुवर में
5. 'लीलावती' एवं सिद्धान्त शिरोमणि नामक ग्रंथ किसने लिखे है?
   (अ) भास्कराचार्य (ब) बोधायन
   (स) आर्यभट्ट (द) नागार्जुन

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अंगकोरवाट के मन्दिर कहाँ पर स्थित है?
2. वियतनाम का प्राचीन नाम क्या है?
3. बृहत्तर भारत के किस क्षेत्र में नगरों के नाम भारत के नगरों की तरह थे?
4. व्यावसायिक संगठनों को क्या कहा जाता था?
5. विश्व का पहला विश्वविद्यालय कौनसा है?
6. लौह स्तम्भ कहाँ स्थित है?
7. 'पाई' का यथार्थ मान किसने ज्ञात किया?
8. चिति प्रमेय का प्रतिपादन कौनसे गणितज्ञ ने किया?
9. सूर्य और चन्द्रग्रहण के कारणों को सर्वप्रथम किसने स्पष्ट किया?
10. भारत के प्रमुख दो खगोल शास्त्रों के नाम बताइए।
11. विश्व की सबसे प्राचीन चिकित्सा पद्धति कौनसी है?
12. रस चिकित्सा प्रणाली का आविष्कार किसने किया?
13. विश्व का प्रथम सर्जन किसे माना गया है?
14. थाईलैण्ड का प्राचीन नाम क्या था?
15. तिब्बत भारत की कौनसी दिशा में स्थित है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बृहत्तर भारत में विदेशी व्यापार का वर्णन कीजिए।
2. बृहत्तर भारत में मुख्य उद्योग कौन–कौन से थे? उल्लेख कीजिए।
3. स्तम्भ भारतीय स्थापत्यकला के उत्कृष्ट नमूने क्यों है? स्पष्ट कीजिए।
4. ज्योतिष व खगोल के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
5. प्राचीन भारत में संस्कृत साहित्य में कौन–कौनसी रचनाएं लिखी गई।
6 वृहत्तर भारत में भारतीय सभ्यता व संस्कृति के केन्द्र कौन–कौन से थे ? नाम बताइए।
7. बौद्ध व जैन साहित्य किस–किस भाषा में लिखा गया?

निबन्धात्मक

1. वृहत्तर भारत क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. वृहत्तर भारत के स्वरूप को समझाइये।
3. प्राचीन भारत की कला का वर्णन कीजिए।
4. गणित के क्षेत्र में भारत की क्या देन है?उल्लेख कीजिए।
5. विज्ञान व चिकित्सा के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों को स्पष्ट कीजिए।
6. वृहत्तर भारत में व्यापार व वाणिज्य का वर्णन कीजिए।
7. कम्बोडिया (कम्बोज) में भारतीय संस्कृति के प्रसार का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(1) ब (2) अ (3) अ (4) स (5) अ

अध्याय 4

सामाजिक सुधार और धार्मिक पुनर्जागरण

भारतीय धर्म, समाज एवं संस्कृति प्राचीन काल से ही अत्यधिक सुदृढ़, समृद्ध एवं गौरवपूर्ण रही है। अनेक विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किये जब–जब भी भारत पर विदेशी आक्रमण हुए या विदेशियों का शासन रहा, भारतीय संस्कृति व धर्म को बहुत ही आघात पहुँचा लेकिन हमारी संस्कृति का स्वरूप इन आक्रमणों के बाद भी अक्षुण्ण बना रहा है। इस काल में उत्पन्न अव्यवस्था के कारण जब–जब भी भारतीय धर्म एवं समाज में रूढ़िवाद, आडम्बर, सामाजिक बुराइयां आदि प्रवेश करने लगी, तब–तब समाज और धर्म सुधार नायकों ने एक आन्दोलन के रूप में उन बुराइयों को दूर करने का संदेश समाज को दिया, चाहे वह मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन हो या 19वीं शताब्दी का सामाजिक व धार्मिक पुनर्जागरण ।

भक्ति आन्दोलन –

भारत में भक्ति की एक लम्बी व सुदृढ़ परम्परा रही हैं। भक्ति की शुरूआत मध्यकाल में सर्वप्रथम दक्षिण भारत से हुई और इसमें विष्णु के उपासक सन्तों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। भारत में मध्यकाल व पूर्व मध्यकाल में भक्ति के तीन प्रमुख मत अस्तित्व में थे–

1. शैवमत
2. वैष्णवमत
3. सूफीमत

शैव मत–

शिव के उपासक शैव कहलाते थे। एक समय था जब हिन्दू धर्म में शैवमत सर्वाधिक प्रबल था। पाल, सेन व चन्देल राजाओं के अभिलेखों में ''ओम नमः शिवाय'' से प्रार्थना प्रारम्भ होती है। दक्षिण में शैव के अनुयायियों को नयनार कहा जाता था, जिनकी संख्या 63 थी। 12वीं शताब्दी में दक्षिण भारत में वीर शैव मत की शुरूआत हुई। इसके अनुयायी लिंगायत कहलाते थे। ये अहिंसा में विश्वास रखते थे। हिन्दू धर्म आन्दोलन के नेतृत्व में शंकराचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने बद्रीनाथ, पुरी, द्वारिका व श्रृंगेरी (मैसूर) में चार मठ स्थापित किये। कालान्तर में शैवमत–वीरशैव, पाशुपत, कापालिक आदि सम्प्रदायों में विभाजित हो गया।

वैष्णव मत–

मध्यकालीन भारत में वैष्णव मत काफी लोकप्रिय था। भगवान विष्णु के उपासक वैष्णव तथा विष्णु के अनुयायी दक्षिण भारत में आलवार कहलाते थे। इनकी संख्या 12 थी। आलवार संतो ने दक्षिण भारत में भक्ति के सिद्धान्त का अधिक प्रचार किया। ये सन्त यद्यपि सामान्य वर्ग से सम्बन्धित थे, लेकिन इनमें उच्च गुणों का समावेश था। इनकी शिक्षाओं में कर्मज्ञान व भक्ति का सम्मिश्रण था। ये सगुण भक्ति के उपासक थे। इन्होंने तमिल भाषा में साहित्य की रचना की। बाद में भक्ति आन्दोलन का प्रसार उत्तरी भारत में भी हुआ, जिसे आगे बढ़ाने में रामानन्द, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य निम्बार्काचाार्य, रामानुजाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु आदि प्रमुख है। राजस्थान में भी वैष्णव सम्प्रदायों के अन्तर्गत विश्नोई सम्प्रदाय, जसनाथी सम्प्रदाय, रामस्नेही सम्प्रदाय, दादू सम्प्रदाय, निरंजनी सम्प्रदाय, चरणादासी सम्प्रदाय व लालदासी सम्प्रदाय आदि का अभ्युदय व विकास हुआ। ये सभी संत निर्गुण सम्प्रदाय के थे। सामाजिक व धार्मिक पुनर्जागरण में इन सन्तों का भी प्रमुख योगदान रहा।

सूफीमत–

इस्लामिक रहस्यवाद को सूफीवाद कहा जाता है। सूफ का शाब्दिक अर्थ ऊन है। सूफी सन्त ऊन की तरह सफेद वस्त्र का लबादा पहनते थे। इसी से उन्हें सूफी कहा गया। सूफी मत तथा हिन्दू विचारधारा, विश्वास और रीति रिवाजों में काफी समान थी। सूफीयों के अनुसार विभिन्नता में ईश्वर की एकरूपता निहित हैं। सूफीवाद के दो प्रमुख लक्ष्य हैं–परमात्मा से सीधा संवाद और इस्लाम के अनुसार मानवता की सेवा करना। सूफी सम्प्रदायों में चिश्ती सम्प्रदाय, सुहरावर्दी, कादरी एवं नक्शबन्दी सम्प्रदाय प्रमुख थे। प्रमुख सूफी सन्तों में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती, शेख हमीदुद्दीन नागौरी, बख्तियार काकी, निजामुद्दीन ओलिया, शेख सलीम, बहाउद्दीन जकारिया, सदुद्दीन आरिफ, सुर्ख बुखारी आदि प्रमुख थे।

मध्यकाल में इन तीनों मतों ने सामाजिक व धार्मिक पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर 19वीं एवं 20वीं शताब्दी में भी धार्मिक व समाज सुधार के आन्दोलन आरम्भ हुए। इन आंदोलनों ने भी पुनर्जागरण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। एक ओर इन आन्दोलनों ने भारत की सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों को दूर किया, वहीं दूसरी ओर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में इस पुनर्जागरण ने नई जान फूंकी।

सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण के कारण–

1. भारतीय धर्म व समाज धीरे–धीरे कर्मकाण्डों एवं रूढ़िवादिता से ग्रसित होने लगा था। मुस्लिम व ईसाई धर्म प्रचारक इस कमी का लाभ उठाने लगे और भारतीय ईसाइयों एवं मौलवियों से प्रभावित होने लगे, तब हिन्दुओं की आंखें खुली और विचार किया जाने लगा कि ये हिन्दू धर्म की बुराइयों की इस स्थिति पर रोक लगाना जरूरी है। अतः सुधारकों ने भारतीय समाज एवं धर्म में नयी प्रेरणा जागृत की। देशवासियों में हमारे प्राचीन गौरव एवं उत्कृष्ट आदर्शों के प्रति श्रद्धा जागृत की। इससे इस आन्दोलन को बढ़ावा मिला।
2. अंग्रेजी शासन की स्थापना व पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से भारतीयों को पश्चिमी ज्ञान व विचारों के अध्ययन का भी अवसर मिला।
3. ईसाई मिशनरीज की सक्रियता से भारतीयों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथा अपने समाज व धर्म की बुराइयों को दूर करने व जागृति लाने का प्रयास किया।
4. अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे भारत के आर्थिक शोषण के कारण भी भारतीयों ने ब्रिटिश आचार–विचार का विरोध किया।
5. तत्कालीन साहित्य एवं समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने का कार्य किया। इनमें आनन्दमठ, 'संवाद कौमुदी' व मराठी उपन्यास 'शिवाजी' का नाम प्रमुख है।
6. भारत में छापेखाने की शुरूआत होने से सन् 1875 तक देशी भाषाओं एवं अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। इन्होंने भारतीयों को अपनी सामाजिक बुराइयों से अवगत कराया।
7. इस समय यूरोप में भी दार्शनिक व बौद्धिक चिन्तन की लहर चल रही थी। स्वतंत्र चिन्तन एवं तर्कवाद को महत्व दिया जा रहा था। भारतीय विचारकों ने भी इसी पद्धति को अपनाते हुये यूरोप को भारतीय ज्ञान व संस्कृति से परिचित कराया।
8. भारत के गौरवमय अतीत से भी विचारकों को प्रेरणा मिली। कई यूरोपीय विद्वान भी इस अतीत से प्रेरणा लेना चाहते थे। विलियम जोन्स व मैक्समूलर ने कई भारतीय ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया।
9. 19वीं शताब्दी के मध्य में बंगाल में बुद्धिजीवियों ने कलकत्ता हिन्दू कॉलेज के माध्यम से लोगों में परिवर्तन की भावना को जन्म दिया। इसमें हिन्दू कॉलेज के यूरोपीय अध्यापक देरिजियो के विचारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।
10. इस समय राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, केशवचन्द सेन, ईश्वरचन्द विद्यासागर, ज्योतिबा फूले आदि समाज सुधारक हुए जिन्होंने भारतीय समाज एवं धर्म में एक नयी चेतना का संचार किया।

प्रमुख समाज सुधारक

(I) ब्रह्म समाज एवं राजा राम मोहन राय–

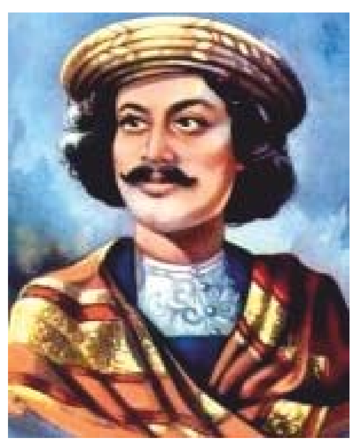
राजा राममोहनराय

बहुमुखी प्रतिभा के धनी राजा राममोहनराय भारतीय धर्म व समाज सुधार आन्दोलन के अग्रणी पुरूष थे। इन्हें भारतीय राष्ट्रवाद का अग्रदूत भी कहा जाता है। इनका जन्म 22 मई, 1772 को बंगाल के राधानगर गांव में हुआ था।

इन्हें अरबी, संस्कृत, पारसी, बंगला के अलावा लेटिन, ग्रीक, हिब्रू भाषाओं का भी ज्ञान था। इन पर पाश्चात्य विचारों

का काफी प्रभाव था। हिन्दू समाज में प्रचलित अन्ध विश्वास एवं कुप्रथाएं पसंद नहीं थी। उन्होंने इन्हें दूर करने का संदेश दिया। उनका मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं था व भारत में ईसाई धर्म के प्रभुत्व को रोकने तथा भारतीय समाज की कुरीतियों से मुक्त कराने के लिए उन्होंने 20 अगस्त, 1828 को 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। ब्रह्म समाज मूल रूप से वेद और उपनिषदों पर आधारित है। ब्रह्म समाज के प्रमुख सिद्धान्त निम्नांकित हैं–

(I) ईश्वर एक है वह सृष्टि का निर्माता, पालक, अनादि, अनन्त, निराकार है।

(ii) ईश्वर की उपासना बिना किसी जाति सम्प्रदाय के अध्यात्मिक रीति से करनी चाहिए।

(iii) पाप कर्म के प्रायश्चित एवं बुरी प्रवृत्तियों के त्याग से ही मुक्ति सम्भव है।

(iv) आत्मा अजर व अमर है। वह ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है।

(v) आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रार्थना आवश्यक है।

(vi) ईश्वर के लिए सभी समान हैं और वह सभी की प्रार्थना समान रूप से स्वीकार करता है।

(vii) ब्रह्म समाज कर्मफल के सिद्धान्त में विश्वास करता है।

(viii) सत्य के अन्वेषण में विश्वास रखता है।

ब्रह्म समाज सभी धर्मों के प्रति सहनशील था। ब्रह्म समाज की स्थापना के समय ही यह स्पष्ट कर दिया था कि सभी लोग बिना किसी भेदभाव के शाश्वत सत्ता की स्थापना के लिए इसका प्रयोग कर सकते हैं। इसमें न किसी की मूर्ति स्थापित होगी, न कोई बलि होगी और न ही किसी धर्म की निन्दा की जायेगी।

राजा राममोहनराय को अपनी भाभी के सती होते देखकर सती प्रथा के विरोध की प्रेरणा मिली और उन्होंने विलियम बेटिंक से 1829 ई. में सती प्रथा विरोधी कानून बनवाकर इस प्रथा को गैरकानूनी घोषित करवाया। इसके अलावा राजा राममोहनराय ने बाल विवाह, बहु विवाह, छुआछूत, नशा आदि कुप्रथाओं का भी विरोध किया। वे पाश्चात्य ज्ञान व शिक्षा के अध्ययन को भी भारत के विकास और प्रगति के लिए आवश्यक मानते थे।

उन्होंने कोलकाता में वेदान्त कॉलेज, इंगलिश स्कूल और हिन्दू कॉलेज की स्थापना की। उन्होंने बंगला में संवाद कौमुदी, पारसी में मिरातुल अखबार व अंग्रेजी भाषा में ब्रह्मनीकल पत्रिका प्रकाशित की।

1833 ई. में इंगलैण्ड के ब्रिस्टल नगर में राजा राममोहन राय की मृत्यु हो गई। राजाराममोहन राय की मृत्यु के बाद देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशव चन्द सेन ने इस संस्था को आगे बढ़ाया। बाद में ब्रह्म समाज दो भागों में विभाजित हो गया– आदि ब्रह्म समाज एवं भारतीय ब्रह्म समाज। ब्रह्म समाज के प्रभाव से सन् 1867 में आत्माराम पाण्डुरंग ने प्रार्थना समाज की स्थापना की जिसे बाद में महादेव गोविन्द रानाडे ने इसे गति दी। सबसे पहले ब्रह्म समाज ने ही इन सुधारों की शुरूआत की, इसीलिए राजाराम मोहनराय को नये युग का अग्रदूत भी कहा जाता है।

(ii) स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं आर्य समाज–

स्वामी दयानन्द सरस्वती

ब्रह्म समाज की तरह ही आर्य समाज ने भी राष्ट्रीय स्तर पर धर्म एवं समाज सुधार का बीड़ा उठाया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे, जिनका जन्म गुजरात के मौरवी प्रान्त के टंकारा जिले में 1824 ई में एक ब्राह्मण रूढ़िवादी परिवार में हुआ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती का बचपन का नाम मूलशंकर था।

एक दिन उन्होंने मन्दिर में एक चूहे को शिवलिंग पर चढ़कर प्रसाद खाते हुये देखा तो इनका मूर्ति पूजा से विश्वास उठ गया। 21 वर्ष की आयु में उन्होंने घर छोड़ दिया जौर मथुरा में स्वामी विरजानन्दजी को अपना गुरू बनाया। उनसे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों की शिक्षा प्राप्त की। गुरू ने उनको कहा 'जीओ और वेदों को पढ़ाओ'। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया और स्वराज को अपने कार्य का आधार बनाया। 1864 ई. से स्वामी जी ने सार्वजनिक उपदेश देना आरम्भ किया। स्वामीजी का उद्देश्य

हिन्दू समाज व धर्म की बुराइयों को दूर करना था। उनकी प्राचीन वैदिक सभ्यता, संस्कृति व धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा थी। 1874 ई. में उन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की उदयपुर प्रवास के समय रचना की तथा 10 अप्रेल, 1875 में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज के सिद्धान्त इस प्रकार है:–

1. वेदों की सत्यता पर बल।
2. वैदिक रीति से हवन व मंत्र पाठ करना।
3. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने पर बल दिया।
4. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी वाहिये।
5. पौराणिक विश्वासों, मूर्तिपूजा और अवतारवाद का विरोध करना।
6. स्त्री शिक्षा तथा विधवा पुर्नविवाह को प्रोत्साहन देना।
7. ईश्वर सर्वशक्तिमान, निराकार व नित्य है।
8. सभी से धर्मानुसार प्रीतिपूर्वक यथा योग्य व्यवहार करने पर बल दिया।
9. हिन्दी व संस्कृत भाषा के महत्व एवं प्रसार में वृद्धि करना।
10. सब की उन्नति में अपनी उन्नति और सबकी भलाई में अपनी भलाई समझना।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज में व्याप्त कुरीतियों की आलोचना की और उन्हें दूर करने के लिए जन समर्थन जुटाया। उन्होंने छुआछूत, बाल विवाह, कन्या वध, पर्दा प्रथा, मूर्ति पूजा, श्राद्ध, धार्मिक अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों का विरोध किया। स्त्री शिक्षा एवं स्त्री अधिकारों का समर्थन किया। उन्होंने कहा वेदों के अध्ययन का अधिकार स्त्रियों को भी पुरूषों के बराबर है। आर्य समाज शुद्धि आन्दोलन में विश्वास रखते थे। विशेष परिस्थितिवश अन्य धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दुओं का वैदिक रीति से शुद्धिकरण कर पुनः हिन्दू धर्म में लेने पर जोर दिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को भी आगे बढ़ाया। उन्होंने आजादी प्राप्त करने के लिये ''स्वराज्य'' शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना सिखाया। उन्होंने कहा–''स्वराज्य विदेशी राज्य से सदैव अच्छा होता है, चाहे उसमें कितनी ही बुराइयां क्यों न हों ?''

आर्य समाज का शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष योगदान रहा है। आर्य समाज के नाम से विद्यालय, महाविद्यालय एवं गुरूकुल व अन्य संस्थाएं संचालित हैं जिनकी शैक्षिक उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अन्तिम दिन राजस्थान में ही व्यतीत हुए। 30 अक्टूबर 1883 को अजमेर में स्वामी जी का देहावसान हो गया।

(iii) रामकृष्ण मिशन एवं स्वामी विवेकानन्द–

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति, धर्म एवं समाज की अच्छाइयों से विश्व को परिचित कराया। स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 ई में बंगाल में विश्वनाथ दत्त के परिवार में हुआ। इनका बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। स्वामीजी पर अपनी माता भुवनेश्वरी देवी का विशेष प्रभाव था। भारतीय दर्शन के अध्ययन के साथ ही उन्होंने पश्चिमी विचारों का भी अध्ययन किया। प्रारम्भ से ही अध्यात्म के प्रति उनमें काफी रूचि थी। सन्1881 में विवेकानन्द की दक्षिणेश्वर में उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस से भेंट हुई जिन्होंने उनको ईश्वर की अनुभूति करायी, तभी से स्वामीजी रामकृष्ण परमहंस के भक्त हो गये।

स्वामी विवेकानन्द के समक्ष तीन प्रमुख कार्य थे:–

1. उनका पहला कार्य था, धर्म की ऐसी व्याख्या करना जो सर्वमान्य हो।
2. पाश्चात्य शिक्षा के कारण भारतीयों में धर्म के प्रति श्रद्धा कम हो गई थी। इस दृष्टि से हिन्दू धर्म के प्रति हिन्दुओं की श्रद्धा को पुनः स्थापित करना।
3.. हिन्दुओं में आत्म गौरव की भावना विकसित करना।

स्वामीजी ने धर्म की जो व्याख्या की उसका सार था–''धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है। धर्म न तो पुस्तकों में है और न ही धार्मिक सिद्धान्तों में। वह तो केवल अनुभूति में निवास करता है।''

स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1891 से भारत के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किया एवं भारतीयों की निर्धनता एवं दयनीय दशा का प्रत्यक्ष अनुभव किया। आपको 1893 ई में शिकागो (अमेरिका) में विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने का अवसर मिला।

कई बाधाओं को पार करते हुये स्वामी विवेकानन्द धर्म सम्मेलन में पहुंचे। स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में विश्व को अवगत कराया कि विश्व का कोई भी कार्य भारत की सामर्थ्य के बाहर नहीं हैं। बौद्धिक, धार्मिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से भारत जितना समृद्ध है, उतना विश्व का कोई अन्य देश नहीं है। स्वामीजी ने अपने आत्मीय उद्बोधन से लोगों का मन मोह लिया। अगले दिन वहाँ के समाचार पत्र हैरल्ड में उनके बारे में लिखा– ''धर्म की इस महान संसद में विवेकानन्द ही सबसे महान् है। उनका भाषण सुनने के बाद लगता है कि ऐसे ज्ञानी देश (भारत) को सुधारने के लिए विदेशी धर्म प्रचारकों को भेजना कितनी मूर्खता की बात है।''

स्वामी विवेकानन्द वेदान्त दर्शन के अध्येता थे। उनकी मान्यता थी कि वेदान्त हमारे आत्मबल को जाग्रत करता है। स्वामी जी ने अज्ञानता व गरीबी की कठिनाई को दूर करने और अनाथों की सहायता पर जोर दिया। उन्होंने भारत की राष्ट्रीयता का भी पोषण किया और भारत मां की पूजा के लिए प्रेरित किया। युवकों को देश के प्रति समर्पण भाव रखने की प्रेरणा दी।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू रामकृष्ण की शिक्षाओं के व्यापक प्रसार के लिए कोलकाता में बेल्लूर के पास 5 मई 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इसकी शाखाएँ देश विदेश में फैली हुई है। इससे पूर्व 1887 ई. में तारानगर में रामकृष्ण मठ की स्थापना की गई। मठों के माध्यम से रामकृष्ण मिशन का संगठन और प्रचार कार्य स्वामीजी ने प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन रामकृष्ण मिशन का वैधानिक स्वरूप उनकी मृत्यु के बाद सन् 1903 से अस्तित्व में आया, जब इसे एक समुदाय के रूप में पंजीकृत करा लिया गया।

रामकृष्ण मिशन भारत के विभिन्न प्रान्तों तथा अमेरिका फीजी, मॉरिशस आदि देशों में शाखाएं है। रामकृष्ण मिशन ऐसे आदर्शों एवं सिद्धान्तों का प्रचार करता है जिसे सभी धर्मों व संस्कृतियों के लोग अपना सकें। मिशन के माध्यम से उपदेश, शिक्षा, चिकित्सा, अकाल, बाढ़, भूकम्प व संक्रामक रोगों से पीड़ितों की सहायता का कार्य भी किया जाता है।

स्वामी विवेकानन्द का मानव सेवा में महत्वपूर्ण स्थान है। वे रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास, निर्धनता व अशिक्षा के कटु आलोचक थे। छुआछूत व वर्गभेद को नहीं मानते थे। जन कल्याण की भावना को उन्होंने प्रोत्साहित किया।

(iv) आचार्य तुलसी एवं अणुव्रत आन्दोलन

भारत लम्बी पराधीनता के पश्चात् 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के स्वर्ण प्रभात से लोगों में नवीन आशाओं का संचार हुआ,लेकिन स्वतंत्रता के इस नव अभ्युदय से जो समाचार आ रहे थे, वे बहुत अधिक चिन्ताजनक थे।

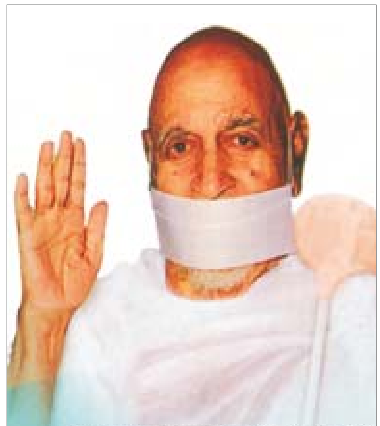
अणुव्रत आन्दोलन प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी

हिंसा, साम्प्रदायिक तनाव, असामाजिक वातावरण और अनैतिकता के बढ़ते हुए दौर को देखकर जैन श्वेताम्बर धर्म के तेरापंथ सम्प्रदाय के नवें आचार्य तुलसी की अन्तरात्मा डोल उठी। उनके मन में एक स्वाभाविक प्रश्न उठा कि क्या हमने इसीलिये आजादी प्राप्त की थी ? स्वाधीनता के आंदोलन के दौर में स्वतंत्रता सेनानियों ने जो स्वप्न देखे थे, क्या वे स्वप्न ही रहेंगे ? लाखों–लाखों भारतीयों ने आजादी प्राप्त करने के लिये क्या–क्या नहीं किया? क्या हिंसा, मारकाट, साम्प्रदायिक तनाव, बलात्कार, भ्रष्टाचार अनैतिक आचरण आदि का यह वातावरण इस देश की स्वतंत्रता को सुरक्षित रख पायेगा ? इस स्थिति को देखकर आचार्य तुलसी ने अपने कर्त्तव्य बोध का अनुभव किया। सोचा , यह चुप रहकर बैठने का समय नहीं है। उनका हृदय जाग उठा। सदियों से प्रताड़ित जड़वादी समाज को बदलने के संकल्प के साथ नई दिशा की ओर बढ़ने के लिए कूच किया।

इस तरह के संकल्प को लेने वाले आचार्य तुलसी जैन धर्म की श्वेताम्बर तेरापंथ परम्परा में नवें आचार्य थे। आचार्य तुलसी का जन्म राजस्थान प्रदेश के नागौर जिले के लाडनूं नामक कस्बे में कार्तिक शुक्ला द्वितीया वि.सं. 1971 को हुआ। इनके पिता का नाम झूमरमल खटेड़(ओसवाल) तथा माता का नाम वदनाजी था।

जब इनकी उम्र 11 वर्ष की थी, तब तेरापंथ के अष्टमाचार्य कालूगणी के कर कमलों से मुनि दीक्षा ग्रहण की। बाईस वर्ष की छोटी आयु में ही वे तेरापंथ धर्म संघ के आचार्य

बन गये। धर्म संघ के माध्यम से आपने कई क्रान्तिकारी कदम उठाये। प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान तथा अणुव्रत आंदोलन उन क्रान्तिकारी कदमों में से ही है। आप आशुकवि, उद्भट लेखक शोधक, प्रगतिशील विचारों के धनी, समाज सुधारक व रूढ़ियों के प्रबल विरोधी थे। आपका निधन 23 जून, 1997 को गंगाशहर (बीकानेर) में हुआ।

ऐसे क्रांतिचेता आचार्य तुलसी ने स्वतंत्र भारत को नई दिशा देने के लिए जो संकल्प लिया, उसकी घोषणा का सौभाग्य 1 मार्च, 1949 को दस हजार श्रोताओं की उपस्थिति में सरदारशहर (जिला चूरू) को प्राप्त हुआ तथा अणुव्रत विचार क्रांति की यह घोषणा आचार्य तुलसी ने वर्तमान राष्ट्रीय, सामाजिक एवं युगीन परिस्थितियों का विवेचन करते हुए नैतिक शक्ति के नवसंचार के संदर्भ में की और उसमें अणुव्रत की आचार संहिता का महत्व बताते हुए जन–जन को अपने कर्त्तव्य बोध से जाग्रत करने का आह्वान किया तथा अणुव्रत के नियमों व व्रतों का वाचन किया। अणुव्रत की इस नियमावली के अनुसार सबकी व्याख्या करते हुए उन्होंने 75 नियमों की जानकारी दी। ये छोटे–छोटे नियम अर्थात् अणु यानि छोटे तथा नियम अर्थात् व्रत की उपादेयता बताई। यह व्याख्या सुनकर तत्काल 71 व्यक्तियों ने अणुव्रती बनने का निश्चय कर अणुव्रती की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

अणुव्रत के नियम समाज के सभी व्यक्तियों के लिये यथा–व्यापारी, विद्यार्थी, अध्यापक, एडवोकेट, राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, डॉक्टर, इंजीनियर आदि के लिये थे। सबको अपने–अपने कार्यों के अनुरूप आचरण कर समाज में नैतिकता का प्रसार करना इनका मुख्य उद्देश्य था। जैसे– व्यापारी के अणुव्रत में कम नहीं तोलना, मिलावट नहीं करना, जमाखोरी नहीं करना आदि, विद्यार्थी के लिये नकल नहीं करना तथा अध्यापक का सम्मान करना, जैसे नियम सब के लिये थे। अणुव्रत आंदोलन के इस उदघोष की व्यापक प्रतिक्रिया हुई और धीरे–धीरे यह आंदोलन कश्मीर से कन्याकुमारी व राजस्थान से आसाम तक व्याप्त हो गया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाशनारायण आदि ने इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। आचार्य तुलसी इस आंदोलन के प्रणेता व अनुशास्ता के रूप में सम्बोधित किये जाने लगे।

यह अणुव्रत आंदोलन यद्यपि जैन तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य तुलसी द्वारा प्रारम्भ किया गया लेकिन इस आंदोलन की विशेषता यह रही कि यह किसी धर्मसंघ से नहीं जुड़ा। कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म, समाज, जाति का हो वह अणुव्रती बन सकता है। अणुव्रत ने जातिवाद, साम्प्रदायिकता, छूआछूत आदि का विरोध किया। नारी जाति को सम्मान दिया। विशुद्ध रूप से यह देश में नैतिकता के प्रसार व चारित्रिक सुदृढ़ता के विकास का आंदोलन है। मानवतावादी आंदोलन है। इसे युगधर्म या मानव धर्म का पर्यायवाची कह सकते हैं। यह व्यसनमुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देता है तथा जीवन में प्रामाणिकता को प्राथमिकता देता है। यह कोई वाद नहीं हैं, धर्म नहीं है, किसी उद्योगपति या राजनेता द्वारा पोषित आंदोलन नहीं है, यह विशुद्ध रूप से मानव कल्याण का अहिंसक आंदोलन है। दबाव से नहीं बल्कि स्वेच्छा से अणुव्रती बनने का आंदोलन है। इस आंदोलन के नियम व्यापारी, उद्योगपति, छात्र, अध्यापक, एडवोकेट, डॉक्टर, इंजीनियर, राजनेता आदि सबके लिये अलग–अलग बने हुए हैं। वे अपनी रूचि के अनुरूप इन्हें अपना सकते हैं। इन सब वर्गों के सब नियमों को मूल रूप में संकलित करते हुए ग्यारह नियमों की एक आचार संहिता निर्धारित की गई वह है–

अणुव्रत आचार संहिताः–

1. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।
   - आत्म–हत्या नहीं करूंगा।
   - भ्रूण हत्या नहीं करूंगा।
2. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।
   - आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
   - विश्व शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।
3. मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।
4. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।
   - जाति, रंग आदि के आधार पर किसी को उच्च या निम्न नहीं मानूंगा।
   - अस्पृश्यता नहीं मानूंगा।
5. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।
   - साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।
6. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।
   - अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुँचाऊँगा।

- छलपूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

7. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूँगा।
8. मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूँगा।
9. मैं सामाजिक कुरीतियों को प्रश्रय नहीं दूँगा।
10. मैं व्यसनमुक्त जीवन जीऊँगा।
    - मादक तथा नशीले पदार्थों—शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू आदि का सेवन नहीं करूँगा।
11. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूँगा।
    - हरे—भरे वृक्ष नही काटूँगा
    - पानी बिजली आदि का अपव्यय नहीं करूँगा।

अणुव्रती के लिए इन वर्गीय अणुव्रतों का पालन अनिवार्य रखा गया हैं। इन अणुव्रतों की पालना करने वाले पूरे देश में लाखों अणुव्रती भाई हैं जो देश में नैतिकता, शांति, सहअस्तित्व व भाईचारे का प्रसार कर रहे हैं। अणुव्रत के प्रचार—प्रसार के लिये देशभर में अणुव्रत समितियां कार्य कर रही हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- 19वीं शताब्दी में धर्म व समाज सुधार आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज के धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करना था।
- विलियम जॉन्स एवं मैक्समूलर ने कई भारतीय ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया।
- राजा राममोहनराय भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत थे।
- सामाजिक व धार्मिक सुधार आन्दोलन ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- राजा राममोहनराय ने सन् 1828 में ब्रह्म समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना की।
- 1893 ई. के शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन में विवेकानन्द को सर्वाधिक महान व्यक्ति बताया।
- 1874 ई. में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की हिन्दी भाषा में उदयपुर में रहते हुए रचना की।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज शब्द का प्रयोग किया।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती का निर्वाण 1883 ई. में अजमेर में हुआ।
- आचार्य तुलसी अणुव्रत आन्दोलन के प्रणेता थे।
- अणुव्रत आन्दोलन नैतिकता का आन्दोलन है, जो किसी धर्म या सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ नहीं है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः—

1. आर्य समाज की स्थापना किस के द्वारा की गई?
   (अ) राजा राममोहनराय (ब) केशवचन्द सेन
   (स) स्वामी दयानन्द सरस्वती(द) देवेन्द्रनाथ टैगोर
2. 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण का अग्रदूत किसको कहा है ?
   (अ)स्वामी विवेकानन्द (ब) स्वामी दयानन्द सरस्वती
   (स) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (द) राजा राममोहनराय
3. संवाद कौमुदी का प्रकाशन किसने किया ?
   (अ) राजा राममोहनराय (ब) स्वामी विवेकानन्द
   (स) रामकृष्ण परमहंस (द) देवेन्द्रनाथ टैगोर
4. ब्रह्म समाज की स्थापना कब की गई ?
   (अ) 1862 में (ब) 1828 में
   (स) 1875 में (द) 1893 में
5. स्वामी दयानन्द सरस्वती के बचपन का नाम था
   (अ) नरेन्द्रनाथ दत्त (ब) मूलशंकर
   (स) जटाशंकर (द) भवानीशंकर
6. अणुव्रत आन्दोलन के प्रणेता हैं—
   (अ) दयानन्द सरस्वती (ब) विवेकानन्द
   (स) केशवचन्द्र सेन (द) आचार्य तुलसी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वामी विवेकानन्द का जन्म कब हुआ था?
2. स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म कहाँ हुआ था?
3. आदि ब्रह्मसमाज की स्थापना किसने की?
4. स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहावसान कहाँ हुआ?
5. सती प्रथा विरोधी कानून कब पारित किया गया?
6. अणुव्रत आन्दोलन किसने शुरू किया ?
7. अणुव्रत का क्या अर्थ है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शुद्धि आन्दोलन के बारे में आप क्या जानते हैं?
2. रामकृष्ण परमहंस कौन थे?
3. राजाराममोहनराय का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान बताइये।
4. स्वामी विवेकानन्द की प्रारम्भिक जानकारी दीजिए।
5. आर्य समाज के प्रमुख उद्देश्य बताइये
6. अणुव्रत आन्दोलन क्या है ?
7. ब्रह्म समाज द्वारा किये गये सामाजिक सुधारों का वर्णन कीजिए।
8. स्वामी दयानन्द सरस्वती की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. 19वीं शताब्दी में भारतीय नवजागरण के प्रमुख कारण बताइये।
2. राजाराममोहन राय के जीवन व शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन व सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
4. अणुव्रत आन्दोलन पर एक निबन्ध लिखिए।
5. भारतीय समाज, धर्म और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति स्वामी विवेकानन्द का योगदान बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर –

1.(स) 2. (द) 3. (अ) 4. (ब) 5. (ब) 6. (द)

अध्याय 5

विश्व की प्रमुख घटनाएं

18 वीं से 20 वीं शताब्दी तक विश्व घटना क्रम में काफी उथल–पुथल रही। इन घटनाओं से भारत भी प्रभावित रहा । भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और 1947 ई. में उसकी समाप्ति आधुनिक विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। इसी क्रम में फ्रांस की क्रान्ति, रुस की क्रांति,अमरीका का स्वतंत्र संग्राम, पश्चिमी देशों का औपनिवेशिक विस्तार,प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध,राष्ट्रसंघ व संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना आदि घटनाएं प्रमुख है। इन बातों पर भी विचार करना होगा कि सैन्य शक्ति और विश्व शक्ति के सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा हुआ और अजेय माना जाने वाला इंग्लैण्ड का साम्राज्य किस प्रकार समाप्त हो गया।

फ्रांस की राज्य–क्रान्ति 1789 ई.

इंग्लैण्ड की 1688 ई. की गौरवपूर्ण क्रान्ति और 1776 ई. में अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम से भी अधिक महत्वपूर्ण घटना फ्रांस की राज्य–क्रान्ति (1789 ई.) थी। यह क्रान्ति निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन, आर्थिक शोषण व असमानता के विरुद्ध जागृति थी। इस क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे –

1. राजनैतिक परिस्थितियाँ –

फ्रांस का राजा लुई 16वां निरकुंश, स्वेच्छाचारी व दैवीय अधिकारों से युक्त था। राजा की इच्छा ही कानून था। वह खर्चीला एवं विवेकशून्य शासक था। कई वर्षों से 'एस्टेट जनरल' की बैठक नहीं बुलाई गई थी। लुई की अविवेकपूर्ण नीति के कारण फ्रांस के हाथ से भारत और अमेरिका के उपनिवेश निकल गये थे और सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस की हार हो गई थी।

2. सामाजिक विषमता :–

फ्रांस में एक वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग था। दूसरा वर्ग अधिकारविहीन वर्ग था। अधिकारविहीन वर्ग जिसमें मध्यम वर्ग और सामान्य वर्ग के लोग थे,उनका राजा,सामन्त और पादरियों द्वारा शोषण किया जाता था। सामन्ती अत्याचार के कारण कृषकों की दुर्दशा थी। इससे असंतोष में वृद्धि हुई।

3. आर्थिक कारण :–

इस समय फ्रांस की स्थिति आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक खराब हो गई थी। इसका प्रमुख कारण युद्धों का भारी खर्च,दूषित कर पद्धति एवं राजशाही अपव्यय था। उच्च वर्ग को कर मुक्त रखा गया था जबकि जनता पर करों का अधिक बोझ डाला गया। आय और व्यय का कोई हिसाब भी नहीं था। अतः क्रान्ति अवश्यम्भावी थी।

4. मजहबी असंतोष :–

फ्रांस में इस समय एक लाख पच्चीस हजार मजहबी प्रचारक पादरी थे। कुछ पादरियों का जीवन ऐश्वर्यशाली था जबकि कुछ के पास दो समय के भोजन की व्यवस्था भी नहीं थी। निर्धन व भूखी जनता को चर्च की सम्पति अखर रही थी। 'टाइथ' नामक मजहबी कर जो स्वैच्छिक था,उसे जबरन वसूलना प्रारम्भ कर दिया। इससे असंतोष में वृद्धि हुई।

5. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव :–

अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में फ्रांस के सैनिक सहयोग करने गये थे। वहां उनको राष्ट्रभक्ति,स्वतंत्रता व स्वाभिमान की प्रेरणा मिली। इस सहायता से राजकोष पर ऋण भार भी काफी बढ़ गया। अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम फ्रांस की क्रान्ति के लिए प्रेरणा बन गया।

6. मध्यम वर्ग का उदय :–

कृषकों और श्रमिकों में फ्रांस के कुलीन वर्ग का विरोध करने की क्षमता नहीं थी। समाज के मध्यम वर्ग ने इस कमी को पूरा किया। इस वर्ग में विचारक,शिक्षक,व्यापारी, वकील, चिकित्सक आदि सम्मिलित थे। ये सभी फ्रांस की स्थिति में सुधार चाहते थे।

7. बौद्धिक जागृति :–

इस समय फ्रांस में दार्शनिकों व लेखकों ने फ्रांस के प्राचीन गौरव और परम्पराओं को उजागर करके फ्रांस के समाज को जागृत किया। इन विद्वानों में रूसो, वाल्टेयर,मान्टेस्क्यू व दिदरो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मान्टेस्क्यू ने राजा के दैविक अधिकारों का विरोध किया, वहीं रूसो ने व्यक्ति

स्वतंत्रता की पैरवी की । रुसो ने लिखा– मनुष्यों को स्वतंत्रता, समानता के भ्रातृत्व आदिकाल से ही प्राप्त है।

8. तात्कालिक कारण बेस्तील का पतन :–

5 मई, 1789 को 175 वर्ष बाद वित्त मंत्री ब्रियां की सलाह पर एस्टेट जनरल का अधिवेशन बुलाया। राजा से प्रार्थना की गई कि असमानता,शोषण,विशेषाधिकार व बेगार प्रथा को समाप्त किया जाये। तृतीय सदन के सदस्य (सामान्य वर्ग) तीनों सदनों की संयुक्त बैठक करना चाहते थे। लेकिन प्रथम व द्वितीय सदन के कुछ पादरियों को छोड़कर कोई नहीं आया। 17 जून को तृतीय सदन ने स्वयं को राष्ट्रीय असेम्बली घोषित कर दिया।

फ्रांस की राज्य क्रांति का एक दृश्य

20 जून को तृतीय सदन के सदस्य बैठक के लिये आये, तो सभा भवन का दरवाजा बन्द कर दिया गया। अतः सदस्यों ने सभा भवन के बाहर टेनिस कोर्ट में ही असेम्बली की बैठक ली व शपथ ली कि फ्रांस को संविधान दिये बिना सभा विसर्जित नहीं की जायेगी। राजा ने नेशनल असेम्बली को मान्यता प्रदान कर दी। 14 जुलाई,1789 को क्रुद्ध भीड़ ने बेस्तील पर आक्रमण करके सभी कैदियों को छुड़ा लिया, यहीं से क्रान्ति की शुरुआत हो गई।

क्रान्ति का स्वरूप :–

बेस्तील का पतन राजा की निरंकुशता के विरुद्ध जनता द्वारा किये गये विरोध की सफलता का सूचक था। 4 अगस्त,1789 को राष्ट्रीय सभा ने सामन्तों के अधिकार समाप्त कर दिये। 17 अगस्त,1789 को नेशनल असेम्बली द्वारा स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व के साथ मौलिक अधिकारों की घोषणा की गई। 05 अक्टूबर,1789 को हजारों महिलाएं 'हमें रोटी दो' के नारे के साथ वर्साय के शाही महल में घुस गई व राजा–रानी के परिवार को बन्दी बना लिया। 1791 ई. में फ्रांस का नया संविधान बनकर तैयार हो गया, जिसका मुख्य आधार लोक प्रभुत्व (जनता की इच्छा) था और कार्यपालिका, न्यायपालिका और व्यवस्थापिका की शक्तियों को अलग किया गया। संवैधानिक राजतंत्र की व्यवस्था प्रारम्भ हुई। प्रथम बार लिखित संविधान की व्यवस्था की गई। 20 जून,1791 की रात्रि को लुई 16 वां अपनी पत्नी व राजकुमार के साथ भेष बदलकर पेरिस से भाग निकला। दूसरे दिन फ्रांस की सीमा के निकट आधी रात को लोगों ने उन्हें पहचान लिया एवं पकड़कर वापिस पेरिस ले आये। राजा को अब नजरबन्द कैदी की तरह रखा गया एवं 1793 ई. में उन्हें फाँसी दे दी गई।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति के परिणाम :–

यूरोप ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में फ्रांस की इस राज्य क्रान्ति का एक विशेष स्थान है। हेजन के अनुसार – फ्रांस की क्रान्ति ने राज्य की एक नई धारणा को जन्म दिया। इस क्रान्ति ने विश्व की अधिकांश महत्वपूर्ण घटनाओं को प्रभावित किया। इसके प्रमुख परिणाम निम्नांकित थे –

1. इस क्रान्ति से आर्थिक शोषण की पोषक सामन्ती व्यवस्था का अन्त हुआ । अन्य देशों में भी सामन्ती व्यवस्था का पतन हुआ। राजा रानी व उसके समर्थकों को मौत के घाट उतार दिया गया। लुई के निरकुंश स्वेच्छाचारी शासन की समाप्ति हुई।
2. धर्म के क्षेत्र में उदारता एवं धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहन मिला। धर्मिक असमानता को समाप्त करने का प्रयास हुआ।
3. इस क्रान्ति ने स्वतंत्रता समानता एवं भ्रातृत्व की भावना को प्रोत्साहन दिया। संविधान सभा द्वारा मौलिक अधिकारों की घोषणा की गई।
4. इस क्रान्ति से समाजवादी व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हुआ।
5. फ्रांस की क्रान्ति से कुलीन वर्ग की प्रतिष्ठा कम हुई।
6. फ्रांस की क्रान्ति के बाद राजनैतिक दलों का विकास हुआ।
7. क्रान्ति ने निर्धनों व अमीरों दोनों को न्याय के समक्ष समानता प्रदान की गई। अमीरों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये।

रूस की क्रान्ति–1917 ई.

रूस के तत्कालीन शासक जार के अयोग्य, भ्रष्ट एवं निरंकुश शासन के विरूद्ध 1917 ई. में रूस की क्रान्ति हुई एवं

जारशाही को समाप्त कर दिया। रूस में मार्च, 1917 एवं नवम्बर, 1917 में दो क्रान्तियां हुई। मार्च की क्रान्ति में जारशाही का शासन समाप्त हुआ एवं नवम्बर की क्रान्ति से रूस में किसान–मजदूर जनतंत्र का उदय हुआ। इसे बोलशेविक क्रान्ति भी कहते हैं। रूस की क्रांति के कारण निम्नलिखित हैः–

1. निरंकुश जारशाही–

रूस के शासन जार दैवीय अधिकारों में विश्वास करते थे। समस्त शक्तियां जार में निहित थी। संसद (ड्यूमा) के पास किसी प्रकार की शक्ति नहीं थी। अलेक्जेण्डर तृतीय एवं निकोलस द्वितीय ने कठोर व दमनकारी नीति अपनायी।

2. सामाजिक विषमता–

रूस के समाज में दो वर्ग थे, एकाधिकार युक्त वर्ग एवं दूसरा अधिकार विहीन वर्ग। रूस की अधिकांश भूमि और शासन पर जार के कृपा पात्र कुलीन वर्ग का आधिपत्य था। निम्न वर्ग के लोग संख्या में अधिक थे फिर भी अधिकार विहीन थे। इससे लोगों में असंतोष पैदा हुआ।

3. श्रमिक असंतोष–

औद्योगिक क्रान्ति के कारण रूस में भी अनेक उद्योग व कारखाने स्थापित हुए। इससे मजदूरों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई। कारखाना मालिक मजदूरों का शोषण करते थे, उन्हें कम वेतन देते थे। सरकार ने उद्योगपतियों का ही साथ दिया। अतः श्रमिक वर्ग ने इसके विरोध में मजदूर संगठन बनाकर हड़ताल का सहारा लिया। क्रान्ति की शुरूआत मजदूर हड़ताल से ही हुई। मजदूर वर्ग सर्वहारा वर्ग का शासन चाहते थे।

4. कृषक आन्दोलन–

रूस में कृषकों की दशा भी दयनीय थी। अधिकांश उपजाऊ जमीन सामन्तों के पास थी। भूमिहीन किसान जागीरदारों की भूमि पर काम करते थे। उन पर अनेक प्रतिबन्ध थे। 1905 ई. में अनेक स्थानों पर किसानों के विद्रोह हुए।

5. जार निकोलस द्वितीय का अयोग्य शासन–

जार निकोलस द्वितीय में राजनैतिक सूझबूझ का अभाव था। उसे आसानी से कोई भी प्रभावित कर सकता था। वह रानी अलेक्जेण्ड्रा के प्रभाव में था। जार व रानी दोनों पर रासपुटिन नामक एक साधु का प्रभाव था। 1916 ई. में रासपुटिन की भी हत्या कर दी गई, लेकिन जार का फिर भी प्रशासनिक नियंत्रण ढीला ही रहा।

6. रूस में बौद्धिक जागृति–

बौद्धिक जागृति के कारण रूस में पश्चिमी यूरोप के उदारवादी विचारों का प्रवेश होने लगा। टॉलस्टाय, तुर्गनेव के उपन्यास तथा मार्क्स एवं बकुनिन के समाजवादी विचारों ने रूस की जनता को प्रभावित किया।

7. रूसीकरण की नीति का प्रभाव–

रूस में पोल, चेक, यहूदी, तातार, उजबेक कजाख आदि अरूसी जातियाँ बड़ी संख्या में रहती थी। रूसी शासकों ने 'एक रूस, एक जार, एक धर्म' की नीति अपनायी। जार की इस रूसीकरण की नीति का अन्य जातियों ने भारी विरोध किया।

8. भ्रष्ट व अयोग्य नौकरशाही–

रूस की नौकरशाही में भ्रष्टाचार व्याप्त था। उच्च पदों पर आसीन कुलीन वर्ग के लोग केवल जार की चाटुकारिता में विश्वास करते थे। प्रथम विश्वयुद्ध में सेना की हार का कारण भी नौकरशाही को माना जाने लगा था।

9. तात्कालिक कारण–

प्रथम महायुद्ध में रूसी सेना की निरन्तर पराजय और युद्ध से उत्पन्न समस्याओं से यहां के लोग परेशान हो गये। रूस में युद्ध समाप्ति की मांग होने लगी, लेकिन शासन युद्ध समाप्ति के पक्ष में नहीं था। अतः जनता विरोध में उतर आयी। क्रांति का तात्कालिक कारण रोटी की कमी थी।

क्रांति का स्वरूप–

सन् 1917 मार्च में मजदूरों ने भूख से व्याकुल होकर पैट्रोगाड में हड़ताल कर दी। 'रोटी दो' 'अत्याचारी शासन का नाश हो' के नारे लगने लगे। पुलिस के हथियार छीन लिए। सम्राट ने ड्यूमा (संसद) भंग कर दी। सैनिकों को मजदूरों पर गोली चलाने का आदेश दिया, लेकिन सैनिकों ने गोली चलाने से मना कर दिया। जार ने मजबूर होकर सिंहासन त्याग दिया। करेन्सकी के नेतृत्व में रूस में अस्थायी सरकार बनी। यह सरकार अधिक समय तक नहीं चली। 1917 ई. में बोलशेविक स्वयंसेवकों और सैनिकों ने मिलकर पैट्रोगाड के समस्त सरकारी भवन, टेलीफोन केन्द्र, रेल्वे स्टेशन आदि पर अधिकार कर लिया। सत्ता आन्दोलनकारियों के नेता लेनिन के हाथों में

आ गई और रूस में सर्वहारा अधिनायक तंत्र स्थापित हो गया और अब रूस को सोवियत संघ के नाम से जाना जाने लगा।

क्रांति के परिणाम–

1. रूस में जार का निरंकुश शासन समाप्त हुआ। जुलाई 1918 को जार निकोलस उसके परिवार को गोली से उड़ा दिया।
2. लेनिन के नेतृत्व में रूस में सर्वहारा अधिनायक तंत्र की स्थापना हुई।
3. रूस ने जर्मनी से ब्रेस्टलिटोवास्क की संधि कर ली एवं प्रथम विश्वयुद्ध से अलग हो गया। क्रांति के बाद रूस विश्व शक्ति के रूप में उभर कर आया।
4. रूस में सफलता मिलने से विश्व के साम्यवादी आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।
5. विश्व में अधिनायकवाद को प्रोत्साहन मिला। जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व में अधिनायकवाद का विकास हुआ।
6. विश्व में कृषकों और मजदूरों की स्थिति में सुधार हुआ। कारखानों का प्रबन्ध श्रमिक संघों को दिया जाने लगा।
7. समाज में समानता, अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा व स्त्री स्वतंत्रता को प्रोत्साहन मिला।
8. रूस की शक्ति बढ़ने के साथ विचारधारा के आधार पर विश्व दो गुटों में बंट गया। रूस के नेतृत्व में साम्यवादी गुट एवं अमेरिका व अन्य पूंजीवादी देशों का पूंजीवादी गुट।
9. यूरोप व एशिया के अन्य राष्ट्रों में स्वतंत्रता व राष्ट्रीयता की भावना का संचार हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध 1914–18 ई.

सन् 1914 से 1918 ई. तक लड़ा गया प्रथम विश्व युद्ध विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। इस युद्ध का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा। इस युद्ध से विश्व में कई क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। प्रथम विश्व युद्ध के कारण–

1. गुप्त संधियाँ एवं दो गुटों का निर्माण–

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी के बिस्मार्क ने कूटनीतिक संधियों द्वारा फ्रांस को अकेला कर दिया। फ्रांस ने रूस व इंग्लैण्ड के साथ संधि करके जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली के त्रिगुट के विरूद्ध अपना त्रिगुट संघ बना लिया। विश्व दो गुटों में बंट गया। प्रथम विश्व युद्ध इन दोनों गुटों की शक्ति का प्रदर्शन था।

2. शस्त्रीकरण व सैन्यवाद–

19वीं शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में यूरोप के अधिकांश देशों ने अपने शस्त्र बढ़ाने एवं सैन्यवाद को प्रोत्साहन दिया। सैनिक शक्ति के बल पर जर्मनी ने आस्ट्रिया को पराजित किया। अब फ्रांस, रूस व इंगलैण्ड ने भी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाना आरम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में युद्ध होना ही था।

3. साम्राज्यवाद का प्रभाव–

औद्योगिक क्रांति के बाद युरोपीय देशों में समृद्धिशाली बनने की महत्वाकांक्षा बढ़ने लगी। कच्चा माल प्राप्त करने व पक्का माल बेचने के लिए अपने उपनिवेश स्थापित करने लगे जिसने साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया। इंग्लैण्ड , फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि देशों ने कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया, भारत, अफ्रीका व एशिया के देशों पर अधिकार करके अपने साम्राज्य का विस्तार किया। साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा ने भी युरोपीय देशों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न की।

4. समाचार–पत्रों का प्रभाव–

इस समय युरोप में समाचार–पत्रों में भी युद्ध को प्रोत्साहन देने वाले समाचारों की अधिकता रही। इन समाचार–पत्रों में एक दूसरे देश पर दोषारोपण को बढ़ावा दिया जाने लगा और भड़काने वाले लेख प्रकाशित किये जाने लगे। एक समाचार–पत्र की पंक्तिया थी–''रूस तैयार हैं, फ्रांस को भी तैयार रहना चाहिये''।

5. उग्र राष्ट्रीयता की भावना–

राष्ट्रवाद की भावना के बल पर उग्र राष्ट्रीयता की भावना बढ़ने लगी। प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्र के विकास, विस्तार, सम्मान व गौरव के लिए अन्य देशों को नष्ट करने के लिए तैयार थे। फ्रांस, अल्सास व लॉरेन प्रदेश चाहता था जबकि राष्ट्रीयता की भावना के आधार पर पोल, चेक, सर्ब तथा बल्गार लोग आस्ट्रिया से अलग होना चाहते थे।

6. केसर विलियम की महत्वाकांक्षा–

जर्मन सम्राट केसर विलियम जर्मनी को विश्व शक्ति बनाना चाहता था। तुर्की से समझौता करके उसने बर्लिन बगदाद रेल्वे लाइन का निर्माण कराया। नौसेना में विकास को लेकर उसने इंगलैण्ड

को नाराज कर दिया। उसने विचार प्रकट किया कि समुद्री विस्तार जर्मनी की महानता के लिये अनिवार्य नियति है।

7. अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव–

उस समय ऐसी कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं थी जो यूरोपीय देशों के आपसी विवादों को सुलझाकर उन्हें युद्ध से विमुख कर दे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ऐसी संस्थाओं का विकास हुआ।

8. अन्तर्राष्ट्रीय संकट एवं बाल्कन युद्ध का प्रभाव–

20वीं शताब्दी के अन्तर्राष्ट्रीय घटना क्रमों से विश्व के राष्ट्र एक दूसरे के विरोधी हो गये और दो सशस्त्र गुटों में बंट गये। 1904–05 ई. का रूस जापान युद्ध, मोरक्को व अगाडीर संकट, आस्ट्रिया द्वारा बोस्निया व हर्जगोविना पर अधिकार व बाल्कन युद्ध (1912–13 ई.) इसी प्रकार के प्रमुख संकट थे।

9. तात्कालिक कारण–

बोस्निया व हर्जगोविना को लेकर सर्बिया में आस्ट्रिया विरोधी भावना थी। ऐसे में आस्ट्रिया का राजकुमार फर्डीनेड व उसकी पत्नी की बोस्निया की राजधानी सराजेवो में दो सर्ब युवकों ने 28 जून 1914 को सरे आम हत्या कर दी। इसी बात को लेकर 28 जुलाई 1914 को आस्ट्रिया ने सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। रुस ने सर्बिया के समर्थन में युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जर्मनी ने भी रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इसी के साथ प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत हो गई।

युद्ध की प्रकृति–

इस युद्ध में एक तरफ मित्र राष्ट्र थे एवं दूसरी तरफ धुरी राष्ट्र। मित्र राष्ट्रों में इंगलैण्ड, फ्रांस, रूस, जापान, अमेरिका, इटली, सर्बिया, पुर्तगाल, रूमानिया, चीन, आस्ट्रेलिया कनाड़ा व दक्षिणी अफ्रीका शामिल थे। धुरी राष्ट्रों में जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, टर्की तथा बल्गोरिया आदि शामिल थे। युद्ध के प्रारंभिक वर्षों में धुरी राष्ट्र हावी रहे। इसी बीच रूस युद्ध से अलग हो गया और 1918 ई. में जर्मनी के साथ ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि कर ली। मित्र राष्ट्रों की विजय के साथ 11 नवम्बर, 1918 को प्रातः 11 बजे युद्ध समाप्त हुआ। युद्ध के बाद पेरिस शांति सम्मेलन हुआ और विभिन्न देशों के साथ अलग–अलग संधियां की गई। जर्मनी के साथ वर्साय की संधि की गई।

युद्ध के परिणाम–

1. युद्ध में अपार जन व धन की हानि हुई। युद्ध में छः करोड़ सैनिकों ने भाग लिया। जिसमें 1 करोड़ 30 लाख सैनिक मारे गये और 2 करोड़, 20 लाख सैनिक घायल हुये। युद्ध में लगभग एक खरब 86 अरब डॉलर खर्च हुये और लगभग एक खरब डॉलर की सम्पत्ति नष्ट हुई।
2. जर्मनी रूस, आस्ट्रिया में निरंकुश राजतंत्रों की समाप्ति हुई।
3. युद्ध के बाद शान्ति संधियों के माध्यम से अनेक परिवर्तन हुए। चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, लिथुआनिया, लेटेविया, एस्टोनिया, फिनलैण्ड, पौलेण्ड, आदि नये राज्यों का उदय हुआ।
4. विभिन्न विचारधाराओं पर आधारित सरकारों की स्थापना हुई। रूस में साम्यवादी सरकार, जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासीवादी सरकारों की स्थापना हुई।
5. अमेरिका ने युद्ध काल में बड़ी मात्रा में मित्र राष्ट्रों को ऋण देकर आर्थिक सहयोग किया था। पेरिस शांति सम्मेलन में भी अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन की महत्वूपर्ण भूमिका रही थी। इस युद्ध से अमेरिका के प्रभाव में वृद्धि हुई।
6. युद्ध के समय घरेलू मोर्चे व चिकित्सा क्षेत्र में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। अतः स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया।
7. द्वितीय विश्व युद्ध का बीजारोपण भी इसी युद्ध के परिणामस्वरूप हो गया था। वर्साय की संधि से असंतुष्ट होकर जर्मनी व इटली ने विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध की ओर धकेल दिया।
8. अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन के प्रयासों से विभिन्न देशों के विवादों को सुलझाने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। यद्यपि विवादों को सुलझाने में यह संस्था सफल नहीं हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध 1939–1945 ई.

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद वर्साय की संधि के लिए कहा गया था कि''यह शांति संधि नहीं अपितु 20 वर्ष के लिए विराम संधि है।'' यह घोषणा सत्य सिद्ध हुई। 1 सितम्बर 1939 में पौलेण्ड पर जर्मनी के आक्रमण के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण–

1. वर्साय की अपमानजनक संधि–

वर्साय की संधि (1919 ई.) के समय विजयी राष्ट्रों ने दूरदर्शिता के बजाय प्रतिशोध की भावना से जर्मनी का दमन किया। संधि की अपमानजनक शर्तों से जर्मन प्रतिनिधि और जनता में असंतोष था। जर्मनी को आक्रमण का भय दिखाकर संधि पर हस्ताक्षर के लिए मजबूर किया। जर्मनी के हिटलर ने इन शर्तों का उल्लंघन करना आरम्भ कर दिया। हिटलर ने सबसे पहले राइन प्रदेश का सैन्यीकरण किया तथा 1938 ई. में आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया।

2. अधिनायकवाद का विकासः–

प्रथम विश्व युद्ध के बाद पराजित राष्ट्रों में लोकतंत्र व्यवस्था सफल नहीं रही। जर्मनी, इटली व जापान तीनों देशों में तानाशाही व साम्राज्यवादी भावना प्रबल हो चुकी थी। इन्होंने वर्साय की संधि की व्यवस्थाओं को तोड़ते हुए तीनों ने रोम, बर्लिन, टोकियो धुरी का निर्माण कर लिया। इनके विरूद्ध मित्र राष्ट्रों का भी गुट तैयार हो गया।

3. राष्ट्रसंघ की निर्बलता–

राष्ट्रसंघ का निर्माण आपसी झगड़ों को सुलझाने तथा विश्व में शांति बनाये रखने के लिये किया गया था, परन्तु मित्र राष्ट्रों ने राष्ट्रसंघ का प्रयोग अपने हित और अहित के आधार पर किया। तानाशाहों के विरूद्ध राष्ट्रसंघ कोई कार्यवाही नहीं कर सका।

4. ब्रिटेन की तुष्टीकरण की नीति–

ब्रिटेन ने बढ़ते हुये साम्यवादी प्रभाव को रोकने और अपने व्यापार की वृद्धि की दृष्टि से जर्मनी के प्रति सहानुभूति की नीति अपनाई। जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया का अपहरण, चेकोस्लोवाकिया के अंग–भंग, राइनलैण्ड के सैन्यीकरण के समय इंग्लैण्ड ने जर्मनी के विरूद्ध कोई कदम नहीं उठाया।

5. उग्र राष्ट्रवाद का प्रभाव–

प्रथम महायुद्ध की तरह, उग्र राष्ट्रीयता की भावना द्वितीय महायुद्ध का भी प्रमुख कारण रहीं। इटली, जर्मनी व जापान में यह भावना अधिक प्रबल रही। राष्ट्रसंघ भी इस पर नियंत्रण करने में सफल नहीं हो सका। अतः फिर युद्ध की आशंका बनने लगी।

6. मित्र राष्ट्रों में समन्वय का अभाव–

मित्र राष्ट्र परस्पर सहयोगी थे, लेकिन नीतियों में समानता का अभाव था। वे एक मत होकर जर्मनी, जापान व इटली के विरूद्ध कार्यवाही नहीं कर सके। जर्मनी का साहस बढ़ता गया और विश्व शांति के लिये खतरे की घंटी बन गई।

7. निःशस्त्रीकरण नीति का सफल न होना–

मित्र राष्ट्रों में निःशस्त्रीकरण नीति को पराजित राष्ट्रों पर ही लागू करना चाहते थे लेकिन निःशस्त्रीकरण को स्वयं पर लागू नहीं किया। अन्य राष्ट्र यह बात अच्छी तरह समझ चुके थे। अतः जर्मनी व अन्य राष्ट्रों में शस्त्रीकरण की होड़ प्रारम्भ हो गई, जो विश्वशान्ति के लिए खतरा बन गई।

8. आर्थिक मंदी–

सन् 1929–30 के आर्थिक संकट ने यूरोप के सभी देशों की अर्थ व्यवस्था को प्रभावित किया। इस संकट के कारण सुरक्षा की भावना का अन्त हुआ और तानाशाहों का उदय हुआ। इससे युद्ध को प्रोत्साहन मिला।

9. अन्य कारण–

स्पेन के गृह युद्ध में इटली व जर्मनी ने हस्तक्षेप करके वहाँ के शासक जनरल फ्रेंको का समर्थन ले लिया। इटली ने अबीसीनिया पर आधिपत्य करके भी विश्वशांति के लिए खतरा उत्पन्न किया। हिटलर ने 1939 ई. में रूस के साथ अनाक्रमण समझौता कर लिया ताकि जर्मनी पौलेण्ड पर आक्रमण करे तो रूस तटस्थ रहे।

10. तात्कालिक कारण–

जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार करने के उपरान्त 1 सितम्बर, 1939 से पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया। ब्रिटेन व फ्रांस ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध की शुरूआत हो गई।

युद्ध का स्वरुप–

युद्ध का स्वरूप इस तरह था, एक ओर राष्ट्र जर्मनी, इटली, जापान, फिनलैण्ड, रूमानिया और हंगरी थे तो दूसरी ओर मित्र राष्ट्र ब्रिटेन, फ्रांस, सं.रा. अमेरिका, चीन, पौलेण्ड, व इनके उपनिवेश थे।

युद्ध के प्रारम्भ में धुरी राष्ट्रों को काफी सफलता मिली। जापान ने दिसम्बर 1941 में अमेरिकी नौसेना केन्द्र पर्ल हार्बर

पर आक्रमण कर दिया, इससे चिढ़कर अमेरिका भी युद्ध में शामिल हो गया। इसके बाद मित्र राष्ट्रों को सफलता मिलने लगी। अमेरिकी सेनाओं ने हिटलर से फ्रांस को मुक्त करा लिया। इटली ने भी आत्म समर्पण कर दिया। 1945 में जर्मनी का भी पतन हो गया। अमेरिका द्वारा 6 अगस्त को हिरोशिमा और 9 अगस्त 1945 को नागासाकी पर बम गिराया। इस विनाश से भयभीत होकर जापान ने 10 अगस्त को समर्पण का प्रस्ताव भेजा। अन्त में, 14 अगस्त, 1945 को युद्ध बन्द हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम–

1. प्रथम महायुद्ध की तरह इस युद्ध में अपार धन व जन की हानि हुई। युद्ध में लगभग 5 करोड़ व्यक्ति मारे गये अथवा घायल हुए। इस युद्ध में विविध देशों द्वारा 1 लाख करोड़ डॉलर धन खर्च हुआ।
2. इस युद्ध से परमाणु बम के प्रयोग की शुरूआत हुई जो कि काफी विनाशक थी। वैज्ञानिक उन्नति ने इसे और भयावह बना दिया। विश्व के देश एक दूसरे के नजदीक खड़े होकर शांति की राह खोजने के लिए मजबूर हुए।
3. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सम्पूर्ण विश्व दो विचारधाराओं में विभाजित हो गया। एक में अमेरिका पूंजीवादी देशों का नेतृत्व करने लगा। दूसरे गुट रूस के नेतृत्व में साम्यवादी देशों का था। दोनों गुटों में काफी समय तक शीत युद्ध चलता रहा एवं सुरक्षा के लिए कई समझौते भी हुए।
4. मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को कमजोर करने की दृष्टि से उसे दो भागों में बांट दिया। ब्रिटेन, फ्रांस,संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकृत जर्मन भागों को जर्मन संघ राज्य बना दिया, यह पूर्वी जर्मनी कहलाया। रूस अधिकृत जर्मनी को पश्चिमी जर्मन जनवादी राज्य घोषित किया। बर्लिन के बीच दीवार बनाकर उससे दो भागों में कर दिया। यह विभाजित जर्मनी 3 अक्टूबर 1990 को पुनः एक हो गया।
5. युद्ध के बाद विचारधाराओं की तरह ही विश्व में सैनिक गुटों का भी निर्माण हुआ। अमेरिका के नेतृत्व में उत्तर अटलांटिक सन्धि संगठन (नाटो), जनतंत्र समर्पित राष्ट्रों का संगठन दक्षिणी पूर्वी एशिया संधि संगठन (सीटों) एवं साम्यवादी देशों का संगठन 'वारसा पेक्ट' था।
6. द्वितीय विश्व के बाद कई देश स्वतंत्र हो गये। जो बड़े देशों के उपनिवेश थे। सन् 1947 में भारत, 1949 ई. में फिलीपाइन्स व चीन में लोकतंत्र की स्थापना, 1951 ई. में लीबिया, उसके साथ घाना, अल्जीरिया व गिनी तथा 1960 ई. में अफ्रीका के 17 देश स्वतंत्र हुए।
7. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 24 अक्टूबर 1945 को विश्व को युद्ध से बचाने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई।
8. द्वितीय विश्व युद्ध से साम्राज्यवाद को काफी धक्का लगा। ब्रिटेन, फ्रांस, हॉलेण्ड, बेल्जियम जैसे साम्राज्यवादी देश कमजोर हो गये।
9. युद्ध के बाद युद्ध अपराधियों पर विचार करने के लिये वार क्राइम कमीशन की स्थापना की गई।
10. युद्ध के बाद सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका नामक दो महाशक्तियां बनी। दोनों में लम्बे समय तक शीत युद्ध चलता रहा।
11. इस युद्ध के बाद विश्व इतिहास में युरोप की स्थिति कमजोर पड़ गई। अब विश्व का राजनैतिक नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के पास आ गया।

राष्ट्रसंघ

राष्ट्रसंघ की स्थापना पेरिस शांति सम्मेलन (1919 ई.) का महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य था। राष्ट्रसंघ की स्थापना में अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन की सर्वाधिक भूमिका रही। वर्साय संधि की प्रथम 26 धाराओं में राष्ट्रसंघ की ही व्याख्या है। 1920ई. में राष्ट्रसंघ ने अपना वैधानिक स्वरूप प्राप्त किया। वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने वाले 32 देश इसके संस्थापक सदस्य बने। बाद में इनकी संख्या 55 हो गई।

राष्ट्रसंघ के उद्देश्य–

1. आपसी विवाद सुलझाना व सुरक्षा की व्यवस्था करना।
2. सभी राष्ट्रों के मध्य भौतिक व मानसिक सहयोग को प्रोत्साहन देना
3. पेरिस शांति समझौते के द्वारा सौंपे गये कर्त्तव्यों को पूरा करना।

राष्ट्रसंघ के अंग

राष्ट्रसंघ के तीन प्रमुख अंग थे–असेम्बली, कौन्सिल व सचिवालय। इसके अलावा इसके दो स्वायत्त अंग थे– अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय व अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन।

राष्ट्रसंघ की स्थापना के उद्देश्य तो विश्व समुदाय के लिए अच्छे थे लेकिन यह महाशक्तियों के अहसयोग, और मनमानी गतिविधियों के कारण मात्र एक औपचारिक संगठन ही बन कर रह गया। अपने उद्देश्य में इसे सफलता नहीं मिली।

संयुक्त राष्ट्रसंघ

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की दृष्टि से विश्व की सर्वोच्च शक्तियों ने विचार–विमर्श, सम्मेलन और वार्ताएं प्रारम्भ की। इन प्रयासों में अटलांटिक चार्टर, कासाब्लांका सम्मेलन, मास्को सम्मेलन, तेहरान सम्मेलन, याल्टा सम्मेलन व सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन विशेष महत्वपूर्ण रहे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर को अंतिम रूप देने के लिए 25 अप्रेल, 1945 को अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को नगर में सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमे 51 देशों के 850 प्रतिनिधि एकत्र हुये। 26 जून को 50 देशों ने इसके चार्टर पर हस्ताक्षर किये। पौलेण्ड ने बाद में हस्ताक्षर किये। इस प्रकार 51 देश इसके संस्थापक सदस्य थे। सभी राष्ट्रों ने 24 अक्टूबर, 1945 तक अपनी संसद से स्वीकृति की प्रक्रिया पूरी कर ली। अतः 24 अक्टूबर को प्रति वर्ष संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

उद्देश्य

1. अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा।
2. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान व न्याय ।
3. सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित एवं पुष्ट करना।
4. व्यापक शांति को प्रोत्साहित करते हुए समानता और स्वतंत्रता के सिद्धान्तों के आधार पर राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देना।

कोई भी राष्ट्र जो शांति प्रिय हो एवं संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में विश्वास रखता हो, सदस्य बनने के लिए आवेदन कर सकता है। इसके लिए सुरक्षा परिषद की संस्तुति के बाद महासभा का दो तिहाई बहुमत से अनुमोदन आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्यालय अमरीका के न्यूयार्क में है। महासचिव संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी होता है। जिसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद की संस्तुति पर महासभा द्वारा की जाती है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंग– संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुच्छेद 7 के अनुसार इसके 6 अंग है

1. महासभा
2. सुरक्षा परिषद
3. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद
4. न्यास परिषद
5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
6. सचिवालय

1. **महासभा**–यह संयुक्त राष्ट्र की मुख्य व्यवस्थापिका है, जिसमें सभी सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। एक अध्यक्ष व सात उपाध्यक्ष होते हैं। कार्य के सुचारू संचालन हेतु 6 समितियां होती है। महासभा का अधिवेशन वर्ष में एक बार सितम्बर माह के दूसरे सप्ताह में होता हैं। बजट पारित करना, सदस्य राज्यों का प्रवेश, निष्कासन व निलम्बन पर विचार करना, राष्ट्रसंघ का बजट पारित करना, मानव कल्याण के लिए सहयोग करना आदि प्रमुख कार्य हैं।

2. **सुरक्षा परिषद**–यह सयुंक्त राष्ट्रसंघ की कार्यपालिका है। इसमें 15 सदस्य होते हैं– 5 स्थायी और 10 अस्थायी सदस्य। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस व चीन इसके स्थायी सदस्य हैं। अस्थायी सदस्यों का चुनाव 2/3 बहुमत से महासभा द्वारा किया जाता है। यह निरन्तर कार्य करने वाली संस्था है। इसकी बैठक 14 दिन में एक बार होती हे। सुरक्षा परिषद महासभा के साथ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के जजों को चुनती है। सदस्यों के प्रवेश निष्कासन, महासचिव की नियुक्ति की संस्तुति करती है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा व विवादों का निपटारे का कार्य करती है। सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के पास निषेधाधिकार (वीटो) होता है। किसी भी निर्णय में यदि एक स्थायी सदस्य की असहमति होती है तो निर्णय पारित नहीं होता है। वीटो के लिए स्थायी सदस्य की उपस्थित होना आवश्यक है।

3. **आर्थिक व सामाजिक परिषद**– इसके सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष का होता है। सदस्यों की संख्या 54 है। प्रति वर्ष 1/3 सदस्य रिक्त स्थानों के लिए चुने जाते हैं। परिषद का कार्य संसार के गरीब, बीमार, निरक्षर व असहाय लोगों की सहायता करना है। मानवीय अधिकारों व मौलिक स्वतंत्रता का आदर व लागू करने के लिए संस्तुति करना, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा करना आदि प्रमुख कार्य हैं।

4. **प्रन्यास परिषद**– संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र में यह व्यवस्था दी गई थी कि वे प्रदेश अविकसित व पिछड़े हैं,

पूर्ण स्वायत्तशासी नहीं है, वहां के निवासियों के हितों की रक्षा के लिए उन्हें संयुक्त राष्ट्रसंघ की न्यास व्यवस्था के अन्तर्गत विकसित राष्ट्रों को धरोहर के रूप में सौंप दिया जाय। उन देशों को विकसित कर उनमें स्वशासन स्वतंत्रता के प्रति जागरूकता उत्पन्न की जा सके।

5. **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय–** अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हालैण्ड के हेग नगर में 1946 में की गई थी। इसमें कुल 15 न्यायाधीश होते हैं। कार्यकाल 9 वर्ष का होता है। 5 न्यायाधीश प्रत्येक 3 वर्ष पश्चात् सेवा निवृत्त हो जाते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् व महासभा द्वारा की जाती है। इसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर विचार व व्याख्या करना है। इसका क्षेत्राधिकार उन सभी देशों पर हैं जो इसकी संविधि को स्वीकार कर चुके हैं।

6. **सचिवालय**–सचिवालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रशासनिक अंग है जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी कार्यों को सम्पादित करता है। सचिवालय का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी महासचिव होता है जो सचिवालय की सहायता से अपना सम्पूर्ण कार्य करता है। वह अपने पद के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अंगों की कार्यवाही में उपस्थित रहता है व कार्यवाही में भाग लेता है। महासभा द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है। महासभा में वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। महासचिव का पद अत्यधिक महत्व का पद होता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट निकाय–

संयुक्त राष्ट्रसंघ को व्यापक एवं विभिन्न कार्यों में सहयोग देने के लिये अलग–अलग क्षेत्रों में विशिष्ट निकाय है जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय कल्याण में कार्यरत है। इनकी अपनी स्वयं की कार्य प्रणाली है। प्रमुख निकाय निम्नलिखित हैं–

1. संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन
2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
3. खाद्य एवं कृषि संगठन
4. विश्व स्वास्थ्य संगठन
5. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
6. अन्तर्राष्ट्रीय पुनः निर्माण व विकास बैंक
7. संयुक्त राष्ट्र बाल संकट कोष
8. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम
9. अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संघ
10. अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष
11. विश्व डाक संघ
12. अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ
13. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम
14. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र
15. विश्व खाद्य कार्यक्रम
16. विश्व व्यापार संगठन

राष्ट्रसंघ की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ को कई क्षेत्रों में सफलता मिली। कई बार विश्व में युद्ध की स्थितियां बनी, उनको संयुक्त राष्ट्रसंघ ने रोका। इनमें फिलीस्तीन, इण्डोनेशिया, कांगो, क्यूबा, सीरिया, लेबनान समस्या आदि प्रमुख है लेकिन निःशस्त्रीकरण, कश्मीर विवाद, कोरिया विवाद अभी भी बना हुआ है। आतंकवाद और अन्य कई युद्धों को रोकने में भी सफलता नहीं मिली।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यों में भारत का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कोरिया युद्ध (1950 ई.) के बाद युद्ध बन्दियों के आदान–प्रदान, स्वेज संकट के समय (1956 ई.) भारत की सैनिक टुकड़ी भेजना, तथा कांगो संकट के समय (1960 ई.) तथा सोमालिया संकट (1991 ई.) के समय भी भारत की सैन्य टुकड़ी ने खाद्य सामग्री पहुँचाई। भारत ने एशिया और अफ्रीका के कई देशों को स्वतंत्रता दिलाने का भी समर्थन किया।

पश्चिम का औपनिवेशिक साम्राज्य विस्तार

पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने आर्थिक हितों की पूर्ति करने के लिए नये देशों की खोज करके वहां अपना प्रभाव स्थापित किया, व्यापार की सुविधाएं प्राप्त की और बाद में साम्राज्य स्थापित किया। पश्चिमी राष्ट्रों की इसी प्रवृति को विद्वानों ने औपनिवेशिक विस्तार या औपनिवेशिक साम्राज्यवाद कहा हैं।

16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी देशों ने अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए पुर्तगाल, स्पेन, इंग्लैण्ड, हालैण्ड और फ्रांस ने भौगोलिक खोजों के माध्यम से बड़े–बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किये।

अफ्रीका महाद्वीप में पश्चिमी देशों का लगभग पांचवें भाग पर विशेषकर समुद्री किनारे पर अधिकार था। ये लोग दासों का व्यापार करते थे जो अमानवीयता की श्रेणी में आता है। अफ्रीकियों को गुलाम बनाकर अमेरिका भेजा जाता था और उन पर अमानुषिक अत्याचार किया जाता था। कोड़े बरसाये जाते थे। इन देशों ने अपने आर्थिक व राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए उचित व अनुचित सभी तरीके अपनायें।

कारणः —

(1) औपनिवैशिक साम्राज्य विस्तार के पीछे प्रमुख कारण पश्चिमी देशों द्वारा अपनी आर्थिक भूख की पूर्ति करना था।

(2) औद्योगिक क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका में भी औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई। इस उत्पादन को खपाने के लिए नये स्थानों की आवश्यकता थी।

(3) अपने उद्योग चलाने के लिए कच्चे माल की जहां उपलब्धता थी, युरोपीय देश उन पर अपना अधिकार करने का प्रयास करने लगे।

(4) युरोपीय देशों में अतिरिक्त पूंजी एकत्र होने लगी थी अतः इसके निवेश के लिए भी नये स्थानों की आवश्यकता थी।

(5) संचार एवं यातायात के साधनों ने भी परिवहन एवं संवाद में सुगमता प्रदान की। इससे भी औपनिवैशिक विस्तार को सहयोग मिला।

(6) इन देशों की आबादी में भी तेजी से वृद्धि होती जा रही थी। अतः बढ़ी हुई आबादी को बसाने के लिए भी नये स्थानों की आवश्यकता महसूस होने लगी।

(7) युरोपीय साम्राज्य विस्तार में ईसाई पादरियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

औपनिवैशिक विस्तार के क्षेत्रः—

एशिया और अफ्रीका महाद्वीप ही इस समय ऐसे क्षेत्र थे, जहां शोषण व साम्राज्य विस्तार के लिए अधिक संभावनाएं थी, यथा—

एशिया—

दक्षिण एशिया में भारत, नेपाल, भूटान, मालद्वीप आदि में औपनिवेशिक विस्तार पश्चिमी देशों द्वारा किया गया। भारत में ब्रिटिश, फ्रैंच एवं डच तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनियों में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा थी। आपसी संघर्षों के बाद ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल के रास्ते प्लासी व बक्सर के युद्ध के बाद भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने व अपना औपनिवैशिक विस्तार करने में सफलता मिली। श्रीलंका पर भी अंग्रेजों का आधिपत्य रहा। वह 1948 ई. में स्वतंत्र राष्ट्र बना। दक्षिणी पूर्वी एशिया में इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, बर्मा, मलाया, तिमोर आदि देशों पर इंग्लैण्ड, हालैण्ड एवं फ्रांस का आधिपत्य रहा।

दक्षिण अफ्रीका—

दक्षिणी अफ्रीका में मुख्य रूप से इंग्लैण्ड और फ्रांस दो शक्तियों का औपनिवेशिक आधिपत्य रहा। अंग्रेजों ने यहां भी रंग—भेद की नीति अपनायी। अश्वेतों का शोषण एवं उन पर अत्याचार किया जाता था। यहां दास प्रथा का प्रचलन था। पश्चिमी देशों के लोग दासों का व्यापार करते थे।

अरब बसन्त 2010—2013 ई.

अरब देशों में 2010 से 2013 ई. तक प्रजातन्त्र, स्वतन्त्र चुनाव, मानव अधिकार, बेरोजगारी एवं शासन परिवर्तन के लिये प्रदर्शन, विरोध, उपद्रव एवं जन आन्दोलन की क्रान्तिकारी लहर चल पड़ी थी। ये आन्दोलन अरब देशों में एक अच्छे उद्देश्य को लेकर किये गये थे। इसलिये विद्वानों ने इसे अरब बसन्त की संज्ञा दी। अरब बसन्त नाम का प्रयोग प्रथम बार 6 जून 2011 के अमेरिका के जर्नल 'फॉरेन पॉलिसी' में मार्क लिंच ने अपने लेख में किया था। इससे पूर्व यूरोप में 1848 की क्रांन्ति के बाद भी स्प्रींग टाईम ऑफ नेशन नाम का प्रयोग हुआ था। यह प्रयोग 'राष्ट्रों का अच्छे दिनों का समय' के अर्थ में था।

अरब बसन्त का क्षेत्र—

अरब देशों के लिये भी यह आन्दोलन जनता द्वारा 'अच्छे दिन आयें' उद्देश्य को लेकर किया गया था। इसीलिये इसे अरब बसन्त की श्रेणी में रखा गया है। इस आन्दोलन की शुरुआत ट्यूनिशिया की क्रान्ति से हुई और शीघ्र ही यह आन्दोलन अरब लीग के देशों और उसके आस—पास के क्षेत्रों में फैल गया। अरब बसन्त जिन क्षेत्रों में फैला उनमें ट्यूनिशिया, मिश्र, लीबिया, यमन, बहरीन, सीरिया, अल्जीरिया, ईराक, जोर्डन, मोरक्को,सूडान, ओमान, साऊदी अरब आदि प्रमुख थे।

अरब बसन्त के कारणः—

1. अरब देशों में राजनैतिक भ्रष्टाचार में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी। अतः देश में विकास के लिये इसे मिटाना जरूरी था।
2. मानव अधिकारों का उल्लंघन एवं शोषण के कारण व्यवस्था के विरूद्ध विरोध उत्पन्न हुआ।
3. तानाशाही शासकों के विरूद्ध असंतोष की भावना उत्पन्न होना।

4. शासकों की साम्राज्यवादी प्रवृति ने भी लोगों में असन्तोष उत्पन्न किया।

5. अरब देशों में बेरोजेगारी में वृद्धि से युवकों में असन्तोष की भावना उत्पन्न हुई।

6. आय के स्तर में भी काफी अन्तर हो गया था। कुछ लोग ओर अधिक सम्पन्न होते जा रहे थे, जबकि समाज का सामान्य वर्ग अत्यधिक गरीब था।

7. प्रशासन में नौकरशाही और अधिक हावी हो रही थी। लोगों के कार्य नहीं हो रहे थे। इससे भी असन्तोष की भावना उत्पन्न होने लगी।

8. प्रजातान्त्रिक व्यवस्था स्थापित करने की भावना को प्रोत्साहन मिलना।

अरब बसन्त के उद्देश्य एवं स्वरूपः–

अरब देशों में चल रही तत्कालीन प्रशासन व्यवस्था एवं सरकार में बदलाव लाना अरब बसन्त का मुख्य उद्देश्य था। इससे मानव अधिकारों की सुरक्षा, स्वतन्त्र चुनाव की व्यवस्था, बेरोजगारी दूर करना एवं इस्लामीकरण आदि अरब बसन्त के मुख्य उद्देश्य थे।

अरब आन्दोलनकारियों ने विरोध के लिये अहिंसात्मक व हिंसात्मक दोनों तरीके अपनाये। विरोध के तरीकों में सविनय अवज्ञा, सविनय विरोध, धरना, प्रदर्शन, हड़ताल, इन्टरनेट पर सक्रिय रहना, हिंसक प्रदर्शन एंव शान्तिपूर्वक विरोध आदि सभी तरीकों का अरब बसन्त में प्रयोग किया गया। प्रदर्शनकारियों का नारा था– ''जनता चाहती है प्रचलित शासन पद्धति को गिराओ ''

अरब बसन्त– महत्व एंव परिणाम

अरब बसन्त के माध्यम से अरब देशों में प्रजातन्त्र और सुधारों की ऐसी क्रन्तिकारी लहर चली जिसने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। वर्षों से चली आ रही तानाशाही सरकारों का अन्त हुआ एवं सभी अरब देशों में सुधारात्मक दृष्टिकोण की ओर ध्यान दिया जाने लगाा।

1. ट्यूनिशिया के जेनुअल आब्दीन अली, मिश्र के हॉस्नी मुबारक, लीबिया के कर्नल गद्दाफी एवं यमन के शाह अली अब्दुला का तख्ता पलट दिया गया एंव उन्हें अपदस्थ कर, नई सरकारे बनी।

2. कुवैत लेबनान ओमान व बहरीन ने भी अरब बसन्त के भारी विरोध को देखते हुए अपने प्रशासन में कई तरह के सुधार किये।

3. मोरक्को एवं जार्डन में संवैधानिक सुधारों की क्रियान्विति की गई।

4. अल्जीरिया में 19 वर्ष पूर्व लागू की गई आपात्कालीन स्थिति को हटा दिया गया।

5. अरब बसन्त में 1,70,000 से अधिक लोगों की जानें गई। अरब बसन्त ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रशासनिक अराजकता एवं तानाशाही को जनता अधिक दिनों तक सहन नहीं कर सकती है। अरब बसन्त के शान्तिपूर्वक प्रदर्शन करने वाले एवं विरोध करने वालों की ओर विश्व का भी ध्यान उत्कृष्ट हुआ। ऐसे कुछ विरोधकर्ताओ के नाम नोबेल पुरूस्कार के लिये भी नामित किये गये। यमन के तवकोल–करमान को 2011 ई. का नोबेल अरब बसन्त में शान्तिपूर्ण विरोध के आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिये संयुक्त रूप से दिया गया। अरब बसन्त के प्रभाव से ही कुछ शासकों ने दुबारा चुनाव लड़ने से मना कर दिया और कुछ ने त्याग–पत्र दे दिया।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पश्चिमी देशों ने अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए औपनिवैशिक साम्राज्यवाद का प्रसार किया।
2. ''स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व'' फ्रांस की क्रान्ति का मुख्य संदेश था।
3. रूस ने क्रान्ति के बाद जर्मनी से ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि कर ली।
4. नवम्बर, 1917 में लेनिन के नेतृत्व में बोलशेविकों ने रूस की सरकार को समाप्त कर दिया।
5. प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व गुप्त संधियों के कारण यूरोप दो गुटों में विभाजित हो गया था।
6. प्रथम विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण सर्बिया में आस्ट्रिया के राजकुमार फर्डीनण्ड की हत्या करना था।
7. वर्साय संधि की अपमानजनक एवं कठोर शर्तें द्वितीय विश्व युद्ध का प्रमुख कारण बनी।
8. 1 सितम्बर 1939 ई. को जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण द्वितीय विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण था।
9. राष्ट्रसंघ की स्थापना 10 जनवरी, 1920 को हुई थी।
10. सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन 1945 ई. में संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर लागू किया गया।
11. संयुक्त राष्ट्रसंघ में महासचिव पद सर्वाधित महत्वपूर्ण है।
12. विश्व शांति की स्थापना में संयुक्त राष्ट्रसंघ को भारत ने भी पर्याप्त सहयोग किया।

13. अमरीका ने जापान के हिरोशिमा (6 अगस्त) और नागासाकी (9 अगस्त, 1945) शहरों पर परमाणु बम गिराये।
14. अरब देशों में चल रही प्रशासन व्यवस्था एवं सरकार में बदलाव लाना अरब बसन्त का मुख्य उद्देश्य था।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न—

1.फ्रांस की राज्य क्रांति के समय फ्रांस का राजा कौन था?

(अ) लुई 14वां (ब) लुई 18वां

(स) लुई 16वां (द) लुई 15वां

2.जर्मनी ने रूस से अनाक्रमण समझौता कब किया।

(अ) 1939 (ब) 1935

(स) 1936 (द) 1937

3.प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी के साथ कौन सी संधि की गई?

(अ) न्यूइली की संधि (ब) सेब्र की संधि

(स) वर्साय की संधि (द) ट्रियाना की संधि

4. स्पेन के गृह युद्ध में फ्रांस को मदद किसने की?

(अ) अमेरिका व रूस (ब) जर्मनी व इटली

(स) आस्ट्रिया व हंगरी (द) जर्मनी व जापान

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न—

1. फ्रांस की क्रांति के बौद्धिक जागरण के दो विद्वानों के नाम बताइये।
2. प्रथम विश्व युद्ध के समय जर्मनी का सम्राट कौन था?
3. बोल्शेविक क्रांति के प्रमुख नेता का नाम बताइये।
4. द्वितीय महायुद्ध में जापान ने अमेरिका के किस नौ सेना केन्द्र पर आक्रमण किया।
5. मार्च की क्रांति के बाद रूस में किसने सरकार बनाई?
6. स्पेन के युद्ध में फ्रैंचों की मदद किसने की?
7. राष्ट्रसंघ की स्थापना कब हुई?
8. संयुक्त राष्ट्रसंघ दिवस कब मनाया जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न—

1. एस्टेट जनरल क्या थी?
2. बेस्तील के पतन के बारे में आप क्या जानते है?
3. द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों में सम्मिलित देशों के नाम बताइये।
4. पेट्रोग्राड में मजदूर हड़ताल पर टिप्पणी लिखिए।
5. ब्रिटेन ने तुष्टीकरण की नीति क्यों अपनाई?
6. प्रथम विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण बताइये।
7. निःशस्त्रीकरण की असफलता का उल्लेख कीजिए।
8. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य बताइये।
9 अरब बसन्त का अर्थ व उद्देश्य बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न—

1. फ्रांस की राज्य क्रांति के कारण व परिणाम बताइये।
2. प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. 1917 ई. की रूस की क्रांति के कारण बताइये।
4. द्वितीय महायुद्ध के कारण व परिणाम बताइये।
5. औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के कारण बताइये।
6. संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना व उसके प्रमुख अंगों का वर्णन करिए।
7 अरब बसन्त के कारण व परिणामों का संक्षेप में वर्णन करिये।

वस्तुनिष्ठ उत्तर

1.(स) 2.(अ) 3.(स) 4.(ब)

अध्याय 6

भारत में राष्ट्रीयता

राष्ट्र या देश एक ऐसा जनसमूह है जो स्वतंत्र रूप से एक निश्चित भू–भाग में रहता हो और वह स्वतंत्रता, समानता व बन्धुत्व की सामुदायिक भावना के आधार पर संगठित हो। राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली राष्ट्रभक्ति, आत्मीयता, देश प्रेम एवं देश के प्रति त्याग व समर्पण का भाव ही राष्ट्रवाद है। पश्चिमी देशों में राष्ट्र की अवधारणा राज्य के रूप में थी। एक जाति या नस्ल और उसका भू–भाग राष्ट्र की श्रेणी में आता था। राष्ट्र की भारतीय अवधारणा में संस्कृति का विशेष महत्व था। भारत में राष्ट्र, देश और राज्य को निम्न तालिका से समझा जा सकता है:–

अनिवार्य तत्व	राष्ट्र	देश	राज्य
1.	जन	जन	जन
2.	संस्कृति	भूमि	सम्प्रभुता

यदि जन, भूमि, सम्प्रभुता व संस्कृति चारों तत्व उपलब्ध हैं तो वह आदर्श राष्ट्र की श्रेणी में आता है।

राष्ट्रवाद का उद्‌भव एवं विकास

ब्रिटिश विद्वान सर जॉन स्ट्रेची एवं सर जॉन सीले ने भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म 19वीं शताब्दी की देन बताया है। वे भारतीय राष्ट्रवाद को ब्रिटिश उपनिवेशवाद का परिणाम मानते हैं लेकिन भारत में राष्ट्रवाद की धारणा अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य से हमें राष्ट्रीयता की स्पष्ट जानकारी मिलती है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में राष्ट्र की स्पष्ट व्याख्या की गई है तथा राष्ट्र के प्रति नागरिकों का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, उसे भी यजुर्वेद में समझाया गया है। इस तरह जब वेदों में राष्ट्र की स्पष्ट अवधारणा बताई गई है तो ब्रिटिश व पाश्चात्य प्रभाव से राष्ट्रीय भावना या राष्ट्रीयता का उदय हुआ, यह कहना उचित नहीं है। वस्तुतः भारतीयों में भारतवर्ष या भारत के प्रति सम्मान एवं भक्ति की भावना थी। यह हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक है। यही नहीं, भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा का विशेष महत्व था। प्राचीन काल में बृहत्तर भारत का उल्लेख मिलता है जिसके अन्तर्गत भारत का सांस्कृतिक प्रभाव सम्पूर्ण मध्य एशिया में व्याप्त था।

19वीं शताब्दी के मध्य से भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध लोगों में राष्ट्रीय चेतना की भावना विकसित हुई जिसकी परिणति भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में हुई। राष्ट्रीयता जनता में 'मैं' के स्थान पर हम की भावना उत्पन्न करती है।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण के कारण

19वीं शताब्दी का भारतीय राष्ट्रीय पुनर्चेतना अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले भारत के आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दमनचक्र के विरूद्ध प्रतिक्रिया था। राष्ट्रीय भावना की शक्ति के बल पर भारतीयों ने अंग्रेजों को देश छोड़कर जाने के लिए मजबूर किया। अंग्रेजों ने भारत पर अधिपत्य की शुरूआत बगांल से की थी। कोलकता 1911ई. तक ब्रिटिश भारत की राजधानी रहा था। अतः उनका सर्वाधिक प्रभाव भी यहीं रहा। भारत में राष्ट्रीय पुनर्जागरण उत्पन्न होने के निम्नांकित कारण रहे हैः–

1. **भारत के गौरवपूर्ण अतीत का प्रभाव**–अपार ज्ञान के कारण प्राचीन काल में भारत को विश्वगुरू कहा जाता था। प्राचीन काल में हमारे महापुरूषों एवं शासकों ने भारत को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया। इसी गौरव की प्रेरणा से 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों के विरूद्ध राष्ट्रभावना जाग्रत हुई। अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास व सांस्कृतिक वैभव की जानकारी पाश्चात्य विद्वान विलियम जॉन्स, प्रिन्सेस, मैक्समूलर, फर्गुसन एवं भारतीय विद्वान राजेन्द्र लाल मित्रा तथा विलियम जॉन्स ने संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद कर के बताई। 1861 ई. में कनिंघम के नेतृत्व में पुरातात्विक अन्वेषण व उत्खनन प्रारम्भ हुआ।

प्राचीन काल से भारत में अत्यधिक विकसित संस्कृति थी यह उत्खननों से ज्ञात हुआ। भारत के प्राचीन वैभव के ज्ञान से देश में आत्म विश्वास जाग्रत हुआ व राष्ट्रवाद की प्रेरणा मिली। भारतीय ही नहीं यूरोपीय विद्वानों ने भी भारत के वैदिक ज्ञान को विश्व कल्याण के लिए महत्वपूर्ण बताया।

2. **ब्रिटिश शासन का प्रभाव**–अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक व सांस्कृतिक शोषण किये जाने के कारण उनकी नीतियों का विरोध हुआ। 1837 से 1857 ई. तक ब्रिटिश नीतियों के विरूद्ध अनेक विद्रोह हुए, इनमें नागरिक विद्रोह, आदिवासियों के विद्रोह, किसान विद्रोह सम्मिलित थे। भारतीयों को यह समझ में आ गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता भारत के लिए हितकर नहीं हो सकती। लार्ड लिटन की अदूरदर्शी व प्रतिक्रियावादी नीतियों ने भारतीयों में और अधिक असंतोष पैदा किया। भारत का राष्ट्रीय आन्दोलान ब्रिटिश शासन के विरूद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम था।

3. अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव–यद्यपि लार्ड मैकाले अंग्रेजी शिक्षा एवं भाषा के प्रचलन करके भारतीयों को मानसिक दृष्टि से गुलाम बनाना चाहता था, लेकिन अंग्रेजी भाषा भारतीयों के लिए विश्व सम्पर्क भाषा बन गई। भारतीय युवक उच्च शिक्षा में रूचि लेने लगे और इससे राष्ट्रीय जागृति को प्रोत्साहन मिला।

4. पाश्चात्य दार्शनिकों एवं विचारकों से सम्पर्क का प्रभाव– अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीय युवक, बर्क, बैंथम, मिल, रूसो, मिल्टन, स्पेन्सर आदि के सम्पर्क में आये। इनके क्रान्तिकारी एवं राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित हुए, इससे राष्ट्रवाद को बल मिला।

5. भारतीय साहित्यकारों का योगदान–भारतीय कवियों एवं लेखकों ने राष्ट्रप्रेम से परिपूर्ण साहित्य की रचना की 'आनन्द मठ' एवं 'नील दर्पण' नाटकों के मंचन से राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन मिला। बंकिमचन्द्र चटर्जी का आनन्द मठ देशभक्ति का पर्याय बन गया। 'वन्दे मातरम्' गीत इन्हीं की देन है। तत्कालीन साहित्यकारों ने मातृभूमि के प्रति विशेष आस्था प्रकट की थी। बंकिमचन्द्र का 'वन्दे मातरम्' गीत भारत के राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों की प्रेरणा का मुख्य स्रोत बन गया। अन्य साहित्यकारों में हेमचन्द्र बनर्जी, नवीनचन्द्र सेन, आर.सी. दत्त, रविन्द्रनाथ टेगोर, बद्रीनारायण चौधरी प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावना के जागरण में विशेष योगदान दिया।

6. छापेखाने का प्रारम्भ एवं समाचार पत्रों का योगदानः– समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ संचार के सुगम साधन हैं। 1800 ई. में कोलकाता के समीप श्रीरामपुर में छापेखाने की शुरूआत हो गई और समाचार–पत्रों का प्रकाशन तेजी से हुआ। 1774 ई. में प्रथम समाचार–पत्र 'इण्डिया गजट 'व 1780 ई.में 'बंगाल गजट' प्रकाशित हुआ। राष्ट्रीय भावना के प्रसार की दृष्टि से राजा राममोहनराय ने 'संवाद कौमुदी' व 'मिरातुल' अखबार प्रकाशित करवाया। हिन्दी भाषा का प्रथम समाचार–पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का 1826 ई. में प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। समाचार–पत्रों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी साम्राज्यवादी एवं शोषण नीति का खुलकर विरोध किया। समाचार–पत्रों एवं साप्ताहिक पत्रों के माध्यम से भारतीय समाज सुधारकों एवं राजनीतिक विचारकों के विचार जनता के पास जाने लगे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'सोम प्रकाश' एवं हरिश्चन्द्र मुखर्जी ने 'हिन्दू पैट्रियट' का प्रकाशन किया। 1868ई. में 'अमृत बाजार पत्रिका' का प्रकाशन हुआ। तिलक ने मराठी भाषा में 'केसरी' व अंग्रेजी में 'मराठा' प्रकाशित किया। इन समाचार–पत्रों ने भारत में बलिदान एवं राष्ट्रवाद का वातावरण तैयार किया।

7. अंग्रेजों द्वारा भारतीयों से भेदभावपूर्ण नीति अपनाना भारतीयों को सेना व प्रशासन में उच्च पदों से वंचित रखना, भारतीयों से भेदभाव, रखना, 1857 ई. की क्रांति के बाद भारतीयों का अपमान व अत्याचार, कानून के समक्ष अंग्रेजों व भारतीयों में असमानता

आदि अंग्रेजों द्वारा किये गये कई ऐसे कार्य थे जिससे भारतीयों में असंतोष उत्पन्न हुआ।

8. धर्म सुधार व समाज सुधार आंदोलन का प्रभाव–भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रारम्भ में धर्म व समाज में फैली हुई कुरीतियों के विरूद्ध शुरू हुये ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन की महत्वूपर्ण भूमिका रही। राजा राममोहनराय व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सामाजिक बुराइयों को दूर किया एवं लोगों में राष्ट्रीय प्रेम जागृत किया। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहनराय को आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है। उन्होंने आधुनिक शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया उन्होंने प्रेस की आजादी एवं स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। ब्रह्म समाज के ही केशवचन्द्र सेन ने सामाजिक समानता एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया। उन्होंने सम्पूर्ण भारत की यात्रा करके विभिन्न पन्थों को जोड़ने का प्रयास किया। आर्य समाज के संस्थापक ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग एवं स्वराज्य पर जोर दिया। उन्होंने ही सर्वप्रथम स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया। स्वामी विवेकानन्द ने 1893 ई. में शिकागों के धर्म सम्मेलन में वेदान्त के उपदेश देकर विश्व में भारत का मान बढ़ाया। उन्होंने राजनैतिक स्वतंत्रता और अतीत के गौरव के सम्मान पर बल दिया। भारत माता की सेवा को ही एकमात्र धर्म बताया। भारत में राष्ट्रवाद को गति देने में इन सुधार आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

9. भारत का आर्थिक शोषण–भारतीयों में अंग्रेजों द्वारा किये गये आर्थिक शोषण के विरूद्ध भारी असंतोष था। भारत के कुटीर उद्योगों को नष्ट कर दिया। यहां से सस्ते भाव से कच्चा माल लेते थे और अंग्रेज उसे तैयार करके ऊँचे दामों में बेच देते थे। विदेशी पूँजी का भारत में निवेश, विदेशी आयात के माध्यम से भारत का शोषण किया। इंग्लैण्ड में भारत की गृह सरकार का सारा खर्चा भारत द्वारा ही वहन किया जाता था। भारत से धन का अपहरण, कुटीर उद्योगों का विनाश, किसानों का शोषण आदि का भारतीयों ने विरोध किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारत की स्वतंत्रताः–

राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित होकर लम्बे समय तक भारतीयों ने भारत को स्वतंत्र कराने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन चलाया। क्रांतिकारियों के बलिदान, महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन एवं स्वतंत्रता सेनानियों के प्रयासों से भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद हुआ। भारत को स्वतंत्र कराने में क्रांतिकारी भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद, चापेकर बन्धु, अशफाक उल्लाह खान, रामप्रसाद, बिस्मिल, राजेन्द्र लाहड़ी, खुशीराम बोस, प्रफुल्लचन्द्र, वासुदेव बलवन्त फड़के, वीर सावरकर, सुभाषचन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, अरविन्द घोष, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम : राजस्थान के विशेष संदर्भ में

भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध तीव्र असंतोष बढ़ता जा रहा था। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति और आर्थिक शोषण ने इस सन्तोष को ओर अधिक तीव्र कर दिया। सन् 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम इसी तीव्र असंतोष का परिणाम था। ब्रिटिश विद्वानों ने इसे सैनिक विद्रोह या गदर कहा है, लेकिन यह उचित नहीं है। वीर सावरकर ने इसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा है। अंग्रेजों को पहली बार भारतीयों के संगठित विरोध का सामना करना पड़ा।

स्वतंत्रता संग्राम के कारण

1. प्रशासनिक एवं राजनैतिक– अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए लार्ड वैलेजली ने देशी रियासतों यथा– झाँसी, नागपुर, सतारा, अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। भारतीय जमींदारों की भूमि छीन ली। मुगल सम्राट बहादुरशाह से अपमान –जनक व्यवहार करके मुसलमानों को नाराज कर दिया। उच्च सेवाओं में भारतीयों को नियुक्ति नहीं दी गई। अंग्रेजों की न्याय व्यवस्था से भी भारतीय संतुष्ट नहीं थे।

2. सामाजिक कारण—अंग्रेज भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। भारतीय परम्पराओं और रीति—रिवाजों की भी उपेक्षा की। भारतीयों के साथ भेदभाव की नीति अपनायी। भारतीयों के लिए रेल में प्रथम श्रेणी यात्रा की अनुमति नहीं थी। काले—गोरे का भेद किया जाता था। पाश्चात्य सभ्यता भारतीयों पर लादने की चेष्टा की। सामाजिक दृष्टि से वे अपने आपको सर्वोच्च मानते थे। आगरा के एक मजिस्ट्रेट की टिप्पणी से अंग्रेजों की मानसिकता झलकती है जिसमें उसने कहा था—'प्रत्येक भारतीय को चाहे उसका पद कुछ भी है उसे विवश किया जाना चाहिये कि सड़क पर चलने वाले प्रत्येक अंग्रेज को सलाम करे। यदि भारतीय घोड़े या गाड़ी पर सवार हो तो उसे नीचे उतर कर तब तक खड़े रहना चाहिए जब तक कि अंग्रेज वहाँ से निकल न जाये।' अंग्रेजों ने सन् 1856 के पैतृक सम्पत्ति कानून के अनुसार उत्तराधिकार के नियम में यह परिर्वतन कर दिया गया कि यदि कोई हिन्दू ईसाई धर्म स्वीकार कर लेगा तो उसे पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। पूर्व में प्रावधान था कि यदि कोई धर्म परिवर्तन कर लेता है तो उसे पैतृक सम्पत्ति के अधिकार से वंचित किया जा सकता था। अंग्रेजों की इस कार्यवाही से भारतीयों में असंतोष जाग्रत हुआ। अंग्रेजों द्वारा भारत में किये गये सामाजिक सुधार और आधुनिकीकरण के नाम पर रेल, डाक—तार विभाग में किये गये काम को भी भारतीयों ने अपनी सभ्यता और संस्कृति पर आक्रमण माना।

3. धार्मिक कारण—

अंग्रेजों का एक छदम् उद्देश्य था, भारत में अपने धर्म का प्रचार करना। हाऊस ऑफ कॉमन्स में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मैगल्स द्वारा दिये गये व्याख्यान में स्पष्ट कहा गया था कि देवयोग से भारत का विस्तृत साम्राज्य अंग्रेजों को मिला ताकि अपने मजहब की पताका भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फहरा सके। 1813 ई. के चार्टर एक्ट द्वारा अपने मजहब प्रचारकों को भारत में रहने एवं अपने मत का प्रचार करने की स्वीकृति मिल गई।

जो मतांतरण कर लेता था उसे अन्य सुविधाओं के साथ राजकीय सेवा का भी अवसर मिलता था। सेना में भी पादरियों की नियुक्ति होने लगी। अंग्रेजों के प्रति भारत में यह धार्मिक असंतोष भी 1857 ई. के आन्दोलन का कारण बना।

4. सैनिक कारण—

सन् 1857 के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की शुरूआत सैनिक असंतोष के रूप में ही हुई थी। भारतीय सैनिकों के प्रति वेतन, भत्ते, पदोन्नति व व्यवहार में भेदभाव किया जाता था। भारतीय सैनिकों को 9 रूपया मासिक दिया जाता था, जबकि अंग्रेज सैनिकों को 60 या 70 रूपया दिया जाता था। थोड़ी सी गलती पर भी उन्हें बन्दूक के नट से मारा जाता था और ठोकर मारी जाती थी। भारतीय सैनिकों की संख्या अंग्रेजों से तीन गुनी थी। उनको यह अहसास था कि अंग्रेजों का राज्य हमारे बल पर ही चल रहा है। इससे भी उन्हें अंग्रेजों के विरूद्ध शस्त्र उठाने में प्रोत्साहन मिला। क्रीमिया युद्ध में अंग्रेजों की हार से भी भारतीय सैनिकों को प्रेरणा मिली। भारतीय सैनिकों के भत्ते को भी समाप्त कर दिया। द्वितीय बर्मा युद्ध के समय भारतीय सैनिकों को समुद्र पार भेजा गया तो उन्होंने इसका विरोध किया क्योंकि उस समय हिन्दू धर्म में समुद्री यात्रा को धर्म विरूद्ध माना जाता था। सन् 1857 से पूर्व भी कई सैनिक विद्रोह हो चुके थे।

5. आर्थिक कारण—

अंग्रेजों की भारत के प्रति आर्थिक शोषण की नीति से भारतीयों में तीव्र असंतोष था। ब्रिटेन का उद्देश्य भारतीय उपनिवेश से अधिक से अधिक पूंजी एकत्र करना था। उन्होंने भारत की आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट— भ्रष्ट कर दिया। अंग्रेज अमीर और भारतीय अधिक गरीब होते गये। अंग्रेजों ने अत्यधिक लगान लगा दिया। किसानों और जमींदारों

का उत्पीड़न किया। अकाल के समय भी किसानों और जमींदारों का शोषण किया। अकाल के समय भी किसानों की सहायता नहीं की गई। इससे भारतीयों में विरोध बढ़ता गया।

6. तात्कालिक कारण–

सैनिकों को पुरानी राइफलों के स्थान पर नई एनफील्ड राइफल दी गई जिसके कारतूस के ऊपरी भाग को मुँह से काटना पड़ता था। जनवरी, 1857 में यह बात फैल गई कि कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी लगी हुई है। अंग्रेजों के इस कार्य को भारतीय सैनिकों ने धर्म विरोधी माना। 29 मार्च, 1857 को बेरकपुर की छावनी में मंगल पाण्डे ने चर्बी वाले कारतूस मुंह से काटने से मना कर दिया तथा उसने अंग्रेज अधिकारी की हत्या भी कर दी। मंगल पाण्डे को 8 अप्रेल, 1857 को फाँसी दे दी गई। इससे सैनिक भड़क गये और अंग्रेजों के विरूद्ध क्रांति का बिगुल बजा दिया। मेरठ से क्रांति का प्रसार दिल्ली, कानपुर, बिहार, राजस्थान, दक्षिणी भारत आदि स्थानों तक हो गया।

7. स्वतन्त्रता संग्राम के नायक–

भारतीयों के इस संगठित विरोध ने अंग्रेजों की जड़ें हिलाकर रख दी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कानपुर से नानासाहब, तांत्या टोपे व अजीमुल्ला, बिहार से कुंअर सिंह, दक्षिण भारत में रंगाजी बापू, गुप्ते तथा मेवाड़ के सामन्तों ने क्रांतिकारियों का साथ दिया। आहुवा के ठाकुर खुशालसिंह ने सैनिक सहायता प्रदान की। सलूम्बर के रावत केसरीसिंह ने आऊवा के ठाकुर खुशालसिंह को अपने यहां शरण भी दी। कोठारिया के ठाकुर जोधसिंह ने ब्रिटिश अधिकारी की सम्पत्ति लूटली तथा नीमजी चारण को संरक्षण भी दिया।

राजस्थान में 1857 ई. का स्वतंत्रता संग्राम

आऊवा के ठाकुर खुशालसिंह अंग्रेजों के घोर विरोधी थे, उन्होंने अपने अंग्रेजो विरोधी संघर्ष में जोधुपर राज्य एवं अंग्रेजी सेना को बुरी तरह से परास्त किया। आऊवा के ठाकुर खुशाल सिंह ने बिटिश रेजीडेन्ट मैकमेसन का सिर धड़ से अलग कर दिया और उसे आऊवा के किले पर लटका दिया। आऊवा के ठाकुर को मेवाड़ के सामन्तों का भी जन समर्थन था, लेकिन दूसरे ही वर्ष जोधपुर व अंग्रेजों की संयुक्त सेना ने ठाकुर खुशालसिंह पर आक्रमण कर दिया। किलेदार को रिश्वत देकर किले के दरवाजे खुलवा दिये एवं किले में प्रवेश कर गये।

28 मई,1857 को नसीराबाद के सैनिकों ने तोपखाने पर अधिकार कर लिया। खजाना लूट लिया। एक अंग्रेज अधिकारी के टुकड़े कर दिये। अंग्रेज अधिकारी प्राण बचाकर वहां से भाग निकले। यहां से सैनिक दिल्ली कूच कर गये। नसीराबाद क्रान्ति के समाचार नीमच पहुँचे। नीमच में सैनिको ने शस्त्रगार लूट लिया। अंग्रेज अधिकारी उदयपुर की ओर भाग गये। महाराणा ने उन्हें महलों में शरण दी। कोटा में भी अंग्रेजों के विरूद्ध आम जन और राजकीय सेना द्वारा संघर्ष किया गया। कोटा के महाराव को भी अंग्रेजों के प्रति सहयोग की नीति के कारण क्रान्तिकारियों का कोपभाजन बनना पड़ा था। अंग्रेज विरोधी भावना जाग्रत करने में जयदयाल, मेहराब खां, रतनलाल व जियालाल की प्रमुख भूमिका रही। कोटा के सम्पूर्ण प्रशासन पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। कोटा में इस दौरान लगभग पांच माह तक जन शासन रहा।

कोटा में पॉलिटिकल एजेन्ट मेजर बर्टन था। कोटा के क्रान्तिकारियों ने मेजर बर्टन व उसके दो पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। यहां क्रान्तिकारियों का जनता ने साथ दिया। यहां के शासक को क्रान्तिकारियों ने महल में कैद कर लिया। 6 माह तक कोटा में क्रान्तिकारियों का कब्जा रहा। टोंक और शाहपुरा में अग्रेंजी सैनिकों के लिए द्वार बन्द कर दिए लेकिन सर्वमान्य नेता के अभाव में अंग्रेजो ने अपने सैनिक बल के आधार पर इस क्रान्ति का दमन कर दिया।

तांत्या टोपे

तांत्या टोपे ने राजस्थान के झालावाड़ में प्रवेश किया एवं झालावाड़ पर अधिकार कर लिया। यहां के शस्त्र भण्डार पर क्रांतिकारियों ने अधिकार कर लिया। राजस्थान में तात्या टोपे के आगमन से क्रांतिकारियों में नया जोश आ गया।

सलूम्बर के रावते केसरीसिंह तथा कोठारिया के सामन्त जोधसिंह ने तांत्या टोपे को पूरा सहयोग दिया। नरवर के शासक मानसिंह ने तांत्या टोपे को अंग्रेजों के हाथों पकड़वा दिया और 1859 ई. में उसे फांसी दे दी गई, लेकिन फाँसी देना सत्य नहीं है, क्रांति को कमजोर होता हुआ देखकर वह अज्ञातवास में चला गया। इसी के साथ राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम भी समाप्त हो गया।

स्वतंत्रता संग्राम की असफलता के कारण :—

भारतीयों के इस संगठित और सामूहिक विरोध से अंग्रेज घबरा गये। क्रान्तिकारियों ने प्रारम्भ में अंग्रेजों को कई स्थानों पर पराजित किया लेकिन अपने विशाल सैनिक शक्ति तथा यहां की रियासतों के शासकों की सहानुभूति के बल पर भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का दमन कर दिया। अन्य भी कई कारण थे जो इस संग्राम की सफलता में बाधक बनें, यथा—

1. निश्चित योजना के अभाव के कारण क्रान्तिकारी आपस में सम्पर्क में नहीं आ सके।
2. क्रान्तिकारियों के पास अंग्रेजों की तुलना में परम्परागत सैनिक शक्ति व सीमित साधन थे।
3. देशी रियासतों का क्रान्तिकारियों को सहयोग नहीं मिला।
4. क्रान्ति की शुरुआत निर्धारित योजनानुसार 31 मई,1857 को होनी थी लेकिन कुछ घटनाक्रम ऐसा हुआ कि क्रान्ति 10 मई से ही शुरु हो गई।
5. लार्ड कैनिंग की कूटनीति से देशी रियासतों को अपने पक्ष में कर लिया और क्रान्तिकारियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली।

1857 के स्वतंत्रा संग्राम का महत्व एवं परिणाम :—

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में यद्यपि सफलता नहीं मिली लेकिन अंग्रेजों को प्रशासनिक नीति में परिवर्तन और सेना के पुनर्गठन के लिए विवश होना पड़ा, यथा—

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को समाप्त करके भारत का प्रशासन सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया।
2. सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से भविष्य में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा मिली।
3. देशी रियासतों के साथ अंग्रेजों की नीति में परिर्वतन आया। महारानी ने अपनी घोषणा में देशी राजाओं को उनके अधिकार,सम्मान व गौरव दिलाने की बात कही लेकिन उनको दत्तक पुत्र गोद लेने की अनुमति नहीं दी गई।
4. अंग्रेज समझ गये कि हिन्दू—मुस्लिम एक रहे तो अंग्रेज अधिक समय तक शासन नहीं कर पाऐंगे। अतः उन्होंने फूट डालो व राज करो की नीति अपनायी व हिन्दू व मुस्लिम वैमनस्य को जन्म दिया।

5. इस क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने सेना का पुनर्गठन किया। सेना में ब्रिटिश सैनिकों की संख्या बढ़ा दी और तोपखाना भारतीयों के पास नहीं रहा।

यद्यपि अंग्रेंजों ने अपनी सैनिक शक्ति और कूटनीति के बल पर भारतीयों के इस संघर्ष को दबा दिया लेकिन इस आन्दोलन ने यह साबित कर दिया कि यदि भारतीय संगठित होकर नियोजित प्रयास करें तो अंग्रेजों को भारत से बाहर किया जा सकता है। अंग्रेजों को भी यह एहसास हो गया कि भारत पर शासन करना है तो फूट डालो व राज करो की नीति अपनानी होगी। इस प्रकार भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ और अन्ततः इसी के फलस्वरूप भारत स्वतंत्र भी हुआ।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राष्ट्र या देश के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव ही राष्ट्रवाद है।
2. भारत में राष्ट्रवाद की धारणा का प्रबन्धन वैदिककाल से ही रहा है।

3. राष्ट्र की जनता में 'मै' के स्थान पर 'हम' की भावना राष्ट्रवाद ही उत्पन्न करता है।

4. 19 वीं शताब्दीं का भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले भारत के आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दमन चक्र के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी।

5. भारत में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने में समाचार–पत्रों एवं भारतीय साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

6. भारत को स्वतंत्र करने में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं क्रान्तिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

7. वीर सावरकर ने 1857 ई. की क्रान्ति को 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' कहा हैं।

8. सन् 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष का तात्कालिक कारण एन्फील्ड राइफल में सुअर एवं गाय की चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग करना था।

9. सन् 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष के प्रमुख नायकों में रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, तात्यां टोपे, कुंवरसिंह, बहादुरशाह आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

10. सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का प्रसार दक्षिण भारत में भी महाराष्ट्र, हैदराबाद, मद्रास, आदि राज्यों तक व्याप्त था।

11. राजस्थान में 1857 ई. के स्वतंत्रता संघर्ष में नसीराबाद, नीमच ,देवली, कोटा ,टोंक ,एरिनपुरा एवं कोटा तक फैल गया था।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में छापाखाने की शुरुआत हुई थी –
   (अ) 1800 ई (ब) 1700 ई
   (स) 1830 ई (द) 1805 ई.

2. 'भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' पुस्तक के लेखक कौन थे ?
   (अ) आर.सी.मजमूदार (ब) अशोक मेहता
   (स) वीर सावरकर (द) दादाभाई नोरोजी

3. मेजर बर्टन पॉलिटिकल एजेन्ट था –
   (अ) नीमच (ब) कोटा
   (स) एरिनपुरा (द) अजमेर

4. ठाकुर खुशालसिंह किस स्थान के शासक थे –
   (अ) एरिनपुरा (ब) सलूम्बर
   (स) आऊवा (द) नसीराबाद

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. बंगाल गजट का प्रकाशन कब प्रारम्भ हुआ ?
2. 'वन्दे मातरम्' गीत की रचना किसने की ?
3. 1857 का स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किसने किया?
4. निर्धारित योजनानुसार क्रान्ति की शुरुआत कितनी तारीख को होनी थी ?
5. मेजर बर्टन की हत्या कहाँ की गई ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. 'राष्ट्रवाद' शब्द की परिभाषा कीजिए ।
2. अंग्रेजों ने भारत का आर्थिक शोषण किस प्रकार किया?
3. राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख क्रान्तिकारियों के नाम बताइये।
4. राजस्थान में 1857 ई. की क्रांति के प्रसार का उल्लेख कीजिए।
5. 1857 ई. के संग्राम में किन–किन महानायकों का योगदान रहा ?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारणों का वर्णन कीजिए।
2. 1857 ई.के स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
3. 1857 ई. के संघर्ष में क्रान्तिकारियों की असफलता के कारण बताइये।
4. 1857 ई.के स्वतंत्रता संग्राम के महत्व का वर्णन कीजिए।
5. 1857 ई. का स्वतंत्रता संग्राम का राजस्थान के प्रसार विषय पर एक लेख लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1.(अ) 2.(स) 3.(ब) 4.(स)

अध्याय 7

राजस्थान के गौरव

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति गौरवपूर्ण रही है तथा यह वीरभूमि भी रही है जहां महापुरुषों ने अपने प्राणों की अपेक्षा अपनी स्वतंत्रता एवं सम्मान को अधिक महत्व दिया। यहां के महापुरुषों, जननायकों, लोकदेवता व समाज सुधारकों ने राजस्थान के लोगों को एक नया रास्ता दिखाया। राजस्थान के जननायकों में बापा रावल, पृथ्वीराज चौहान, वीर दुर्गादास, महाराणा सांगा, मालदेव, मीरांबाई, पन्नाधाय, अमृतादेवी, महाराजा सूरजमल, गोविन्द गुरु, काली बाई, लोकदेवताओं में गोगाजी, तेजाजी, रामदेव जी, पाबूजी, देवनारायण एवं समाज सुधारकों में सन्त पीपाजी दादू, जसनाथजी, जाम्भोजी, रामचरणजी, आचार्य भिक्षु, के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी हमारे राजस्थान के गौरव है। हमें अपने इन पर गर्व करना चाहिए।

जननायक

1.बापा रावल –

मेवाड़ के गुहिल वंशी शासकों मे बापा (बप्पा) रावल का महत्वपूर्ण स्थान है। बापा के जन्म व माता–पिता के नामों के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, लेकिन इसका बचपन मेवाड़ के एकलिंगजी के पास नागदा गांव में व्यतीत हुआ, इस पर सभी विद्वान एकमत है। यहां नागदा के जंगलों में गायें चराते हुए बापा का सम्पर्क हारीत राशि (ऋषि नहीं) से हुआ।

बापा रावल

हारीत राशि पाशुपत– लकुलीश मत में दीक्षित एक सन्यासी थे। बापा ने हारीत राशि की खूब सेवा की। यह समय प्रतिकूल परिस्थितियों का था। अरब खलीफाओं के खूनी संघर्ष व धर्म परिवर्तन सम्बन्धी अत्याचारों से हारीत राशि दुःखी थे। बापा के व्यक्तित्व, विचारों तथा प्रतिभा से हारीत राशि काफी प्रभावित थे। उन्होंने बापा में वे सभी गुण देखे जो तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल परिस्थितियों में बदल सके। यही सोचकर बापा को हारीत राशि ने उसी तरह से शिक्षित व प्रशिक्षित किया जिस तरह चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को तैयार किया था तथा हारीत राशि ने अपने जीवन का अंतिम समय जानकर बापा को वरदान दिया कि तुम मेवाड़ के शासक बनोगे और तुम्हारे वंशजों के हाथ से मेवाड़ का राज्य कभी नहीं जायेगा। इस वरदान के साथ–साथ हारीत राशि ने बापा को आर्थिक सहयोग भी किया और यह भी कहा कि तुम्हारा सम्बोधन 'रावल' होगा।

हारीत राशि के अवसान के बाद बापा ने सेना का संगठन किया और चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर उस पर कब्जा किया तथा अपने राज्य की सीमा का विस्तार भी किया। इस समय पश्चिम भारत को अरब आक्रमणों से लगातार संघर्ष करना पड़ रहा था। इस विषम परिस्थिति को अनुभव कर बापा रावल ने अरब सेना से टक्कर लेने का निश्चय किया तथा उसने प्रतिहार नागभट्ट प्रथम, सांभर व अजमेर नरेश अजयराज, हाड़ौती के धवल, माड़ (जैसलमेर) के शासक देवराज भाटी एवं सिन्ध के राजा दाहिर से मिलकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया। बापा रावल के नेतृत्व में इस संयुक्त मोर्चे की सेना व अरब की खलीफा शक्ति से जबरदस्त टक्कर हुई। मुहम्मद बिन कासिम को भी पराजित किया। सिन्ध को मुक्त कराकर इस सेना ने ईरान, ईराक व खुरासान तक का प्रदेश जीत लिया। बापा रावल ने यहां कई विवाह किये। धर्मान्तरित हुए लोगों को पुनः हिन्दू बनाया। 'फतुहुल बलदान' नामक अरबी ग्रंथ का लेखक बताता है कि अब भारत में पुनः मूर्तिपूजा आरंभ हो गई। इस प्रकार बापा ने मेवाड़ की सीमा को ईरान, इराक व खुरासन तक बढ़ाया और प्रथमबार अरब खलीफाओं के आक्रमणों व धर्म परिवर्तन के प्रयासों पर अंकुश लगाया।

बापा रावल ने अपने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को भी सुदृढ़ किया तथा कई निर्माण कार्य भी कराये। सोने का सिक्का भी जारी किया। बापा रावल ने अपने जीवन के चतुर्थाश्रम में प्रवेश करने पर अपने पुत्र को राज्य सौंपकर हारीत राशि की परम्परा में सन्यास ग्रहण किया और सन्यासावस्था में ही उसका देहान्त हुआ। एकलिंगजी से कोई तीन किलोमीटर उत्तर दिशा में बापा रावल का अन्तिम संस्कार किया गया। इस अन्तिम संस्कार स्थल को आज भी बापा रावल के नाम से जाना जाता है, जहां पर बापा रावल का मन्दिरनुमा समाधि स्थल बना हुआ है। हारीत राशि की भविष्यवाणी के अनुसार बापा रावल के वंशज सन् 1947 में भारत आजाद होने तक मेवाड़ पर शासन करते रहे। इस प्रकार बापा के वंशजों का मेवाड़ पर तेरह सौ वर्षों तक अधिकार रहा जो भारत में सबसे प्राचीन जीवित राजवंश के नाम से जाना जाता है।

इतिहासकार ओझा ने बापा रावल को एक स्वतंत्र, प्रतापी और विशाल राज्य का स्वामी बताया है। डॉ.गोपीनाथ शर्मा ने बापा का स्थान मेवाड़ के इतिहास में अग्रणी स्वीकार किया है। वह धर्मनिष्ठ था। कर्नल टॉड ने बापा को कई वंशों का संस्थापक व शासक के रुप में मान्यता प्रदान कर मनुष्यों में पूजनीय और अपनी कीर्ति से चिरंजीवी माना है। ब्रिटिश विद्वान चार्ल्स मार्टन ने लिखा है कि उसके शौर्य के सामने अरब आक्रमण का ज्वारभाटा टकराकर चकनाचूर हो गया। कविराजा श्यामलदास ने लिखा है इसमे संदेह नहीं कि बापा हिन्दुस्तान का बड़ा पराक्रमी, प्रतापी व तेजस्वी महाराजाधिराज हुआ। उसने अपने पूर्वजों के प्रताप,बड़प्पन व पराक्रम को पुनः स्थापित किया।

2. पृथ्वीराज चौहान –

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में चौहान साम्राज्य उत्तरी भारत में अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था। चौहान साम्राज्य का विस्तार कन्नौज से जहाजपुर (मेवाड़) की सीमा तक विस्तृत हो गया था। सोमेश्वर देव की मृत्यु के बाद पृथ्वीराज चौहान 11 वर्ष की अल्पायु में सिंहासन पर बैठा। माता कर्पूरीदेवी अपने अल्पवयस्क पुत्र के राज्य की संरक्षिका बनी। अपने मंत्री व सेनापति के सहयोग से पृथ्वीराज ने शासन चलाया। उसने अपने विश्वस्त सहयोगियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया।

साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से पृथ्वीराज चौहान ने पड़ौसी राज्यों के प्रति दिग्विजय नीति का अनुसरण किया। 1182 ई. में महोबा के चन्देल शासक को पराजित किया। इसके उपरांत पृथ्वीराज चौहान का चालुक्यों से एवं कन्नौज के गहड़वालों से संघर्ष हुआ।

पृथ्वीराज चौहान

सन् 1178 में गजनी के शासक मोहम्मद गौरी ने गुजरात पर आक्रमण किया। यहां के शासक भीमदेव चालुक्य ने खासहरड़ के मैदान में गौरी को बुरी तरह परास्त किया। गौरी ने सीमा प्रान्त के राज्य सियालकोट और लाहोर पर अधिकार किया। सन् 1186 से 1191 ई. तक मोहम्मद गौरी पृथ्वीराज चौहान से कई बार पराजित हुआ। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार 07 बार, पृथ्वीराज प्रबन्ध में 08 बार, पृथ्वीराज रासो में 21 बार, प्रबन्ध चिन्तामणि में 23 बार मोहम्मद गौरी के पराजित होने का उल्लेख है। दोनों के मध्य दो प्रसिद्ध युद्ध हुए। तराइन के प्रथम युद्ध में 1191 ई. में राजपूतों के प्रहार से गौरी की सेना में तबाही मच गई तथा गौरी गोविन्दराय के भाले से घायल हो गया, उसके साथी उसे बचाकर ले गये। पृथ्वीराज चौहान ने गौरी की भागती हुई सेना का पीछा नहीं किया।

सन् 1192 में गौरी पुनः नये ढंग से तैयारी के साथ तराइन के मैदान में आ डटा। मोहम्मद गौरी ने सन्धिवार्ता का बहाना करके पृथ्वीराज चौहान को भुलावे में रखा। गौरी ने प्रातःकाल राजपूत जब अपने नित्यकार्य में व्यस्त थे, तब अचानक आक्रमण कर दिया। गोविन्दराय व अनेक वीर योद्धा युद्ध भूमि में काम आये। गौरी ने भागती हुई सेना का पीछा किया व उन्हें घेर लिया। दिल्ली व अजमेर पर तुर्कों का अधिपत्य हो गया। पृथ्वीराज रासो में उल्लेख है कि पृथ्वीराज

चौहान को गजनी ले जाया गया, उन्हें नेत्रहीन कर दिया गया। वहाँ पृथ्वीराज ने अपने शब्द भेदी बाणों से गौरी को मार दिया और उसके बाद स्वयं को समाप्त कर दिया, किंतु इतिहासकार इस बात पर एकमत नहीं हैं।

पृथ्वीराज चौहान वीर,साहसी एवं विलक्षण प्रतिभा का धनी था। पृथ्वीराज चौहान का विद्या एवं साहित्य के प्रति विशेष लगाव था। जयानक, विद्यापति, बागीश्वर, जनार्दन, चन्दबरदाई आदि उसके दरबार में थे।

पृथ्वीराज चौहान ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से पड़ौसी राज्यों को अपनी शक्ति का परिचय कराया। कई आक्रमणकारियों को उसने बुरी तरह खदेड़ा, इसलिए इन राज्यों ने पृथ्वीराज चौहान की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा। इतना सब होने पर भी पृथ्वीराज में दूरदर्शिता व कूटनीति का अभाव था। उसने पड़ौसी राज्यों से युद्ध करके शत्रुता उत्पन्न कर ली। गौरी को पराजित करने के बाद भी उसको पूरी तरह से समाप्त नहीं किया। डॉ. दशरथ शर्मा ने पृथ्वीराज चौहान को एक सुयोग्य शासक कहा है।

3. महाराणा सांगा 1509—1528 ई.

महाराणा कुम्भा के बाद महाराणा संग्रामसिंह जो कि सांगा के नाम से प्रसिद्ध है मेवाड़ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक हुआ। उसने अपनी शक्ति के बल पर मेवाड़ साम्राज्य का विस्तार किया एवं राजपूताना के सभी नरेशों को अपने अधीन संगठित किया। रायमल की मृत्यु के बाद सन् 1509 में राणा सांगा मेवाड़ का महाराणा बना। सांगा ने अन्य राजपूत सरदारों के साथ शक्ति को संगठित किया। पड़ौसी राज्य गुजरात के शासक महमूद बेगड़ा से भी संघर्ष किया। कुम्भाकालीन गौरव प्राप्त करने की दृष्टि से मुस्लिम शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना जरुरी था। सांगा का गुजरात के बादशाह से 1520 ई. में संघर्ष हुआ, इसमें राणा सांगा विजयी हुआ। इसी प्रकार मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को भी राणा सांगा ने परास्त करके कैद कर लिया। बाद में अच्छा व्यवहार करने की शर्त पर उसे रिहा किया।

महाराणा सांगा ने अपनी शक्ति को संगठित कर दिल्ली सल्तनत के अधीनस्थ मेवाड़ के निकटवर्ती भागों को अपने राज्य में मिलाना आरम्भ कर दिया। सन् 1517 में दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी व सांगा में खतौली का युद्ध हुआ जिसमें सुल्तान बुरी तरह परास्त हुआ। पराजय के बाद सुल्तान को सांगा ने बाड़ी (धौलपुर) के युद्ध में और पराजित किया। स्थानीय साहित्य में उल्लेख मिलता है कि राणा ने कई बार दिल्ली, माण्डू और गुजरात के सुल्तानों को पराजित किया।

महाराणा सांगा

पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त कर दिल्ली सल्तनत पर बाबर ने अधिकार कर लिया। उसके लिए असली चुनौती राणा सांगा की ही थी क्योंकि राणा सांगा ही उस समय ऐसा व्यक्ति था जो दिल्ली पर शासन स्थापित करने की क्षमता रखता था।

उस समय शक्ति का केन्द्र मेवाड़ बन गया था। सभी पड़ौसी राज्य सांगा की शक्ति को मान्यता देने लगे थे। कर्नल टॉड के अनुसार 7 उच्च श्रेणी के राजा, 9 राव व 104 सरदार सदैव उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे।

बाबर एवं राणा सांगा के मध्य सत्ता की स्थापना को लेकर संघर्ष निश्चित था। बाबर ने प्रारम्भ में धौलपुर व कालवी पर अधिकार कर लिया। बयाना पर सांगा का अधिकार था। सांगा ने बयाना के युद्ध में मुगलों को बुरी तरह परास्त किया। मुगल सैनिकों ने सांगा के शौर्य के किस्से बाबर व अन्य सैनिकों को बताये। इससे बाबर की सेना का मनोबल टूटा। सन् 1527 में बाबर व राणा सांगा के मध्य खानवा का युद्ध हुआ। राणा के प्रहार से मुगल सेना प्रारम्भ में विचलित होने लगी। बाबर ने राजपूतों के पार्श्व भाग पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच तीर लगने से राणा घायल हो गया। राणा को बेहोश अवस्था में युद्ध के मैदान से हटा दिया। होश आने पर राणा ने पुनः बाबर से लड़ने की इच्छा प्रकट की लेकिन सामन्तों ने खानवा में हुए

विनाश की बात कहकर ऐसा नहीं करने की सलाह दी। राणा सांगा ने प्रतिज्ञा की जब तक वह बाबर को नहीं हरा देगा, चित्तौड़ नहीं पहुँचेगा। राणा सांगा ने जनवरी, 1528 में बाबर के विरुद्ध चंदेरी के मेदिनीराय की सहायता के लिए प्रस्थान किया लेकिन कालपी से थोड़ा दूर स्वास्थ्य खराब होने के कारण 30 जनवरी,1528 को देहान्त हो गया।

महाराणा सांगा अंतिम राजपूत सम्राट था जिसने अपने नेतृत्व में सभी राजपूत शासकों को विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा करने और उनसे वीरतापूर्वक मुकाबला करने के लिए संगठित किया। महाराणा के नेतृत्व में 108 राजा–महाराजा लड़ते थे। उन्होंने सदेव निरन्तर युद्ध ,शौर्य एवं पराक्रम से देश की रक्षा की। इसी भावना से प्रेरित होकर जनता ने भी महाराणा का पूरा साथ दिया। महाराणा ने भी इसी प्रेरणा से दिल्ली, माण्डू और गुजरात के शासकों को हराया ही नहीं बल्कि उन्हें बंदी बनाकर छोड़ दिया। राजपूताने के सभी राजा व बाहरी राजा भी महाराणा सांगा की अधीनता व मेवाड़ के गौरव के कारण उसके झण्डे के नीचे लड़ने में अपना गौरव समझते थे। महाराणा के शरीर पर 80 घाव तथा युद्ध में एक हाथ व एक पैर क्षतिग्रस्त होते हुए भी उनका शरीर वज्र की तरह मजबूत था। उन्होंने हिम्मत, मर्दानगी और वीरता को अपना कर अपने आपको अमर बना दिया। हरबिलास शारदा लिखते हैं कि – 'मेवाड़ के महाराणाओं में सांगा सर्वाधिक प्रतापी शासक हुए। उन्होंने अपने पुरुषार्थ के द्वारा मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया'। इतना होने पर भी अन्ततः महाराणा सांगा विदेशी शत्रु की कुटिल चाल और युद्ध कौशल को नहीं समझ पाये और युद्ध की नवीन तकनीकी को नहीं अपना सके। इसका शत्रु ने लाभ उठाया।

4. मीरांबाई

भक्त शिरोमणि मीरांबाई का जन्म 1498 ई. में मेड़ता के राठौड़ वंश के राव दूदा के पुत्र रतनसिंह के यहां ग्राम कुड़की में हुआ था। ऐसी मान्यता है कि मीरांबाई का मन बचपन से ही कृष्ण की भक्ति में रम गया था। मीरांबाई का कहना था – ' मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'।

सन् 1519 में मीरांबाई का विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। लेकिन उसका मन कृष्ण भक्ति में ही रहा। सात वर्ष बाद ही भोजराज की मृत्यु हो गई। अपने पिता रतनसिंह और महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद मीरांबाई को इस संसार से विरक्ति हो गई। अपना सम्पूर्ण ध्यान कृष्ण भक्ति में ही केन्द्रित कर लिया।

मीरांबाई

मेवाड़ के नये शासक विक्रमादित्य ने मीरांबाई को अनेक प्रकार से कष्ट दिये किन्तु मीरां ने अपनी आस्था को नहीं छोड़ा। मीरां पहले अपने पिता के घर मेड़ता चली गई और उसके बाद वृन्दावन चली गई। मीरां ने अपना अंतिम समय द्वारिका में व्यतीत किया।

मीरां की भक्ति का मूल आधार भाव और श्रृद्धा थी। मीरां ने अनेक संतों के साथ सत्संग एवं विचार–विमर्श किया लेकिन किसी एक धारा का अनुगमन नहीं किया। मीरां सगुण उपासक थी और वह इस पद्वति की श्रेष्ठ प्रतिनिधि भी थी। उनकी भक्ति यात्रा की शुरुआत कृष्ण के दर्शन करने की इच्छा से होती है। वह कहती है – 'मैं विरहणि बैठी जागूं दूखन लागैं नैण' कृष्ण भक्ति की प्राप्ति के बाद वह कह उठती है ' पायो जी मैंने रामरतन धन पायो'।

मीरां का समय सामन्तीकाल का चरमोत्कर्ष का समय था। ऐसे समय में रुढ़ियां, नारी स्वतंत्रता एंव जाति भेद के विरुद्ध मीरां ने बहुत साहस के साथ आवाज उठायी। मीरां ज्ञान पक्ष के स्थान पर सहज भक्ति को अधिक महत्व देती थी। वह लोकप्रिय भक्त थी।सामान्यजन मीरां से प्रभावित थे। आज भी उसके पदों को लोक भजनों के रुप में गाया जाता है।

5. पन्ना धाय–

राजस्थान में ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति में पन्ना

धाय का नाम मातृत्व, बलिदान, साहस एवं वात्सल्य का प्रतीक बन गया है। पन्ना धाय समर्पण एवं त्याग की प्रतिमूर्ति थी। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ में अस्थिरता रही। सांगा के बाद रतनसिंह शासक बना लेकिन सन् 1531 में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद विक्रमादित्य मेवाड़ का शासक बना लेकिन राजा व उसकी मां हाड़ी रानी कर्मवती के व्यवहार से मेवाड़ के सामन्त व जनता असंतुष्ट थी।

बनवीर द्वारा पन्ना के पुत्र की हत्या करते हुये

बहादुरशाह के आक्रमण के कारण भी मेवाड़ को अपार जनधन की हानि उठानी पड़ी। सांगा के भाई पृथ्वीराज के औरस पुत्र बनवीर ने सन् 1536 में विक्रमादित्य की हत्या करके मेवाड़ के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। वह विक्रमादित्य के छोटे भाई बालक उदयसिंह की भी हत्या करके निश्चिन्त हो राज्य भोगना चाहता था।

पन्ना उदयसिंह की धात्री माँ थी और कर्मवती के जौहर के बाद उदयसिंह की सार–सम्भाल की जिम्मेदारी पन्ना धाय पर आ गई थी। उदयसिंह मेवाड़ का भावी उत्तराधिकारी था। अतः बनवीर इस उत्तराधिकारी को भी समाप्त करके अपने राज्य को सुरक्षित करना चाहता था लेकिन पन्ना धाय एक वीरांगना थी। अतः उसने स्वामीभक्ति के अनुकरणीय लगन से उदयसिंह की रक्षा की। उदयसिंह की आयु का ही पन्ना धाय का पुत्र चन्दन था। पन्ना धाय का आवास चित्तौड़ के किले में कुम्भा महल में था। पन्ना धाय को जब जनाना खाने से चीखें निकलती सुनाई दी तो वह समझ गई कि रक्त पिपासु बनवीर हत्या के उद्देश्य से उदयसिंह को तलाश रहा है। उसने तुरंत बालक उदयसिंह को एक टोकरी में सुलाकर उसे पत्तियों से ढंक कर अपने विश्वस्त नौकर को उसे सुरक्षित महलों से बाहर निकालने का दायित्व सौंपा। राजसी वस्त्र पहनकर अपने पुत्र चन्दन को उदयसिंह के पलंग पर सुला दिया। सत्ता लोलुप बनवीर के आते ही पन्ना धाय ने अपने पुत्र की तरफ हाथ से संकेत कर दिया। बनवीर ने तलवार से पन्ना धाय के बालक को उदयसिंह समझकर हत्या कर दी। नन्हें बालक के शव का पन्ना ने तुरंत अंतिम संस्कार कर दिया और स्वयं बालक उदयसिंह एवं स्वामीभक्त सेवक के पास पहुँचकर देवलिया के जागीदार रामसिंह के पास पहुँची। वहाँ उसे पूरा सम्मान मिला। वहाँ से उदयसिंह को वह सुरक्षित स्थान कुम्भलगढ़ ले गयी। किलेदार आशा देपुरा का भांजा बनकर उदयसिंह वहां बड़ा हुआ।

पन्ना धाय द्वारा किये गये इस बलिदान जैसे बलिदान का उदाहरण कहीं पर भी देखने को नहीं मिलता। पन्ना धाय के इस अविस्मरणीय बलिदान के कारण ही उसी दिन से पन्ना धाय को मेवाड़ की वीरांगना के रूप में सम्मान मिल रहा हैं।

6. वीर दुर्गादास राठौड़–

मारवाड़ के वीर दुर्गादास में देशभक्ति और स्वामीभक्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी। ऐसे महान देशभक्त का जन्म 1638 ई. में महाराजा जसवन्तसिंह के मंत्री आसकरण के यहां हुआ था। आसकरण दुनेरा का जागीरदार था। पत्नी से नाराजगी के कारण आसकरण ने दुर्गादास व पत्नी को अकेला छोड़ दिया। दुर्गादास अपनी माँ के साथ लूणा के गाँव में रहने लगा। शिवाजी की माँ की तरह दुर्गादास की माँ ने भी उनमें मारवाड़ के प्रति देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भर दी तथा गाँव में ही खेती बाड़ी करने लगे।

वीर दुर्गादास राठौड़ ने अपनी प्रतिभा के बल पर स्वामी भक्ति की मिसाल कायम की। 1678 ई. में जमरुद में जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गयी । उस समय उसके कोई पुत्र नहीं था, लेकिन उसकी पत्नी गर्भवती थी। औरंगजैब मारवाड़ के उत्तराधिकार के प्रश्न पर हस्तक्षेप

वीर दुर्गादास राठौड़

करके वहां पर इन्द्रसिंह को अपना कठपुतली शासक बनाना चाहता था। इसी बीच 19 फरवरी,1679 को महारानी के पुत्र अजीतसिंह का जन्म हुआ जिसकी सूचना बादशाह को भी पहुँच गई लेकिन इस सम्बन्ध में औरंगजेब की नीयत साफ नहीं थी। उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। विभिन्न स्थानों पर खजानों की तलाशी ली और 36 लाख रुपये के बदले अपने चाटुकार इन्द्रसिंह को जोधपुर दे दिया। औरंगजेब ने मनसब के बहाने रानियों सहित राजपरिवार को दिल्ली बुला लिया। औरंगजेब कुंअर अजीतसिंह को बुलाकर अपना बनाना चाहता था।

राठौड़ सरदार औरंगजेब की इस कार्यवाही से प्रसन्न नहीं थे। उन्हें बादशाह की नीयत में खोट दिखाई दे रही थी । वे चाहते थे कि अजीतसिंह राजपरिवार सहित जोधपुर पहुँच जाये। अजीतसिंह को सुरक्षित मारवाड़ पहुँचाने में राठौड़ दुर्गादास, पंचोली केसरीसिंह, भाटी रघुनाथ, रणछोड़दास गोयन्ददासोत, राठौड़ सूरजमल आदि को जिम्मेदारी सौंपी। ये सरदार बादशाह का खुला विरोध नहीं कर सकते थे इसलिये उन्होंने कूटनीति से काम लिया। वीर दुर्गादास की योजनानुसार सरदारों ने संकल्प किया कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी वे राठौड़ राजपरिवार की रक्षा करेंगे और उन्हें सकुशल मारवाड़ पहुँचायेंगे। कुछ सरदार बादशाह को धोखे में रखने के लिए अपनी जागीर को छोड़ गए, कुछ सरदार दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में रहे ताकि अजीतसिंह को मारवाड़ के लिए निकाल कर ले जाने वाले दल की मुगल सेना से रक्षा कर सके तथा वे दल का पीछा करने वाली मुगल सेना से लड़कर मर मिटेंगे। इस सम्पूर्ण योजना और सूझबूझ के पीछे वीर दुर्गादास राठौड़ का ही हाथ था जिसने औरंजेब की धूर्तता को उचित उत्तर देने की यह तरकीब सोची।

वीर दुर्गादास अपने सहयोगी राठौड़ सरदारों के साथ रुपसिंह की हवेली से बड़ी चालाकी से अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ की ओर निकल गये। स्त्रियों को भी पुरुष वेश में ले जाया गया। बादशाह को इसकी जानकारी मिली तो शाही दल ने उनका पीछा किया। राठौड़ रणछोड़दास ने इस दल से संघर्ष किया और अपने 70 सहयोगियों के साथ मारा गया। तब तक दुर्गादास काफी आगे निकल गये। शाही दल भी आगे बढ़ा। इस बार स्वयं दुर्गादास ने शाही दल को रोके रखा। तब तक राजपरिवार आगे बढ़ चुका था। संध्या समय होते–होते शत्रुओं से बचकर दुर्गादास अजीतसिंह से जा मिला। शाही सेना कम संख्या में रह गई और दिल्ली लौट गई। इस प्रकार दुर्गादास राठौड़ की सूझबूझ एवं राठौड़ सरदारों के बलिदान के बल पर अजीतसिंह सुरक्षित जोधपुर पहुँच गया।

मारवाड़– मुगल संघर्ष में भी दुर्गादास की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वीर दुर्गादास ने अपनी कूटनीति के माध्यम से तथा मेवाड़ के सहयोग से औरगंजेब के पुत्र अकबर को बादशाह बनाने का प्रलोभन देकर अपनी ओर कर लिया। अकबर ने मारवाड़ के नाड़ौल नगर में स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया। औरंगजेब ने अकबर के विद्रोह को दबा दिया लेकिन मुगलों के विरुद्ध राठौड़ों का संघर्ष जारी रहा। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मारवाड़ पर राठौड़ों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया। इस अधिकार को स्थापित करने में दुर्गादास की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

दुर्गादास ने अकबर के पुत्र बुलन्द अख्तर और पुत्री सफमुतिन्निसा को अपने पास रखकर धर्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। उनके लिये मुस्लिम शिक्षा– दीक्षा की व्यवस्था की और ससम्मान उन्हें बादशाह के पास पहुँचाया। मारवाड़ में अजीतसिंह से भी ज्यादा सम्मान दुर्गादास का था। सरदारों की परिषद भी अजीतसिंह से अधिक दुर्गादास की सलाह का आदर करती थी। इससे अजीतसिंह दुर्गादास से ईर्ष्या करने लगा, वह अप्रसन्न रहने लगा। अजीतसिंह दुर्गादास की युद्ध नीति के अच्छे सुझावों का भी विरोध करने लगा। यदि अजीतसिंह दुर्गादास के सिद्धान्तों पर चलता तो मुगल मारवाड़ संघर्ष में मारवाड़ की गौरवपूर्ण स्थिति होती। अजीतसिंह के नाराज हो जाने पर दुर्गादास जोधपुर छोड़कर उदयपुर मेवाड़ में आ गया। यहां महाराणा ने दुर्गादास को सम्मान सहित रखा। उसे

विजयपुर की जागीर दी और पाँच सौ रूपये प्रतिदिन देने की व्यवस्था की। उसे रामपुरा का हाकीम भी बनाया। वहीं रहते हुए दुर्गादास की मृत्यु हो गई और उज्जैन में क्षिप्रा नदी के तट पर उनका दाह–संस्कार किया गया।

7. राव मालदेव

जिस प्रकार महाराणा सांगा एवं महाराणा प्रताप ने मेवाड़ की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि की, उसी प्रकार मालदेव के नेतृत्व में जोधपुर मारवाड़ के राठौड़ों ने अपूर्व शक्ति अर्जित की । उसने साम्राज्य का विस्तार कर मारवाड़ की सीमा दिल्ली के निकट तक पहुँचा दी।

बाबर की मृत्यु के बाद दिल्ली की अस्थिरता का मालदेव ने लाभ उठाया। सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ में भी कुछ समय अस्थिरता रही। इस समय राजपूत शासकों में मालदेव शक्तिशाली था।

मालदेव ने प्रारम्भ में भद्राजूण, रायपुर, नागौर, मेड़ता, अजमेर आदि पड़ौसी राज्यों पर अधिकार किया। बाद में चाटसू फतहपुर, टोडा, लालसोट पर भी अधिकार कर लिया। बंगाल में शेरशाह व हुमायूं के मध्य संघर्ष का मालदेव ने लाभ उठाया और उसने हिण्डौन तथा बयाना पर भी अधिकार कर अपनी सीमा का विस्तार किया। इसके अतिरिक्त मालदेव ने सिवाना, सांचोर, जालोर पर अधिकार कर लिया।

मालदेव ने हुमायूं के प्रति सहयोग की नीति अपनाई। जिस समय मालदेव अपने साम्राज्य विस्तार में व्यस्त था, हुमायूं अपनी बादशाहत बचाने के लिए शेरशाह से संघर्ष कर रहा था। कन्नौज के युद्ध में शेरशाह से पराजय के बाद हुमायूं को पलायन करना पड़ा था। आश्रय की खोज में उसे इधर–उधर भटकना पड़ा था। मालदेव ने इस समय कूटनीति से काम लिया। शेरशाह के भावी संकट को लेकर मालदेव आशंकित था। शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर युद्ध करने के लिए हुमायूं को 20,000 घुड़सवारों की सहायता का सन्देश भिजवाया और उसकी सहायता की।

शेरशाह व मालदेव दोनों के राज्य की सीमाएं मिल रही थीं। मारवाड़ के शासक मालदेव की शक्ति को नष्ट करने की दृष्टि से शेरशाह ने 1543 ई. में 80,000 सैनिकों की सेना मालदेव के विरुद्ध भेजी। मालदेव का शक्तिशाली राज्य शेरशाह के लिए एक चुनौती था। दोनों ने ही मोर्चाबन्दी की । शेरशाह ने अपना पड़ाव बावरा व मालदेव ने गिर्री नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। एक माह तक पड़ाव ऐसे ही चलता रहा। कई बार तो शेरशाह परेशान होकर वापिस लौटने की सोचता रहा।

जब शान्ति से काम नहीं चला तो शेरशाह छल कपट की नीति पर आ गया। मालदेव व उसके सेनापतियों कूंपा व जेता में फूट डालने के प्रयास किए। उसने कूंपा के डेरे पर 20 हजार रूपये भिजवाये और कम्बल भेजने के लिए कहा । बाद में इन्हीं 20 हजार रुपयों को जेता के डेरे में भिजवा दिए और कहलवा दिया कि सिरोही से तलवारें मंगा लेना । इसकी सूचना उसने मालदेव के पास भी भिजवा दी । मालदेव शेरशाह के इस छल को समझ नहीं पाया। अपने सैनिकों पर अविश्वास कर लिया और बिना युद्ध किये ही 04 जनवरी,1544 रात्रि को जोधपुर लौट आया लेकिन जिन जैता, कूंपा पर अविश्वास किया था वे ही युद्ध मैदान में डटे रहे। शेष राठौड़ सरदारों के साथ 05 जून,1544 को सुमेल का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। जैता और कूंपा अपने 1200 सैनिकों के साथ इतनी वीरता से लड़े कि अफगान सेना के पांव उखड़ने लगे। लेकिन इसी समय जलाल खां अतिरिक्त सेना लेकर आ गया और राजपूत सैनिकों को घेर लिया। जैता व कूंपा वीरगति को प्राप्त हुए। अब्बास खां ने अपने विवरण में लिखा है कि शेरशाह को जीतने की उम्मीद बहुत कम थी। बड़ी मुश्किल से इस युद्ध को जीत सका। उसे यह कहने के लिए मजबूर होना पड़ा कि – 'एक मुठ्ठी बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।'

मालेदव को केवल मारवाड़ में ही नहीं अपितु भारतीय इतिहास में महत्त्वूपर्ण स्थान प्राप्त है। उसने अपने छोटे से राज्य को विशाल मारवाड़ साम्राज्य के रूप में परिणत किया। उसके राज्य में 58 परगने थे। उसने 52 युद्ध करके यह विशाल साम्राज्य स्थापित किया। अकबर भी मालदेव की मृत्यु के बाद ही जोधपुर पर अधिकार कर पाया। वीर होने के साथ–साथ मालदेव दानी प्रवृति का भी व्यक्ति था। ख्यात लेखकों ने उसे हिन्दू बादशाह की पद्‌वी दी। वह स्वयं संस्कृत भाषा का अच्छा

विद्वान था। इतना होते हुए भी मालदेव में दूरदर्शिता की कमी थी। शेरशाह के विरुद्ध उसने जेता व कूंपा पर अविश्वास करके अपनी जीत को पराजय में बदल दिया। बीकानेर और मेवाड़ को भी अकारण अपना विरोधी बना लिया।

8. अमृतादेवी—

वर्तमान में वृक्षारोपण एवं वृक्षों की सुरक्षा के लिए बड़ी बड़ी योजनाएं लागू की जा रही हैं। इन्हीं वृक्षों को बचाने के लिए आज से लगभग 300 वर्ष पहले मारवाड़ में खेजड़ली गाँव में एक घटना घटित हुई।

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को अपने नये महल के लिए लकड़ी की जरुरत थी। भाद्रपद शुक्ल दशमी वि.सं. 1787 के दिन महाराजा ने खेजड़ली गांव में खेजड़ी वृक्ष की लकड़ी काटने के लिए सैनिक टुकड़ी भेजी। इस गांव की ही एक महिला अमृतादेवी विश्नोई ने खेजड़ी वृक्ष के काटने का विरोध किया और पेड़ से लिपट गई। उसके साथ उसकी तीन पुत्रियां भी थी। अमृता देवी ने कहा वृक्ष की रक्षा के लिए वह अपनी जान भी देने को तैयार है। उसने यह कहते हुए सिर आगे कर दिया कि 'सर साटे रुख रहे तो भी सस्तो जाण' सिर के बदले वृक्ष बच जाता है तो भी सस्ता सौदा है। उसकी तीनों पुत्रियों की भी यही स्थिति हुई। महाराजा के सैनिकों ने विरोध करने पर अमृतादेवी व उसकी पुत्रियों के सिर धड़ से अलग कर दिया। उस दिन मंगलवार था जो कि काला मंगलवार के नाम से जाना जाता है। महाराजा के सैनिकों द्वारा वृक्ष काटने के विरोध में 363 अन्य विशनोई भी महाराजा के सैनिकों के हाथों इसी तरह से मारे गये। विश्नोई धर्म में वृक्ष काटना निषिद्ध है।

इस घटना से वातावरण उत्तेजित हो गया और वहाँ उपद्रव की स्थिति हो गई। गिरधरदास भण्डारी के नेतृत्व में वृक्ष काटने वाली पार्टी को भी इससे गहरा आघात लगा। वे अपना मिशन छोड़कर जोधपुर आ गये और महाराजा को पूरा घटनाक्रम बताया। महाराजा ने तुरंत वृक्ष की कटाई रोकने का आदेश दिया और इस क्षेत्र को वृक्ष व जानवरों के लिए संरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया।

खेजड़ी वृक्ष की रक्षा के लिए सामूहिक रुप से अपने

खेजड़ी रक्षा हेतु अमृतादेवी एवं पुत्रियों का बलिदान

प्राणों की बलि देना विश्व में यह अनूठी घटना है। खेजडली गाँव में अमृतादेवी व शहीदों की स्मृति में अब एक स्मारक बना हुआ है। विश्नोई जाति के लोग हिरणों की भी इसी तरह से रक्षा करते है।

9. महाराजा सूरजमल

महाराजा बदनसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सूरजमल जाट 1756 ई.में. भरतपुर का शासक बना। राजनैतिक कुशलता एवं कुशाग्र बुद्धि के कारण उसे जाट जाति का प्लेटो भी कहा जाता है। आगरा,मेरठ,मथुरा अलीगढ़ आदि उसके राज्य में सम्मिलित थे। सूरजमल अन्य राज्यों की तुलना में हिन्दुस्तान का शक्तिशाली शासक था। उसकी सेना में 1500 घुड़सवार व 25000 पैदल सैनिक थे। उन्होंने अपने पीछे 10 करोड़ का सैनिक खजाना छोड़ा।

मराठा नेता होल्कर ने 1754 ई. में कुम्हेर पर आक्रमण कर दिया। महाराजा सूरजमल ने नजीबुदौला द्वारा अहमदशाह अब्दाली के सहयोग से भारत को मजहबी राष्ट्र बनाने की कोशिश को भी विफल कर दिया। उसने अफगान सरदार

असद खां, मीर बख्शी, सलावत खां आदि का दमन किया। अहमदशाह अब्दाली सन् 1757 में दिल्ली पहुँच गया और उसकी सेना ने ब्रज के तीर्थ को नष्ट करने के लिये आक्रमण किया। इसको बचाने के लिए केवल मात्र सूरजमल ही आगे आया और उसके सैनिकों ने अपनी कुर्बानी दी। अब्दाली पुनः लौट गया।

जब सदाशिव राव भाऊ अहमदशाह अब्दाली को पराजित करने के उददेश्य से बढ़ रहा था, तभी स्वयं पेशवा बालाजी बाजीराव ने भाऊ को परामर्श दिया कि उत्तर भारत में प्रमुख शक्ति के रुप में उभर रहे सूरजमल का सम्मान करते हुए उसके परामर्श पर ध्यान दिया जाए लेकिन भाऊ ने युद्ध सम्बन्धी इस परामर्श पर ध्यान नहीं दिया और अब्दाली के हाथों पराजित हुआ। इस युद्ध में मराठों को भारी क्षति उठानी पड़ी। युद्ध के बाद लगभग 50 हजार मराठा परिवार सूरजमल के राज्य में पहुँचे। अब्दाली ने सूरजमल को चेतावनी देते हुए, शरण में आये मराठों को सौंपने को कहा, लेकिन सूरजमल ने इस चुनौती को स्वीकार किया और मराठा सरदारों को सौपने से मना कर दिया। विद्वानों व तत्कालीन शासकों ने महाराजा के इस कार्य की प्रशंसा की। महाराजा सूरजमल के समय यह जाट राज्य अपने सर्वोच्च शिखर पर था। मुगल राज्य के मध्य में उसने भरतपुर का शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। भरतपुर राज्य इतना अधिक शक्तिशाली हो गया था कि मुगल एवं अन्य राजनैतिक शक्तियां उसकी मदद मांगने को आतुर रहती थी।

10. गोविन्द गुरु

वागड़ क्षेत्र (डूंगरपुर, बांसवाड़ा) में गोविन्द गुरु ने भीलों के सामाजिक एव नैतिक उत्थान के लिए अथक प्रयास किए। वे महान समाज सुधारक थे। गोविन्द गुरु का जन्म 20 दिसम्बर, 1858 डूंगरपूर राज्य के बसियां गांव में हुआ था। 1880 में स्वामी दयानन्द सरस्वती जब उदयपुर आए, गोविन्द गुरु उनके विचारों से प्रभावित हुए और इन्होंने भील समाज में सुधार एवं जन जागृति का महत्वपूर्ण कार्य शुरू किया। मद्यपान एवं मांस का सेवन त्याग दिया। उन्होंने बनवासी बंधुओं के मध्य एक बड़ा स्वाधीनता आन्दोलन शुरु किया। यह आन्दोलन इतना प्रभावशाली था कि इससे अंग्रेज, राजे–महाराजे, जंगलों में फैले हुये विदेशी पादरी सब घबरा गए।

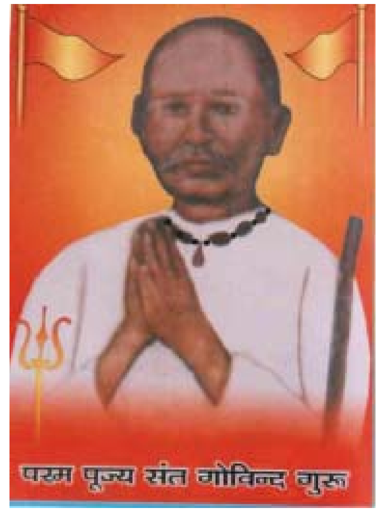

भीलों को सामाजिक दृष्टि से संगठित करने एवं मुख्य धारा में लाने के लिए सम्प सभा की स्थापना की । इसके साथ ही भीलों का हिन्दू धर्म के दायरे में रखने के लिए 'भगत पंथ' की स्थापना की। गोविन्द गुरु ने सम्प सभा के माध्यम से ईडर, डूंगरपूर, बांसवाड़ा व गुजरात में भीलों में सामाजिक जागृति का संचार किया। इससे प्रशासन सशंकित हो गया और भीलों को भगत पंथ छोड़ने के लिए दबाव बनाया जाने लगा।

तत्कालीन शासन ने जब भीलों का कृषि कार्य एवं बेगार करने के लिए विवश किया जाने लगा और जंगल में उनके मौलिक अधिकारों से वंचित किया गया तो वे आन्दोलन के लिए विवश हो गये। गोविन्द गुरु ने शिक्षा का प्रसार एवं समाज सुधार का संदेश दिया। अंग्रेजों को यह आशंका थी कि इन सुधारों व संगठन का मुख्य उदेश्य – भील राज्य की स्थापना करना है। अप्रैल, 1913 में डूंगरपूर राज्य द्वारा गोविन्द गुरु को पहले गिरफ्तार किया, फिर उन्हें रिहा कर दिया गया।

रिहा होने के बाद गोविन्द गुरु मानगढ़ पहाड़ी पर चले गए जो बासंवाड़ा राज्य की सीमा पर स्थित है। अक्टूबर,1913 में उसने भीलों को पहाड़ी पर पहुँचने का संदेश भिजवाया। भील भारी संख्या में हथियार लेकर एकत्र हो गये। बांसवाड़ा राज्य के सिपाहियों की पिटाई कर दी। पहाड़ी पर हमला कर दिया गया। मानगढ़ की पहाड़ी पर भीलों का प्रथम सम्मेलन हुआ। आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को प्रतिवर्ष सम्प सभा का अधिवेशन होने लगा। इसी क्रम में 17 नवम्बर,1913 को सम्प सभा का सम्मेलन मानगढ़ की पहाड़ी पर हुआ। बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए।

बांसवाड़ा ,ईडर व डूंगरपूर की सरकार चौकन्नी हो गई। ए.जी.जी. की स्वीकृति के साथ ही 06 से 10 नवम्बर के मध्य मेवाड़ भील कोर की दो कम्पनियां, बेलेजेली राइफल्स की एक कम्पनी तथा जाट रेजीमेंट पहाड़ी पर पहुँच गई। जाते ही गोलियां बरसाना शुरु कर दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इसमें 1500 भील मारे गये। भगत आन्दोलन को कुचल दिया गया। गोविन्द गुरु को 10 वर्ष का कारावास हुआ। यद्यपि इसमें भीलों की बहुत बड़ी राजनैतिक महत्वकांक्षा नहीं थी लेकिन अग्रेजों व शासकों ने इसे चुनौती माना। उन्हें बहाना मिल गया। निर्दोष लोगों को गोलियों से भून दिया गया। यह घटना राजस्थान का जलियांवाला बाग कांड के नाम से जानी जाती है। गोविन्द गुरु अहिंसात्मक आन्दोलन के पक्षधर थे। इस आन्दोलन से भीलों के साथ–साथ समाज के अन्य वर्गों में भी जागृति उत्पन्न हुई। इसके बाद भीलों ने शासकीय अत्याचार एवं अनावश्यक करों के विरुद्ध आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों एवं रियासतों दोनों को इसका सामना करना पड़ा।

11. कालीबाई–

कालीबाई भील डूंगरपूर जिले में रास्तापाल की रहने वाली थी। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा के बाद राजस्थान के निवासी भी औपनिवेशिक शासन के खुले विरोधी हो गए। भोगीलाल पाण्डया, शोभालाल गुप्त, माणिक्यलाल वर्मा के सहयोग से डूंगरपूर सेवक संघ की स्थापना की गई। यह संगठन दलितों एवं आदिवासियों के लिए स्कूल चलाता था। अंग्रेजों के दबाव में डूंगरपूर राज्य में इस प्रकार के विद्यालयों के संचालन की मनाही थी। प्रजामण्डल ने अन्यायपूर्ण तरीके से विद्यालयों को बन्द करने का विरोध किया और औपनिवेशिक शासन की समाप्ति की मांग की। प्रजामण्डल के कार्यकताओं पर डूंगरपुर नरेश द्वारा अत्याचार किया जाने लगा और उन्हें जेल भेज दिया ।

इसी प्रकार एक विद्यालय नानाभाई खांट के घर पर संचालित था। राज्य पुलिस 19 जून,1947 को रास्तापाल आई। नानाभाई खांट ने विद्यालय बन्द करने से मना कर दिया। पुलिस ने बर्बरतापूर्वक नानाभाई खांट की पिटाई कर दी और उन्हें जेल भेज दिया। पुलिस की चोटों से नानाभाई खाट की मृत्यु हो गई। इससे अंसतोष की भावना में और वृद्धि हुई। पुलिस ने विद्यालय के अध्यापक सेंगाभाई भील को इसलिए मारना आरम्भ कर दिया क्योंकि उसने नानाभाई की मृत्यु के बाद विद्यालय में अध्यापन जारी रखा। अध्यापक को पुलिस ने अपने ट्रक के पीछे बाँध दिया और इसी अवस्था में उसे घसीटते हुए रोड़ पर ले गए। विद्यालय की किशोर बालिका कालीबाई से यह देखा न गया। पुलिस के मना करने के बाद भी, वह ट्रक के पीछे –पीछे दौड़ी और उस ट्रक से रस्सी को काटकर अपने अध्यापक को पुलिस के आतंक से मुक्त कराया। इससे पुलिस अत्यधिक क्रोधित एवं उत्तेजित हो गई। जैसे ही कालीबाई अपने अध्यापक सेंगाभाई को उठाने के लिए झुकी, पुलिस ने कालीबाई के पीठ पर गोली दाग दी। कालीबाई गिरकर अचेत हो गई। बाद में डूंगरपूर के चिकित्सालय में उसकी मृत्यु हो गई।

पुलिस की इस बर्बरता एवं विद्यालय की एक किशोर बालिका की अन्यायपूर्ण तरीके से हत्या से भीलों में जबरदस्त असंतोष फैल गया। लगभग 12,000 लोग हथियारों सहित एकत्र हो गये। महारावल डूंगरपुर पर दबाव बनाया जाने लगा कि वह प्रजामण्डल के कार्यकताओं को जेल से रिहा करें, वे भीलों के समूह को शांत करें और उन्हें लौटाने के लिए राजी करें। अब रास्तापाल में 13 वर्षीय कालीबाई की प्रतिमा स्थापित है। उसकी शहादत की स्मृति में अब यहां पर प्रतिवर्ष शहादत के दिन मेला लगाया जाता है और लोग इस अमर शहीद बाला को श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

लोकदेवता

धर्म, धरा व धेनु की रक्षार्थ जिन महापुरूषों ने कार्य किया, संघर्ष किया और बलिदान किया वे लोकदेवता की श्रेणी में आते हैं। आज भी जनता में उनके प्रति अटूट श्रद्धा है। इनके प्रसिद्ध मेले लगते हैं। भूतकाल में कुछ ऐसे व्यक्ति जनता के सामने आये जिन्होंने जनता व गोवंश की रक्षा, दलित जातियों का उद्धार एवं धर्म की रक्षार्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभायी एवं अपने प्राणों का भी उत्सर्ग किया। इनमें गोगा जी, तेजाजी व पाबूजी का नाम आता है। इनके शौर्य एवं लोकहितकारी कार्यों को देखकर जनता ने इन्हें आराध्यदेव का पूज्यत्व प्रदान किया। इसी क्रम में कुछ ऐसे सिद्ध व्यक्ति भी हुए जिन्होंने

अपनी वीरता, सिद्धि व चमत्कार से जनसाधारण को प्रभावित किया, इनमें मल्लीनाथ जी, देवनारायण व हरभूजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये सभी राजस्थान के लोकदेवताओं की श्रेणी में आते हैं।

तेजाजी　　गोगाजी　　पाबू जी

1. तेजाजी –

गो–रक्षक तेजाजी नागौर जिले के खरनालिये गाँव के रहने वाले थे। इनका जन्म माघ शुक्ला चतुर्दशी वि.सं.1130 में हुआ। बाल्यकाल में ही विवाह हो जाने के कारण इन्हें यह भी पता नहीं था कि मैं विवाहित हूँ। एक दिन जब ये खेत पर हल चला रहे थे, उस दिन इनकी भाभी खेत पर खाना लेकर देर से पहुँची। इस पर तेजाजी ने कहा इतनी देर कैसे हो गई तब भाभी बोली कि तुम्हारी पत्नी तो पीहर में बैठी मौज कर रही है और मैं यहाँ काम के मारे पिसती जा रही हूँ। तेजाजी को यह बुरा लगा। अपने ससुराल का पता पूछ कर बिना भोजन किये घोड़ी पर सवार होकर ससुराल चल पड़े। जब ससुराल पहुँचे तो इनकी सास गायों से दूध निकाल रही थी। तेजाजी के घोड़े के खुर की आवाज सुनकर दूध देती गाय बिदक गई। इस पर सासु बोली कि नाग रौ झाटियोड़ो यो कुण है? जणी गायां ने भिड़का दी। तेजाजी ने जब यह सुना तो उन्हें यह बहुत बुरा लगा। वे तत्काल वहां से लौट गये। जब ससुराल वालों को पता चला तो तेजाजी को रोकने की बहुत कोशिश की, पर वे नहीं माने। पत्नी ने बमुश्किल एक रात रूकने के लिये राजी किया। लेकिन तेजाजी ने कहा कि वे ससुराल में नहीं ठहरेंगे। अन्ततः वे लांछा नामक गुजरी के यहाँ रात को रूके। रात को कुछ चोर आये और लांछा गुजरी की गायों को घेर ले गये। तेजाजी को पता चला तो गाय चोरों के पीछे घोड़ी पर चढ़ कर भागे। रास्ते में लकड़ी के जलते ढेर में एक साँप को जलते हुए देखा, तेजाजी ने भाले की नोंक से उसे बाहर निकाला, तब साँप बोला मैं तुझे डसूँगा। तेजाजी ने कहा मैं अभी गायें छुड़ाकर आता हूँ , तब डसना। जब तेजाजी गायें छुड़ाकर आये तो चोरों से लड़ाई में उनका सारा शरीर खून से लथपथ था। साँप ने कहा, शरीर पर खून है मैं कहाँ डसू, तब तेजाजी ने अपने मुंह से जिव्हा निकाली और कहा, यहाँ डसो। साँप ने डसा और वे प्राणांत हो गए। उनकी पत्नी पीछे सती हो गई। तेजाजी की गायें छुड़ाने व वचन पालन की ख्याति फैल गई, जगह–जगह तेजाजी के स्थानक बन गये । सर्प दंश से पीड़ित व्यक्ति इनके स्थानकों पर आकर इलाज कराते हैं तथा भाद्रपद शुक्ला दशमी को तेजाजी की स्मृति में मेला भरता है, जहां हजारों लोग मेले में आकर लोक देवता तेजाजी की पूजा करते हैं।

2. गोगाजी –

गोगादे चौहान ददेरवा (चुरू) के निवासी थे। इनके पिता का नाम जेंहवर तथा माता का नाम बाइल था। बाइल गोरखनाथ की भक्त थी। बाइल की सेवा से प्रसन्न होकर गोरखनाथ ने गूगल धूप से बना सर्प दिया और कहा कि इसे दूध में घोल कर पी जाना, परिणामस्वरूप गोगादे का जन्म हुआ। इनका विवाह पाबूजी के बड़े भाई बूड़ौजी की पुत्री केमलदे से करना चाहते थे लेकिन बूड़ो जी यह नहीं चाहते थे। एक दिन गोगाजी सर्प का रूप धारण कर फूलों के बीच बैठ गये। केमलदे फूल लेने लगी, तब सांप से उसे डस दिया। अन्त में गोगाजी के अभिमंत्रित धागे को केमलदे के बाँधने से वह ठीक हो गई और दोनों का विवाह हो गया।

गोगाजी ने दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह से युद्ध किया। इस युद्ध में गोगाजी के दो मौसेरे भाई अरजन व सरजन भी बादशाह की ओर से लड़ रहे थे। वे दोनों मारे गये। अपने घर पर यह बात गोगा ने अपनी माता को बताई, वह बहुत नाराज हुई और गोगा को घर से चले जाने और मुँह नहीं दिखाने को कहा। गोगा को यह बहुत बुरा लगा और जीवित समाधि ले ली। भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की नवमी को गोगा नवमी के रूप में मनायी जाती है तथा वीर पुरूष के रुप में इनकी पूजा होती है। नौ गाँठ वाली 'गोगा राखी' हल चलाते समय हल व हाली दोनों के बाँधी जाती है। ददेरवा, राजगढ़,

चूरु, रतनगढ़ आदि क्षेत्रों में गोगाजी के मेले लगते हैं। गोगाजी के थान को गोगामेड़ी कहा जाता है। जो इन्द्रमानगढ़ किले में स्थित है। गोगाजी के भक्त हाथों में ऊंचे निशान (झण्डे) लिए हुये ढोल नगाड़े,झांझर आदि बजाते हुए नृत्य करते हैं। रात्रि जागरण भी किया जाता है। गोगामेड़ी के मैले में राजस्थान से बाहर के लोग भी आते हैं।

3. पाबूजी –

पाबूजी राठौड़ कोल्हूगढ़ के रहने वाले थे। चांदा और डामा नामक दो वीर इनके प्रिय सहयोगी थे। जब पाबूजी युवा हुए तो अमरकोट के सोढ़ा राणा के यहां से सगाई का नारियल आया। सगाई तय हो गई। पाबू ने देवल नामक एक चारण देवी को बहन बना रखा था। देवल के पास एक बहुत सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न घोड़ी थी, जिसका नाम 'केसर काळवी' था। देवल अपनी गायों की रखवाली इस घोड़ी से करती थी। इस घोड़ी पर जायल के जिंदराव खींची की आँख थी, वह इसे प्राप्त करना चाहता था। जिंदराव और पाबू में किसी बात को लेकर मनमुटाव भी था।

विवाह के अवसर पर पाबूजी ने देवलदेवी से यह घोड़ी मांगी। देवल ने जिंदराव की बात बताई, तब पाबू ने कहा कि आवश्यकता पड़ी तो अपना कार्य बीच में छोड़कर आ जाऊंगा। देवल ने घोड़ी दे दी। बारात अमरकोट पहुँची। जिंदराव ने मौका देखा और देवल देवी की गायों को लेकर भागा। पाबूजी जब शादी के फेरे ले रहे थे, तब देवल के समाचार पाबू को मिले कि जिंदराव उसकी गायें लेकर भाग गया है। समाचार मिलते ही अपने वचन के अनुसार शादी के फेरे को बीच में ही छोड़कर केसर काळवी घोड़ी पर बैठकर जिंदराव का पीछा किया। गायों को तो छुड़ा दिया लेकिन पाबूजी खेत पर रहे। अर्द्धविवाहित सोढ़ी पाबूजी के साथ सती हो गई। इनकी यह यशगाथा पाबूजी की फड़ में संकलित है, जिसका वाचन बड़ा लोकप्रिय है। पाबूजी की लोकदेवता के रूप में पूजा की जाती है।

रामदेवजी

लोक देवताओं में रामदेव जी भी अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इनका जन्म 15वीं शताब्दी के अजमल जी और मैणा देवी के घर पोकरण के एक गांव में हुआ था। इनका विवाह नेतल देवी के साथ हुआ था। बाबा रामदेवजी सिद्ध सन्त, शूरवीर, चमत्कारी, कर्त्तव्यपरायण, जनता के रक्षक और गौ रक्षक के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध करते हुए सामाजिक समरसता का संदेश दिया।

रामदेवजी ने जीव मात्र के प्रति दया,गुरु महिमा,पुरुषार्थ एवं मानव के गौरव को महत्व दिया। वे समाज सुधारक भी थे। समाज में अछूत कहे जाने वाले वर्ग के साथ बैठकर भजन करना, दलित डालीबाई का बहिन के रूप में पोषण करना, धार्मिक आडम्बरों का विरोध करना तथा हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देना आदि। रामदेवजी के प्रमुख कार्य थे। रामदेव जी ने गुरू की महत्ता पर जोर देते हुये कर्मों की शुद्धता पर बल दिया। ग्रामीण समाज में बाबा रामदेव गौ रक्षक, परोपकारी और लोकदेव के रूप में पूज्य है। राजस्थान के अलावा मध्यप्रदेश व गुजरात में भी इनकी पूजा की जाती है। ये सामाजिक सौहार्द्र के प्रतीक थे।

रामदेवजी

अश्वारुढ़ बाबा रामदेव के एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में तंदूरा शक्ति व भक्ति के प्रतीक है। इनके समाधि स्थल पर निर्मित मन्दिर, राम सरोवर, पर्ण बावड़ी, डालीबाई का समाधि स्थल मन्दिर, पावन आदि स्मारक माने जाते है। विभिन्न गांवों में रामदेवजी के थान व मंदिर है। खेजड़ी वृक्ष के नीचे चबूतरे पर रामदेवजी के पगलियें (चरण) स्थापित किये जाते हैं। मन्दिरों को देवल या देवरा के नाम से जाना जाता है। बाबा रामेदव के नाम की शपथ भी ली जाती है जिसे 'रामदेव बाबा री आण' कहा जाता है। रात्रि में जम्मा जागरण किया जाता है

तथा लोक गीत,काव्य कथा से इनकी स्तुति की जाती है। इन्होंने विक्रम सम्वत् 1515 (1458 ई.) में समाधि ली थी। इनके समाधि स्थल रामदेवरा (रुणेचा) में प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल द्वितीय से दशमी तक विशाल मेला लगता है। आस–पास के प्रदेशों से भी लोग मेले में आते हैं।

5.देवनारायण–

देवनारायण की गिनती प्रमुख लोकप्रिय लोकदेवताओं में होती है। देवनारायण बगड़ावत वंश के थे। वे नाग वंशीय गुर्जर थे जिनका मूल स्थान वर्तमान में अजमेर के निकट नाग पहाड़ था। गुर्जर जाति एक संगठित, सुसंस्कृत वीर जातियों में गिनी जाती है जिसका आदिकाल से गौरवशाली इतिहास रहा है। समाज में प्रचलित लोक कथाओं के माध्यम से गुर्जर जाति के शौर्य–पुरूष देवनारायण के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से जानकारी मिलती है। देवनारायण महागाथा में इनको चौहान वंश से सम्बन्धित बताया है।

देवनारायण

देवनारायण की फड़ के अनुसार माण्डलजी के हीराराम, हीराराम के बाघसिंह और बाघसिंह के 24 पुत्र हुए जो बगड़ावत कहलाये। इन्हीं में से बड़े भाई सवाई भोज और माता साडू (सेढू) के पुत्र के रूप में वि.सं. 968 (911 ई.) में माघ शुक्ला सप्तमी को आलौकिक पुरूष देवनारायण का जन्म मालासेरी में हुआ।

देवनारायण पराक्रमी योद्धा थे जिन्होंने अत्याचारी शासकों के विरूद्ध कई संघर्ष एवं युद्ध किये। वे शासक भी रहे। उन्होंने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की। चमत्कारों के आधार पर धीरे–धीरे वे गुर्जरों के देव स्वरूप बनते गये एवं अपने इष्टदेव के रूप में पूजे जाने लगे। देवनारायण को विष्णु के अवतार के रूप में गुर्जर समाज द्वारा राजस्थान व दक्षिण–पश्चिमी मध्य प्रदेश में अपने लोकदेवता के रूप में पूजा की जाती है। उन्होंने लोगों के दुःख व कष्टों का निवारण किया। देवनारायण महागाथा में बगड़ावतों और राण भिणाय के शासक के बीच युद्ध का रोचक वर्णन है।

देवनारायणजी का अन्तिम समय ब्यावर तहसील के मसूदा से 6 कि.मी. दूरी पर स्थित देहमाली (देमाली) स्थान पर गुजरा। भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को उनका वहीं देहावसान हुआ। देवनारायण से पीपलदे द्वारा सन्तान विहीन छोड़कर न जाने के आग्रह पर बैकुण्ठ जाने पूर्व पीपलदे से एक पुत्र बीला व पुत्री बीली उत्पन्न हुई। उनका पुत्र ही उनका प्रथम पुजारी हुआ।

कृष्ण की तरह देवनारायण भी गायों के रक्षक थे। उन्होंने बगड़ावतों की पांच गायें खोजी, जिनमें सामान्य गायों से अलग विशिष्ट लक्षण थे। देवनारायण प्रातःकाल उठते ही सरेमाता गाय के दर्शन करते थे। यह गाय बगड़ावतों के गुरू रूपनाथ ने सवाई भोज को दी थी। देवनारायण के पास 98000 पशु धन था। जब देवनारायण की गायें राण भिणाय का राणा घेर कर ले जाता तो देवनारायण गायों की रक्षार्थ राणा से युद्ध करते हैं और गायों को छुड़ाकर लाते थे। देवनारायण की सेना में ग्वाले अधिक थे। 1444 ग्वालों का होना बताया गया है, जिनका काम गायों को चराना और गायों की रक्षा करना था। देवनारायण ने अपने अनुयायियों को गायों की रक्षा का संदेश दिया।

इन्होंने जीवन में बुराइयों से लड़कर अच्छाइयों को जन्म दिया। आतंकवाद से संघर्ष कर सच्चाई की रक्षा की एवं शान्ति स्थापित की। हर असहाय की सहायता की। राजस्थान में जगह–जगह इनके अनुयायियों ने देवालय अलग–अलग स्थानों पर बनवाये हैं जिनको देवरा भी कहा जाता है। ये देवरे अजमेर, चित्तौड़, भीलवाड़ा, व टोंक में काफी संख्या में है। देवनारायण का प्रमुख मन्दिर भीलवाड़ा जिले में आसीन्द कस्बे के निकट खारी नदी के तट पर सवाई भोज में है। देवनारायण

का एक प्रमुख देवालय निवाई तहसील के जोधपुरिया गाँव में वनस्थली से 9 कि.मी. दूरी पर है। सम्पूर्ण भारत में गुर्जर समाज का यह सर्वाधिक पौराणिक तीर्थ स्थल है।

देवनारायण की पूजा भोपाओं द्वारा की जाती है। ये भोपा विभिन्न स्थानों पर जाकर गुर्जर समुदाय के मध्य फड़ (लपेटे हुये कपड़े पर देवनारायण जी की चित्रित कथा) के माध्यम से देवनारायण की गाथा गा कर सुनाते हैं।

देवनारायण की फड़ में 335 गीत हैं। जिनका लगभग 1200 पृष्ठों में संग्रह किया गया है एवं लगभग 15000 पंक्तियाँ हैं। ये गीत परम्परागत भोपाओं को कण्ठस्थ याद रहते हैं। देवनारायण की फड़ राजस्थान की फड़ों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सबसे बड़ी है।

समाज सुधारक

1. सन्त पीपा जी

कालीसिन्ध नदी पर बना प्राचीन गागरोन दुर्ग पीपाजी का जन्म स्थली रहा है। उनका जन्म वि.सं.1417 चैत्र शुक्ल पूर्णिमा खींची राजवंश परिवार में हुआ था। वे गागरोन राज्य के वीर साहसी व प्रजापालक शासक थे। शासक रहते हुए उन्होंने दिल्ली सल्तनत के सुल्तान फिरोज तुगलक से संघर्ष करके विजय प्राप्त की लेकिन युद्ध जनित उन्माद,हत्या, जमीन से जल तक रक्तपात को देखा तो उन्होनें संन्यासी होने का निर्णय ले

सन्त पीपाजी

लिया। पीपाजी के पिता पूजा–पाठ व भक्ति भावना में अधिक विश्वास रखते थे। पीपाजी की प्रजा भी नित्य अराधना करती थी। देवी कृपा से राज्य में कभी भी अकाल व महामारी का प्रकोप नहीं हुआ। किसी शत्रु ने आक्रमण भी किया तो परास्त हुआ। राजगद्दी त्याग करने के बाद वे रामानन्द के शिष्य बन गये। रामानन्द के 12 प्रमुख शिष्यों में पीपा जी भी एक हैं।

वे देश के महान् समाज सुधारकों की श्रेणी में आते हैं। उनका जीवन व चरित्र महान था। संत पीपाजी ने राजस्थान में भक्ति एव समाज सुधार का अलख जगाया।

पीपाजी ने अपने विचारों और कृतित्व से समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। पीपाजी निर्गुण विचारधारा के संत कवि एवं समाज सुधारक थे। पीपाजी ने भारत में चली आ रही चतुर वर्ण व्यवस्था में नवीन वर्ग,श्रमिक वर्ग सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके द्वारा सृजित यह नवीन वर्ग ऐसा था जो हाथों से परिश्रम करता और मुख से ब्रह्म का उच्चारण करता था।

समाज सुधार की दृष्टि से सन्त पीपाजी ने बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्डों एवं रुढ़ियों की कटु आलोचना की तथा बताया कि ईश्वर निर्गुण व निराकार है, वह सर्वत्र व्याप्त है, जीवात्मा के रूप में वह प्रत्येक जीव में व्याप्त है। मानव मन में ही सारी सिद्धियाँ व वस्तुएं व्याप्त हैं। ईश्वर या परम् ब्रहम की पहचान मन में अनुभूति से है।

पीपाजी सच्चे अर्थों में लोक मंगल की समन्वयकारी पद्धति के पोषक थे। उन्होंने संसार त्याग कर भक्ति करते हुए भी कभी भी पलायन करने का संदेश नहीं दिया। उन्होंने ऐसे सन्तों को भी खुली आलोचना की जो केवल वेशभूषा से सन्त थे,आचरण से नहीं। ऊँच–नीच की भावना, पर्दाप्रथा का कठोर विरोध उतरी भारत में पहली बार किया। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उन्होंनें स्वयं से दिया। अपनी पत्नी सीता सहचरी को आजीवन बिना पर्दे ही रखा, जबकि राजपूतों में पर्दा प्रथा का विशेष प्रचलन था। गुरू भक्ति की भावना पीपाजी में कूट–कूट कर भरी हुई थी। उनको जानकारी थी कि गुरु के बिना माया से मुक्ति संभव नही है।

2. जाम्भोजी –

जाम्भोजी विश्नोई सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इनका जन्म वि.सं.1508 (1451 ई.) में भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को नागौर जिले के पीपासर गांव में पंवार लोहटजी और हांसा देवी के यहां पर हुआ था।

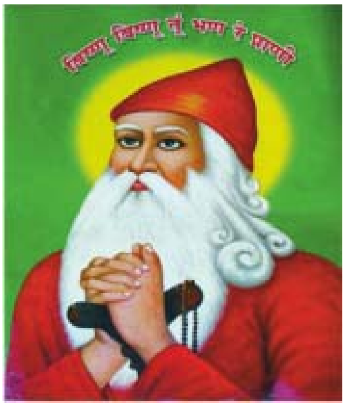

जाम्भोजी

लगभग 20 वर्ष तक पशु चराने का कार्य किया और उसके बाद सन्यास ग्रहण किया और वि.सं.1593 में देह त्याग किया।

वि.सं.1542 में इन्होंने कार्तिक कृष्णा अष्टमी पर सम्भराथल नामक स्थान पर प्रथम पीठ स्थापित करके विश्नोई समाज का प्रवर्तन किया। शासक वर्ग व विशिष्ट वर्ग दोनों इनसे प्रभावित थे। जाम्भोजी के सिद्धान्त लोगों के दैनिक जीवन से जुड़े हुए है। जाम्भोजी ने अपने अनुयाइयों को 29 नियमों के पालन करने पर जोर दिया। विश्नोई नाम भी (बीस– नौ) अंकों में (20–9) के आधार पर ही दिया।

जाम्भोजी शांतिप्रिय, सहृदयी, साग्राही, समन्वयकारी, उदार चिन्तक, मानव धर्म के पोषक,पर्यावरण के संरक्षक व हिन्दू मुसलमानों में एकता व सामंजस्य के समर्थक थे। अकाल के समय जाम्भोजी ने सामान्य जन की सहायता की थी। उन्होंने बताया कि ईश्वर प्राप्ति के लिए संन्यास की आवश्यकता नहीं है। समराथल के पास मुकाम नामक स्थान पर वर्ष में दो बार जाम्भोजी का मेला लगता है। जाम्भोजी ने चारीत्रिक पवित्रता और मूलभूत मानवीय गुणों पर बल दिया। इनके वचनों का सामूहिक नाम सबदवाणी है। जाम्भोजी की शिक्षाओं के कारण ही विश्नोई समाज निरन्तर पर्यावरण की रक्षा, पेड़ो की रक्षा एवं जीव हत्या के विरोध में प्रयासरत हैं।

3. जसनाथ –

राजस्थान के समाज सुधारकों में जसनाथ का नाम अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वि.सं. 1539 में कतरियासर (बीकानेर) में जसनाथ जी का जन्म हुआ। 12 वर्ष की आयु में ही इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया एवं गोरख मालिया में कठोर तप किया। वि.सं. 1563 में इन्होंने समाधि ली। भक्तिकालीन अन्य संतों की भाँति जसनाथ ने भी समाज में प्रचलित रुढ़ियों और पाखण्ड़ों का विरोध किया। इन्होंनें निर्गुण और निराकार भक्ति पर बल दिया। जातिवाद का खण्डन किया। संयम एवं सदाचार पर विशेष बल दिया। उन्होंने भी ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु का होना आवश्यक बताया।

जसनाथ ने जसनाथी सम्प्रदाय की शुरुआत की। जसनाथ ने अपने सम्प्रदाय के 36 नियमों का प्रतिपादन किया। रात्रि जागरण के समय अग्निनृत्य जसनाथी सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने प्रेम भक्ति एवं समन्वय की भावना से समाज को आगे बढ़ाने का संदेश दिया।

4. दादूदयाल –

दादूदयाल मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त थे। इनका जन्म वि.सं.1601 में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को अहमदाबाद में हुआ था। पूर्व में इनका नाम महाबलि था। पत्नी की मृत्यु के बाद ये संन्यासी बन गये। अधिकांशतया ये सांभर व आमेर में रहने लगे। फतहपुर सीकरी में अकबर से भेंट के बाद आप भक्ति का प्रचार–प्रसार करने लगे। राजस्थान में ये नारायणा में रहने लगे। 1603 ई.में वहीं पर इन्होंने अपनी देह का त्याग किया। इनके 52 शिष्य थे। इनमे से रज्जब सुन्दरदास, जनगोपाल प्रमुख थे। जिन्होंने अपने गुरु की शिक्षाएँ जन–जन तक फैलाई। इनकी शिक्षाएँ 'दादूवाणी' में संग्रहीत है।

दादूदयाल ने बहुत ही सरल भाषा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। उनके अनुसार ब्रह्म से ओंकार की उत्पति और ओंकार से पाँच तत्वों की उत्पति हुई है। माया के कारण ही आत्मा और परमात्मा के मध्य भेद होता है। उन्होंने ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु को अत्यन्त आवश्यक बताया। अच्छी संगति, ईश्वर का स्मरण, अहंकार का त्याग,संयम एवं निर्भीक उपासना ही सच्चे साधन हैं। दादू ने विभिन्न प्रकार के सामाजिक आडम्बर, पाखण्ड एवं सामाजिक भेदभाव का खण्डन किया है। जीवन में सादगी, सफलता और निश्छलता पर विशेष बल दिया है। सरल भाषा एवं विचारों के आधार पर दादू को राजस्थान का कबीर भी कहा जाता है।

5. रामचरण जी :–

रामचरण महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय के संस्थापक थे। आप स्वामी रामचरणजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मूल नाम रामकिशन विजयवर्गीय था। इनका जन्म माघ शुक्ल 14, वि.सं. 1776 (24 फरवरी,1720 ई.) में टोंक जिले में सोडा गांव में हुआ था। निर्वाण वैशाख कृष्णा 5 वि.सं.1855 (1799 ई.) में शाहपुरा (भीलवाड़ा) में हुआ। ये रामद्वारा शाहपुरा के संस्थापक आचार्य थे। इनके बचपन का नाम रामकिशन था एवं पिताजी का नाम बख्तराम विजयवर्गीय एवं माता का नाम देवहुती देवी था। इनका विवाह गुलाव कंवर के साथ हुआ। शादी के बाद आमेर के जयसिंह द्वितीय ने जयपुर मालपुरा के दीवान पद पर नियुक्त किया। पिताजी की मृत्यु के बाद

भौतिकवाद के प्रति रामचरण जी की रुचि कम होने लगी। कुछ समय बाद ही उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया और शाहपुरा (भीलवाड़ा) के निकट दांतडा गाँव में गुरु कृपाराम जी के सम्पर्क में आये और उनके शिष्य बन गये। भीलवाड़ा में मियांचन्द जी की पहाड़ी पर उन्होंने तपस्या की। रामचरण जी ने निर्गुण भक्ति पर जोर दिया लेकिन सगुण का भी उन्होंने विरोध नहीं किया। लोगों को राम–राम शब्द बोलने के लिए प्रेरित किया। स्वामी जी ने विशिष्ट अद्वैतवाद भक्ति परम्परा का अनुसरण किया। श्रीराम की स्तुति का प्रचार किया। राम की स्तुति के फलस्वरूप इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय रामस्नेही के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

समाज में प्रचलित दिखावे एवं आडम्बरों का रामचरणजी ने विरोध किया। उन्होंने मूर्ति पूजा की अन्धभक्ति का समर्थन नहीं किया। उन्होंने व्यक्ति की समानता का समर्थन किया एवं जातिगत भेदभाव का विरोध किया। रामचरण जी महाराज ने बताया कि व्यक्ति को ईश्वर की खोज में अलग–अलग स्थानों पर जाने के बजाय अपने आप को तलाशना चाहिए। स्वामीजी की रचनाओं का संकलन 'वाणी जी' ने नाम से संगृहीत है। इसका प्रकाशन शाहपुरा (भीलवाड़ा) से स्वामी रामचरण जी महाराज की 'अभिनव वाणी' के नाम से प्रकाशित है।

रामचरण जी महाराज

वि.सं. 1817 में रामचरणजी के शिष्य रामजन जी ने रामचरण जी महाराज के सिद्धान्तों के प्रसार की दृष्टि से विशेष प्रयास किया। पूजा स्थलों के रूप में विभिन्न स्थानों पर रामद्वारों का निर्माण किया गया। शाहपुरा के प्रसिद्ध रामद्वारा का निर्माण शाहपुरा के शासक महाराजा अमरसिंह व उनके भाई छत्रासिंह के सहयोग से किया गया। अन्य स्थानों में भीलवाड़ा व सोडा में भी रामद्वारे हैं। रामद्वारों को 'रामनिवास धाम' या 'रामनिवास बैकुण्ठधाम' भी कहते हैं।' राजस्थान में शाहपुरा रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। इस सम्प्रदाय का यहां पर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय है। रामचरणजी महाराज ने कहा कि बिना किसी भेदभाव के कोई भी व्यक्ति रामद्वारा आकर ईश्वर की पूजा कर सकता है। रामस्नेही शब्द का तात्पर्य ही –' ईश्वर (राम) से स्नेह करना है।

18वीं शताब्दी एक प्रकार से राजस्थान के राजनैतिक,सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के पतन का युग था। ऐसे वातावरण को शुद्ध करने का कार्य रामस्नेही सम्प्रदाय ने किया। इस सम्प्रदाय के सन्तों ने रामभक्ति की निर्गुण शाखा का व्यापक प्रचार किया। सभी सन्तों ने जाति व्यवस्था का खण्डन किया। गुरु का होना अनिवार्य बताया, धर्म के बाह्य आडम्बरों का खण्डन किया। समाज में प्रचलित सामाजिक बुराइयों का जबरदस्त विरोध किया। समन्वय की भावना अधिक होने के कारण राजस्थान एवं आसपास के राज्यों में यह सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय हुए।

6. आचार्य भिक्षु

जैन परम्परा में आचार्य भिक्षु का उदय एक नये आलोक की दृष्टि से है। इस महान् सन्त का जन्म मारवाड़ के कंटालिया ग्राम में आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी वि.सं. 1783 (1726 ई. 2 जुलाई) में हुआ था। लगभग 25 वर्ष की आयु में मगसिर कृष्णा–12 वि.सं.1808 में वे जैन आचार्य रघुनाथ जी के सम्प्रदाय में मुनि हुए। लगभग आठ वर्ष तक वे अपने गुरू के सानिध्य में रहे। उस समय आचार की शिथिलता का बोलबाला था। अनेक जैन साधु पथ–भ्रष्ट हो रहे थे। मर्यादा से अधिक वस्त्र रखते थे, अधिक सरस आहार लेते थे तथा शिष्य बनाने के लिए आतुर रहते। उस समय राजनगर के अनुयायी श्रावकों में रघुनाथजी के आचार–विचार सम्बंधी मान्यताओं को लेकर काफी अन्तर्द्वन्द्व था। रघुनाथ जी ने अपने प्रमुख शिष्य भीखणजी (भिक्षु) के नेतृत्व में साधुओं का एक दल 1758 ई. (वि.सं. 1815) में राजनगर के अनुयाइयों को समझाने व अपने आचार्य के प्रति पुनः श्रद्धा व्यक्त कराने भेजा। राजनगर आकर शुरू में तो भीखणजी ने उन्हें खूब समझाया किन्तु शास्त्र मर्मज्ञ चतरोजी पोरवाल एवं बच्छराज ओसवाल के साथ हुई चर्चाओं के बाद भीखणजी स्वयं मानसिक संघर्ष में लीन हो गये। 1758 ई. का चातुर्मास उनके इसी संघर्ष का काल रहा। उन्होंने आगमों (जैन शास्त्रों) का गहराई से मंथन किया। शास्त्र सम्मत मार्ग से भटकने की भूल उन्हें अनुभव हुई। चातुर्मास समाप्त होने पर वे अपने गुरू रघुनाथ जी के पास आए। उन्हें वस्तु–स्थिति से परिचित कराया किन्तु आचार्य रघुनाथजी ने उसे स्वीकार नहीं किया। अंततः विवश होकर भीखणजी ने अपने गुरू से संबंध तोड़ लिये। 1760 ई. में जोधपुर के बाजार

में एक खाली दुकान में भिक्षु के मत को मानने वाले तेरह श्रावक धार्मिक क्रिया कर रहे थे। उस समय भिक्षु के साथ भी 13 साधु ही थे। उस दौरान उधर से जोधपुर के दीवान फतहमल सिंघी गुजर रहे थे, उनसे हुई चर्चा में 13 श्रावक व 13 साधु के योग को देखकर उन्हें' तेरापंथी' कहकर पुकारा गया। इस पर विरोधी लोगों ने भीखण जी के अनुयाइयों को 'तेरापंथी' कहकर चिढ़ाना आरंम्भ किया किन्तु भीखणजी ने इस नामकरण को तत्काल स्वीकार कर लिया और कहा 'हे प्रभो! यह तेरापंथ है इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। हम सब निर्भ्रान्त होकर इस पंथ पर चलने वाले हैं, अतः हम तेरापंथी ही हैं।'' आपने इसका संख्यापरक अर्थ करते हुए भी कहा कि पांच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति– इन तेरह नियमों की पूर्ण रूप से श्रद्धा तथा पालना करने वाले व्यक्ति ही 'तेरापंथी' हैं। इस प्रकार शिथिलाचार एवं रूढ़ियों के विरूद्ध भीखणजी द्वारा किया धर्म घोष 'तेरापंथ' धर्म सम्प्रदाय के रूप में विख्यात हुआ।

आचार्य रघुनाथ जी से अलग होने के बाद भीखणजी का प्रथम चातुर्मास केलवा में हुआ। यहां पर उनके विरोधियों की संख्या बहुत अधिक थी परन्तु भीखणजी इससे भयभीत नहीं हुए अपितु विरोध को विनोदस्वरूप समझ कर अपनी आत्मा का तपाना ही उनका ध्येय था। स्वामी जी के कठोर संयम, अडिग धैर्य के समक्ष विरोधी नतमस्तक हो गये। स्वामीजी ने आषाढ़ी पूर्णिमा को तेरापंथ धर्म संघ की स्थापना भी केलवा में ही की। संघ के ये प्रारंभिक दिन बड़े कठोर परीक्षण के थे। कदम–कदम पर विरोध, प्रताड़ना व विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा था परंतु आचार्य भिक्षु (भीखणजी) ने तो आत्म कल्याण के लिए घर छोड़ा था।

अतः उन्होंने विरोध का उत्तर कठिन साधना व जिन भाषित धर्म पर चलकर दिया था जिसका लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा आचार्य भिक्षु ने जैन धर्म की सैद्धांतिक बातों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए महावीर स्वामी की भांति जन–भाषा का प्रयोग कर उन्हें सामान्य व्यक्ति तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया। राजस्थानी भाषा में भिक्षु ने गद्य एवं पद्य में विपुल साहित्य लिखा।

भीखणजी (भिक्षु) ने तेरापंथ के आचार्य के रूप में केलवा, राजनगर, पाली, पीपाड़, नाथद्वारा, आमेट, सिरियारी, कंटालिया, खेरवा, बगड़ी, बरलू, सवाईमाधोपुर, पादू, पुर, सोजत, बनेड़ा आदि कई स्थानों पर चातुर्मास के मध्य अपने उपदेशों से जन मानस को काफी प्रभावित करते हुए अपने मत का प्रचार– प्रसार किया था। आचार्य भिक्षु की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने विरोधियों की तनिक भी परवाह न करते हुए उनके विरोध को भी सदैव अपने पक्ष में सकारात्मक रूप में लिया। गुरूवार 2 सितम्बर 1803 ई. (वि.सं. 1860 भाद्रपद शुक्ला 13) को आचार्य भिक्षु का सिरियारी (पाली) मे ंस्वर्गारोहण हुआ।

आचार्य भिक्षु आचार–विचार की शुद्धता के प्रबल पक्षधर थे। उनकी मान्यता थी कि महावीर के उपदेश सर्वकालिक हैं और उनके अनुसार चलना आज भी कठिन नहीं है। धार्मिक सहिष्णुता व साम्प्रदायिक सद्भाव के वे प्रबल हिमायती थे। इन्होंने अपने धर्मसंघ के साधुओं को एक ही आचार्य की मर्यादा व अनुशासन पर चलने पर बल दिया तथा अन्य साधुओं को अपने शिष्य नहीं बनाने का भी निर्देश दिया। दीक्षा लेकर साधु बनने वाले के लिये भी उसके परिवार की स्वीकृति लेने को अनिवार्य कर दिया। साधुओं के लिये निर्मित भवन मे ंठहरने व रहने की उन्होंने मनाही कर दी तथा साधुओं के लिये यह भी जरूरी कर दिया कि वे एक ही घर से नियमित भोजन ग्रहण न करें और साधुओं के लिये बने भोजन को भी स्वीकार नहीं करें। साधुओं को नियमों से ज्यादा वस्त्र, पात्र आदि रखने तथा उन्हें अपने पास रूपये–पैसे रखने पर भी पाबन्दी लगा दी। अपने अनुयाई श्रावकों को भी महावीर के उपदेशों को कड़ाई से अपनाने का निर्देश दिया।

आचार्य भिक्षु ने एक व्यवस्थित,सुस्थापित एवं नियम आधारित तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्होंने एवं स्वअनुशासन पर विशेष बल दिया। उन्होंने एक आचार्य,एक शिष्य एवं एक विचार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि धर्म की बात एक साधारण व्यक्ति के समझ में आनी चाहिए ताकि वह उसका पालन करते हुए मोक्ष मार्ग की और बढ़ सके। भिक्षु के इस सुधार कार्यक्रम का भविष्य में काफी प्रचार–प्रसार हुआ और लोकप्रियता बढ़ी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थान के महापुरूषों में जननायकों, लोकदेवताओं और समाज सुधारकों ने लोगों को नया रास्ता दिखाया।
2. बापा रावल ने चितौड मे स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के बाद राज्य की प्रतिष्ठा में वृद्धि की।
3. पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी को तराइन के द्वितीय युद्ध से पूर्व कई बार पराजित किया।
4. महाराजा अजीतसिंह को मुगलों के चंगुल से बचाकर वीर दुर्गादास राठौड़ ने स्वामीभक्ति की मिसाल कायम की।
5. महाराणा सांगा ने अपने नेतृत्व में विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा की दृष्टि से राजपूत राज्यों को संगठित किया।
6. मालदेव व शेरशाह के मध्य 1544 ई. में सुमेल का प्रसिद्ध युद्ध हुआ।
7. महाराजा सूरजमल के समय जाट राज्य सर्वोच्च शिखर पर था।
8. समाजिक जागृति के लिए गोविन्द गुरू ने सम्प सभा की स्थापना की।
9. मीरां लोकप्रिय भक्त थी। उन्होंने नारी स्वतन्त्रता के भेद के विरूद्ध साहस के साथ आवाज उठायी।
10. डूंगरपुर की भील बालिका कालीबाई ने अंग्रेजों से अपने गुरू की जान बचाने के लिए स्वयं के प्राणों का बलिदान किया।
11. पन्नाधाय स्वामिभक्ति और त्याग की प्रति मूर्ति थी।
12. वृक्ष बचाने के लिये अमृतादेवी ने अपनी तीन पुत्रियों सहित प्राणों का बलिदान किया।
13. धर्म, धरा व धेनु की रक्षार्थ जिन महापुरूषों ने अपने प्राण दे दिये वे लोकदेवता की श्रेणी मे आते हैं।
14 गोगाजी, तेजाजी,पाबूजी तथा रामदेवजी प्रमुख लोक देवता हैं।
15 समाज सुधारकों मे दादू, जसनाथ, जम्भोजी, रामचरणजी, आचार्य भिक्षु जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) बापा रावल कहाँ के शासक थे?
(अ) चित्तौड़गढ़ (ब) उदयपुर
(स) मारवाड़ (द) अजमेर

(2) तराइन का द्वितीय युद्ध कब हुआ ?
(अ) 1186 (ब) 1191
(स) 1192 (द) 1194

(3) महाराणा सांगा व बाबर के मध्य युद्ध किस स्थान पर लड़ा गया ?
(अ) पानीपत (ब) खातोली
(स) खानवा (द) तराइन

(4) गोविन्द गुरू ने कौनसी संस्था स्थापित की ?
(अ) प्रजामण्डल (ब) सम्प सभा
(स) लोक परिषद (द) भगत पंथ

(5) पाबूजी की घोड़ी का नाम क्या था ?
(अ) केसर काळवी (ब) काली घोड़ी
(स) नीली घोड़ी (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. वीर दुर्गादास ने अपना अन्तिम समय कहाँ व्यतीत किया ?
2. महाराणा सांगा का राज्याभिषेक कब हुआ ?
3. रामदेव के दो प्रमुखों के नाम बताओ ?
4. अमृतादेवी कहां की रहने वाली थी ?
5. लोकदेवता रामदेवजी का जन्म स्थान बताइये ?
6. आचार्य भिक्षु ने कौनसा पंथ चलाया ?
7. मानगढ़ धाम किस जिले में स्थित है ?
8. महाराजा सूरजमल कहाँ के शासक थे ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. कालीबाई के बलिदान के बारे में आप क्या जानते है ?
2. लोकदेवता पाबूजी का महत्व बताए ?
3. देवनारायण की फड़ क्या है ?
4. मीराबाई के प्रारम्भिक जीवन के बारे मे आप क्या जानते हैं ?
5. पन्नाधाय के बलिदान को समझाइये।
6. गोगाजी की पूजा क्यों की जाती है ?
7. जसनाथजी के सामाजिक सुधार को बताइये ?
8. बिश्नोई का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. सन्त दादू का समाज सुधारक के रूप मे योगदान बताइये।
2. पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियाँ बताइए।
3. बाबर व राणा सांगा के मध्य संघर्ष के कारण व परिणाम बताइये।
4. राजस्थान के प्रमुख लोकदेवताओं पर निबन्ध लिखिये ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 2. (स) 3. (स) 4. (ब) 5. (अ)

अध्याय 8

भारत में राजनीतिक विकास

भारत राष्ट्र केवल एक जमीन का भू–भाग, जंगल, पर्वत और नदियों से युक्त जड़ पदार्थ मात्र नहीं है। यह महान और प्राचीन राष्ट्र मानवीय आलोक का स्रोत, मानव सभ्यता का शिखर, साहस और मानवीयता का एक उदाहरण और सुशासन एवं व्यवस्थित समाज का एक आदर्श रहा है। हमारा जन्म और पालन–पोषण ऐसे देश में हुआ है, जहाँ मानव जाति के प्रारम्भ से ज्ञान का संचय और संवर्द्धन होता रहा है। सत्य, न्याय, परोपकार और विश्व कल्याण प्रारम्भ से ही भारत राष्ट्र के आधार रहे हैं। यह प्राचीन राष्ट्र न केवल सांस्कृतिक व धार्मिक दृष्टि से उन्नत था, अपितु राजनीतिक क्षेत्र में भी व्यापक रूप से विकसित था। प्राचीन वैदिक साहित्य से और महाजनपदकालीन व्यवस्थाओं में अनेक गणतांत्रिक तत्व दिखाई देते रहे हैं। मनु की मनुस्मृति, शुक्र की शुक्रनीतिसार और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में व्यवस्थित राजनीतिक व्यवस्था और शासनकला के सिद्धान्त समाहित रहे हैं। चक्रवर्ती सम्राटों की अवधारणा व अश्वमेध यज्ञ आदि धारणाएँ यथार्थ में राजनीतिक एकीकरण एवं विशाल साम्राज्यों को स्थापित करने के सैद्धान्तिक साधन रहे हैं। इस तरह भारत प्राचीनकाल से ही न केवल चिन्तन में अपितु राजनीतिक यथार्थ में भी एक संगठित राष्ट्रीय इकाई रहा है। हमारे तपस्वी मनीषियों के चिन्तन में सदैव ही यह भारत एक राष्ट्र रहा है, जिसे वे 'हिमालय के दक्षिण व समुद्र के उत्तर में स्थित देश' कथन के माध्यम से व्यक्त करते आये हैं। यातायात और संचार के व्यापक साधनों के नहीं होते हुए भी उत्तर से दक्षिण तक एक व्यापक सम्पर्क सदैव से रहा है। इस तरह भारत राष्ट्र एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है, भारतीयता की अवधारणा भारतीय इतिहास की एक सच्चाई है। इसलिए यह कहना कि "कारवां जुड़ता गया, भारत बनता गया" सत्य नहीं है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र की एक आत्मा होती है, उसमें एक भावनात्मक एकता होती है, वह राष्ट्र केवल विशाल जनसंख्या का समूह मात्र नहीं होता अपितु उनमें सामूहिक चेतना की भावना रहती है। यह भावात्मकता और आध्यात्मिकता कारवां के जुड़ने से नहीं आ सकती थी।

यद्यपि यह अवश्य है कि इतिहास के कालखण्ड में भारत पर विभिन्न वंशों व विभिन्न शासकों का शासन रहा है, उनमें परस्पर संघर्ष की स्थिति भी रही है लेकिन एक राष्ट्रीय चेतना की भावना सदैव से यहाँ विद्यमान रही है। मध्यकालीन आक्रान्ताओं के खिलाफ प्रतिरोध के संघर्षों ने राष्ट्रीयता के विकास में और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसके बाद औपनिवेशिक शासन के खिलाफ प्रारम्भ राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारत को एक समान राजनीतिक पहचान और निष्ठा प्रदान की। भाषा, जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय, पहनावा, खान–पान की विविधताओं के भीतर एक भारतीयता की अन्तर्निहित एकता ज्यादा गहराई से कार्य कर रही थी। इस तरह प्राचीन भारत से वर्तमान तक दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि यहाँ राजनीतिक विकास एवं एकीकरण एक सतत् अविरल प्रक्रिया का परिणाम है। यह कोई अंग्रेजों की दासता का प्रतिफल नहीं है। इसलिए आधुनिक भारत अपने नवीन स्वरूप के लिए अपने चिर सम्मत इतिहास का ऋणी है, औपनिवेशिक शासन का नहीं।

स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर भारत एक ऐसी भू–राजनीतिक समस्या से त्रस्त था, जिसे इतिहास में शायद ही और किसी देश ने झेला हो। अंग्रेजों के शासन के दौरान भारत मुख्यतः दो भागों में विभक्त हो गया था, एक ब्रिटिश भारत, जहाँ अंग्रेजों का प्रत्यक्ष आधिपत्य था, जिन्हें 'ब्रिटिश भारत' कहा जाता था। इस ब्रिटिश भारत को अंग्रेजों ने प्रान्तों में बांट दिया था, जिनके शासन की जिम्मेदारी गवर्नर तथा उसके अन्य अधिनस्थों की थी। वहीं दूसरी तरफ, भारत का वह भाग था जिसे 'देशी रियासते' कहते थे। इन रियासतों पर कहने को राजाओं का शासन था लेकिन वास्तव में इन राजाओं ने विभिन्न संधियों के माध्यम से ब्रिटिश आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था। 1947 ई. में जब अंग्रेज भारत छोड़कर जा रहे थे तब पाँच सौ से अधिक ऐसे छोटे–बड़े राज्य, रजवाड़े, ठिकाने आदि

'देशी रियासतें' थीं। देश के कुल भू–भाग का चालीस प्रतिशत भाग इन देशी रियासतों के अधीन था, जहाँ देश की कुल आबादी का तीसरा हिस्सा निवास करता था। इन रियासतों का आकार, स्थिति, राजनीतिक हैसियत और आकांक्षाएँ अलग–अलग थीं। एक तरफ कश्मीर व हैदराबाद जैसी बड़ी रियासतें थीं जो यूरोप के किसी देश के बराबर थी। वहीं दूसरी ओर ऐसी छोटी जागीरें भी थी, जिनमें दर्जन भर गाँव ही थे। कुछ रियासतें ऐसी थीं, जिन्होंने 11वीं से 16वीं सदी तक आक्रांताओं का बड़े साहस से सामना किया था, जबकि कुछ ऐसी रियासतें भी थी, जो स्वयं इन्हीं आक्रांताओं से संबंधित थी। व्यापारियों की एक कम्पनी से शुरूआत करके पूरे देश पर वर्चस्व जमाने वाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए कई रियासतों ने सहायक की भूमिका निभाई थी, तो दूसरी कई इस नवीन साम्राज्य की स्थापना को रोकने के प्रयास में अपने अस्तित्व को ही समाप्त कर चुकी थीं।

इन देशी रियासतों के साथ जिन सहायक संधियों के आधार पर औपनिवेशिक शासन का संबंध था, उसकी देखभाल करने के लिए एक 'राजनीतिक विभाग' था, जो वाइसराय की कार्यकारिणी के अन्तर्गत होता था। वर्ष 1946 में जब भारत की अन्तरिम सरकार का गठन हुआ तब राजनीतिक विभाग का प्रशासन गृह मंत्रालय को सौंपा गया। गृह मंत्रालय सरदार पटेल के पास था। अतः देशी रियासतों के मामले सरदार पटेल के अधीन ही आए। वाइसराय माउण्टबेटन ऐसी रियासतों के प्रकरण को स्वतंत्रता से पहले ही सुलझा लेना चाहते थे। अतः उन्होंने 15 अगस्त, 1947 से पूर्व ही 27 जून, 1947 को एक रियासती विभाग का गठन कर यह विभाग अन्तरिम सरकार के मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल को सौंपा। उधर 'भारत स्वतंत्रता अधिनियम 1947' में ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा कर दी कि भारत की स्वतंत्रता के साथ ही देशी रियासतों पर से भी ब्रिटिश प्रभुत्व समाप्त हो जाएगा और इन देशी रियासतों के शासक भारत या नवगठित पाकिस्तान किसी में भी अधिमिलन के लिए स्वतंत्र होंगे। इस तरह इन देशी रियासतों का भारत में विलय कर राष्ट्रीय एकीकरण को पूरा करने का कार्य अत्यधिक दुष्कर व चुनौती भरा था, जिसे सरदार पटेल ने पूरा किया। सरदार पटेल ने वी.पी. मेनन को अपने सचिव के रूप में नियुक्त किया और दोनों ने मिलकर 15 अगस्त, 1947 से पूर्व ही अधिकांश रियासतों का भारत में विलय करवाने के लिए एक 'विलय पत्र' तैयार करवाया और राजाओं से उस पर हस्ताक्षर करवाकर उनका भारत में विलय किया। केवल कश्मीर, हैदराबाद तथा जूनागढ़ रियासतों का विलय शेष था।

कश्मीर का भारत में विलय

कश्मीर औपनिवेशिक भारत की सबसे महत्वपूर्ण रियासत थी। न केवल इसका क्षेत्रफल सबसे बड़ा था अपितु इसकी भौगोलिक स्थिति भी सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। इसकी सीमाएँ अफगानिस्तान, चीन और तिब्बत से मिलती थीं। कश्मीर रियासत के मुख्यतः चार भाग थे – जम्मू क्षेत्र, जो पंजाब से लगा हुआ है जो अपेक्षाकृत अधिक मैदानी है। कश्मीर घाटी, लद्दाख की ऊँची चोटियां और लद्दाख के पश्चिम में बहुत कम आबादी का इलाका गिलगित और बालिस्तान। ये दूरदराज के इलाकों को एक छतरी के नीचे लाने का कार्य जम्मू के डोगरा राजपूत घराने ने किया, जिसने 1830 के दशक में लद्दाख जीत लिया और 1840 के दशक में अंग्रेजों से कश्मीर घाटी हासिल कर ली थी। आजादी के समय यह रियासत भारत–पाकिस्तान की सीमा पर स्थित होने के कारण रणनीतिक रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। कश्मीर पर 1925 ई. से महाराजा हरीसिंह का शासन था। 1932 में जम्मू–कश्मीर में मुस्लिम कान्फ्रेन्स का गठन हुआ, जिसने महाराजा के खिलाफ असंतोष पैदा करने का कार्य किया। बाद में इसका नाम नेशनल कान्फ्रेन्स कर दिया गया और शेख अब्दुल्ला इसके बड़े नेता बने। 15 अगस्त, 1947 तक महाराजा हरीसिंह ने अपनी रियासत के बारे में कोई फैसला नहीं लिया था। उधर पाकिस्तान येन–केन–प्रकारेण कश्मीर का अपने में विलय चाहता था। उसने महाराजा को अनेक लोभ व प्रलोभन देने के प्रयास किए लेकिन उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसे में स्वतंत्रता के तुरन्त बाद पाकिस्तान ने सितम्बर, 1947 से ही घुसपैठियों के वेश में अपनी सेना की कश्मीर में घुसपैठ प्रारम्भ करवा दी। अक्टूबर के अन्त में पाकिस्तानी सेना श्रीनगर के करीब तक पहुँच गई थी। 26 अक्टूबर, 1947 को कश्मीर की स्थिति को लेकर नई दिल्ली में बैठक हुई, जिसमें कश्मीर के प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन व नेशनल कान्फ्रेन्स के शेख अब्दुल्ला उपस्थित थे। महाजन और शेख दोनों ने भारत सरकार से अपील की कि कश्मीर में सेना भेजकर पाकिस्तानी

हमलावरों को खदेड़ा जाए। 26 अक्टूबर, 1947 को महाराजा हरीसिंह ने भारतवर्ष में जम्मू–कश्मीर का विलय उसी विलय पत्र के आधार पर कर दिया जिस विलय पत्र से दूसरी रियासतों का विलय हुआ। महाराजा ने कहा, "मैं एतद्द्वारा इस विलय पत्र को स्वीकार करता हूँ।" भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947 के अनुसार शासक द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त आपत्ति करने का अधिकार स्वयं हस्ताक्षरकर्ता सहित किसी को नहीं था। इस प्रकार, जम्मू–कश्मीर राज्य का भारत में विलय हुआ तथा वर्ष 1950 में भारत के संविधान की पहली अनुसूची में भाग 'ख' राज्य में जम्मू–कश्मीर को शामिल किया गया।

सन् 1951 में जम्मू–कश्मीर राज्य की संविधान सभा के चुनाव हुए। 75 सदस्यीय संविधान सभा ने भी 6 फरवरी, 1954 को जम्मू–कश्मीर राज्य के भारत में विलय की पुष्टि की। जम्मू–कश्मीर के संविधान की धारा 3 के अनुसार, "जम्मू–कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और रहेगा तथा इस धारा में कभी कोई संशोधन नहीं हो सकेगा।" इस प्रकार तत्कालीन महाराजा ने विलय पत्र तथा जम्मू–कश्मीर की संविधान सभा की घोषणा से जम्मू–कश्मीर का भारत में पूर्ण विलय हुआ व यह भारत का अभिन्न अंग बना। भारत सरकार ने अपने राज्य जम्मू–कश्मीर को पाकिस्तानी कबाइली हमले से बचाने के लिए अपनी सेना कश्मीर भेजी। नवम्बर के अन्त तक भारतीय सेना ने अपना काफी बड़ा भू–भाग पाकिस्तान से वापिस प्राप्त कर लिया था। यद्यपि जम्मू–कश्मीर के कुल भू–भाग का एक–तिहाई हिस्सा अब भी पाकिस्तान के अधीन ही था। तब वर्ष 1948 में भारत ने लार्ड माउण्टबेटन के आग्रह पर कश्मीर के सवाल को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाना तय किया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक आयोग का गठन कर दोनों में युद्ध विराम करवा दिया। परिणामस्वरूप आज भी जम्मू–कश्मीर का एक–तिहाई भाग पाकिस्तान के पास ही है, जिसे हम 'पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर' कहते हैं।

हैदराबाद का एकीकरण

हैदराबाद कश्मीर के बाद दूसरी सबसे बड़ी रियासत थी, जो दक्कन के पठार में स्थित थी तथा चारों ओर से भारतीय भू–भाग से घिरी हुई थी। यहाँ पर स्वतंत्रता के समय निजाम मीर उस्मान अली का शासन था। हैदराबाद की आबादी में 85 प्रतिशत से अधिक हिन्दू थे लेकिन सेना, पुलिस और प्रशासन में मुसलमानों का दबदबा था। निजाम इस मुस्लिम प्रशासनिक शक्ति एवं जिन्ना की सहायता के आश्वासन के बाद स्वतंत्र राज्य की स्थापना के सपने देख रहा था। जब माउण्ट बैटन ने हैदराबाद को संविधान सभा में शामिल होने की सलाह दी तब उन्होंने कहा कि उन पर दबाव डाला गया तो वे पाकिस्तान में शामिल होने पर गम्भीरता से विचार करेंगे। यहाँ तक कि निजाम ने हैदराबाद के मामले को भारत के खिलाफ संयुक्त राष्ट्रसंघ में ले जाने का प्रयास भी किया। इसी बीच हैदराबाद में 'रजाकार' नामक उग्रवादी मुस्लिम साम्प्रदायिक संगठन तैयार हुआ, जिसने बड़े पैमाने पर अत्याचार प्रारम्भ किये। इस तरह रजाकारों ने हैदराबाद के विलय के सवाल को साम्प्रदायिक समस्या के रूप में रूपान्तरित कर दिया।

दूसरी ओर, ऐसी खबरें भी आने लगी कि निजाम ब्रिटिश एजेण्टों के माध्यम से पाकिस्तान से हथियार प्राप्त कर रहा है। हैदराबाद से बड़ी संख्या में जनता के पलायन से पड़ौसी राज्य मद्रास (तमिलनाडु) पर भार बढ़ गया। इन सब बातों के कारण सरदार पटेल ने इन्तजार करने की बजाय निर्णायक कार्यवाही करने का फैसला किया। सरदार पटेल ने निजाम के खिलाफ सैनिक कार्यवाही करना तय किया और इसकी अनुमति हेतु मंत्रीमण्डल की बैठक बुलाने का प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू से आग्रह किया। बैठक में सरदार पटेल ने हैदराबाद पर आक्रमण की योजना प्रस्तुत की। प्रधानमंत्री ने इस पर शंका व्यक्त की। पटेल ने इस कार्यवाही को आवश्यक बताते हुए कहा कि, "यदि अपने पेट का यह फोड़ा निकालकर हम फैंक नहीं देंगे तो स्वयं अपनी कब्र खोदने का काम करेंगे।" 13 सितम्बर, 1948 को भारतीय सेना ने हैदराबाद पर तीन ओर से हमला किया। इस हमले को 'ऑपरेशन पोलो' नाम दिया गया। निजाम के सैनिक एक–दो दिन में ही मोर्चा छोड़कर भागने लगे। रजाकारों ने भी चार दिन में ही समर्पण कर दिया। इस लड़ाई में भारतीय सेना के बयालीस जबकि दो हजार रजाकार मार गये। 17 सितम्बर, 1948 को निजाम ने हैदराबाद रियासत के भारत में विलय को स्वीकार किया। सरदार पटेल ने हैदराबाद जाकर निजाम से विलय पत्र पर हस्ताक्षर करवाए। पटेल ने कहा, "निजाम समाप्त हो गया है, भारत के सीने का केन्सर (फोड़ा) हमने मिटा दिया है।" इस प्रकार सरदार पटेल

की दृढ़ता, दूरदर्शिता और साहस के परिणामस्वरूप हैदराबाद का भारत में एकीकरण सम्भव हुआ।

जूनागढ़ का भारत में विलय

जिन रियासतों का 15 अगस्त, 1947 तक भारत में विलय नहीं हो सका था, उनमें जूनागढ़ भी शामिल था, जो आजकल के गुजरात राज्य में स्थित है। स्वतंत्रता के समय जूनागढ़ का नवाब मोहबत खान था, जबकि अधिकांश जनता गैर मुस्लिम थी। पवित्र सोमनाथ मंदिर और जैन तीर्थ गिरनार जूनागढ़ रियासत में ही आते थे। वे बेरावल इस रियासत का प्रमुख बन्दरगाह था। 1947 में ही शाहनवाज भुट्टो जूनागढ़ का दीवान बन गया जो मुस्लिम लीग के नेता व पाकिस्तान के संस्थापक मोहम्मद अली जिन्ना का रिश्तेदार था। अपने दीवान के कहने पर नवाब ने अपनी रियासत का पाकिस्तान में विलय करने की घोषणा की। पाकिस्तान ने 13 सितम्बर, 1947 को जूनागढ़ के पाकिस्तान में विलय को स्वीकार कर लिया। वास्तव में पाकिस्तान जूनागढ़ का इस्तेमाल जम्मू–कश्मीर पर सौदेबाजी में करना चाहता था। पाकिस्तान द्वारा जूनागढ़ के विलय को स्वीकार करने की घटना ने सरदार पटेल को काफी आक्रोशित कर दिया। सरदार ने जूनागढ़ के दो अधीनस्थ राज्यों मांगरोल व बाबरियावाद का भारत में विलय करने के लिए सैनिक टुकड़ी भेज दी। दूसरी ओर, जूनागढ़ में नवाब के खिलाफ बड़ा लोकप्रिय आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। इन सबसे घबराकर नवाब पाकिस्तान भाग गया। कुछ समय बाद दीवान शाहनवाज जूनागढ़ का प्रशासन भारत को सौंपने के लिए मजबूर हो गया। भारत सरकार ने अपनी वैधानिक स्थिति मजबूत करने के लिए फरवरी, 1948 में जूनागढ़ में जनमत संग्रह करवाया, जिसके परिणामस्वरूप उसका भारत में विलय हो गया।

इस तरह जम्मू–कश्मीर व हैदराबाद के बाद जूनागढ़ तीसरी ऐसी रियासत थी, जो सरदार पटेल के अदम्य साहस के परिणामस्वरूप भारत में शामिल हुई। इसलिए पटेल को आधुनिक भारत का निर्माता अथवा लौह पुरूष कहा जाता है।

गोवा व पाण्डिचेरी का भारत में विलय

साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का विरोध स्वतंत्र भारत की प्रमुख नीति थी। इसका स्वाभाविक परिणाम यह था कि भारत अपनी उस जमीन पर फिर से दावा करता जो विदेशियों के कब्जे में थी। अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी गोवा पर पुर्तगाल का कब्जा था जबकि पाण्डिचेरी (वर्तमान पुदुचेरी) पर फ्रान्स का आधिपत्य बरकरार था। भारत की स्वतंत्रता के तुरन्त बाद इन क्षेत्रों के लोगों ने अपनी आजादी व भारत में विलय की मांग प्रारम्भ की और इसके लिए आन्दोलन प्रारम्भ किये। 1954 ई. में पाण्डिचेरी में माहौल बहुत तनावपूर्ण हो गया था। भारत में विलय के लिए व्यापक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। मद्रास (वर्तमान चैन्नई) में फ्रान्सीसी दूतावास के सामने हर रोज प्रदर्शन होने लगे। नवम्बर, 1954 में फ्रान्स ने पाण्डिचेरी को भारत को सौंप दिया, जिसका लोगों ने व्यापक स्वागत किया। 1955 ई. के गणतंत्र दिवस में पहली बार राजपथ पर पाण्डिचेरी की झांकी निकाली गई। इस तरह पाण्डिचेरी का शान्तिपूर्ण रूप से भारत में विलय हो गया। लेकिन पुर्तगाली गोवा विलय की माँग पर ध्यान नहीं दे रहे थे। वे गोवा को तब तक अपने पास रखना चाहते थे, जब तक ऐसा सम्भव हो। गोवा के पुर्तगाली तानाशाह ओलीविरा सलाजार ने गोवा को 'पूरब की पुरातन धरती पर पश्चिम का प्रकाश व पुर्तगाली अन्वेषण का एक प्रतीक' बताते हुए खाली करने से मना कर दिया। गोवा के अलावा दमण, दादर एवं नागर हवेली भी पुर्तगाल के अधीन थी। वर्ष 1954–1955 में जन–आन्दोलन के परिणामस्वरूप दमण, दादर एवं नागर हवेली पर नियंत्रण हो गया। गोवा में बड़े पैमाने पर आन्दोलनकारियों को जेल में डाल दिया गया। एक दशक तक भारत पुर्तगाल से अनुनय करता रहा। आखिर, 1961 में भारतीय सेना को 'गोवा मुक्ति' हेतु भेजा गया। 'ऑपरेशन विजय' के नाम से दो दिन के अन्दर ही सेना का गोवा पर कब्जा हो गया। स्थानीय जनता ने सेना को पूरा साथ दिया। फलतः गोवा के पुर्तगाली गवर्नर ने बिना शर्त समर्पण कर दिया। इस तरह, 1961 ई. के अन्त में गोवा का भारत में विलय हुआ। उल्लेखनीय है कि नेहरू सरकार पर काफी समय से जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी आदि ने 'गोवा मुक्ति' का दबाव बना रखा था। अतः सरकार के लिए यह कार्यवाही आवश्यक थी।

राजस्थान का एकीकरण

ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थान का विशेष महत्व रहा

है। यहाँ के विभिन्न यशस्वी शासकों ने मध्यकाल में आक्रान्ताओं के विरूद्ध न केवल राजनीतिक प्रतिरोध को जिन्दा रखा अपितु गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा को भी अक्षुण्ण रखने का कार्य किया। स्वतंत्रता के समय अजमेर–मेरवाड़ा को छोड़कर पूरा राजस्थान रियासतों में बँटा हुआ था। उस समय राज्य में 19 रियासतें, 3 ठिकानें व एक केन्द्र शासित प्रदेश था। राजस्थान की जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर आदि प्रमुख रियासतों की सीमाएँ नवस्थापित पाकिस्तान से लगती थी और पाकिस्तान द्वारा इन राजाओं को अनेक प्रलोभन भी दिए जा रहे थे कि वे अपना विलय पाकिस्तान में करें। इसलिए इन रियासतों का विलय अत्यन्त संवेदनशील मामला था, जिसे 'लौहपुरूष' पटेल ने कुशलतापूर्वक पूरा किया।

राजस्थान के एकीकरण एवं इसके वर्तमान स्वरूप में आने का कार्य लगभग 8 वर्ष 7 माह में 7 चरणों में पूरा हुआ।

1. **मत्स्य संघ** – राजस्थान एकीकरण के प्रथम चरण में मत्स्य संघ का निर्माण हुआ। अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली व नीमराणा का क्षेत्र भौगोलिक समानता लिए था। अतः इनको मिलाकर संघ बनाने का प्रस्ताव रखा गया। इसका नाम मत्स्य संघ रखा गया, जो महाभारत काल में उस क्षेत्र का नाम था। 18 मार्च, 1948 को इस संघ का केन्द्रीय मंत्री एन.वी. गाडगिल ने उद्घाटन किया। धौलपुर शासक को राजप्रमुख तथा शोभाराम को इसका प्रधानमंत्री बनाया। अलवर को राजधानी बनाया गया।

2. **पूर्वी राजस्थान** – इस दूसरे चरण में 9 रियासतों यथा– बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, कोटा, बून्दी, झालावाड़, किशनगढ़, शाहपुरा और टोंक को मिलाकर पूर्वी राजस्थान का गठन किया, जिसका उद्घाटन 25 मार्च, 1948 को गाडगिल ने किया। कोटा के शासक को राजप्रमुख व गोकुल लाल असावा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। कोटा को राजधानी बनाया गया।

3. **संयुक्त राजस्थान** – मेवाड़ महाराणा पूर्वी राजस्थान के गठन से पूर्व ही विलय के लिए तैयार थे। 11 अप्रेल, 1948 को मेवाड़ ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर लिए। पूर्वी राजस्थान में मेवाड़ को मिलाकर संयुक्त राजस्थान का गठन हुआ, जिसका उद्घाटन 18 अप्रेल, 1948 को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया। मेवाड़ के महाराणा भूपालसिंह को राजप्रमुख व माणिक्यलाल वर्मा को प्रधानमंत्री बनाया गया। उदयपुर को संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनाया गया।

4. **बृहत्त राजस्थान** – मेवाड़ के विलय के बाद शेष राज्यों का विलय आसान हो गया था। चौथे चरण में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर जैसी बड़ी और महत्वपूर्ण रियासतों का विलय कर वृहत्त राजस्थान का निर्माण हुआ। 30 मार्च, 1949 को सरदार पटेल ने इसका उद्घाटन किया। मेवाड़ के महाराणा भूपालसिंह को महाराजप्रमुख व हीरालाल शास्त्री को प्रधानमंत्री बनाया गया। जयपुर को राजधानी घोषित किया। एकीकरण का यह सबसे महत्वपूर्ण चरण होने के कारण ही 30 मार्च को राजस्थान दिवस के रूप में मनाया जाता है।

5. **संयुक्त बृहत्त राजस्थान** – इस सारी प्रक्रिया के बीच मत्स्य संघ स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहा था लेकिन उत्तर प्रदेश का सीमावर्ती क्षेत्र होने के कारण इसके बारे में फैसला करना आवश्यक था। इसलिए 15 मई, 1948 को मत्स्य संघ का बृहत्त राजस्थान में विलय कर संयुक्त वृहत्त राजस्थान का गठन किया गया व शोभाराम शास्त्री को मंत्रीमण्डल में शामिल किया गया।

6. **राजस्थान संघ** – विलय के इतने चरणों के पश्चात् सिरोही के प्रश्न का समाधान करना शेष था कि उसका विलय राजस्थान में किया जाये अथवा तत्कालीन बम्बई प्रान्त में शामिल किया जाये। 26 जनवरी, 1950 को सिरोही की दो तहसीलें – आबू व देलवाड़ा को बम्बई राज्य में और शेष सिरोही को राजस्थान में मिलाया गया। सिरोही की जनता दोनों तहसीलों का भी राजस्थान में विलय चाहती थी। अतः इस प्रकरण को राज्य पुनर्गठन आयोग को सौंप दिया गया।

7. **वर्तमान राजस्थान का निर्माण** – ब्रिटिश काल में अजमेर–मेरवाड़ा एक केन्द्र शासित प्रदेश था। अतः 1956 तक यह 'ग' श्रेणी का स्वतंत्र राज्य बना रहा।

अन्ततः राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश के आधार पर इस क्षेत्र का भी राजस्थान में विलय किया गया। साथ ही आयोग की सिफारिश पर आबू व देलवाड़ा को भी राजस्थान में मिलाया गया। मध्य प्रदेश से लगी सीमा का भी पुनर्निर्धारण किया गया। मध्य प्रदेश के सुनेलटप्पा को राजस्थान में तथा राजस्थान के सिरोंज को मध्य प्रदेश में मिलाया गया।

परिणामस्वरूप 1 नवम्बर, 1956 को राजस्थान का एकीकरण पूर्ण हुआ। राजप्रमुख का पद समाप्त कर दिया गया व राज्य के प्रथम राज्यपाल के रूप में गुरूमुख निहालसिंह को शपथ दिलाई गई।

राज्यों का पुनर्गठन

स्वतंत्रता के तुरन्त बाद राज्यों के पुनर्गठन की मांग एक प्रमुख आन्दोलन बनकर उभरी। विशेषकर भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग तेजी से होने लगी। वास्तव में, स्वतंत्रता से बहुत पहले सन् 1917 में ही कांग्रेस पार्टी ने यह स्वीकार किया था कि आजादी मिलने के बाद वह भाषायी आधार पर राज्यों के गठन का समर्थन करेगी लेकिन आजादी के बाद पण्डित नेहरू आदि भाषायी आधार पर राज्य निर्माण को तैयार नहीं थे। परिणामस्वरूप कन्नड़ भाषियों के लिए कर्नाटक, मराठी भाषी लोगों के लिए संयुक्त महाराष्ट्र, पंजाबी भाषा के लिए पंजाब राज्य आदि की माँगें उठने लगी लेकिन इन सबसे ज्यादा आक्रामक आन्दोलन आन्ध्र इलाके में तेलुगु भाषी लोगों ने प्रारम्भ किया। यह अपने को मद्रास से अलग कर आन्ध्र प्रदेश की मांग कर रहे थे। इस माँग को लेकर श्रीरामोलू नाम के व्यक्ति ने अक्टूबर, 1952 में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। 58 दिन की भूख हड़ताल के बाद श्रीरामोलू की मृत्यु हो गई, जिसकी खबर सुनकर पूरा आन्ध्र का इलाका अराजकता में डूब गया। उसकी मृत्यु के दो दिन बाद सरकार ने घोषणा की कि वह आन्ध्र प्रदेश के निर्माण करने के लिए तैयार है। अक्टूबर, 1953 में आन्ध्र प्रदेश राज्य की स्थापना कर दी गई। इस तरह भाषा के आधार पर गठिन होने वाला आन्ध्र प्रदेश पहला राज्य बना।

इसके बाद देश के विभिन्न हिस्सों से राज्य निर्माण की माँग बलवती होती गई। अतः भारत सरकार ने 1953 ई. में राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किया। जस्टिस फजल अली को आयोग का अध्यक्ष तथा के.एम. पण्णिकर व एच.एन. कुंजरू को इसका सदस्य बनाया गया। सन् 1955 में आयोग ने अपना प्रतिवेदन सौंपा, जिसके आधार पर भारत की संसद द्वारा 1956 में राज्य पुनर्गठन विधेयक पास कर दिया गया। चौदह राज्यों व छः केन्द्र शासित प्रदेशों की व्यवस्था की गई लेकिन राज्यों के निर्माण की मांग को लेकर देश के विभिन्न भागों में आन्दोलन जारी रहे। इसमें सबसे बड़ा आन्दोलन महाराष्ट्र में प्रारम्भ हुआ, जिसके आधार पर 1960 में सरकार ने बम्बई राज्य को बांटकर महाराष्ट्र व गुजरात राज्यों का निर्माण किया। उसके बाद भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र के पुनर्गठन का सवाल पैदा हुआ। इस क्षेत्र में मुख्यतः जनजाति समुदाय के लोग रहते हैं, जहाँ ईसाई मिशनरीज सक्रिय हो गए। इसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में अनेक अलगाववादी गतिविधियां प्रारम्भ होने लगी, जिसमें नागा जनजाति का आन्दोलन महत्वपूर्ण है, जो फीजो के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। अन्ततः 1963 में नागाओं के लिए नागालैण्ड राज्य अस्तित्व में आया। इस तरह की समस्या पूर्वोत्तर के मीजो स्वायत्त क्षेत्र में प्रारम्भ हुई, जहाँ लाल डेंगा के नेतृत्व में मीजो नेशनल फ्रण्ट का गठन कर अलगाववादी आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। एक समझौते के द्वारा इस समस्या का अन्त भी किया गया और 1987 में मिजोरम नामक नए राज्य का गठन किया गया। 1987 में ही अरूणाचल प्रदेश व गोवा को भी केन्द्र शासित राज्यों से पूर्ण राज्य बनाया गया। इससे पूर्व 1972 में मेघालय को अलग राज्य बनाया गया तथा मणिपुर, त्रिपुरा व अरूणाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।

पंजाबी भाषी लोगों के लिए अलग पंजाब की मांग मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में लम्बे समय से जारी थी। अन्ततः 1966 में पंजाब का पुनर्गठन कर हरियाणा राज्य का गठन किया गया व चण्डीगढ़ को केन्द्र शासित प्रान्त बनाकर पंजाब व हरियाणा दोनों की राजधानी बनाया गया। पहाड़ी क्षेत्र हिमाचल प्रदेश को संघ शासित क्षेत्र बनाया गया, जिसे 1971 में राज्य का दर्जा दिया गया। सिक्किम में 1975 तक राजाशाही चोग्याल का शासन था। जनमत द्वारा सिक्किम ने भारत में विलय की इच्छा प्रकट की, जिसके परिणामस्वरूप 36वें संविधान संशोधन 1975 द्वारा सिक्किम को राज्य बनाया गया। सन् 2000 में मध्य प्रदेश से अलग कर छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश से अलग कर उत्तराखण्ड

तथा बिहार से अलग कर झारखण्ड राज्य की स्थापना की गई। झारखण्ड के लिए स्वतंत्रता के बाद से ही निरन्तर आन्दोलन चल रहा था। आन्ध्र प्रदेश राज्य से अलग तेलंगाना राज्य की मांग भी लम्बे समय से जारी थी, जिसने बाद में उग्र एवं हिंसक रूप प्राप्त कर लिया। अन्ततः 2014 में आन्ध्र प्रदेश से अलग नये तेलंगाना राज्य की स्थापना की गई। इस तरह वर्तमान में भारत में 29 राज्य और 7 केन्द्र शासित प्रान्त है, लेकिन देश के विभिन्न भागों से नये राज्यों की मांग आज भी अनवरत रूप से जारी है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से एक इकाई के रूप में रहा है, जहां कई चक्रवर्ती सम्राटों ने विशाल साम्राज्यों की स्थापना की थी।
2. प्राचीन भारत में मनु ने मनुस्मृति, शुक्र ने शुक्रनीतिसार एवं कौटिल्य ने अर्थशास्त्र जैसे महान ग्रन्थों की रचना की, जिसमें संगठित समाज के संचालन के आदर्शों का वर्णन है।
3. ब्रिटिश शासन में भारत मुख्यतः दो भागों में बंटा हुआ था। ब्रिटिश भारत व देशी रियासतें। ब्रिटिश भारत सीधे अंग्रेजों के अधीन था, जबकि देशी रियासतों पर राजाओं का नाममात्र का शासन था।
4. स्वतंत्रता के उपरान्त राष्ट्रीय एकीकरण में सरदार पटेल ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पटेल के प्रयासों से जम्मू–कश्मीर महाराजा हरीसिंह अपनी रियासत का भारत में विलय करने को तैयार हुआ।
5. हैदराबाद रियासत का भारत में सैनिक कार्यवाही द्वारा विलय किया गया, जबकि जूनागढ़ में नवाब के पाकिस्तान भाग जाने के बाद जनमत संग्रह करवाकर जूनागढ़ का भारत में विलय किया गया।
6. पाण्डिचेरी को 1954 में फ्रान्सीसी आधिपत्य से भारत में शामिल किया गया, जबकि पुर्गगाल से गोवा को मुक्त करवाने के लिए 1961 में सैन्य कार्यवाही करनी पड़ी।
7. स्वतंत्रता के समय राजस्थान में 19 रियासतों, 3 ठिकानों व 1 चीफ कमिश्नरी क्षेत्र था। सात चरणों में 1 नवम्बर, 1956 को राजस्थान का एकीकरण पूर्ण हुआ था।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अर्थशास्त्र पुस्तक के लेखक कौन है?
   (अ) मनु (ब) शुक्र
   (स) कौटिल्य (द) बृहस्पति
2. स्वतंत्रता के समय भारत में कुल कितनी रियासतें थी?
   (अ) 562 (ब) 300 (स) 365 (द) 430
3. स्वतंत्रता के समय राजस्थान में कुल कितनी रियासतें थी?
   (अ) 29 (ब) 19 (स) 11 (द) 15
4. राष्ट्रीय एकीकरण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका किसकी रही?
   (अ) पण्डित जवाहरलाल नेहरू (ब) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
   (स) डॉ. अम्बेडकर (द) सरदार पटेल
5. गोवा का भारत में विलय किस वर्ष हुआ?
   (अ) 1955 (ब) 1960 (स) 1961 (द) 1965

अतिलघूरात्मक प्रश्न

1. मनु स्मृति के लेखक कौन थे?
2. स्वतंत्रता के समय कश्मीर के राजा कौन थे?
3. हैदराबाद का भारत में विलय कब हुआ?
4. राज्य पुनर्गठन आयोग के अध्यक्ष कौन थे?
5. भाषायी आधार पर पहला राज्य कौनसा बना था?
6. पाण्डिचेरी पर किसका आधिपत्य था?

लघूरात्मक प्रश्न

1. जूनागढ़ रियासत के भारत में विलय का वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रीय एकीकरण में सरदार पटेल के योगदान पर टिप्पणी कीजिए।
3. स्वतंत्रता उपरान्त गठित भारत के पाँच राज्यों के नाम बताइए।
4. राज्य पुनर्गठन आयोग पर टिप्पणी कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।
2. 'ऑपरेशन पोलो' का वर्णन कीजिए।
3. जम्मू–कश्मीर के भारत विलय की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
4. गोवा का भारत में विलय किन स्थितियों में हुआ, समझाइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(1) स, (2) अ, (3) ब, (4) द, (5) स

अध्याय 9

भारत का संविधान

संविधान किसी देश के आधारभूत कानूनों का संग्रह होता है। इसके द्वारा न केवल सरकार का गठन होता है अपितु सरकार और नागरिकों के आपसी संबंधों का निर्धारण भी होता है। संविधान देश की सरकार के विभिन्न अंगों अर्थात् व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का स्वरूप तय करता है, उनकी शक्तियों व सीमाओं का फैसला करता है। इसके अतिरिक्त नागरिकों के क्या अधिकार होंगे? क्या कर्त्तव्य होंगे? किसको कितना कर देना है? पुलिस कैसी होगी? न्यायालय कैसे होंगे?, आदि सभी बातों का निर्धारण भी देश के संविधान द्वारा होता है। इस प्रकार संविधान किसी राष्ट्र का जीवन्त प्रतिरूप होता है। लोकतंत्र में शक्ति जनता में निहित होती है। अपने आदर्श रूप में तो इस शक्ति का प्रयोग स्वयं जनता को ही करना चाहिए जैसा कि प्राचीन भारत में 'सभा' एवं 'समिति' के द्वारा किया जाता था, लेकिन वर्तमान में राष्ट्रों के आकार बहुत बड़े हैं, जहाँ प्रत्यक्ष लोकतंत्र का होना सम्भव नहीं है। आजकल प्रतिनिधियात्मक लोकतंत्र का युग है, जहां जनता वयस्क मताधिकार के द्वारा अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है और वे प्रतिनिधि शासन का कार्य करते हैं। जनता अपनी इस शक्ति का सबसे पहला प्रयोग तब करती है जब वह अपने लिए एक संविधान का निर्माण करती है। यह संविधान लिखित व निर्मित भी हो सकता है, अलिखित भी हो सकता है और विकसित भी। जैसे भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि का संविधान निर्मित और लिखित है, जबकि इंग्लैण्ड का संविधान अलिखित व विकसित माना जाता है।

भारत अपने प्राचीन गौरवपूर्ण एवं प्रेरक अतीत के बाद मध्यकाल से ही विदेशी आक्रमणों का शिकार रहा है। इन विदेशी आक्रान्ताओं ने अपने क्रूरतम तरीकों से भारतीयों पर शासन किया। उनके प्रयास जनता को संतुष्ट करने की बजाय अपने धर्म का विस्तार करना और सम्पत्ति को एकत्रित करना ही था। फिर भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद का शिकार बना। ईस्ट इण्डिया कम्पनी, जो कि 1600 ई. में व्यापार के लिए निर्मित हुई थी, धीरे–धीरे वह भारत के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगी। 1757 ई. में प्लासी के युद्ध और 1764 के बक्सर के युद्ध के पश्चात् भारत का बड़ा भाग इस कम्पनी के अधीन हो गया। अब कम्पनी के सामने यह प्रश्न था कि भारत पर शासन किन कानूनों के माध्यम से करें? अतः उसने ब्रिटिश सरकार से भारतीय प्रशासन के लिए कानून बनाने का आग्रह किया। तब लम्बे समय तक भारत के लिए ब्रिटिश पार्लियामेण्ट कानून बनाती थी, जैसे रेग्युलेटिंग एक्ट, पिट्स इण्डिया एक्ट, 1813 ई. का एक्ट, 1909 का भारत शासन अधिनियम, 1919 का भारत शासन अधिनियम और 1935 का अधिनियम आदि। इधर भारत में धीरे–धीरे राजनीतिक जागरण होने लगा, जिसकी प्रेरणा स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द वीर सावरकर, बाल गंगाधर तिलक इत्यादि मनीषियों के चिन्तन से मिली। इस प्रकार बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक संविधान निर्माण की मांग स्वतंत्रता की मांग के साथ अभिन्न रूप से जुड़ चुकी थी। 1922 ई. में महात्मा गांधी ने संविधान निर्माण की मांग प्रस्तुत की। 1925 ई. में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ, जिसमें संविधान निर्माण से संबंधित प्रस्ताव पारित हुआ।

जब सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब ब्रिटिश सरकार को युद्ध में भारतीय सहायता की तीव्र आवश्यकता थी। इसलिए 1940 ई.को 'अगस्त प्रस्ताव' में पहली बार अंग्रेजों ने भारतीयों की संविधान निर्माण की मांग को स्वीकार किया। जुलाई, 1945 में इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की नई सरकार सत्ता में आई, जिसने जल्दी ही भारत को स्वतंत्र करने एवं संविधान निर्माण के संकेत दिए। मार्च, 1946 में सरकार ने एक तीन सदस्यीय आयोग भारत भेजा, जिसे 'केबिनेट मिशन' कहते हैं। केबिनेट मिशन की योजना से भारतीय संविधान सभा का गठन हुआ, जिसने भारतीय संविधान का निर्माण किया। मिशन का यह मानना था कि संविधान सभा के गठन की सबसे संतोषजनक स्थिति यह होती

हैं कि उसका गठन व्यस्क मताधिकार द्वारा चुनाव के माध्यम से किया जाए, लेकिन मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान निर्माण की माँग को लेकर हिंसक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी, जिसके कारण कानून व्यवस्था की स्थिति खराब हो गई। सन् 1935 में भारत शासन अधिनियम से भारतीय प्रान्तों में विधान सभाओं का गठन किया था। इन विधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन हुआ था। केबिनेट मिशन ने विधान सभा के इन निर्वाचित विधायकों को यह अधिकार दिया कि वे अपने–अपने प्रान्त के संविधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन करें। मोटेतौर पर दस लाख लोगों पर संविधान सभा का एक सदस्य होना निर्धारित किया गया। जैसे किसी प्रान्त की जनसंख्या एक करोड़ थी, तब उस प्रान्त से सभा के दस सदस्य होंगे, जिनका चुनाव प्रान्तीय विधान सभा के सदस्य करेंगे। उस समय भारत दो भागों में बँटा हुआ था – ब्रिटिश प्रान्त और देशी रियासतें। देशी रियासतों के लिए भी संविधान सभा की सदस्यता हेतु जनसंख्या का मापदण्ड वही रखा गया लेकिन चूंकि देशी रियासतों में विधान सभाएँ नहीं थी इसलिए वहाँ से संविधान सभा के सदस्यों का मनोनयन होना तय हुआ। इस तरह भारतीय संविधान सभा में निर्वाचित और मनोनीत दोनों तरह के सदस्य थे।

संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 389 निर्धारित की गई, जिनमें से 296 ब्रिटिश भारत से व 93 सदस्य देशी रियासतों से लिए जाने थे। जुलाई, 1946 को संविधान सभा के 296 स्थानों के लिए चुनाव हुए, जिसमें कांग्रेस को 208 स्थान प्राप्त हुए, जबकि मुस्लिम लीग को केवल 73 स्थान हासिल हुए। अन्य स्थान छोटे दलों में विभक्त हो गये। उधर 3 जून, 1947 की 'माउण्टबेटन योजना' से देश का साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन तय हो गया। मुस्लिम लीग की इस मांग को मान लिया गया कि मुसलमानों के लिए एक अलग देश पाकिस्तान की स्थापना की जाये। इसलिए संविधान सभा का पुनर्गठन हुआ और इसकी संख्या 324 निर्धारित हुई। अन्तिम रूप से 284 सदस्यों ने भारतीय संविधान पर हस्ताक्षर किए। देशी रियासतों के सदस्य अलग–अलग समय में संविधान सभा में शामिल हुए। राजस्थान की विभिन्न रियासतों से कुल 13 सदस्य संविधान सभा में शामिल हुए। हैदराबाद एकमात्र ऐसी रियासत थी, जिसका कोई प्रतिनिधि संविधान सभा में शामिल नहीं हुआ था।

संविधान सभा का 9 दिसम्बर, 1946; सोमवार को प्रातः 11 बजे संसद के केन्द्रीय हॉल में विधिवत उद्घाटन हुआ। पहली बैठक में 211 सदस्यों ने भाग लिया था। सच्चिदानन्द सिन्हा को संविधान सभा का अस्थाई अध्यक्ष चुना गया। 11 दिसम्बर, 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थाई अध्यक्ष चुना गया। बी.एन. राव वैधानिक सलाहकार बनाए गये। 13 दिसम्बर, 1946 को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव रखा, जिसे 22 जनवरी, 1947 को पारित किया गया। संविधान निर्माण हेतु अनेक समितियों का गठन किया गया, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण प्रारूप समिति थी, जिसका गठन अगस्त, 1947 को हुआ। सात सदस्यीय प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे, जो विख्यात वकील और कानूनी मामलों के जानकार थे। संविधान का प्रारूप (ड्राफ्ट) बनाने का कार्य प्रारूप समिति का ही था। इस प्रारूप को संविधान सभा वाद–विवाद, बहस और मतदान के बाद पारित करती थी। इसलिए अम्बेडकर को भारतीय संविधान का जनक भी कहते हैं।

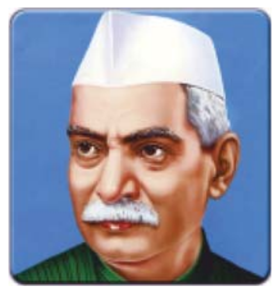

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विभिन्न समितियों के प्रस्तावों पर विचार करने के बाद प्रारूप समिति ने फरवरी, 1948 में पहला प्रारूप प्रकाशित किया। भारत के लोगों को इस पर विचार करने और सुझाव देने के लिए आठ माह का समय दिया। उन सुझावों और संशोधनों के अनुरूप प्रारूप बनाकर नवम्बर, 1948 को संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इस प्रारूप का संविधान सभा में तीन बार वाचन हुआ। 26 नवम्बर, 1949 को भारत का संविधान बनकर तैयार हो गया। इसी दिन भारतीय संविधान अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित हुआ। संविधान सभा की अन्तिम बैठक 24 जनवरी, 1950 को हुई, जिस दिन संविधान सभा के सदस्यों ने संविधान पर हस्ताक्षर किए। 26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू किया गया। मूल संविधान में एक प्रस्तावना जिसे उद्देशिका भी कहते हैं, आठ अनुसूचियाँ, 22 भाग

व 395 अनुच्छेद थे। वर्तमान में अनुसूचियाँ 8 से बढ़ाकर 12 हो गई है। प्रस्तावना को संविधान की आत्मा, सार और उनको समझने की कुंजी समझा जाता है। संविधान सभा ने भारतीय संविधान के निर्माण के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी किए। जुलाई, 1947 को उसने राष्ट्रीय ध्वज को अपनाया और जनवरी, 1950 में राष्ट्रीय गीत एवं राष्ट्रीय गान को स्वीकार किया तथा डॉ. राजेन्द्रप्रसाद को भारत का पहला राष्ट्रपति निर्वाचित किया, जिन्होंने 26 जनवरी, 1950 को शपथ ली। इसके साथ ही गणतंत्र राष्ट्र राज्य के रूप में भारत का उदय हुआ।

इस तरह संविधान सभा ने 2 वर्ष 11 माह और 18 दिन में लगभग 64 लाख रूपये खर्च कर भारतीय संविधान निर्माण का ऐतिहासिक कार्य पूरा किया किन्तु संविधान के पूरा होने से ही हमारी यात्रा पूरी नहीं हो जाती है। डॉ. अम्बेडकर ने नवम्बर, 1949 को संविधान सभा में कहा, "मैं महसूस करता हूँ कि संविधान चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को अमल में लाने का काम सौंपा जाएगा, वे खराब निकले तो निश्चित रूप से संविधान भी खराब सिद्ध होगा।"

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने अपने समापन भाषण में कहा, "यदि लोग, जो चुनकर आयेंगे, योग्य, चरित्रवान और ईमानदार हुए तो वे दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम बना देंगे। यदि उनमें गुणों का अभाव हुआ तो संविधान देश की कोई मदद नहीं कर सकता।"

प्रत्येक संविधान उसके संस्थापकों एवं निर्माताओं के आदर्शों, सपनों तथा मूल्यों का दर्पण होता है। वह संविधान निर्विघ्न अपने उद्देश्यों को पूरा कर सके, इसके लिए हमें उत्तरदायी नागरिक, बलिदानी और राष्ट्रवादी बनना होगा।

भारतीय संविधान की विशेषताएँ

भारतीय संविधान विश्व का अनूठा संविधान है। इसकी अनेक ऐसी विशेषताएँ है जो इसे विश्व के अन्य संविधानों से अलग करती है, जो निम्नलिखित हैं:—

1. **विश्व का सबसे बड़ा संविधान** — भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है। संविधान में केवल संघ सरकार की शासन व्यवस्था का प्रावधान है अपितु राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था का भी उसमें वर्णन है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान तुलनात्मक रूप से छोटा संविधान है। इसका कारण यह है कि वहाँ राज्यों के अपने अलग संविधान है, जबकि भारत में राज्यों के अलग संविधान नहीं है।

2. **संघात्मक व्यवस्था** — संघ सरकार और राज्य सरकारों के आपसी संबंधों के आधार पर संविधान दो प्रकार के होते है — संघात्मक एवं एकात्मक। जिस संविधान के द्वारा संघ सरकार एवं राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का बंटवारा हो और इस बंटवारे की स्वतंत्रता के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका हो, उसे संघात्मक व्यवस्था कहते हैं। भारतीय संविधान द्वारा संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच तीन सूचियों — संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची द्वारा शक्तियों का बंटवारा किया गया है। भारत के विशाल आकार, विविधता, बड़ी जनसंख्या आदि के कारण संघात्मक व्यवस्था अपनाना स्वाभाविक ही था।

3. **एकल नागरिकता** — यह भारतीय संविधान की एक अनुपम विशेषता है। सामान्यतः संघीय व्यवस्था में दोहरी नागरिकता होती है। एक देश की एवं दूसरी उस राज्य की जहाँ वे रहते है, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में लेकिन भारत में संघात्मक व्यवस्था होते हुए भी इकहरी नागरिकता का प्रावधान किया गया है। हम सब भारतीय नागरिक हैं, राज्य में निवास करने का अर्थ राज्य की अलग नागरिकता नहीं है। यह भारत राष्ट्र की एकता और राष्ट्रीय एकीकरण में सहायक है।

4. **संसदात्मक व्यवस्था** — सरकार के तीन अंग होते हैं — व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। व्यवस्थापिका व कार्यपालिका के आपसी संबंधों के आधार पर संविधान संसदात्मक या अध्यक्षात्मक हो सकता है। भारत की कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री एवं मंत्रीपरिषद् अपने कार्यों एवं कार्यकाल के लिए व्यवस्थापिका अर्थात् संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। ऐसी व्यवस्था को संसदात्मक व्यवस्था कहते हैं।

5. **न्यायपालिका की स्वतंत्रता** — न्यायपालिका सरकार की अन्य दो अंगों से स्वतंत्र है, यह संविधान की अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। न्यायपालिका अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने एवं संविधान की

सुरक्षा करने का अधिकार प्राप्त है।

6. **वयस्क मताधिकार** – भारतीय संविधान की यह एक विशिष्ट विशेषता है कि इसने भारत में बिना किसी भेदभाव के सभी को सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार प्रदान किया। प्रारम्भ में मताधिकार की न्यूनतम आयु 21 वर्ष थी, जिसे अब 18 वर्ष कर दिया गया। दुनियाँ के अनेक देशों में वयस्क मताधिकार के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा था लेकिन व्यापक निरक्षरता एवं अल्प राजनीतिक अनुभव के बावजूद सभी भारतीयों को यह बिना किसी भेदभाव प्राप्त हो गया।

7. **मौलिक अधिकार** – बिना अधिकारों के नागरिकों का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। संविधान निर्माता इस बात से अवगत थे। संविधान के भाग तीन में कुल छः मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। इन अधिकारों का दुरूपयोग नहीं हो, इसलिए इन सबके ऊपर युक्तियुक्त प्रतिबन्ध की व्यवस्था भी की गई है।

8. **नीति निर्देशक तत्व** – जो अधिकार व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं और जिन्हें संविधान निर्माता अधिकार बनाना चाहते थे, लेकिन संसाधनों की कमी के कारण उन्हें मूल अधिकार नहीं बनाया जा सकता था, उन्हें निर्देशक तत्वों में शामिल किया। राज्य के लिए इन तत्वों को लागू करना अनिवार्य नहीं है लेकिन यह राज्य के समक्ष आदर्श के रूप में रहेंगे और राज्य नीति निर्माण के समय इन तत्वों से निर्देशित होगा।

9. **संविधान के विभिन्न स्रोत** – वर्तमान में कोई भी संविधान मौलिक होने का दावा नहीं कर सकता। प्रत्येक संविधान किसी अन्य संविधान से प्रेरित होता है। भारतीय संविधान के कई प्रावधान भी दूसरे संविधानों से प्रेरित है। मौलिक अधिकारों की धारणा और स्वतंत्र व सर्वोच्च न्यायपालिका की धारणा अमेरिकी संविधान से प्रेरित है तो संसदात्मक व्यवस्था ब्रिटिश संविधान से ली गई है। गणतंत्र फ्रांसिसी संविधान से लिया गया है, जबकि नीति निर्देशक तत्व आयरलैण्ड से प्रेरित है।

संविधान में मौलिक अधिकार

अधिकार व्यक्ति के विकास के वे दावे होते हैं, जिन्हें समाज और राज्य स्वीकार करता है, जब उन अधिकारों का वर्णन देश के संविधान में हो और जिनको न्यायपालिका द्वारा "न्यायिक सुरक्षा" प्राप्त हो, तब ऐसे अधिकार मौलिक अधिकार कहलाते हैं। मौलिक अधिकारों का वर्णन लोकतांत्रिक संविधान की प्रमुख विशेषता होती है, भारतीय संविधान निर्माता इसके बारे में सचेत थे। संविधान निर्माण के लिए गठित विभिन्न समितियों में एक मौलिक अधिकारों से संबंधित समिति भी थी। संविधान निर्माता चाहते थे कि इन अधिकारों में भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा एवं वैदिक काल से इस देश के लोगों द्वारा संजोए आधारभूत मूल्यों का समावेश हो, इसलिए मूल अधिकारों वाले भाग पर कुल 38 दिनों तक चर्चा हुई। डॉ. एस. राधाकृष्णन ने मूल अधिकारों को हमारी भावना के साथ किया गया वादा तथा सभ्य विश्व के साथ की गई संधि कहा था। वास्तव में मौलिक अधिकारों द्वारा राष्ट्र की एकता व अखण्डता की सुरक्षा के साथ जनता के हितों की रक्षा के कठिन कार्य को करने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि इन अधिकारों का जितना विस्तृत वर्णन भारतीय संविधान में है, उतना व्यापक वर्णन विश्व के और किसी भी देश के संविधान में नहीं है।

भारतीय संविधान के भाग–3 में अनुच्छेद 12 से लेकर 35 तक के मौलिक अधिकारों का वर्णन है। मूल रूप से कुल सात मौलिक अधिकार प्रदत्त थे, लेकिन 44वें संविधान संशोधन 1978 द्वारा "सम्पत्ति के अधिकार" को मौलिक अधिकारों की श्रेणी से हटाकर कानूनी अधिकार बनाने के कारण वर्तमान में कुल 6 मौलिक अधिकार हैं, यथा–

1. **समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)** – संविधान निर्माता समाज में व्याप्त असमानताओं के प्रति सचेत थे। वे जानते थे कि जब तक इन असमानताओं का अन्त नहीं किया जाएगा, तब तक स्वतंत्रता के अधिकार का कोई औचित्य नहीं होगा, इसलिए उन्होंने समानता के अधिकार को पहला मौलिक अधिकार बनाया। समानता के अधिकार के अनुसार किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जा सकता। राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के कारण

भेदभाव नहीं करेगा तथा दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघरों के उपयोग पर उपर्युक्त में से किसी कारण से पाबन्दी नहीं लगाई जा सकती। सरकारी पदों पर नियुक्ति के बारे में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किया गया है। धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग आदि के आधार पर किसी नागरिक को किसी सरकारी सेवा या पद के लिए अयोग्य नहीं समझा जाएगा लेकिन अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं आदि के लिए विशेष प्रावधान किए जा सकते हैं, जिनमें आरक्षण भी शामिल है। इसके अलावा समानता के अधिकार में ही अस्पृश्यता अथवा छुआछूत का अन्त कर उसे दण्डनीय अपराध बनाया गया है और सभी तरह की उपाधियों का अन्त कर दिया गया, जिससे कि नागरिकों में किसी तरह की असमानता प्रकट नहीं हो सके। केवल सैनिक वीरता व विद्या कौशल के लिए सम्मान रूप में परमवीर चक्र, महावीर चक्र, भारत रत्न, पदम सम्मान आदि दिए जा सकते हैं।

इस तरह समानता के अधिकार में संविधान न केवल कानूनी समानता अपितु सामाजिक समानता की स्थापना पर भी जोर देता है, जिससे कि एक समरस समाज की स्थापना की जा सके।

2. **स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22)**– समानता के अधिकार के बाद संविधान स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है, जिससे कि नागरिक अपने व्यक्तित्व का सर्वोत्तम विकास कर सके। देश के सभी नागरिकों को विचार अभिव्यक्ति करने की, शान्तिपूर्ण व बिना शस्त्रों के सम्मेलन करने की, किसी तरह का संगठन बनाने की, भारत में कहीं पर भी घुमने–फिरने की और निवास करने की तथा कोई भी पेशा, नौकरी, व्यवसाय आदि आजीविका की स्वतंत्रता प्राप्त है लेकिन इन सारी स्वतंत्रताओं पर युक्तियुक्त अथवा उचित प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं। भाषण की स्वतंत्रता का अर्थ किसी का अपमान करना, न्यायालय की अवमानना करना या सदाचार और नैतिकता का उल्लंघन करना नहीं है। व्यक्ति समाज के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ होता है, इसलिए उसको इसी सीमा तक स्वतंत्रता है कि दूसरे लोगों की स्वतंत्रता में किसी तरह की बाधा नहीं पहुँचे।

संविधान यह अधिकार भी प्रदान करता है कि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दोषी नहीं ठहराया जा सकता, जब तक कि उसने ऐसा कार्य करते समय किसी प्रचलित विधि का अतिक्रमण नहीं किया हो। किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दुबारा दण्डित नहीं किया जा सकता। इसी तरह किसी व्यक्ति को अपने विरूद्ध गवाही के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

मौलिक अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण अधिकार का वर्णन अनुच्छेद 21 में है, जो प्राण और देहिक स्वतंत्रता अर्थात् जीवन का अधिकार प्रदान करता है, जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को उसके प्राण या देहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जा सकता है। 86वें संविधान संशोधन, 2002 के द्वारा अनुच्छेद 21–क में जीवन के अधिकार में शिक्षा के अधिकार को शामिल करते हुए कहा गया कि राज्य छः वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा। इसके अतिरिक्त यह भी स्वतंत्रता प्रदान की गई है कि किसी व्यक्ति को कैद किया गया है तो उसे शीघ्र ही गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराना होगा। उसे अपनी इच्छा के किसी वकील की सहायता लेने से भी नहीं रोका जा सकता। पुलिस का कर्त्तव्य है कि वह बन्दी व्यक्ति को 24 घण्टे के अन्दर ही न्यायालय में प्रस्तुत करें।

3. **शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23, 24)** – कोई व्यक्ति राज्य अथवा किन्हीं दूसरे व्यक्तियों के शोषण का शिकार नहीं हो, इसलिए संविधान शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान करता है। इसके अनुसार मानव के दुर्व्यवहार, बेगार प्रथा और जबरन श्रम पर रोक लगाई गई है। चौदह वर्ष से कम आयु के लड़के–लड़कियों को किसी कारखाने, खान या अन्य खतरनाक कार्यों में लगाने पर रोक लगाकर बाल श्रम का अन्त कर दिया गया है।

4. **धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)** –

धर्म भारतीय समाज का संवेदनशील मुद्दा रहा है। मध्यकालीन भारत का इतिहास गवाह है कि शासकों के धर्म

से अलग किसी धर्म को मानने वालों को या तो मरवा दिया जाता था या फिर शासक का धर्म स्वीकार करने को मजबूर किया जाता था। अतः संविधान निर्माताओं ने धर्म व अन्तःकरण के अधिकार को मौलिक अधिकारों में स्थान दिया है। सभी व्यक्तियों को धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार दिया गया है लेकिन लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के आधार पर इस पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। इसी तरह यह किसी के धर्मान्तरण का अधिकार भी प्रदान नहीं करता है। सेवा, चिकित्सा, शिक्षा के द्वारा अथवा किसी को बहला–फुसलाकर धर्म परिवर्तन करवाने के प्रयासों को न्यायपालिका कई बार गैर–संवैधानिक बता चुकी है।

इसके साथ–साथ धार्मिक कार्यों के प्रबन्धन के लिए धार्मिक संस्थाओं जैसे मंदिर, मठ, गुरूद्वारा आदि की स्थापना करने के अधिकार को भी मौलिक अधिकार बनाया गया है। यह प्रावधान भी किया गया है कि सरकार की सहायता से पोषित किसी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती।

5. **संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29, 30)** भारतीय संविधान ने यह एक अनुपम व्यवस्था की है कि मौलिक अधिकारों में भी संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार अल्पसंख्यक वर्ग के हितों की सुरक्षा करता है। इसके अनुसार नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा। साथ ही धर्म और भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और संचालन का अधिकार होगा।

6. **संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32) –** केवल संविधान में अधिकारों का वर्णन करना ही पर्याप्त नहीं है अपितु ऐसी व्यवस्था करना भी आवश्यक है कि अधिकारों को लागू किया जा सके एवं उनका उल्लंघन नहीं हो सके। संवैधानिक उपचारों का अधिकार वह साधन है जो अधिकारों की सुरक्षा करता है। इसके अन्तर्गत हर नागरिक को यह अधिकार है कि वह मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय में जा सकता है। न्यायालय मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए पाँच तरह के प्रादेश या रिट जारी करता है – बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण रिट। इसके महत्व को बताते हुए डॉ. अम्बेडकर ने इसे 'संविधान का ह्रदय व आत्मा' की संज्ञा दी थी।

राज्य के नीति–निर्देशक तत्व

संविधान के भाग चार में अनुच्छेद 36 से 51 तक नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन है। आयरलैण्ड के संविधान से प्रेरित यह भाग, भारत को लोक कल्याणकारी राज्य बनाता है। जहां मौलिक अधिकार व्यक्तिगत विकास के साधन हैं, वहीं निर्देशक तत्व सामूहिक सामाजिक उन्नति के साधन भी है। इन निर्देशक तत्वों में ऐसी बातों का समावेश किया है, जिनके लागू होने पर लोगों का सामाजिक–आर्थिक विकास हो सकेगा। इन तत्वों को लागू करने के लिए राज्य को विशाल आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता होगी, इसलिए भावी सरकारों के लिए इन तत्वों को लागू करवाना बाध्यकारी नहीं बनाया गया है अर्थात् इनके लागू नहीं होने की स्थिति में न्यायालय की शरण नहीं ली जा सकती। इस तरह निर्देशक तत्व 'अवाद योग्य' हैं, जबकि मौलिक अधिकार 'वाद योग्य' है। वास्तव में, यह तत्व राज्य के कर्त्तव्य है, राज्य के लिए आदर्श के रूप में हैं, राज्य अपनी नीतियों का निर्माण इस तरह से करें कि अधिकाधिक तत्वों को लागू किया जा सके। संविधान में ऐसी नीतियों की एक निदेशक सूची रखी गई, जिन्हें देखने से स्पष्ट होता है कि यह ऐसे अधिकार हैं, जो नागरिकों को मौलिक अधिकारों के अलावा मिलने चाहिए।

सरकार ने कुछ निर्देषक तत्वों को लागू करने का प्रयास किया है। कई कारखाना कानूनों का निर्माण कर एवं न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण कर श्रमिकों के कल्याण का प्रयास किया है। कुटीर एवं लघु उद्योगों के प्रोत्साहन के लिए भी सरकारों ने अनेक कदम उठाए हैं। सरकार ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए कई कल्याणकारी कार्य किए हैं। महिलाओं के स्वास्थ्य एवं प्रसूति सहायता के बारे में भी सरकार ने अनेक प्रावधान किए है। नीति निर्देशक तत्वों को लागू करने के प्रयास के तहत शिक्षा के

अधिकार को लागू किया गया है। पूरे देश में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा देकर लागू किया गया है। कुछ सीमा तक नरेगा योजना के द्वारा काम के अधिकार की भी गारण्टी दी गई है। स्कूली बच्चों के लिए दोपहर के भोजन की व्यवस्था कर उनके पोषण स्तर को ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है। सरकार ने सार्वजनिक बीमा योजना को आम व्यक्ति तक पहुँचाने के प्रयास कर तथा अधिक से अधिक लोगों को बैंक खातों से जोड़कर उन्हें सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा देने के प्रयास भी किए हैं। लेकिन अभी तक ऐसे अनेक निर्देशक तत्व भी है, जिनकी ओर सरकारों का पूरा ध्यान नहीं गया है।

स्त्री व पुरूष को आज भी अनेक क्षेत्रों में समान कार्य के लिए समान वेतन नहीं दिया जा रहा है। आय की असमानता कम होने की बजाय और अधिक हो रही है। संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य को निर्देशित किया गया है कि "राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता की स्थापना करने का प्रयास करेगा।" अर्थात् देश के सभी नागरिक अपने सामाजिक जीवन अर्थात् विवाह, तलाक, सम्पत्ति, उत्तराधिकार के नियम आदि में एक जैसे कानूनों से शासित होंगे तथा इन सभी के लिए राज्य को कानून बनाने का अधिकार होगा लेकिन संविधान के लागू होने के इतने वर्ष बीत जाने के बावजूद अभी तक हम समान नागरिक संहिता की स्थापना नहीं कर पाए हैं। अलग–अलग धर्मो के अपने निजी कानून अभी भी लागू है। कई प्रकरणों में न्यायालय के आग्रह के बावजूद भी हम ऐसा नहीं कर पाये हैं।

इसी तरह यह भी निर्देशक तत्वों में शामिल है कि राज्य गायों, बछड़ों और दुधारू पशुओं के वध पर रोक लगाने के कदम उठाएगा। गाय को भारतीय समाज का बड़ा भाग न केवल पवित्र अपितु माँ के समान समझता है और गाय का न केवल धार्मिक महत्व है अपितु इसका आर्थिक रूप से भी महत्वपूर्ण योगदान है। बावजूद इसके देश में अभी तक गौ हत्या पर पूरी तरह रोक नहीं लगाई गई है। राज्य का यह भी कर्तव्य निर्धारित किया है कि वह कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक आधार पर संगठित करे। स्पष्ट है सरकार को इस ओर भी काफी प्रयास करने होंगे।

नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य

अधिकारों के साथ स्वाभाविक रूप से कर्त्तव्य की भावना जुड़ी होती है। कर्त्तव्यों के बिना अधिकारों का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। यद्यपि जब भारत का संविधान लागू हुआ, उस समय मौलिक अधिकारों के रूप में नागरिक अधिकारों का तथा निर्देशक तत्व के रूप में राज्य के कर्त्तव्यों का तो समावेश था, लेकिन नागरिक कर्त्तव्य संविधान में शामिल नहीं थे। हालांकि भारतीय परम्परा, मिथकों, धर्म, व्यवस्था और संस्कार परम्परा में कर्त्तव्य भावना सदैव विद्यमान रही है। "माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः" के द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए तथा "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" द्वारा राष्ट्र की एकता व अखण्डता के प्रति हमारे कर्त्तव्य बोध को स्पष्ट किया गया है।

42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में भाग 4–क व अनुच्छेद 51–क के द्वारा नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों को संविधान में स्थान दिया गया है। हालांकि कर्त्तव्यों के उल्लंघन के आधार पर नागरिकों को दण्डित किया जा सकता है अथवा नहीं, इसके बारे में संविधान मौन है। अनुच्छेद 51–क भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य यह होगा कि वह–

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय चिन्ह, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को ह्रदय में संजोये रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की सप्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखे।
4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।
6. हमारी समन्वित संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

7. प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है, रक्षा करे और उसका संवर्द्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।
11. यदि माता–पिता या संरक्षक है, छः वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. संविधान किसी भी देश के शासन संचालन एवं राज्य और सरकार के आपसी संबंधों को निर्धारित करने वाला मौलिक एवं आधारभूत दस्तावेज होता है। अमेरिका के संविधान को विश्व का पहला लिखित संविधान माना जाता है।
2. भारतीय संविधान का निर्माण केबिनेट मिशन की योजना से हुआ था। संविधान सभा में निर्वाचित और मनोनीत दोनों तरह के सदस्य थे। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को हुई थी। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष थे।
3. संविधान निर्माण हेतु गठित विभिन्न समितियों में सबसे महत्वपूर्ण 'प्रारूप समिति' थी। इसके अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे। संविधान निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण डॉ. अम्बेडकर को 'भारतीय संविधान का जनक' माना जाता है।
4. भारतीय संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है। वर्तमान में इसमें प्रस्तावना के अलावा 12 अनुसूचियाँ, 22 भाग एवं 395 अनुच्छेद है।
5. भारतीय संविधान देश को संघात्मक, संसदात्मक, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है।
6. संविधान नागरिकों के लिए अनेक मौलिक अधिकारों की व्यवस्था करता है, जिनमें समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धर्म का अधिकार, संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार व संवैधानिक उपचारों का अधिकार शामिल है।
7. नीति निर्देषक तत्व राज्य के लिए नैतिक कर्त्तव्यों का कार्य करते है। इनके लागू होने से नागरिकों का सामाजिक–आर्थिक कल्याण होगा तथा राज्य लोक कल्याणकारी राज्य होगा।
8. 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा भाग 4–अ व अनुच्छेद 51–क के तहत नागरिकों के मूल कर्तव्य जोड़े गये है। वर्तमान में इनकी संख्या 11 है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय संविधान का निर्माण कौनसी योजना से हुआ?
   (क) माउण्टबेटन (ख) वेवेल
   (ग) केबिनेट (घ) क्रिप्स
2. संविधान सभा की पहली बैठक कब हुई?
   (क) 9 दिसम्बर, 1946 (ख) 11 दिसम्बर, 1946
   (ग) 13 दिसम्बर, 1946 (घ) 6 दिसम्बर, 1946
3. भारत का संविधान कब अंगीकृत हुआ?
   (क) 26 जनवरी, 1950 (ख) 26 नवम्बर, 1949
   (ग) 30 जनवरी, 1948 (घ) 15 अगस्त, 1947
4. भारतीय नागरिकों को कितने मौलिक अधिकार हैं?
   (क) 7 (ख) 8 (ग) 5 (घ) 6
5. समान नागरिक संहिता का वर्णन कौनसे अनुच्छेद में है?
   (क) अनुच्छेद 44 (ख) अनुच्छेद 48
   (ग) अनुच्छेद 49 (घ) अनुच्छेद 50

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान निर्माण में कितना समय लगा ?
2. संविधान सभा में कुल कितने सदस्य थे ?
3. डॉ. अम्बेडकर ने संवैधानिक उपचारों के अधिकार को क्या कहा?
4. मूल कर्त्तव्य कब शामिल किए गए?
5. संविधान के कुल कितने अनुच्छेद हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. समानता के अधिकार पर टिप्पणी लिखिए।
2. कोई चार नीति निर्देशक तत्व बताइए।
3. किन्हीं चार मौलिक अधिकारों का वर्णन कीजिए।
4. संविधान की तीन विशेषताएँ बताइए।
5. स्वतंत्र न्यायपालिका का क्या महत्व है।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान सभा का वर्णन कीजिए।
2. स्वतंत्रता के अधिकार पर टिप्पणी कीजिए।
3. किस तरह नीति निर्देशक तत्व राज्य को लोक कल्याणकारी राज्य बताते हैं?
4. नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(1) ग, (2) क, (3) ख, (4) घ, (5) क

अध्याय 10

स्थानीय स्वशासन

स्थानीय स्तर के विकास में स्थानीय व्यक्तियों की सहभागिता बढ़ाने हेतु भारत में स्थानीय स्वशासन संस्थाएं स्थापित की गई। स्थानीय स्वशासन देश की शासन व्यवस्था में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सशक्त माध्यम है। सन् 1992 में 73वें और 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन्हें संवैधानिक दर्जा दिया गया है।

अर्थः स्थानीय स्वशासन से आशय स्थानीय स्तर के उस शासन से है, जिसमें शासन का संचालन उन संस्थाओं द्वारा चलाया जाता है जो जनता द्वारा चुनी जाती हैं तथा जिन्हें केन्द्रीय या राज्य शासन के नियत्रंण में रहते हुए नागरिकों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ अधिकार एवं दायित्व प्राप्त होते हैं। स्थानीय स्वशासन का आधार यही है कि स्थानीय लोग अपनी समस्याओं और आवश्यकताओं को सबसे अच्छी तरह जानते हैं और उन्हें भली–भाँति हल कर सकते हैं।

ब्रिटेनिका शब्दकोश के अनुसार स्थानीय स्वशासन का अर्थ है, ''पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबन्धित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उसको लागू करने वाली सत्ता''। स्थानीय स्वशासन को विभिन्न देशों में अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है – भारत में स्थानीय स्वशासन, फ्रान्स में स्थानीय प्रशासन (प्रीफेक्ट व्यवस्था) एवं अमेरिका में म्युनिसिपल शासन आदि। स्थानीय स्वशासन के कुछ दोष हैं। इसमें संकुचित स्थानीयता के कारण संकीर्ण एवं स्वार्थमय प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। शासकीय उत्तरदायित्व का विभाजन, पदाधिकारियों की बड़ी संख्या एवं इसके परिणामस्वरूप व्यय वृद्वि इत्यादि कारणों से शासन व्यवस्था में अक्षमता एवं अपव्ययता आ जाती हैं।

स्थानीय स्वशासन की सफलता के लिए जनता में उच्च नैतिक चरित्र, ईमानदारी तथा सार्वजनिक कर्त्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना होनी चाहिए। जनता द्वारा अपने मताधिकार का प्रयोग जातीय एवं धार्मिक भावना के आधार पर नहीं बल्कि उम्मीदवार की योग्यता के आधार पर करना चाहिए। केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन के नियंत्रण एवं स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की स्वतत्रंता के बीच सामन्जस्य में ही स्थानीय स्वशासन की सफलता का रहस्य छुपा हुआ है।

प्राचीन भारत में गणतंत्रीय एवं स्थानीय स्वशासन व्यवस्था

स्थानीय स्वशासन की भारत में परम्परा रही है। पंचायत शब्द, स्थानीय क्षेत्र के लोगों द्वारा चयनित पाँच व्यक्तियों के एक समूह की प्रणाली को बताता है जिसके द्वारा असंख्य ग्रामीण जनता को शासित किया जाता था।पंचायत स्वशासन की मनोवृत्ति को इंगित करता है। इतिहास के विभिन्न काल खण्डों में शासकों के उत्थान–पतन तथा सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन के उपरान्त भी इन संस्थाओं का प्रभाव अब तक किसी न किसी रूप में बना हुआ है। प्राचीन भारत में राजशाही शासन प्रणाली के साथ–साथ गणतन्त्रीय व्यवस्था भी प्रवर्तित थी, जिसके अन्तर्गत राजा का चयन स्थानीय समुदाय के द्वारा किया जाता था। भारतीय इतिहास का प्रारम्भिक साहित्य (बौद्ध व जैन ग्रन्थ) इस तथ्य को रेखांकित करता है कि उस समय छोटे–छोटे गणराज्य जैसे काशी, कौशल, अंग, कम्बोज, कुरू, लिच्छवी, मल्ल, वैशाली, मत्स्य, विराट, शिवि एवं जांगल प्रदेश इत्यादि होते थे।

वैदिक युग में स्थानीय स्वशासन प्रचलित था। ऋग्वेद में 'सभा' एवं 'समिति' नामक दो संस्थाओं का उल्लेख है जो राजा पर नियंत्रण रखती थी। महाभारत में शान्ति पर्व में अच्छे प्रशासन के लिए राज्य को अनेक इकाइयों यथा– एक, दस, बीस, सौ एवं हजार ग्रामों की अलग–अलग इकाइयों में विभाजित किया गया था। ग्राम सबसे छोटी इकाई थी जिसका प्रबंध 'ग्रामिक' नामक अधिकारी करता था। दस, बीस, सौ एवं हजार ग्रामों का अधिकारी क्रमशः दशप, विशपति, शतपाल एवं सहस्रपति कहलाता था। सिन्धु घाटी सभ्यता में सड़कों एवं नालियों की सुनियोजित व्यवस्था से यह पता चलता है कि तत्कालीन नगरों में स्थानीय शासन नगरों की समुचित व्यवस्था करता था।

कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में स्थानीय स्वशासन के लिए राज्य के विकेन्द्रीकरण का समर्थन करते हुए जो संरचना प्रस्तुत की, उसमें जनपद प्रशासन को ग्राम, संग्रहण (10 गाँव) कार्वटिक (200गाँव) द्रोणमुख (400 गाँव) व स्थानीय (800 गाँव) में विभक्त किया गया था। कौटिल्य ने नगरीय संस्थाओं को 'पुर' बताते हुए 'स्थानिक'अधिकारी तथा ग्रामीण क्षेत्र में 'गोप' (सरंपच) के समन्वय में स्थानीय स्वशासन का स्वरूप निर्धारित किया था। प्राचीन काल में दक्षिण भारत में स्थानीय स्वशासन का सबसे अच्छा उदाहरण चोल शासन में देखने को मिलता है। चोल शासन के दौरान गाँवों में 'नाडु परिषदें' कार्यरत थी।

इस तरह प्राचीन भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की मौलिक भावना स्थानीय स्वशासन एवं गणतन्त्रीय व्यवस्था प्रशासन का प्रमुख अंग रही हैं। सिंधु घाटी सभ्यता काल तथा वैदिककाल से लेकर महाभारत, अर्थशास्त्रकालीन समयावधि, तक एवं उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक के राज्यों में स्थानीय स्वशासन व गणतन्त्रीय व्यवस्था का कमोबेश अपने–अपने स्वरूप में प्रचलन रहा था।

भारत में स्थानीय स्वशासन की संरचना दो प्रकार की है– पहली नगरीय स्थानीय स्वशासन व दूसरी ग्रामीण स्थानीय स्वशासन। ग्रामीण स्थानीय स्वशासन को पंचायती राज व्यवस्था के नाम से भी जाना जाता हैं।

राजस्थान में स्थानीय स्वशासन का विकास

आधुनिक राजस्थान के गठन के पूर्व भी राजस्थान की विभिन्न देशी रियासतों यथा–बीकानेर (1929), जयपुर (1938), सिरोही (1943) भरतपुर (1944) व करौली (1949) में पंचायती राज कानून बनाये गये थे।

राजस्थान पंचायती राज की स्थापना में अग्रणी राज्य रहा है। संयुक्त राजस्थान द्वारा 1948 में पंचायती राज अध्यादेश लागू किया गया। 1949 में राजस्थान निर्माण के बाद मुख्य पंचायत अधिकारी के अधीन एक पृथक पंचायत विभाग स्थापित किया गया। राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 जो 1 जनवरी, 1954 से लागू हुआ, के द्वारा पंचायतों का पुनर्गठन किया गया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार द्वारा गठित बलवंतराय मेहता समिति द्वारा अनुशंसित त्रि–स्तरीय योजना को लागू करने के लिए राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम,1959 लागू किया गया।

2 अक्टूबर 1959 को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले से आधुनिक त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ करते हुए इसे एक ऐतिहासिक कदम बताया। इस तरह देश में त्रि–स्तरीय पंचायती राज को लागू करने वाला राजस्थान प्रथम राज्य बन गया। राजस्थान के नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय प्रशासन के लिए राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 बनाया गया।

राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं की कार्य प्रणाली में सुधार सम्बन्धी सुझाव देने के लिए समय–समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया गया। इनमें हरिश्चन्द्र माथुर समिति (1963), सादिक अली समिति (1963), गिरधारीलाल व्यास समिति (1975), हरलालसिंह खर्रा समिति (1990), अरूण कुमार समिति (1996), शिवचरण माथुर आयोग (2000) एवं गुलाबचन्द कटारिया मंत्रीमण्डलीय उप समिति (2004–05) इत्यादि प्रमुख समितियाँ रही है। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के अनुसरण में राजस्थान सरकार ने राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 लागू करके एवं 1994 ई. में राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 ई. में संशोधन करके स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को नवीन रूप दिया गया। इनमें महिलाओं एवं समाज के वंचित वर्गों का अधिक प्रतिनिधित्व एवं सहभागिता सुनिश्चित हुई है।

नगरीय स्थानीय स्वशासन के लिए वर्तमान में राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 2009 लागू है।

ग्रामीण स्थानीय स्वशासन

ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ विभिन्न स्तरों पर अपना कार्य करती है, उनका वर्णन इस प्रकार हैः–

ग्राम सभा

ग्राम सभा प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की अवधारणा को साकार करने वाली संस्था है। ग्राम पंचायत के समस्त वयस्क नागरिकों के समूह को ग्राम सभा कहा गया है। अठारह वर्ष आयु प्राप्त प्रत्येक नागरिक जिसका नाम पंचायत क्षेत्र की मतदाता सूची में दर्ज है, वह ग्राम सभा का सदस्य माना जाता है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता दी गई है। राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 के अध्याय 2क में ग्राम सभा के बारे में विस्तृत ब्यौरा दिया गया है। प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए एक ग्राम सभा होगी। ग्राम सभा की बैठकों की अध्यक्षता सरपंच अथवा उसकी

अनुपस्थिति में उप सरपंच द्वारा तथा दोनों की अनुपस्थिति में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्वाचित ग्राम सभा के सदस्य द्वारा की जायेगी। ग्राम सभा की किसी बैठक के लिए गणपूर्ति कुल संख्या के दशांश अर्थात दसवें हिस्से से होगी।

ग्राम सभा की प्रत्येक वर्ष में कम से कम दो बैठकें होंगी। पहली बैठक वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही में होगी जिसमें निम्न मुख्य विषयों पर विचार–विमर्श किया जाएगाः–

क. पूर्ववर्ती वर्ष के लेखों का वार्षिक विवरण

ख. वित्तीय वर्ष की अवधि के लिए प्रस्तावित कार्यक्रम

ग. पिछली संपरीक्षा रिपोर्ट और उसके लिए दिये गये उत्तर

दूसरी बैठक वित्तीय वर्ष की अन्तिम तिमाही में होगी जिसमें निम्न मुख्य विषयों पर विचार–विमर्श होगाः–

क. वर्ष के दौरान व्यय का विवरण

ख. वर्ष के लिए किये जाने वाले भौतिक एवं वित्तीय कार्यक्रम

ग .प्रथम तिमाही बैठक में तय प्रस्तावित कार्यक्रमों मे ंपरिवर्तन सम्बन्धी प्रस्ताव

ग्राम पंचायत का बजट एवं कर प्रस्ताव

ग्राम सभा के सदस्यों की कुल संख्या के 1/10 से अधिक सदस्यों या पंचायत समिति या जिला परिषद या राज्य सरकार द्वारा अपेक्षित किए जाने पर ग्राम सभा की बैठक अपेक्षा किए जाने के 15 दिवस के भीतर बुलाई जायेगी। सम्बन्धित पंचायत समिति का विकास अधिकारी या उसके द्वारा निर्देशित व्यक्ति ग्राम सभा की सभी बैठकों में उपस्थित होगा। पंचायत सचिव बैठकों का कार्यवृत्त लिखेगा जिसे बैठक की समाप्ति पर पढ़कर सुनाया जायेगा व उपस्थित ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा अनुमोदित एवं हस्ताक्षरित किया जायेगा। इस अधिनियम के अनुसार सौंपे गये विषयों से सम्बन्धित कोई संकल्प बैठक में उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से पारित होने चाहिए। ग्राम पंचायत अपने क्रियाकलापों के लिए ग्राम सभा के प्रति जवाबदेह होती हैं ।

ग्राम पंचायत

राज्य सरकार की अधिसूचना के माध्यम से गाँव और गाँवों के समूह से बने प्रत्येक पंचायत सर्किल के लिए एक ग्राम पंचायत होती हैं। ग्राम पंचायत को ग्राम सभा की कार्यकारी समिति भी कहा जा सकता है। प्रत्येक ग्राम पंचायत एक निगमित निकाय की तरह काम करेगी, जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर होगी।

राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 के अनुसार राज्य में तीन हजार तक की जनसंख्या वाली पंचायत में एक सरपंच और नौ वार्ड पंच होते हैं। तीन हजार से अधिक जनसंख्या पर अतिरिक्त प्रत्येक हजार अथवा उसके अंश पर दो अतिरिक्त वार्ड पंच होते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी ग्राम पंचायत की जनसंख्या 4600 है तो इसमें तेरह वार्ड पंच व एक सरंपच होगा। प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए एक सरपंच तथा ग्राम पंचायत के प्रत्येक वार्ड के लिए एक वार्ड पंच को जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किया जाता है। पंच व सरपंच का चुनाव वही व्यक्ति लड़ सकता है जिसकी आयु 21 वर्ष से कम न हो तथा उस पंचायत क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता हो। ग्राम पंचायत का कार्यकाल, पंचायत समिति एवं जिला परिषद की भांति 5 वर्ष रखा गया है। राजस्थान में इस समय कुल 9900 ग्राम पंचायतें हैं।

ग्राम पंचायतों में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लिए नियमानुसार स्थान चक्रानुक्रम के आधार पर आरक्षित होंगें। महिलाओं के लिए स्थान का आरक्षण वर्गवार 50 प्रतिशत होगा।

स्थायी समिति पंचायत के काम में मदद करने वाली एक संरचना हैं। राजस्थान में ग्राम पंचायत की स्थायी समितियों में प्रशासनिक एवं स्थापना, वित्त एवं कराधान, विकास एवं उत्पादन कार्यक्रम, शिक्षा एवं सामाजिक सेवा व सामाजिक न्याय इत्यादि विषयों से सम्बन्धित समितियां होती हैं। इन स्थायी समितियों का गठन इस प्रकार किया जाता है कि ग्राम पंचायत के प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि को कम से कम एक समिति में स्थान जरूर मिल जाये।

कोई पंचायत अपने कार्य निष्पादन के लिए जितनी बार आवश्यक हो, उतनी बार बैठक कर सकती है किन्तु पन्द्रह दिन में कम से कम एक बार पंचायत के निर्धारित स्थान पर बैठक बुलाया जाना आवश्यक है। बैठकों में गणपूर्ति हेतु कुल सदस्यों की एक तिहाई संख्या निर्धारित की गई है। पंचायत की बैठकों की अध्यक्षता सरंपच और उसकी अनुपस्थिति में उप सरंपच तथा दोनों की अनुपस्थिति में सदस्य अपने में से ही किसी एक को अध्यक्षता के लिए निर्वाचित करेंगे। पंचायत की बैठक में सभी निर्णय उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किये जाते हैं। बैठक की अध्यक्षता कर रहे सरपंच या उप सरपंच को मतों के बराबर होने की स्थिति में निर्णायक

मत देने का अधिकार है। ग्राम पंचायत के सरपंच और उप सरपंच को पद ग्रहण के दो वर्ष बाद ही अविश्वास प्रस्ताव द्वारा हटाये जाने का प्रावधान है। यह अविश्वास प्रस्ताव निर्वाचित सदस्यों के तीन चौथाई बहुमत से पारित होना चाहिए।

ग्राम पंचायत के कार्यः राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 की प्रथम अनुसूची में ग्राम पंचायत के लिए निर्धारित कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः–

1. **साधारण कार्य** : ग्राम पंचायत अपने क्षेत्र के विकास के लिए वार्षिक योजना एवं वार्षिक बजट तैयार करेगी, साथ ही प्राकृतिक आपदा में सहायता, लोक सम्पत्ति के अतिक्रमण को हटाना एवं गांव की आवश्यक सांख्यिकी तैयार करने सम्बन्धी कार्य करेगी।

2. **प्रशासनिक कार्य** :ग्राम पंचायत द्वारा पंचायत क्षेत्र में परिसरों का संख्यांकन, जनगणना, कृषि उपज उत्पादन वृद्धि कार्यक्रम, ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए विवरण, केन्द्रीय एवं राज्य सरकार प्रदत्त सहायता के सही उपयोग के लिए सक्षम प्रणाली, सर्वेक्षण, खलिहानों व चारागाहों व सामुदायिक भूमि पर नियत्रंण, बेरोजगारी के आंकड़े, जन्म–मृत्यु व विवाह पंजीयन और पंचायत अभिलेख इत्यादि विषयों का प्रशासनिक कार्य किया जाता है।

3. **अन्य कार्य** : ग्राम पंचायत द्वारा कृषि विस्तार सहित कृषि और बागवानी विकास, पशुपालन व डेयरी, कुक्कुट पालन व मत्स्यपालन, सामाजिक एवं फार्म वानिकी व लघु वन उपज, ईंधन व चारा, लघु सिंचाई, खादी व ग्रामीण कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवासन, पेयजल, सड़कें, ग्रामीण विद्युतीकरण, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, प्राथमिक व प्रौढ़ व अनौपचारिक शिक्षा तथा पुस्तकालय, सांस्कृतिक क्रियाकलाप व बाजार मेलें, ग्रामीण स्वच्छता व लोक स्वास्थ्य व परिवार कल्याण, महिला व बाल विकास, कमजोर वर्गों का कल्याण, लोक वितरण व्यवस्था, सामुदायिक सम्पत्तियों, धर्मशालाओं, पोखरों, पार्किंग, बूचड़खानों, लोक उद्यान, खेल मैदान का निर्माण एवं रख–रखाव, शराब की दुकानों का विनियमन इत्यादि विषयों से सम्बन्धित कार्य भी किये जाते हैं।

पंचायत समिति

पंचायती राज की त्रि–स्तरीय सरंचना का मध्यवर्ती सोपान पंचायत समिति कहलाता है। राजस्थान में पंचायत समिति सहित सभी पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष है। राजस्थान में वर्तमान में 295 पंचायत समितियां कार्यशील हैं। राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 के अनुसार राज्य सरकार जिले के भीतर किसी भी स्थानीय क्षेत्र को एक खण्ड के रूप में घोषित कर सकेगी जिसके लिए एक पंचायत समिति होगी। प्रत्येक पंचायत समिति एक निगमित निकाय होगी जिसका शाश्वत उत्तराधिकार एवं एक सामान्य मुहर होगी।

प्रत्येक पंचायत समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगेः–

1. प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्य।
2. पंचायत समिति क्षेत्र से प्रतिनिधित्व करने वाले सभी विधानसभा सदस्य।
3. पंचायत समिति क्षेत्र की सभी ग्राम पंचायतों के सरपंच।

अधिनियम के अनुसार एक लाख तक की जनसंख्या वाली पंचायत समिति क्षेत्र में पन्द्रह निर्वाचन क्षेत्र तथा इससे अधिक प्रत्येक पन्द्रह हजार की जनसंख्या के लिए दो निर्वाचन क्षेत्र की वृद्धि होगी। पंचायत समिति के चुनावों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग तथा महिलाओं के लिए स्थान नियमानुसार सुरक्षित किये गये हैं तथा ये सभी आरक्षित किये गये स्थान चक्रानुक्रम से बारी–बारी से आवंटित किये जायेंगे। पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव का दायित्व राज्य निर्वाचन आयोग में निहित किया गया है। पंचायत समितियों के कार्य संचालन में सामान्यतया प्रधान, उप प्रधान, विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी एवं अन्य कर्मचारी होते हैं। प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के लिए एक प्रतिनिधि का चुनाव संबंधित निर्वाचन क्षेत्र के मतदाता करते हैं। बाद में पंचायत समिति के प्रादेशिक क्षेत्रों से निर्वाचित प्रतिनिधि अपने में से प्रधान व उपप्रधान का चुनाव करते हैं। 3/4 बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव द्वारा प्रधान व उप प्रधान को हटाने का अधिकार भी इन्हें प्राप्त है।

अधिनियम के प्रावधान के अनुसार पंचायत समिति अपने कार्य के संव्यवहार के लिए एक मास में कम से कम एक बार बैठक आयोजित करेगी। बैठक के लिए गणपूर्ति हेतु

सदस्यों की कुल संख्या का एक–तिहाई की उपस्थिति निश्चित की गई है। बैठक में सभी प्रश्नों का विनिश्चय, उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जायेगा। प्रत्येक बैठक की कार्यवाही कार्यवृत्त पुस्तिका में लिखी जायेगी।

पंचायत समिति के कार्यः अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में राज्य की पंचायत समितियों द्वारा किए जाने वाले निम्न मुख्य कार्यों का संकेत किया गया हैः–

1. साधारण कृत्य के अनुसार पंचायत समिति के लिए वार्षिक योजना एवं वार्षिक बजट तैयार करना तथा अधीनस्थ पंचायतों की वार्षिक योजनाओं पर विचार कर उन्हें समेकित करना।
2. कृषि विस्तार को सम्मिलित करते हुए कृषि कार्य;
3. भूमि सुधार एवं मृदा संरक्षण;
4. लघु सिंचाई एवं पेयजल;
5. गरीबी उन्मूलन;
6. पशुपालन, डेयरी एवं मत्स्य पालन;
7. ग्रामीण आवास;
8. प्राथमिक विद्यालयों सहित शिक्षा;
9. सड़कें, बाजार एवं मेलेः
10. स्वास्थ्य,महिला एवं कमजोर वर्गों का कल्याण;
11. सांख्यिकी, आपदा सहायता, सहकारिता एवं पुस्तकालय सम्बन्धित कार्य।

जिला परिषद

ग्रामीण स्थानीय स्वशासन अर्थात् पंचायती राज व्यवस्था की सर्वोच्च इकाई जिला परिषद है। प्रत्येक जिलें में एक जिला परिषद की व्यवस्था की गयी है। इसके सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता हैं। जिला परिषद ग्रामीण विकास की योजनाओं एंव कार्यक्रमों के निष्पादन में पर्यवेक्षकीय भूमिका निभाती है। जिला परिषद पंचायत समिति व ग्राम पंचायतों तथा दूसरी ओर राज्य सरकार के बीच कड़ी का काम करती है। जिला परिषद प्रत्येक तिमाही में कम से कम एक बैठक आयोजित करेगी तथा गणपूर्ति सदस्यों की कुल संख्या के एक–तिहाई सदस्यों से होगी। प्रत्येक बैठक की कार्यवाही कार्यवृत्त पुस्तक में मुख्य कार्यपालक अधिकारी की देखरेख में अभिलिखित की जायेगी।

जिला परिषद का गठन निम्न चार प्रकार के सदस्यों से मिलकर होता हैः–

(क) निर्धारित प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्य।

(ख) जिला परिषद क्षेत्र से निर्वाचित लोकसभा विधानसभा सदस्य।

(ग) जिला परिषद क्षेत्र से निर्वाचक के रूप में पंजीकृत राज्य सभा सदस्य।

(घ) जिला परिषद क्षेत्र की समस्त पंचायत समितियों के प्रधान।

उपर्युक्त (ख), (ग) और (घ) में निर्दिष्ट सदस्यों को जिला प्रमुख या उपजिला प्रमुख के निर्वाचन एवं उनके हटाये जाने के सिवाय, मत देने का अधिकार होगा।

चार लाख तक की जनसख्ंया के लिए किसी जिला परिषद क्षेत्र में सत्रह निर्वाचन क्षेत्र एवं उससे प्रत्येक अतिरिक्त एक लाख या उसके भाग की जनसख्ंया के लिए दो क्षेत्रों की बढ़ोतरी की जायेगी। इन निर्वाचन क्षेत्रों के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा महिलाओं के लिए नियमानुसार एवं चक्रानुक्रमानुसार आरक्षण होगा।

जिला परिषद के प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि का निर्वाचन संबंधित क्षेत्र के मतदाता करते हैं। बाद में प्रादेशिक क्षेत्रों के निर्वाचित प्रतिनिधि अपने में से जिला प्रमुख व उप जिला प्रमुख का चुनाव करते है। 3/4 बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव द्वारा जिला प्रमुख व उप जिला प्रमुख को हटाने का अधिकार भी इन्हें प्राप्त है। एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी, सहायक अभियन्ता, लेखा अधिकारी एंव अन्य कर्मचारी भी जिला परिषद के प्रशासन तंत्र के रूप में कार्यों को निष्पादित करते हैं। जिला परिषद चुनावों के आयोजन का दायित्व राज्य निर्वाचन आयोग में निहित है। प्रत्येक जिला परिषद, अधिनियम में विनिर्दिष्ट विषय समूह में से प्रत्येक के लिए 5 स्थायी समितियों का गठन करेगी। आवश्यकता होने पर अन्य विषयों के लिए भी समिति का गठन कर सकेगी। राज्य सरकार प्रत्येक जिला परिषद के लिए 5 सदस्यीय सतर्कता समिति का गठन कर सकती है जो सम्बधित जिला परिषद के कामकाज, योजनाओं और अन्य क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण करेगी।

जिला परिषद के कार्यः राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 की तृतीय अनुसूची के अनुसार जिला परिषद के कार्य इस प्रकार हैः–

1. साधारण कार्य के रूप में जिले के आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना व आगामी बिन्दुओं में सम्मिलित विषयों के संबंध में योजनाओं का समन्वित क्रियान्वयन करना।

2. कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं विकसित कृषि पद्धतियों एवं समुन्नत कृषि उपकरणों के उपयोग को बढावा देना तथा कृषि मेलों का आयोजन एवं कृषकों का प्रशिक्षण।

3. 2500 एकड़ तक के लघु सिचांई, भूजल स्रोत संरक्षण एवं जल–विभाजक विकास के कार्यक्रम व बागवानी के लिए फलों एव सब्जियों की खेती।

4. जिला परिषद व पंचायत समितियों के क्रियाकलापों से संबंधित आंकडों का प्रकाशन एंव अन्य सूचनाओं के साथ समन्वय व उपयोग;

5. ग्रामीण विद्युतीकरण को बढ़ावा देना व इसके लिए नये कनेक्शन एवं आपूर्ति का पर्यवेक्षण करना;

6. मृदा संरक्षण एवं सामाजिक वानिकी के कार्यक्रमों के लिए बंजर भूमि विकास एवं वृक्षारोपण इत्यादि कार्य;

7. पशु चिकित्सालय की व्यवस्था, महामारी एवं अन्य रोगों की रोकथाम का प्रयास, डेयरी उद्योग, कुक्कुट पालन, सुअर पालन व मत्स्य पालन को बढ़ावा देना;

8. घरेलू और कुटीर उद्योग के लिए पारम्परिक कुशल व्यक्तियों की पहचान एवं घरेलू उद्योग का विकास। कारीगरों एवं शिल्पकारों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं इसके लिए कच्चे माल की आवश्यकता की पूर्ति करना;

9. ग्रामीण सड़कों, ग्रामीण पुल इत्यादि का निर्माण एंव रख–रखाव तथा कार्यालय भवन का निर्माण व रख–रखाव के साथ–साथ सम्पर्क सड़कों की पहचान का कार्य;

10 सामुदायिक व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना और रख–रखाव, प्रतिरक्षीकरण और टीकाकरण के कार्यक्रम, परिवार कल्याण व मातृत्व व शिशु स्वास्थ्य क्रियाकलाप;

11.अनुसूचित जाति,अनुसूचित जनजाति व अन्य पिछड़ावर्ग के बच्चों को छात्रवृत्तियाँ, पुस्तकें इत्यादि के क्रय के लिए अनुदान व शिक्षा सुविधाओं का विस्तार करना;

12. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को प्रभावी रूप से संचालित करना तथा समाज सुधार सम्बन्धित विभिन्न क्रियाकलापों का संचालन तथा

13.उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना, प्रौढ़ शिक्षा एंव पुस्तकालय सुविधाओं का कार्य इत्यादि।

नगरीय स्थानीय स्वशासन

संसद द्वारा 1992 में पारित एवं एक जून 1993 से लागू 74 वें संविधान संशोधन द्वारा देश में नगरीय निकायों को संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया है। राजस्थान राज्य ने भी 74 वें संविधान संशोधन की मूल भावना एवं विशेषताओं को पहले से प्रचलित राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 की विभिन्न धाराओं में आवश्यक संशोधन करके 1994 में परिमार्जित एवं संशोधित रूप में लागू कर दिया गया। वर्तमान में नगरीय स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 2009 से शासित हैं। वर्तमान में राजस्थान में 7 नगर निगम, 34 नगर परिषद व 146 नगरपालिकाएं हैं। समय–समय पर संशोधित इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्य में कार्यरत नगरीय स्वशासन संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः–

नगर निगम

नगर निगम सर्वोच्च शहरी निकाय हैं। राजस्थान में 74 वें संविधान संशोधन की अपेक्षाओं के अनुरूप प्रत्येक बृहत्तर नगरीय क्षेत्रों में (जिसकी जनसंख्या 5 लाख से अधिक हो) में नगर निगम की स्थापना की जाती है। वर्तमान में राजस्थान के सभी 7 सम्भाग मुख्यालयों जयपुर, जोधपुर, कोटा, अजमेर, बीकानेर, उदयपुर एवं भरतपुर में नगर निगम गठित किया गया है। संगठनात्मक दृष्टि से जयपुर सबसे बड़ा नगर निगम हैं नगर निगम एक निगमित निकाय है जिसका शाश्वत उत्तराधिकार होता है। उसकी एक सामान्य मुहर होती है, वह निगमित नाम से वाद चला सकता हैं। नगर निगम का कार्यकाल भी पाँच वर्ष का होता हैं।

नगर निगम के आन्तरिक संगठन के अन्तर्गत परिषद, महापौर, उप महापौर, मुख्य कार्यकारी अधिकारी एवं निगम आयुक्त तथा समितियाँ होती हैं। राज्य सरकार नगर निगम को जनसंख्या के आधार पर प्रादेशिक निर्वाचक क्षेत्रों में विभक्त करती है। इन प्रादेशिक क्षेत्र को वार्ड कहा जाता है। वार्डों के कुल स्थानों में से अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति व अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए जनसंख्या के अनुपात में व महिलाओं के लिए नियमानुसार स्थान चक्रानुक्रम के आधार पर आरक्षित किये जाते हैं। प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित किया जाता हैं। राजस्थान में 74वें संविधान संशोधन के बाद नगर निगम के अब तक पाँच बार चुनाव सम्पन्न हुए हैं।

महापौर एवं उपमहापौरः नगर निगम के अध्यक्ष को और उपाध्यक्ष को क्रमशः महापौर व उपमहापौर कहा जाता हैं।

नगर निगम के सदस्य अपनों में से ही एक को महापौर व एक को उप महापौर निर्वाचित करते हैं। महापौर एवं उप महापौर के पदों में भी आरक्षण की व्यवस्था रहती है। महापौर नगर का प्रथम नागरिक होता है, जिसका कार्यकाल 5 वर्ष होता हैं। मृत्यु, पद –त्याग अथवा सदस्यों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के कारण, पद समय से पूर्व भी रिक्त हो सकता हैं। पद रिक्त होने पर शेष अवधि के लिए निगम के सदस्य अपने में से पुनः महापौर अथवा उप महापौर निर्वाचित कर लेते हैं। महापौर नगर निगम की बैठकों की अध्यक्षता करता है। महापौर मुख्य कार्यकारी अधिकारी से नगर निगम से संबंधित कोई प्रतिवेदन अथवा जानकारी प्राप्त कर सकता हैं। महापौर की अनुपस्थिति में उप महापौर द्वारा सभी कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

राज्य सरकार की और से नगर निगम में एक मुख्य कार्यपालक अधिकारी एवं सहयोग के लिए आयुक्तों की नियुक्ति की जाती है। मुख्य कार्यपालक अधिकारी निगम की परिषद एवं उसकी स्थायी समितियों की बैठकों में हिस्सा ले सकता है। निगम के अभिलेख, दस्तावेज एवं बजट उसकी देखरेख में तैयार होते हैं। यह परिषद द्वारा निर्धारित नीतियों, निर्मित कानूनों और स्वीकृत नियमों तथा उप नियमों को व्यवहार में क्रियान्वित करने के लिए उत्तरदायी होता है। निगम के समस्त अधिकारी और कर्मचारी उसके प्रशासनिक नियत्रंण में कार्य करते हैं। नगर निगम के कार्य को सुगम तरीके से चलाने के लिए अधिनियम में विभिन्न समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है।

1.कार्यपालक समिति जिसका गठन निम्न प्रकार होगाः–

(क) महापौर

(ख) उप महापौर

(ग) परिषद् में विपक्ष का नेता

(घ) परिषद द्वारा निर्वाचित सात सदस्य जिसमें दो महिलाऐं हों तथा मुख्य कार्यपालक अधिकारी पदेन सचिव होगा।

इसके अलावा वित्त समिति, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता समिति, भवन एवं निर्माण कार्य समिति, नियम एवं उपविधि समिति, गन्दी बस्ती सुधार समिति एवं अपराधों का शमन एवं समझौता समिति आदि का गठन किया जाता है। इन समितियों के अतिरिक्त भी आवश्यकता होने पर अन्य समितियां गठित की जा सकती हैं।

नगर निगम के कार्यः नगर निगम सामान्यतः तीन प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करता है। अनिवार्य, ऐच्छिक व विशेष कार्य। अनिवार्य कार्य में निगम द्वारा आवश्यक रूप से किये जाने वाले कार्य सम्मिलित हैं जैसे शुद्व जल का प्रबन्ध, सार्वजनिक विद्युत का प्रबन्ध, नालियों एवं शौचालयों का निर्माण एवं रख–रखाव, सार्वजनिक मार्गों का निर्माण व रख–रखाव व नामकरण, गन्दगी एवं कूड़े–करकट की सफाई, जन्म एवं मृत्यु का लेखा–जोखा, श्मशानों का प्रबन्ध एवं नियमन, प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, खतरनाक भवनों को निरापद बनाना, खतरनाक व्यापार पर नियंत्रण, निगम सम्पत्ति की देखरेख, खाद्य पदार्थों और भोजनालयों का नियमन एवं नियंत्रण तथा वार्षिक प्रतिवेदनों का प्रकाशन आदि।

ऐच्छिक कार्य में वे कार्य सम्मिलित हैं जो निगम अपने संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर करवाता है जैसे–सार्वजनिक पार्क, पुस्तकालयों, रंगमचों, अखाड़ों इत्यादि का निर्माण एवं रख–रखाव, मेले एवं प्रदशर्नियों का आयोजन, छायादार वृक्षों का रोपण एवं देखमाल, गरीबों एवं अपाहिजों की सहायता और सार्वजनिक स्थानों पर संगीत का प्रबन्ध आदि। विशेष कार्य जो आपात स्थितियों से उत्पन्न होते हैं उन्हें पूरा कराना भी नगर निगम का दायित्व है, यथा–अकाल की स्थिति में अकाल राहत कार्य तथा महामारी के समय बीमारी को फैलने से रोकने के उपाय करना।

नगर निगम अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक निर्वाह के लिए विभिन्न कर लगाकर आय जुटाता है। सम्पत्ति कर, पशु कर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, भूमि या भवन के वार्षिक किराया मूल्य पर कर इत्यादि विभिन्न कर नगर निगम अधिनियम में निर्दिष्ट प्रक्रिया के तहत अधिरोपित करता है। करों के अलावा नगर निगम को अतिरिक्त फीस आदि से भी आय प्राप्त होती है जैसे सम्पत्ति हस्तान्तरण पर ली जाने वाली फीस इत्यादि। निगम को इन दोनों स्रोतों के अलावा राज्य सरकार से निश्चित अनुदान भी प्राप्त होता है।

नगर परिषद

नगरीय स्वशासन की दूसरी महत्वपूर्ण इकाई नगर परिषद है। राजस्थान में एक लाख से पांच लाख जनसंख्या वाले लघुत्तर नगरीय क्षेत्रों में नगर परिषद का गठन राज्य सरकार कर सकती है। नगर परिषद विधिक दृष्टि से एक वैधानिक निकाय होती है। जिसकी सार्वजनिक मुहर एवं शाश्वत उत्तराधिकार होता है। नगर परिषद अपने नाम से संपत्ति का क्रय–विक्रय कर सकती है। इन पर मुकदमा चलाया जा सकता है तथा वह भी दूसरों पर मुकदमा चला सकती हैं। वर्तमान में

राजस्थान में 34 नगर परिषद यथा – किशनगढ़, ब्यावर, अलवर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर, चूरू, धौलपुर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, जैसलमेर, जालौर, झालावाड़, झुन्झनू, नागौर, पाली, राजसमंद, सवाईमाधोपुर, सीकर, करौली, सिरोही, टोंक, बाड़मेर, बांसवाड़ा, बारां, बूंदी, प्रतापगढ़, दौसा, मकराना, गंगापुर सिटी, हिण्डोन सिटी, भिवाड़ी, बालोतरा एवं सुजानगढ़ में स्थित हैं।

नगर परिषद में एक निर्वाचित परिषद होती है। नगर परिषद क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र में जनसंख्या के आधार पर विभक्त कर दिया जाता है, जिसे वार्ड कहते हैं। वार्ड से निर्वाचित सदस्य पार्षद कहे जाते हैं। वार्डों की संख्या का निर्धारण समय–समय पर अधिूसचना जारी करके किया जाता है। पार्षदों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार द्वारा गुप्त मतदान से किया जाता है। सम्बन्धित क्षेत्र के लोकसभा व विधानसभा के सदस्य भी परिषद के सदस्य होते हैं। सभी स्थानों के लिए आरक्षण सम्बन्धित प्रावधान नगर निगम की भांति ही लागू होते हैं। नगर परिषद अपने कार्य संचालन के लिए कतिपय स्थायी एवं अस्थायी समितियों का गठन करती है।

सभापति और उपसभापतिः नगर परिषद के अध्यक्ष को सभापति एवं उपाध्यक्ष को उप सभापति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इनका चयन नगर परिषद के निर्वाचित पार्षदों द्वारा अपने में से ही किया जाता है। इनका कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। मृत्यु, पद–त्याग एवं अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर निर्वाचित सदस्य पुनः शेष अवधि के लिए सभापति अथवा उप सभापति का निर्वाचन करते हैं। सभापति परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है एवं निर्धारित नीतियों को क्रियान्वित करने वाले अधिकारी आयुक्त एवं अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण रखता है।

नगर परिषद के कार्यः नगर निगम द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यों जिसका उल्लेख पूर्व में नगर निगम के कार्यों में किया गया है उन सभी अनिवार्य, ऐच्छिक और विशेष कार्य को नगर परिषदें भी निष्पादित करती रहती हैं। 74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत देश के सभी नगरीय निकायों द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यों को संविधान की 12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध किया गया है, जो इस प्रकार हैंः–

1. नगर आयोजना;
2. भूमि का विनियमन;
3. सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए योजना;
4. सड़क एवं पुल;
5. व्यावसायिक प्रयोजन एवं घरेलू उद्योग के लिए जल–प्रदाय;
6. लोक स्वास्थ्य एवं सफाई;
7. अग्नि शमन सेवाएं
8. नगरीय वानिकी एवं पर्यावरण संरक्षण;
9. गन्दी बस्तियों के लिए विकास;
10. कमजोर वर्गों, मंद बुद्धि व विशेष योग्य जनों के हितों का संरक्षण;
11. गरीबी उन्मूलन;
12. उद्यान व खेल मैदान इत्यादि का विकास;
13. दाह–गृहों, विद्युत दाह–गृहों इत्यादि का निर्माण एवं रख रखाव;
14. जन्म एवं मृत्यु पंजीयन;
15. सड़कों का विद्युतीकरण;
16. वाहन पार्किंग एवं बस–स्टॉप स्टैंड इत्यादि का निर्माण;
17. खानों का विनियमन;
18. बूचड़खानों का विनियमन इत्यादि।

नगरपालिका

देश में सभी राज्यों में नगर निकायों के गठन के लिए जनसंख्या को आधार माना है। राजस्थान में भी जनसंख्या के आधार पर एक लाख से कम जनसंख्या वाले छोटे संक्रमणकालीन नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिका की स्थापना की गयी है। गांव से नगर बनने वाले क्षेत्र को संक्रमणकालीन क्षेत्र कहा गया है। संक्रमणकालीन छोटे नगरीय क्षेत्रों के लिए 74वें संविधान संशोधन में नगर पंचायत के गठन का प्रावधान किया गया था लेकिन राजस्थान सरकार ने नगर पंचायत के स्थान पर नगर पालिका बोर्ड (द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी) का गठन किया। वर्तमान में इनकी संख्या क्रमशः 13, 58 एवं 75 है। इस प्रकार राजस्थान में कुल 146 नगरपालिका निकाय गठित हैं।

नगर पालिका क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के रूप

में जनसंख्या के आधार पर वार्डों में विभक्त कर दिया जाता है। वार्डों की संख्या समय–समय पर राज्य सरकार द्वारा राज पत्र में अधिसूचना जारी करके निर्धारित की जाती है। नगरपालिका वार्ड का सदस्य वयस्क मताधिकार से जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से गुप्त मतदान द्वारा निर्वाचित किया जाता है। 21 वर्ष या इससे अधिक आयु वाला ऐसा व्यक्ति जो नगरपालिका की निर्वाचक नामावली में पंजीकृत मतदाता हो, नगरपालिका का चुनाव लड़ सकता है।

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग को जनसंख्या के अनुपात तथा महिलाओं के लिए नियमानुसार स्थान चक्रानुक्रम के आधार पर आरक्षित किया गया है। आरक्षित स्थानों का निर्धारण चुनाव से पहले लॉटरी पद्धति से किया जाता है। आरक्षित वर्ग के व्यक्ति और महिलाएं सामान्य सीट से भी चुनाव लड़ सकते हैं। सामान्य कार्य निष्पादन के लिए प्रत्येक नगर निकाय को दो माह में कम से कम एक बैठक अवश्य करनी चाहिए।

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्षः– नगरपालिका बोर्ड के सदस्य अपने में से ही एक सदस्य को अध्यक्ष एवं एक सदस्य को उपाध्यक्ष के रूप निर्वाचित करते हैं। अध्यक्ष के नेतृत्व में ही नगरपालिका बोर्ड उस नगरीय क्षेत्र के लिए नगरीय प्रशासन की नीतियां बनाता हैं, जिनका क्रियान्वयन पालिका में नियुक्त प्रशासक अर्थात् अधिशाषी अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कार्मिकों की सहायता से किया जाता है। अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का कार्यकाल, शक्तियां व कार्य सभी नगरपरिषद के सभापति एवं उपसभापति के कमोबेश समान ही होते हैं। राज्य की नगरपालिकाओं के अध्यक्ष के पदों पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग व महिलाओं के लिए, राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर निर्धारित प्रावधानों के अनुसार चक्रानुक्रम से आरक्षण होगा।

राजस्थान में सभी नगरपालिकाओं में कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए वित्त, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, भवन और निर्माण, नियम–उपनियम, गन्दी बस्ती सुधार व अपराधों का शमन और समझौता विषय पर समितियों का गठन किया जाता है। नगरपालिकाएं अपनी आवश्यकतानुसार स्वविवेक से अतिरिक्त समिति का भी गठन कर सकती हैं।

नगरपालिका के कार्यः– यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि नगर निगम द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यों का जो उल्लेख पूर्व वर्णित बिन्दुओं में किया गया है उन सभी अनिवार्य, ऐच्छिक और विशेष कार्यों को नगरपालिकाएं भी अपने क्षेत्र में निष्पादित करती हैं। 74वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत देश के सभी नगरीय निकायों द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यों को संविधान की 12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध किया गया है जिसका उल्लेख भी विगत पृष्ठों में नगर परिषद के कार्यो के अन्तर्गत किया जा चुका हैं।

छावनी बोर्ड

छावनी शब्द का प्रयोग सैनिकों के निवास स्थान के लिए किया जाता है। समय के साथ–साथ छावनी में सैनिकों के साथ नागरिक भी बड़ी संख्या में रहने लगे हैं। भारत सरकार द्वारा इन क्षेत्रों की स्थानीय समस्याओं के निराकरण हेतु स्थानीय संस्था के गठन के लिए 1924 में छावनी बोर्ड अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम का उद्देश्य छावनी बोर्ड की स्थापना करना था जो कि नगरपालिका के समान कार्य करता है। छावनी बोर्ड सीधे भारत के रक्षा मंत्रालय से प्रशासित होते हैं। वर्तमान में राजस्थान में नसीराबाद (अजमेर) में एकमात्र छावनी बोर्ड की स्थापना की गयी है। वर्तमान में देश के सभी छावनी मंडल सितम्बर 2006 से लागू नए कानून के अधीन शासित हो रहे हैं।

सेना का मुख्य अधिकारी छावनी बोर्ड का अध्यक्ष होता है। छावनी बोर्ड का गठन निर्वाचित व मनोनीत सदस्यों से मिलकर किया जाता है। उपाध्यक्ष असैनिक रूप से निर्वाचित सदस्यों में से चुना जाता है। छावनी बोर्ड के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता है तथा मनोनीत सदस्यों का कार्यकाल पद पर पदासीन होने तक होता है। कार्य की दृष्टि से छावनी मंडल के कार्य नगरपालिका के कार्य जैसे ही होते हैं। स्थानीय क्षेत्र में रोशनी, सफाई एवं स्वास्थ्य की देखभाल इत्यादि करता है। कार्य निष्पादन के लिए बोर्ड अपने वित्तीय संसाधन जनता पर कर आरोपण एवं केन्द्र से प्राप्त अनुदान द्वारा एकत्रित करता है।

राजस्थान में स्थानीय स्वशासन के उल्लेखनीय प्रयासः–

1. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं महिला वर्ग के लिए आरक्षित पद से किसी कारणवश हटने पर उसी वर्ग के सदस्य को अध्यक्ष बनाने का प्रावधान किया गया है।
2. व्यक्ति जिनके विरूद्ध न्यायालय द्वारा ऐसे किसी अपराध का संज्ञान ले लिया है और आरोप विचारित कर दिये गये है, जो

5 वर्ष या अधिक कारावास से दण्डनीय हो, के चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध है।

3. ग्रामीण विकास योजनाओं में ग्रामीण समुदाय की सहभागिता में बढोत्तरी हेतु वार्ड सभा का गठन किया गया है।

4. चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के दो से अधिक बच्चे होने पर चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध है।

5. राजस्थान ग्रामीण विकास राज्य सेवा का गठन किया गया है। जिसमें चयनित अधिकारियों को पंचायती राज की विकास प्रक्रिया संचालन के दायित्व से जोड़ा गया हैं ।

6. पंचायत राज संस्थाओं के चुनाव में भाग लेने वाले प्रत्येक अभ्यर्थी की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता निम्नानुसार तय की गई है।

– जिला परिषद् एवं पंचायत समिति के सदस्य : 10वीं कक्षा उत्तीर्ण

– अनुसूचित क्षेत्र के पंचायत के सरपंच : 5वीं कक्षा उत्तीर्ण

– अन्य पंचायत के सरपंच : 8वीं कक्षा उत्तीर्ण

7. पंचायत का चुनाव लड़ने वाले अभ्यर्थियों के घर में कार्यशील शौचालय होना अनिवार्य हैं।

8. इसी प्रकार नगर निकाय के चुनाव के लिए भी अभ्यर्थियों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता व घर में शौचालय अनिवार्य कर दिया गया है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1 हमारे देश में चोल शासन के अंतर्गत गणतंत्रीय शासन (स्थानीय स्वशासन) का अच्छा स्वरूप था।

2 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से ग्रामीण स्थानीय स्वाशासन की संस्थाओं (पंचायत राज संस्थाओं) एवं 74 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से नगरीय स्वशासन संस्थाओं के गठन को पूरे देश में संवैधानिक दर्जा एवं एकरूपता मिली है।

3 ग्राम सभा, ग्राम पंचायत की विधायिका होती है। पंचायत क्षेत्र की समस्त विकास योजनाओं के प्रस्ताव इसी के द्वारा तैयार किये जाते हैं।

4 पंचायत राज संस्थाओं की त्रि–स्तरीय व्यवस्था में तालमेल एवं सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से प्रधान को जिला परिषद् का तथा सरपंच को पंचायत समिति का पदेन सदस्य बनाया गया ।

5 राजस्थान में पंचायती राज की त्रि–स्तरीय व्यवस्था प्रचलन में है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद्।

6 पंचायती राज संस्थाओं एवं नगरीय स्वशासन संस्थाओं के चुनाव निर्धारित समय पाँच वर्ष में नियमित रूप से होने लगे हैं।

7 राजस्थान में 9000 ग्राम पंचायतें, 295 पंचायत समितियां, 33 जिला परिषद्, 146 नगर पालिका, 34 नगर परिषद् 7 नगर निगम हैं एवं छावनी बोर्ड हैं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 किस संविधान संशोधन अधिनियम से नगरीय स्वशासन संस्थाओं को प्रभावी व सशक्त स्थिति प्राप्त हुई ?

(क) 44वें संविधान संशोधन

(ख) 74वें संविधान संशोधन

(ग) 42वें संविधान संशोधन

(घ) 73वें संविधान संशोधन

2 ग्राम सभा का गठन होता है?

(क) ग्राम पंचायत क्षेत्र की मतदाता सूची में पंजीकृत सदस्यों से

(ख) ग्राम पंचायत क्षेत्र में निवास कर रही समस्त जनता से

(ग) पंच, सरपंच और उप सरपंच से मिलकर

(घ) पंचायत समिति क्षेत्र में पंजीकृत समस्त मतदाताओं से

3 राजस्थान में प्रचलित निम्न में से कौन नगरीय स्वशासन की संस्था नहीं है?

(क) नगरपालिका (ख) नगर पंचायत

(ग) नगर परिषद् (घ)नगर निगम

अति लघूत्तरात्मक

1. भारतीय संघ के किस राज्य ने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को सर्वप्रथम क्रियान्वित किया?
2 सरपंच का निर्वाचन किसके द्वारा किया जाता है?
3 प्रधान का संबंध किस संस्था से है?
4 राजस्थान के किन शहरों में नगर निगम का गठन किया गया है?

लघूत्तरात्मक

1. ग्राम पंचायत के कार्यों का उल्लेख कीजिए?
2. जिला परिषद् का गठन किन सदस्यों से मिलकर होता है ?
3. छावनी बोर्ड का संक्षिप्त विवरण दीजिए?
4. महापौर द्वारा किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख कीजिए ?

निबंधात्मक

1. पंचायत समिति का गठन किस प्रकार होता है?उसके द्वारा संपादित कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. नगर परिषद् के गठन व कार्यों का वर्णन कीजिए?
3. ''पंचायतीराज के बिना गांवों का विकास संभव नहीं है'' अपना मत दीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2.(क) 3. (ख)

अध्याय 11

वैदेशिक सम्बन्ध

भारत की विदेश नीति : अतीत से वर्तमान तक

विश्व सम्बन्धों के मामले में भारत की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। प्राचीन भारतीय वांग्मय में भारतीय समाज ने सम्पूर्ण मानवता के समग्र विकास व हितों की रक्षा व प्रकृति प्रदत्त भेदों को नकारते हुए विश्व परिवार की अवधारणा को इस प्रकार से स्वीकार किया है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

इसके पीछे भारतीय समाज का यह मन्तव्य रहा है कि हितों की टकराहट का रास्ता छोड़ सबके कल्याण व सबके सुख का मार्ग अपनाये–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत।।

कालान्तर में इन्हीं श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के मार्ग पर चल कर भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, सम्राट अशोक, विवेकानन्द आदि ने मानवता का प्रचार किया।

अपनी स्वतन्त्रता से लेकर आज तक भारत ने सदैव अन्य देशों के साथ मित्रता के सेतु बांधने का प्रयास किया है। जिसे पूरे विश्व में समर्थन भी मिला था। स्वतंत्रता–संग्राम के दौरान भी विभिन्न मंचों से भारत ने अपनी प्राथमिकताओं और आदर्शों को दोहराया है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर भारत ने प्रारम्भ से ही अपने स्पष्ट विचार रखे हैं। भारत ने सदैव अन्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की अवधारणा तथा आत्म–निर्णय के अधिकार का समर्थन किया है। साथ ही सह–अस्तित्त्व व सबके हित के लिए बने सभी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को भारत ने समर्थन प्रदान किया है। भारत ने साम्राज्यवाद के विरूद्ध अपने रूख को स्पष्ट किया है। इस प्रकार एक राष्ट्र के रूप में स्वतंत्रता–प्राप्ति के पूर्व ही भारत ने अपनी विदेश नीति के उद्देश्य तथा आदर्श स्पष्ट कर दिए।

भारत की विदेश नीति के उद्देश्य :–

भारत की विदेश नीति में मैत्री, शान्ति एवं समानता के सिद्धान्तों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। भारत ने सभी के साथ सहयोग एवं सद्भाव रखते हुए सुदृढ़ एवं सुस्पष्ट नीति का निरूपण किया। भारत की विदेश नीति के तीन आधार स्तम्भ हैं :– शान्ति, मित्रता और समानता।

विदेश नीति के उद्देश्यों में राष्ट्रीय हितों की पूर्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व होता है। भारत सदैव ही अपने राष्ट्रीय हितों को अन्तर्राष्ट्रीय हितों के साथ समायोजित करता रहा है। हमारे मानवतावादी श्रेष्ठ आदर्श एवम् श्रेष्ठ जीवन मूल्य विदेश नीति के दीर्घकालीन आधार बने रहे हैं। इसी सुसंस्कृत विचार ने भारत की विदेश नीति को हर काल में निरन्तरता दी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद–51 में वर्णित राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अन्तर्गत भारतीय विदेश नीति के मूल तत्त्वों का समावेश किया गया है।

भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं :–

1. अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा व शान्ति के लिए प्रयत्न करना ।
2. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा सुलझाना।
3. सभी राज्यों में परस्पर सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाना।
4. अन्तर्राष्ट्रीय कानून में आस्था।
5. सैनिक समझौतों व गुटबन्दियों से अलग रहना।
6. उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का विरोध।
7. रंगभेद का विरोध करना तथा अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत राष्ट्रों की सहायता करना।
8. सभी देशों के साथ व्यापार, उद्योग, निवेश व प्रोद्यौगिकी अन्तरण को सक्रिय व सहज बनाना।
9. अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष आने वाली चुनौतियों के समाधान खोजने में सहयोग करना।
10. दक्षिण एशिया में मैत्री और सहयोग के आधार पर अपनी स्थिति मजबूत करना।

भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्त्व :–

सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत के समक्ष कुछ विशेष परिस्थितियां व चुनौतियाँ थी। अतः तात्कालिक विदेश नीति के निर्धारण में इन तत्त्वों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है –

1. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय समूचा विश्व दो विरोधी गुटों में विभाजित था। अतः भारत ने अपने आपको गुटों की राजनीति से अलग रखने का निर्णय लिया। अपना आर्थिक व सर्वांगीण विकास करना भारत की पहली प्राथमिकता थी। इसके लिए उसे विश्व के सभी देशों के सहयोग की आवश्यकता थी। इसी परिदृश्य ने गुट निरपेक्ष आन्दोलन की नयी अवधारणा की भूमिका भी तैयार की।
2. अपनी प्रतिरक्षा–व्यवस्था को सुदृढ़ कर देश की एकता व अखण्डता को बनाए रखना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण था।
3. भारत की विदेश नीति के निर्धारण में भौगोलिक तत्त्वों का अपना महत्त्व है। प्रादेशिक सुरक्षा किसी भी राष्ट्र का परम लक्ष्य होता है। एक ओर भारत पूर्व सोवियत संघ तथा साम्यवादी चीन जैसी ताकतों के समीप है। दूसरी ओर उसका दक्षिण–पूर्वी तथा दक्षिण–पश्चिमी हिस्सा समुद्र से घिरा है। अपनी सुरक्षा, शान्ति व मैत्री में ही भारत का हित निहित है।
4. भारत की विदेश–नीति के निर्धारण में अपनी प्राचीन संस्कृति का प्रभाव रहा है। विश्व–बन्धुत्व, विश्व शान्ति व मानवतावाद अतीतकाल से ही हमारे प्रेरक मूल्य रहे है। स्वतंत्रता–संग्राम के तात्कालिक भारतीय नेतृत्वकर्त्ताओं के विचारों ने भी हमारी विदेश नीति को प्रभावित किया।

भारत की विदेश नीति की मुख्य विशेषताएँ :–

(i) गुट निरपेक्षता :–

परिस्थितिवश भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के समय समूचा विश्व दो गुटों में विभाजित था। एक का नेतृत्व पूंजीवादी अमरीका कर रहा था तथा दूसरे का साम्यवादी सोवियत संघ। भारत ने अपने वैचारिक अधिष्ठान व हित के कारण दोनों गुटों के परस्पर संघर्ष से दूर रहने का निर्णय किया। गुटों की राजनीति से अलग रहकर अपने विकास पर ध्यान केन्द्रित करना, जो आगे चलकर गुटनिरपेक्षता की नीति कहलायी। यह नीति विश्व की विभिन्न समस्याओं पर स्वतंत्र व न्यायपूर्ण विचार प्रकट करती है। इस दृष्टि से यह एक सकारात्मक व रचनात्मक नीति है।

गुटनिरपेक्षता के अन्तर्गत कोई भी राष्ट्र दोनों विचारों से राष्ट्रहित में मैत्रीपूर्ण व संतुलित सम्बन्ध रखकर अपने आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

गुट–निरपेक्षता किसी भी एक गुट से सैनिक संधियों पर असहमति रखती है। दासता से मुक्त हुए भारत सहित सभी नव–स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए इस आंदोलन ने एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया। इस नीति का अवलम्बन करके नव–स्वतंत्र राष्ट्र अपने लिए विकास के नए आयाम खोल पाए। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में सही गलत के आधार पर निर्णय लेने के लिए एक तीसरे मंच का आविर्भाव भी हुआ।

गुट निरपेक्षता को एक आन्दोलन का रूप देने में भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू, यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो, मिस्र के राष्ट्रपति नासिर तथा इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण की व्यापक भूमिका रही। पाँचवे एवम् छठे दशक में इस आन्दोलन ने एक व्यवस्थित रूप प्राप्त कर लिया था।

सन् 1961 में आयोजित बेलग्रेड शिखर सम्मेलन में शान्ति एवम् निःषस्त्रीकरण पर बल दिया गया। इसका सोलहवां शिखर सम्मेलन, अगस्त 2012 में ईरान की राजधानी तेहरान में सम्पन्न हुआ। इसमें 120 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें परमाणु निःशस्त्रीकरण, मानवाधिकार व क्षेत्रीय मुद्दों पर व्यापक चर्चा हुई।

शीत युद्ध की समाप्ति तथा सोवियत संघ के विघटन के बाद गुट निरपेक्ष आन्दोलन की उपयोगिता व प्रासंगिकता पर सवाल उठते रहे हैं परन्तु यह कहा जा सकता है कि नवीन चुनौतियों व समस्याओं के समाधान के प्रयासों ने संगठन की प्रासंगिकता को बनाये रखा है। इस आन्दोलन ने नव–उपनिवेशवाद, मानव– अधिकार, पर्यावरण, आर्थिक व क्षेत्रीय सामाजिक जटिलताओं जैसे नवीन क्षेत्रों में अपना विस्तार करके अपनी महत्ता को सिद्ध कर दिया है।

(ii) पंचशील :–

पंचशील गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म के पाँच व्रतों का पारिभाषिक शब्द है। पंचशील से तात्पर्य है आचरण के पाँच सिद्धान्त। पंचशील को विदेश–नीति के सन्दर्भ में

सर्वप्रथम 29 अप्रेल 1954 को तिब्बत के सम्बन्ध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझौते में प्रतिपादित किया गया। एशिया के प्रायः सभी देशों ने पंचशील के सिद्धातों को अपनाया। कालान्तर में इस सिद्धान्त को विश्वस्तरीय पहचान प्राप्त हुई। ये पाँच सिद्धान्त इस प्रकार है :–

1. अनाक्रमण की नीति।
2. एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और सर्वोच्च सत्ता के लिए सम्मान।
3. समानता एवं पारस्परिक लाभ।
4. एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना ।
5. शान्तिपूर्ण – सह अस्तित्व ।

पंचशील के सिद्धान्त नैतिक शक्ति के प्रतीक है। पंडित नेहरू ने एक बार कहा था कि यदि इन सिद्धान्तों को सभी देश मान्यता दे दें तो आधुनिक विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान मिल जाएगा। प्रारम्भ में पंचशील को विश्व में भारतीय विदेश नीति की महान् उपलब्धि माना जाता था परन्तु 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर यह सिद्ध कर दिया कि पंचशील एक भ्रान्ति है। इस आक्रमण से भारत की विदेश नीति व वैश्विक प्रतिष्ठा को भारी आघात लगा। आलोचकों ने इसे भारत की कूटनीतिक पराजय माना। पंचशील के सिद्धान्तों में भारत का विश्वास आज भी है लेकिन वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में वैचारिक व नैतिक प्रतिबद्धता के अभाव के चलते इसकी व्यापक सफलता के अवसर सीमित प्रतीत होते हैं।

(iii) शान्तिपूर्ण – सह–अस्तित्व

भारतीय दर्शन में सदैव वसुधैव कुटुम्बकम् का समर्थन किया गया है। इसका तात्पर्य विभिन्न धर्मों तथा सामाजिक व्यवस्थाओं वाले देशों के साथ शान्तिपूर्वक सहअस्तित्त्व में बने रहना है। शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्त्व वस्तुतः पंचशील के सिद्धान्तों का ही विस्तार है। भारत ने अपनी विदेश नीति के माध्यम से परस्पर विरोधी विचारधाराओं वाले राष्ट्रों को मैत्रीपूर्वक रहने का सन्देश दिया है। भारत ने स्वयं भी अधिकाधिक मैत्री सन्धियां व व्यापारिक समझौते किए हैं। यह नीति रचनात्मक विकास की आधारशिला है। भारत प्रारम्भ से ही युद्ध का विरोधी एवम् शान्ति व उसके लिए आवश्यक निःशस्त्रीकरण का समर्थक रहा है। युद्ध की सम्भावनाएं बनने पर भारत ने अनेक बार मध्यस्थ की भूमिका निभाई है। वर्तमान में विश्व में कई देशों के पास आणविक शक्ति है। अर्द्ध विकसित व पिछड़े राष्ट्रों के विकास हेतु शान्ति का वातावरण अनिवार्य है। वास्तव में शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्त्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को दृढ़ तथा कुशल व्यावहारिक आधार प्रदान कर सकता है।

(iv) साम्राज्यवाद तथा रंगभेद का विरोध

भारत स्वयं साम्राज्यवाद का शिकार रहा है। वह उसके दुष्परिणामों को अनुभव कर चुका है। इसलिए समूची दुनिया में साम्राज्यवाद के किसी भी रूप का वह प्रबल विरोध करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने एशिया तथा अफ्रीका के उन सभी राष्ट्रों का समर्थन किया जो अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील थे। भारत सभी लोगों के लिए आत्म निर्णय के अधिकार का समर्थन करता है। वह साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को शोषण का साधन मानता है। साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का विरोध भारतीय विदेश नीति के प्रारम्भिक आदर्शों में है जिसके माध्यम से प्रारम्भ से लेकर अब तक भारत ने शोषण के खिलाफ संघर्षशील राष्ट्रों का मनोबल बढ़ाने का कार्य किया है।

इसी प्रकार नस्लीय भेदभाव व रंगभेद का विरोध भी भारतीय विदेश–नीति की विशेषता रही है। भारत विश्व की सभी मानव नस्लों व प्रजातियों की समानता का पक्षधर है तथा नस्ल व रंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव का प्रबल विरोध करता है। प्रजातीय विभेद समानता की अवधारणा के प्रतिकूल है तथा अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को दूषित करता है। नस्ल भेद के विरोध स्वरूप ही भारत ने भूतकाल में दक्षिण अफ्रीका के साथ अपने कूटनीतिक सम्बन्ध का विच्छेद कर लिया। अमरीका के नीग्रो और रोडेशिया के अफ्रीकी लोगों का भी भारत ने खुलकर समर्थन किया। इस नस्लवाद व रंगभेद की नीति पर चलने वाले देशों के विरूद्ध कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने में सहयोग किया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से भी अपनी इस नीति को मुखर स्वर प्रदान किया।

(v) संयुक्त राष्ट्रसंघ का समर्थन

भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रारम्भिक सदस्य रहा है। तब से लेकर आज तक वह इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की नीतियों

व कार्यों का समर्थन करता आ रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व शान्ति हेतु स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है। भारत ने हमेशा ही इसके आदेशों व अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की अनुपालना की है।

भारत–पाक विवाद पर भी भारत ने तत्काल ही संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्णयों की पालना की है। इससे भारत की इस संगठन के प्रति निष्ठा व प्रतिबद्धता सिद्ध हो जाती है। अनेक भारतीयों ने संयुक्तराष्ट्र में उच्च पदों को सुशोभित कर अपने देश का गौरव बढ़ाया है। आवश्यकता पड़ने पर भारत ने इसे अपनी शान्ति सेना भी प्रदान की है। वर्तमान में भारत सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए प्रयत्नशील है।

(vi) भारत की आणविक नीति

सन् 1960 के बाद से भारत ने अपनी परमाणु नीति को रूप देना प्रारम्भ किया। यह देश हित में आवश्यक हो गया था। इस समय परमाणु निःशस्त्रीकरण की आड़ लेकर अमेरिका, रूस व चीन जैसे परमाणु सम्पन्न राष्ट्र भारत को कमजोर बनाना चाहते थे। भारत के पूर्व राष्ट्रपति दिवंगत डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम भारत के परमाणु कार्यक्रम के सूत्रधार माने जाते हैं। उनका कथन था कि भारत दो परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों के बीच स्थित है। भारत की सुरक्षा को संकट स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा था। अतः परमाणु शस्त्र व प्रक्षेपास्त्र के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होना समय की मांग थी। भारत प्रारम्भ से ही शान्तिप्रिय देश रहा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसने निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया है परन्तु तेजी से बदलते विश्व–परिदृश्य व भेदभावपूर्ण परमाणु कार्यक्रमों ने भारत को इस विषय पर आत्मनिर्भर होने के लिए प्रेरित किया। परमाणु निःशस्त्रीकरण तथा परमाणु अप्रसार संधियों की शर्तें भेदभाव पूर्ण होने के कारण भारत को स्वीकार नहीं थी। परमाणु परीक्षण के मामले में भारत आधारभूत नीति का पालन कर रहा है।

भारत ने अपना प्रथम परमाणु परीक्षण 1974 में पोकरण में किया। 24 वर्ष के अन्तराल के पश्चात् 1998 में भारत ने अपना दूसरा परमाणु परीक्षण किया। भारत की आणविक नीति पर पांचों परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। भारत ने बार–बार स्पष्ट किया है कि वह परमाणु शस्त्र–विहीन संसार के लिए वचनबद्ध है परन्तु जब तक अन्य परमाणु सम्पन्न राष्ट्र अपने अस्त्र नष्ट नहीं करते, भारत न्यूनतम सुरक्षात्मक परमाणु अस्त्र रखेगा। जब तक व्यापक परमाणु परीक्षण संधि भेदभाव रहित नहीं की जाती, भारत इस पर हस्ताक्षर नहीं करेगा।

(vii) सार्क

सार्क (दक्षेस) का पूरा नाम है South Asian Association For Regional Co-Operation (SAARC) अर्थात् दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ है। दक्षिण एशिया के सात देशों ने मिलकर इसकी स्थापना की। ये सात देश है भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, म्यानमार, श्रीलंका, और मालदीव। सार्क की स्थापना दिसम्बर, 1985 में हुई । यह दक्षिण एशिया के सात पड़ौसी देशों के क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से स्थापित संगठन है। यह संगठन आपसी तनाव को कम करने व सद्भाव बढ़ाने पर बल देता है। इन देशों में गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण तथा विकास जैसे विषयों पर आपसी सहयोग की अनेक संभावनाएं हैं। मालदीव को छोडकर शेष सभी देश भारतीय उपमहाद्वीप के हिस्सें है। इस नाते सभी देश ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत साझा करते हैं। सार्क ने कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण जैसे आधारभूत क्षेत्रों में प्रभावी कार्य किए हैं।

भारत दक्षिण एशिया में प्रभावशाली स्थान रखता है। सभी दक्षेस देशों की सीमाएं भारतीय सीमा से किसी न किसी रूप से जुड़ी हुई है। दक्षेस राष्ट्रों की सभी नदियां भारत से होकर बहती हैं। सभी मसलों पर भारत की ओर उम्मीद की दृष्टि लगी रहना स्वाभाविक है।

अप्रैल 2007 में सार्क का 14 वां शिखर सम्मेलन नई–दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इसमें अफगानिस्तान को सार्क का आठवां सदस्य बनाया गया। साथ ही इसमें विश्व के कई देशों के प्रतिनिधि पर्यवेक्षक के रूप में सम्मिलित हुए। इससे सार्क के प्रति दूसरे देशों की जिज्ञासा प्रकट होती है। नवम्बर 2014 में सार्क का 18 वां शिखर सम्मेलन नेपाल में सम्पन्न हुआ। इस संगठन का 19 वां शिखर सम्मेलन पाकिस्तान में 2016 में आयोज्य है।

(viii) आतंकवाद की समस्या

आज सम्पूर्ण मानवता आतंकवाद से त्रस्त है। पिछड़े और विकासशील देश तो इसकी गिरफ्त में हैं ही, समृद्ध व

शक्तिशाली देश भी इस खतरे से अछूते नहीं है। विधि सम्मत सरकार के विरूद्ध हिंसात्मक कार्यवाही करना तथा जनता को भयभीत करना आतंकवाद है। हिंसा की धमकी, व्यक्तिगत हिंसात्मक कृत्य और लोगों को आतंकित करना आतंकवाद है। भारत सहित दक्षिण एशियाई देश तो इस समस्या से जूझ ही रहे हैं, अमेरिका भी इसका अपवाद नहीं है।

आतंकवाद भारत के लिए एक गम्भीर चुनौती है। भारत में वर्तमान में लगभग 31 प्रमुख उग्रवादी संगठन सक्रिय है। इनमें से कुछ ने पाक अधिकृत कश्मीर और अफगानिस्तान में अपने अड्डे बना रखे हैं। इनके अलावा एशिया और विश्व के अन्य स्थानों पर भी आतंकवादी संगठनों के ठिकाने मौजूद है।

जम्मू–काश्मीर तथा देश के अन्य भागों में विघटनकारी घटनाओं को अंजाम देने का काम यही आतंकवादी कर रहे है। दिसम्बर 2001 में भारतीय संसद पर जैश–ए–मोहम्मद और लश्कर–ए–तोयबा के आंतकवादियों ने हमला कर दिया था।

विदेशी आतंकवादी संगठनों द्वारा प्रायोजित यह छाया युद्ध भारत के लिए एक बड़ी समस्या है। आतंकवाद राज्य एवम् समाज के विषैले चरित्र और बीमार मानसिकता की उपज है। इसका राज्य प्रायोजित रूप अत्यन्त भयावह है। इसके अन्तर्गत विश्व के कई राज्य अपने स्वार्थी हितों की पूर्ति के लिए खुलेआम आतंकवाद और आतंकवादी संगठनों को शह एवं प्रश्रय दे रहे हैं। इन संगठनों के पास अत्याधुनिक हथियार, विस्फोटक, वित्त व अन्य सभी संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

अनगिनत वार्ताओं व सम्मेलनों में चर्चा के बावजूद आतंकवाद की समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। इससे प्रभावित देशों में शान्ति और परस्पर विश्वास तो खण्डित हुआ ही है, आर्थिक संसाधनों की भी बर्बादी हुई है। अच्छा हो, आने वाला समय आतंकवादी गतिविधियों से मुक्त हो तथा इस अथाह धनराशि का प्रयोग जनता के विकास की ओर उन्मुख करने का मार्ग प्रशस्त हो।

भारत की विदेश नीति का मूल्यांकन

भारतीय विदेश नीति प्रायः अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करने में समर्थ रही है। साथ ही उच्च मानवीय मूल्यों पर आधारित होने के कारण इसे गौरवशाली भी माना जाता है। हालांकि यदा–कदा अपने सैनिक एवम् आर्थिक हितों को लेकर यह आलोचना का शिकार भी हुई है तथापि हम कह सकते हैं कि विश्व के बदलते परिदृश्य व समय की माँग के अनुसार इसने अपने आपको परिवर्तित भी किया है। यही कारण है कि इसमें एक निरन्तरता व गत्यात्मकता देखी जा सकती है।

भारत ने अब अपने आर्थिक पहलू को महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया है। व्यापार एवम् वाणिज्य पर अपनी रणनीति को लेकर भारत गम्भीर है। भारत–अमेरिका सम्बन्धों में व्यापक सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। 2010 तथा पुनः 2015 में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की भारत यात्रा से दोनों देशों के बीच बदलाव के संकेत दिखाई देते हैं। दक्षिण एशिया तथा विकासशील देशों के नेतृत्व की भूमिका भी भारत की विदेश नीति में आए सकारात्मक बदलाव की ओर इशारा करती है। भारत के आणविक परीक्षणों ने अणुशक्ति पर पश्चिमी देशों व चीन के एकाधिकार को तोड़ दिया है। यह सिद्ध करता है कि एक तरफ भारत की विदेश नीति शान्ति और सद्भाव के प्रति वचनबद्ध है तो दूसरी तरफ अपने हितों की पूर्ति करने में भी समर्थ एवं सक्षम है। भारत की विदेश नीति ने उसकी सांस्कृतिक पहचान को भी विस्तार दिया है। भारतीय कला, भोजन, वेशभूषा, संस्कृति आदि को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान मिली है। वस्तुतः विगत दो दशकों में भारत ने आर्थिक एवम् तकनीकी प्रगति की है। अपनी गत्यात्मक विदेश–नीति के कारण ही आज भारत को नई वैश्विक भूमिका प्राप्त हुई है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत की विदेश नीति अतीत से लेकर वर्तमान तक, गौरवशाली परम्पराओं को अभिव्यक्त करती है। विश्व–शान्ति, मैत्री, विश्व–बन्धुत्व एवम् सहयोग जैसे श्रेष्ठ आदर्श इसके प्रमुख आधार स्तम्भ रहे हैं।
2. भारत की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य अपने राष्ट्रीय हितों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय हितों का समायोजन करना है।
3. भारत की विदेश नीति के प्रमुख निर्धारक तत्त्वों में तत्कालीन परिस्थितियाँ, भौगोलिक तत्त्व एवं विचारधारा का प्रभाव उल्लेखनीय है।
4. गुट निरपेक्षता भारत की विदेश नीति की एक प्रमुख विशेषता है। इसका तात्पर्य है कि तत्कालीन गुटों की

राजनीति से अपने आप को अलग रख कर अपने देश के विकास पर ध्यान देना।

5. भारत ने पंचशील के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिसके अन्तर्गत अनाक्रमण की नीति अपनाना, एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान, समानता, अहस्तक्षेप की नीति तथा शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व सम्मिलित हैं।
6. भारत रंग अथवा जाति–प्रजाति के आधार पर भेदभाव करना समानता के सिद्धान्त के प्रतिकूल मानता है, अतः भारत नस्लवाद व रंगभेद का विरोध करता है।
7. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व बन्धुत्व को बनाए रखने के लिए भारत अन्तर्राष्ट्रीय संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ का समर्थन करता है।
8. विश्व के बदलते हुए परिदृश्य एवं परमाणु निःशस्त्रीकरण पर परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों की भेदभावपूर्ण नीति से क्षुब्ध होकर भारत ने अपने परमाणु कार्यक्रम को नया रूप प्रदान किया है।
9. दक्षिण एशिया के सात देशों द्वारा मिलकर दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) की स्थापना दिसम्बर 1985 में की गई।
10. आतंकवाद की समस्या भारत के लिए एक गम्भीर चुनौती है।
11. भारत ने अपना रूख स्पष्ट करते हुए कठोर कदम उठाए हैं परन्तु निकट भविष्य में इसका समाधान दिखाई नहीं दे रहा है

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. गुट निरपेक्ष आन्दोलन का बेलग्रेड़ शिखर सम्मेलन किस वर्ष में आयोजित किया गया था ?

   (क) 1963 (ख) 1961

   (ग) 1953 (घ) 1958

2. पंचशील के पाँच सिद्धान्त मूलतः किसके दर्शन पर आधारित हैं ?

   (क) महावीर स्वामी (ख) स्वामी विवेकानन्द

   (ग) स्वामी दयानन्द (घ) गौतम बुद्ध

3. पंचशील को भारत–चीन समझौते के अन्तर्गत किस वर्ष लागू किया गया ?

   (क) 1950 (ख) 1954

   (ग) 1955 (घ) 1960

4. सार्क का 18 वां शिखर सम्मेलन किस देश में सम्पन्न हुआ ?

   (क) भारत (ख) पाकिस्तान

   (ग) नेपाल (घ) भूटान

5. भारत ने अपना प्रथम परमाणु परीक्षण किस वर्ष में किया?

   (क) 1984 (ख) 1974

   (ग) 1975 (घ) 1980

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की विदेश नीति के प्रमुख आधार स्तम्भ क्या हैं ?
2. भारत की विदेश नीति के उद्देश्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व क्या हैं ?
3. भारतीय विदेश नीति के मूल तत्वों का समावेश संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है ?
4. गुटनिरपेक्षता को आन्दोलन का रूप देने में किन नेताओं की प्रमुख भूमिका रही है ?
5. सार्क (दक्षेस) का पूरा नाम बताइये ?
6. भारत की परमाणु नीति के सूत्रधार कौन है ?
7. विश्व शान्ति के लिए भारत किस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का समर्थन करता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की विदेश नीति के प्रमुख आदर्श बताइये ?
2. गुटनिरपेक्षता की नीति से क्या अभिप्राय है ?
3. भौगोलिक तत्त्व विदेश नीति को किस प्रकार प्रभावित करता है? बताइये।
4. शीत–युद्ध की समाप्ति के बाद गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
5. पंचशील के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

6. शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व से आप क्या समझते हैं? बताइये।
7. भारत में आतंकवाद की समस्या पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
8. संयुक्त राष्ट्रसंघ के परिप्रेक्ष्य में भारत की भूमिका का विवेचन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य बताइये।
2. भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
3. भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. भारत की परमाणु नीति का विवेचन कीजिए।
5. भारत की विदेश नीति का मूल्यांकन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2. (घ) 3. (ख) 4. (ग) 5. (ख)

अध्याय 12

भारत का भौतिक स्वरूप

परिचय

उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रिश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तत् भारत नाम, भारती यत्र सन्ततिः।।

भारतीय प्राचीन ग्रन्थ 'विष्णु पुराण' के अनुसार, ''पृथ्वी के उस भू–भाग को जो उत्तर में हिमाद्रि, हिमवान एवं हेमकूट पर्वत तन्त्र से लगाकर दक्षिण में सेतुबन्ध (हिन्द महासागर) तक फैला है और जिसमें भारतीय सन्तति बसती है, को भारत कहते हैं।

प्राचीन काल में आर्यों की भूमि के कारण यह आर्यावर्त के नाम से भी जाना जाता था। ईरानियों ने सिन्धु नदी के तटीय निवासियों को हिन्दू एवं इस भू–भाग को हिन्दुस्थान का नाम दिया। रोम निवासियों ने सिन्धु नदी को इण्डस तथा युनानियों ने इण्डोस व इस देश को इण्डिया कहा। यही देश विश्व में आज भारत के नाम से विख्यात है।

भारत भूमध्य रेखा के उत्तर में $8^{\circ}4'$ से $37^{\circ}6'$ उत्तरी अक्षांश तक तथा $68^{\circ}7'$ से $97^{\circ}25'$ पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है। कर्क रेखा अर्थात् $23^{\circ}30'$ उत्तरी अक्षांश हमारे देश के लगभग मध्य से गुजरती है। यह रेखा भारत को दो भागों में विभक्त करती है। भारत का प्रामाणिक समय $82^{\circ}\ 30'$ पूर्वी देशान्तर रेखा से माना जाता है। यह रेखा इलाहाबाद के पास से गुजरती है।

भारत की विशालता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसका विस्तार पूर्व–पश्चिम में 2933 किलोमीटर और उत्तर–दक्षिण में 3214 किलोमीटर है। इसकी स्थलीय सीमा 15200 किलोमीटर और समुद्रीय सीमा 7516.6 किलोमीटर (लक्षद्वीप, अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों सहित) है। इसका क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, म्यांमार और बांग्लादेश भारत की स्थल सीमा से जुड़े पड़ोसी देश हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवां बड़ा देश है। भारत की जनसंख्या 121.02 करोड़ (जनगणना–2011 के अनुसार) है। भारत का क्षेत्रफल सम्पूर्ण विश्व के क्षेत्रफल का 2.42 प्रतिशत है, जबकि इसकी जनसंख्या सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत है।

भारत के भौतिक प्रदेश

भारत की विशालता के कारण यहाँ अनेक भौगोलिक विविधताओं का मिलना स्वाभाविक है। भारत को उपमहाद्वीप की संज्ञा भी दी जाती है। देश के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 10.5 प्रतिशत पर्वतीय भाग, 18.6 प्रतिशत पहाड़ियाँ, 27.7 प्रतिशत पठारी एवं 43 प्रतिशत मैदानी भाग हैं। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत जैसी विशाल श्रृंखलाएँ हैं, जिसमें अनेकों बर्फीली चोटियाँ, सुंदर घाटियाँ व महाखड्ड हैं। भौतिक विभिन्नताओं की दृष्टि से हमारे देश को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है –

1. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश,
2. उत्तर का विशाल मैदान;
3. थार का मरूस्थल;
4. प्रायद्वीपीय पठार;
5. समुद्र तटीय मैदान व द्वीप समूह

(1) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश– हिमालय पर्वत भारत की उत्तरी सीमा पर पश्चिम से पूर्व की ओर वृहत् चाप के रूप में 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। यह क्षेत्र लगभग 2500 किलोमीटर लम्बाई में तथा 250 से 400 किलोमीटर की चौड़ाई में विस्तृत है। यह विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत है। इसका क्षेत्रफल लगभग 5 लाख वर्ग कि.मी. है। यह श्रेणी पामीर पर्वत प्रणाली का भाग है। पश्चिम में पामीर गांठ से निकल कर यह अरूणाचल प्रदेश तक फैली है। भू–गर्भ शास्त्रियों के अनुसार आज जहाँ हिमालय पर्वत श्रेणियों का विस्तार है, वहां पहले टेथिस सागर का विस्तार था। इसमें अवसाद के जमाव के पश्चात् कालांतर में भूगर्भीय हलचलों से जमा अवसाद की परतों में मोड़ पड़ जाने से इस सागर की तली ऊँची उठ गई। इसके फलस्वरूप ही यह नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणियां बनी, यथा–

मानचित्र स.

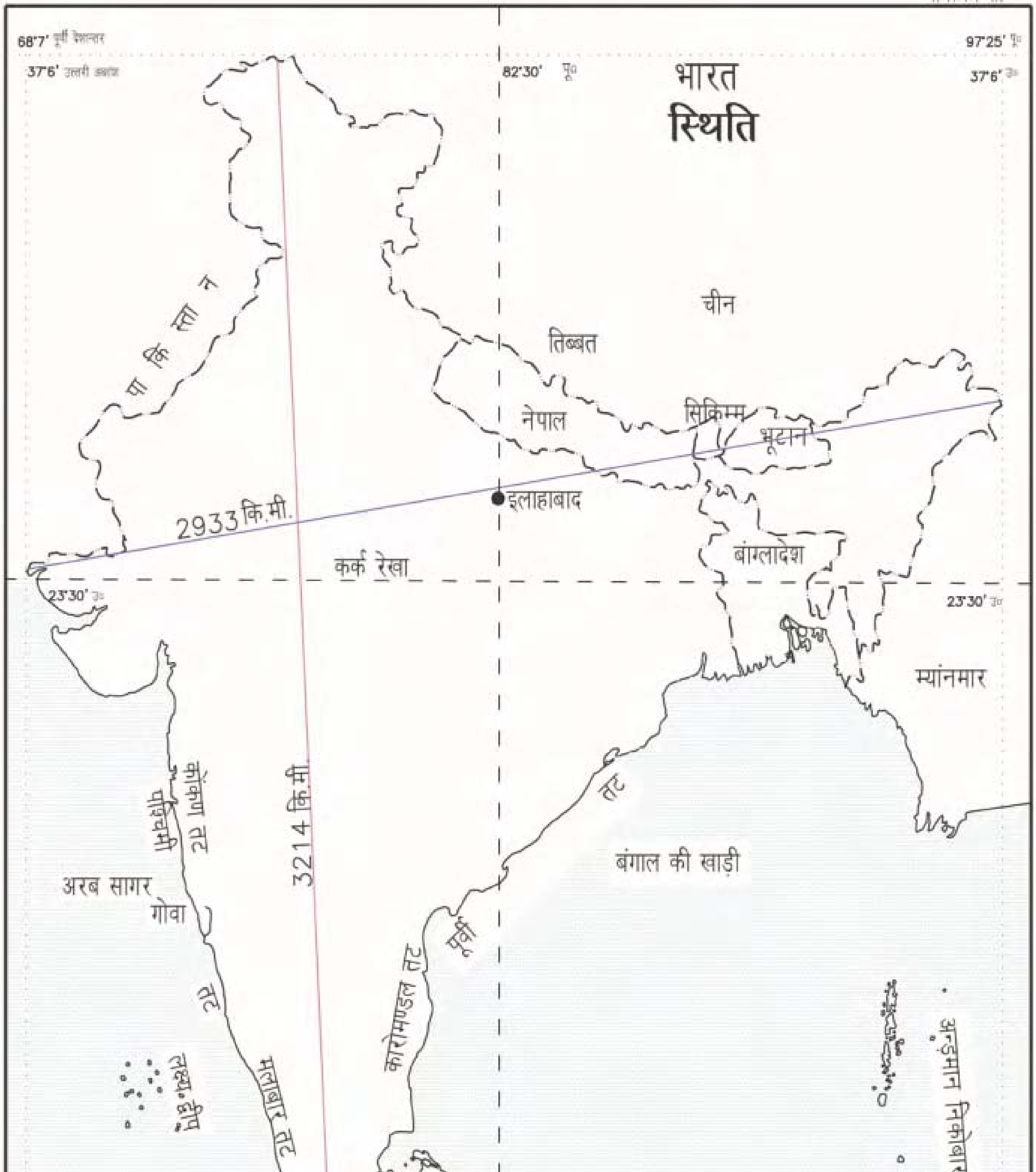
भारत
स्थिति
चीन
तिब्बत
नेपाल
सिक्किम
भूटान
इलाहाबाद
2933 कि.मी.
कर्क रेखा
बांग्लादेश
म्यांनमार
पाकिस्तान
3214 कि.मी.
अरब सागर
गोवा
बंगाल की खाड़ी
कोरोमण्डल तट
पूर्वी तट
मालाबार तट
लक्षद्वीप
अन्डमान निकोबार द्वीप
मन्नार की खाड़ी
लंका
हिन्द
महासागर
0 200 400 600 कि.मी.
68°7'
97°25'
37°6'
82°30'
23°30'
8°4'

मानचित्र स.

भारत
राजनीतिक
जम्मू एवं काश्मीर
हिमाचल प्रदेश
पंजाब
हरियाणा
उत्तराखण्ड
दिल्ली
पाकिस्तान
चीन
तिब्बत
नेपाल
सिक्किम
भूटान
अरुणाचल प्रदेश
असम
नागालैंड
मेघालय
मणिपुर
त्रिपुरा
मिजोरम
बांग्लादेश
राजस्थान
उत्तर प्रदेश
बिहार
झारखण्ड
पश्चिम बंगाल
गुजरात
मध्य प्रदेश
छत्तीसगढ़
उड़ीसा
म्यांनमार
दमन
महाराष्ट्र
तेलंगाना
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
गोवा
आन्ध्र प्रदेश
कर्नाटक
तमिलनाडु
केरल
लक्षद्वीप
अंडमान निकोबार द्वीप
मन्नार की खाड़ी
लंका
हिन्द
महासागर
0 200 400 600 कि.मी.

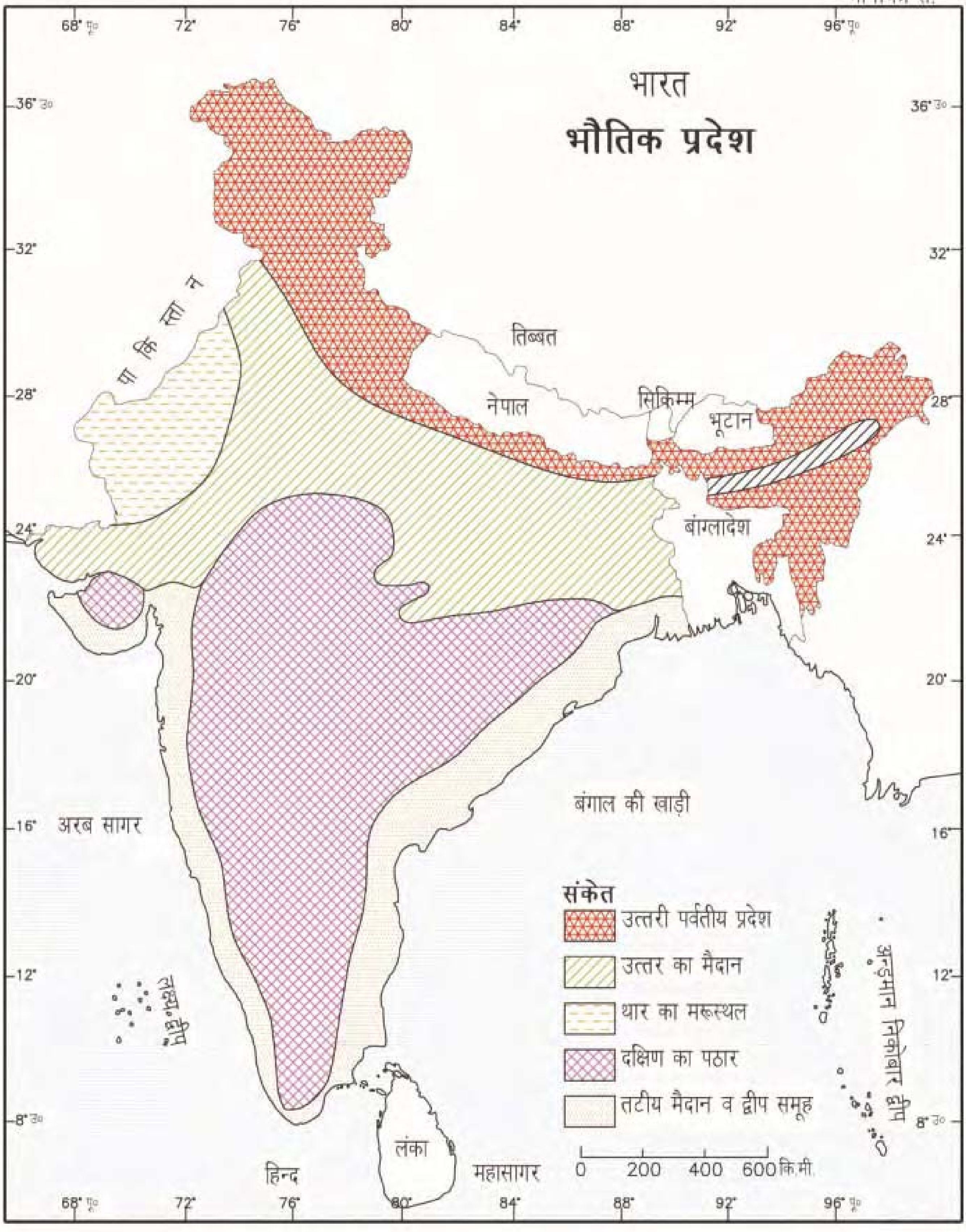
भारत
भौतिक प्रदेश
पाकिस्तान
तिब्बत
नेपाल
सिक्किम
भूटान
बांग्लादेश
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
लक्षद्वीप
अण्डमान निकोबार द्वीप
लंका
हिन्द महासागर
संकेत
उत्तरी पर्वतीय प्रदेश
उत्तर का मैदान
थार का मरूस्थल
दक्षिण का पठार
तटीय मैदान व द्वीप समूह
0 200 400 600 कि.मी.
68° पू. 72° 76° 80° 84° 88° 92° 96° पू.
36° उ. 32° 28° 24° 20° 16° 12° 8° उ.

(1) बृहद् हिमालय–प्रमुख चोटियाँ–गौरीशंकर (माउण्ट एवरेस्ट), कंचनजंघा तथा नंदा देवी

(2) लघु हिमालय–प्रमुख श्रेणियाँ–पीर पंजाल व धौलाधर

(3) उप हिमालय–जम्मू, गिरी, मिसमी, डाफला पहाड़ियां आदि।

1. वृहद् हिमालय :– यह हिमालय की सबसे उत्तरी पर्वतमाला है, जिसे मुख्य हिमालय, हिमाद्री आदि नामों से भी जाना जाता है। यह श्रेणी उत्तर–पश्चिम में सिन्धु नदी के मोड़ से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ तक चाप की आकृति में लगभग 2500 किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत है। इसकी औसत ऊँचाई लगभग 6000 मीटर तथा चौड़ाई 100 से 200 किलोमीटर तक है। यहाँ 40 पर्वतीय चोटियाँ 7000 मीटर से भी अधिक ऊँची हैं। इस श्रेणी में विश्व की सबसे ऊँची चोटी माउण्ट एवरेस्ट स्थित है। इसकी ऊँचाई 8848 मीटर है। इस पर चढ़ने वाला प्रथम भारतीय महिला बच्छिन्दरी पाल थी। भारत में हिमालय की सबसे ऊँची चोटी कंचनजंघा (8585 मीटर) है। इस श्रेणी में जोजिला, शिपकी, माना, नीति ला आदि दर्रे हैं। इसी प्रदेश से हमारे देश की प्रसिद्ध नदियाँ गंगा व यमुना निकलती है।

2. लघु हिमालय :– यह पर्वत शृंखला बृहद् हिमालय के दक्षिण में स्थित है जो मध्य हिमालय या हिमाचल हिमालय के नाम से भी जाना जाता है। इसकी चौड़ाई 80 से 100 किलोमीटर तक है। इसकी औसत ऊँचाई 3000 मीटर है, किन्तु अधिकतम ऊँचाई 5000 मीटर तक पाई जाती है। पीर पंजाल व धौलाधर इसकी प्रमुख श्रेणियाँ है। बनिहाल प्रमुख दर्रा है। यहाँ शीत ऋतु में 3–4 महीने तक बर्फ गिरती है, किन्तु ग्रीष्म ऋतु सुहावनी व स्वास्थ्यवर्द्धक रहती है। यहाँ कई पर्वतीय पर्यटक स्थान जैसे शिमला, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिंग, रानीखेत आदि स्थित है। इस श्रेणी के उच्च ढालों पर कोणधारी वन तथा निम्न ढालों पर घास के क्षेत्र पाये जाते है, जिन्हें काश्मीर में मर्ग (जैसे गुलमर्ग, सोनमर्ग आदि) कहा जाता है।

3. उप–हिमालय :– हिमालय की यह सबसे दक्षिणी श्रेणी है। इसे बाह्य हिमालय या शिवालिक श्रेणी के नाम से जाना जाता है। हिमालय की सभी श्रेणियों में यह नवीनतम् रचना है। यह श्रेणी पोटवार बेसिन से प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर कोसी नदी तक विस्तृत है। यह श्रेणी 10 से 50 किलोमीटर चौड़ी है तथा इसकी औसत ऊँचाई 600 से 1500 मीटर है। जम्मू में इसे जम्मू पहाड़ियां तथा अरूणाचल में गिरी, मिशमी, अबोर, डाफला पहाड़ियां के नाम से जानते हैं। यह सम्पूर्ण भाग वनाच्छादित है। मध्यवर्ती भाग में हिमालय व शिवालिक के बीच नदियों की मिट्टी व बालू से निर्मित कुछ ऊँचे घाटी–मैदान भी मिलते हैं, जिन्हें पूर्व में द्वार – जैसे हरिद्वार तथा पश्चिम में दून – जैसे देहरादून कहते है।

(2) उत्तर का विशाल मैदान

यह मैदान हिमालय पर्वत तथा प्रायद्वीपीय पठार के मध्य स्थित है। प्राचीनकाल से यह भू–भाग गंगा–सिन्धु मैदान के नाम से जाना जाता है, किन्तु विभाजन के कारण सिन्धु व उसकी सहायक नदियाँ झेलम, चिनाव व रावी के मैदान पाकिस्तान में चले गये हैं। अतः अब भारतीय क्षेत्र को सतलज–गंगा–ब्रह्मपुत्र का मैदान कहते हैं, जो इनके व इनकी सहायक नदियों द्वारा बिछाई गई तलछट मिट्टी से बना है। इस धनुषाकार मैदान की लम्बाई लगभग 2400 किलोमीटर व चौड़ाई 150 से 480 किलोमीटर तक है। इस मैदान का क्षेत्रफल 7 लाख वर्ग किलोमीटर है। 'दोआब' दो नदियों के बीच के भू–भाग को कहा जाता है। इस मैदान में पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड आदि का भाग शामिल है।

(i) उत्तर के मैदान का महत्त्व

काँप (नदी की बारीक) मिट्टी से बनने के कारण यह अत्यधिक उपजाऊ मैदान है, अनेकों नदियों का जाल बिछा होने से पीने व सिंचाई के लिये प्रचुर जल उपलब्ध है। नदियों का उपयोग सस्ते यातायात साधन के रूप में किया गया है। समतल होने से सड़क व रेल मार्गों का सघन जाल है। हमारे देश के अधिकांश औद्योगिक, व्यापारिक व धार्मिक नगर यहीं हैं, जैसे – दिल्ली, कानपुर, हरिद्वार, मथुरा, वाराणसी, अमृतसर, लखनऊ, आगरा, पटना, कोलकाता आदि।

(ii) भौगोलिक वर्गीकरण :–

अ. भाबर प्रदेश :– शिवालिक के पर्वतपदीय क्षेत्र में सतलज नदी से तीस्ता नदी तक 8 से 16 किलोमीटर चौड़ी पट्टी में इसका विस्तार है। पर्वतीय क्षेत्र से निकलकर मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करते ही ढ़ाल के कम होने से नदियाँ भारी

चट्टानों के टुकड़े इस पर्वत पद क्षेत्र में जमा कर देती हैं। इस क्षेत्र में अधिकांश नदियों का भूमिगत प्रवाह होता है।

आ. तराई प्रदेश :– तराई प्रदेश भाबर के दक्षिण में मैदान का वह भाग है, जहाँ भाबर प्रदेश का भूमिगत जल प्रवाह पुनः धरातल पर प्रकट हो जाता है। ढाल की न्यूनता व अनियमित जल प्रवाह के कारण यहाँ दलदल पाये जाते हैं। इस प्रदेश में सघन वन, लम्बी घासें जैसे – कांस, हाथी घास आदि व हाथी व गैंन्डे जैसे विशाल वन्य जीव मिलते हैं।

इ. बांगर प्रदेश :– प्राचीन तलछट से निर्मित उच्च मैदान बांगर कहलाते हैं जहाँ नदियों के बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता है। ये उत्तर प्रदेश के उत्तर–पश्चिमी भाग तथा उत्तराखण्ड में अधिक पाये जाते हैं।

ई. खादर प्रदेश :– ये नई तलछट व कांप मिट्‌टी से बने हुए निचले मैदान हैं जहाँ बाढ़ का पानी प्रतिवर्ष पहुँच कर मिट्टी की नई परत जमाता रहता है। ऐसे मैदानों को खादर कहते है। ये पूर्वी उत्तर–प्रदेश, झारखण्ड, बिहार व पश्चिम–बंगाल में अधिक है।

(3) थार का मरूस्थल

जलवायु परिवर्तन से निर्मित यह मरूस्थल अरावली पर्वत के पश्चिम व उत्तर पश्चिम में सिन्धु के मैदान तक विस्तृत है। यह लगभग 150 से 380 मीटर तक ऊँचा, 640 किलोमीटर लम्बा व 160 किलोमीटर चौड़ा क्षेत्र है। यहाँ तेज हवाएं बालुका–स्तूपों एवं रेत के टीलों का निर्माण करती हैं। इन टीलों के मध्य वर्षा जल भर जाने से यहाँ अस्थायी झीलें बन जाती हैं, जिन्हें ढांढ या रन कहते हैं। यहाँ सांभर, लूणकरणसर, डीडवाना, पचपदरा आदि खारे पानी की मुख्य झीलें हैं। इनमें नमक तैयार किया जाता है। भूगर्भ–शास्त्रियों के मतानुसार यह क्षेत्र पहले उपजाऊ भाग था। यहाँ बड़ी–बड़ी नदियाँ बहती थी। यहां पर सरस्वती नदी के अवशेष मिलना इसका प्रमाण है।

(4) प्रायद्वीपीय पठार

भारत के विशाल मैदान के दक्षिण में विस्तृत अति प्राचीन लावा निर्मित भू–भाग है जो 7 लाख वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसके तीन ओर समुद्र हैं और इस त्रिभुजाकार पठार का आधार उत्तर में विंध्याचल पर्वतमाला तथा शीर्ष दक्षिण में कुमारी अन्तरीप है। दक्षिण–पूर्वी राजस्थान की उच्च भूमि से कन्याकुमारी तक इसकी अधिकतम लम्बाई 1800 किलोमीटर तथा अधिकतम चौड़ाई लगभग 1400 मिलोमीटर है। इस पठार की औसत ऊँचाई समुद्रतल से 600 मीटर है। इसका विस्तार दक्षिण–पूर्वी राजस्थान, गुजरात, झारखण्ड, मध्य–प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र–प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु व केरल में आंशिक रूप से है।

प्रायद्वीपीय भारत को निम्न प्रकार से उप–विभाजित किया जा सकता है –

अ. पश्चिमी घाट – दक्षिण के पठार का पश्चिमी किनारा पश्चिमी घाट के रूप में जाना जाता है। यह उत्तर में सह्याद्रि तथा दक्षिण में नीलगिरी के नाम से जाना जाता है। इनका अरब सागर की ओर ढाल तीव्र तथा पूर्व की ओर धीमा ढाल है। लगभग 1000 मीटर औसत ऊँचाई वाले सह्याद्रि का ताप्ती घाटी से कुमारी अन्तरीप तक क्रमिक विस्तार है। इसमें भोर घाट, थाल घाट व पाल घाट दर्रे हैं। दक्षिण में यह पूर्वी घाट से मिल गये हैं। इसकी सबसे ऊँची चोटी (2637 मीटर) अनाई मूदी है।

आ. पूर्वी घाट :– यह घाट पश्चिमी घाट की अपेक्षा कम ऊँची, तट से काफी दूर स्थित एवं अक्रमिक हैं। यह घाट पूर्वी तट के समानान्तर लगभग 800 किलोमीटर की लम्बाई में फैले हैं। यह उत्तर में महानदी की घाटी से दक्षिण में नीलगिरि पर्वत तक फैले हैं। पूर्व की ओर बहने वाली सभी नदियों ने पूर्वी घाट को काफी छिन्न–विछिन्न कर दिया है। इनकी औसत ऊँचाई 600 मीटर है। 1501 मीटर पूर्वी घाट की सबसे ऊँची चोटियाँ है।

इ. दक्षिणी पठार :– यह अत्यन्त प्राचीन दृढ़ भू–भाग है जिसका निर्माण ज्वालामुखी उद्‌गार से निसृत लावा से हुआ है। उपजाऊ तथा काली मिट्‌टी युक्त यह पठारी भू–भाग लगभग 5 लाख वर्ग किलोमीटर में विस्तृत है। इसमें दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान, गुजरात, मध्य–प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र–प्रदेश एवं कर्नाटक के भाग सम्मिलित है। इस पठार की औसत ऊँचाई 600 मीटर है। इस पठार का ढ़ाल पूर्व की ओर है इसलिये इस पठार की अधिकांश नदियाँ पूर्व की ओर बहती है। इन नदियों ने इसे

छोटे–छोटे पठारों में विभक्त कर दिया है, जैसे छत्तीसगढ़, मैसूर का पठार, रायल सीमा का पठार, तेलंगाना का पठार आदि।

प्राय:द्वीपीय पठार का महत्व :–

यहां प्रचुर खनिज भण्डार पाये जाते हैं, काली मिट्टी कपास के उत्पादन के लिए लाभदायक है।, यहाँ सागवान, शीशम व चन्दन वाले बहुमूल्य मानसूनी वन मिलते हैं। नदियों में जल–प्रपात मिलते हैं जो जल–विद्युत उत्पादन का आधार है। इसी भाग में पचमढ़ी, महाबलेश्वर उड्गमण्डम (ऊटी) आदि पर्यटन स्थल है।

(5) समुद्र तटीय मैदान व द्वीप समूह

दक्षिण के पठार के दोनों तरफ मैदान स्थित हैं। ये समुद्र तटीय मैदान दो भागों में विभक्त किये जाते हैं। ऐसे मैदान नदियों द्वारा या समुद्र की क्रिया से बने हैं –

(अ) पश्चिमी तटीय समुद्री मैदान – खम्भात की खाड़ी से प्रारम्भ होकर कुमारी अन्तरीप तक फैले इस समुद्र तटीय मैदान की औसत चौड़ाई 64 किलोमीटर है तथा अधिकतम ऊँचाई 180 मीटर है व इसकी लम्बाई 1600 किलोमीटर है। इस तटीय मैदान में तीव्रगामी छोटी नदियाँ बहती हैं। उत्तर में यह मैदान अधिक चौड़ा है। यहाँ नर्मदा, ताप्ती, मंडवी आदि नदियाँ बहती हैं। इस तट के उत्तरी भाग को कोंकण तथा दक्षिणी भाग को मालाबार तट कहते हैं। इसके प्रमुख बन्दरगाह कान्डला, मुम्बई, मारमगोआ, कोचीन व मंगलौर आदि है। इस मैदान में उत्तम जलवायु, उपजाऊ मिट्टी व व्यापार की सुविधाएँ होने से सघन जनसंख्या पायी जाती है।

(आ) पूर्वी समुद्र तटीय मैदान – यह गंगा मुहाने से कुमारी अंतरीप तक फैला है। यह पश्चिम मैदान की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसकी लम्बाई 1500 किलोमीटर तथा चौड़ाई 16 किलोमीटर से 480 किलोमीटर तक है। इस तट का उत्तरी भाग उत्तरी सरकार तथा दक्षिणी भाग कोरोमंडल तट कहलाता है। महानदी, कृष्णा, गोदावरी व कावेरी यहाँ की प्रमुख नदियाँ है। विशाखापट्टनम्, चेन्नई, पारादीप व तूतीकोरिन यहाँ के प्रमुख बन्दरगाह है। यहाँ चिल्का, पुलीकट व कोलेरू झीलें हैं।

(इ) द्वीप–समूह

भारत के पूर्वी व पश्चिमी तटों तथा अरब सागर व बंगाल की खाड़ी में हमारे देश के अनेक द्वीप हैं। अधिकतर द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में हैं। प्रमुख द्वीप समूह हैं – अण्डमान–निकोबार, लक्षद्वीप, पाम्बन, हेयर, पारिकुद व श्रीहरिकोटा आदि। भारत का दक्षिणतम् बिन्दु ''इन्दिरा पाइंट'' निकोबार द्वीप समूह में है।

(i) अण्डमान निकोबार द्वीप समूह – यह कोलकाता से 1248 किलोमीटर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी में स्थित है। इस द्वीप समूह में लगभग 205 द्वीप हैं। यहाँ के किनारों पर सुन्दरी वृक्ष बहुतायात में मिलते हैं। मुख्य बड़े द्वीप उत्तरी अण्डमान, मध्य अण्डमान, दक्षिणी अण्डमान, बारातंग तथा रूथलैण्ड है। निकोबार द्वीप अण्डमान से 128 किलोमीटर दक्षिण में है। इसके उत्तर के द्वीप को कार निकोबार, मध्य को कामोरटा तथा तानकाडरी एवं दक्षिण को विशाल निकोबार कहा जाता है। इनमें अमिनी द्वीप व मिनीकोई सम्मिलित है।

(ii) लक्षद्वीप :–अरब सागर में भारत के पश्चिमी तट के पास स्थित है। इसका शाब्दिक अर्थ ''एक लाख द्वीप'' है। यहाँ पर नारियल के वृक्ष बहुतायत में मिलते हैं। यह वास्तव में मूंगे के द्वीप है।

राजस्थान के भौतिक प्रदेश

परिचय–

राजस्थान भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से विभिन्नता वाला राज्य है। यह भारत के उत्तर–पश्चिम में पतंगाकार रूप में $23^{\circ}3'$ उत्तरी अक्षांश से $30^{\circ}12'$ उत्तरी अक्षांश तथा $69^{\circ}30'$ पूर्वी देशांतर से $78^{\circ}17'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। कर्क रेखा ($23^{\circ}30'$ उत्तरी अक्षांश) इसके दक्षिण से गुजरती है। इसकी पूर्व से पश्चिम तक अधिकतम लम्बाई 869 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक अधिकतम चौड़ाई 826 किलोमीटर है। इसका कुल क्षेत्र 3,42,239 वर्ग किलोमीटर है, जो कि हमारे देश भारत का 10.43 प्रतिशत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से इसका भारत में प्रथम स्थान है।

राज्य की पश्चिमी सीमा का 1070 किलोमीटर भाग पाकिस्तान से अंर्तराष्ट्रीय सीमा बनाता है। इसके पूर्व में उत्तर–प्रदेश व मध्य–प्रदेश, उत्तर में पंजाब व हरियाणा तथा दक्षिण में गुजरात व मध्य–प्रदेश के जिले स्थित हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार प्रदेश में 6,85,48,437 व्यक्ति निवास करते हैं। औसत जनसंख्या घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

स्वतंत्रता के बाद 1956 तक राजस्थान का गठन पूरा हुआ। वर्तमान में प्रशासनिक दृष्टि से यह 7 संभागों, 33 जिलों व 244 तहसीलों में बंटा हुआ है। इसके संभाग जयपुर, अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा तथा भरतपुर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से जैसलमेर सबसे बड़ा व धौलपुर सबसे छोटा जिला है।

राज्य के 33 जिलों के नाम हैं– अजमेर, अलवर, बारां,

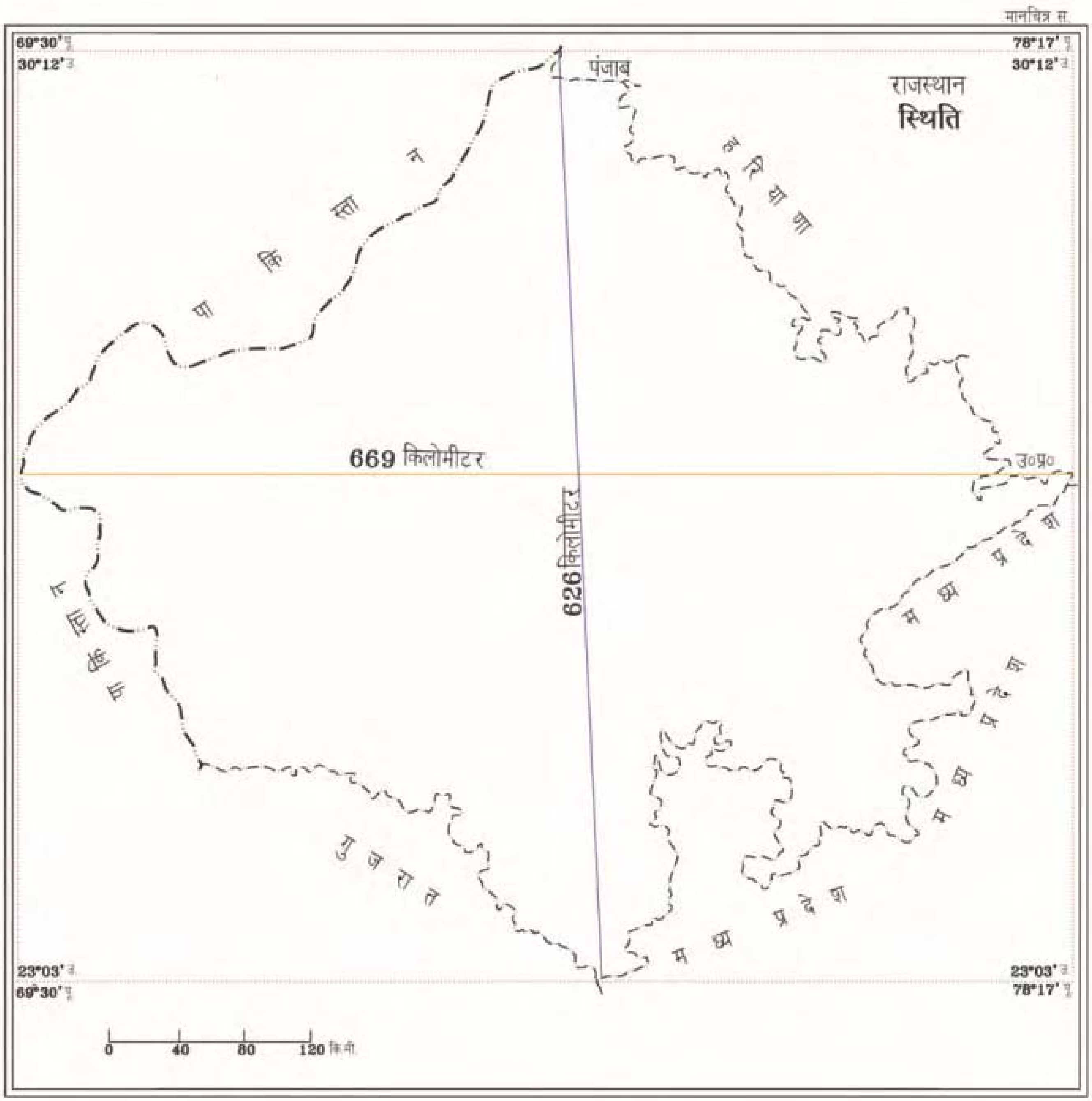

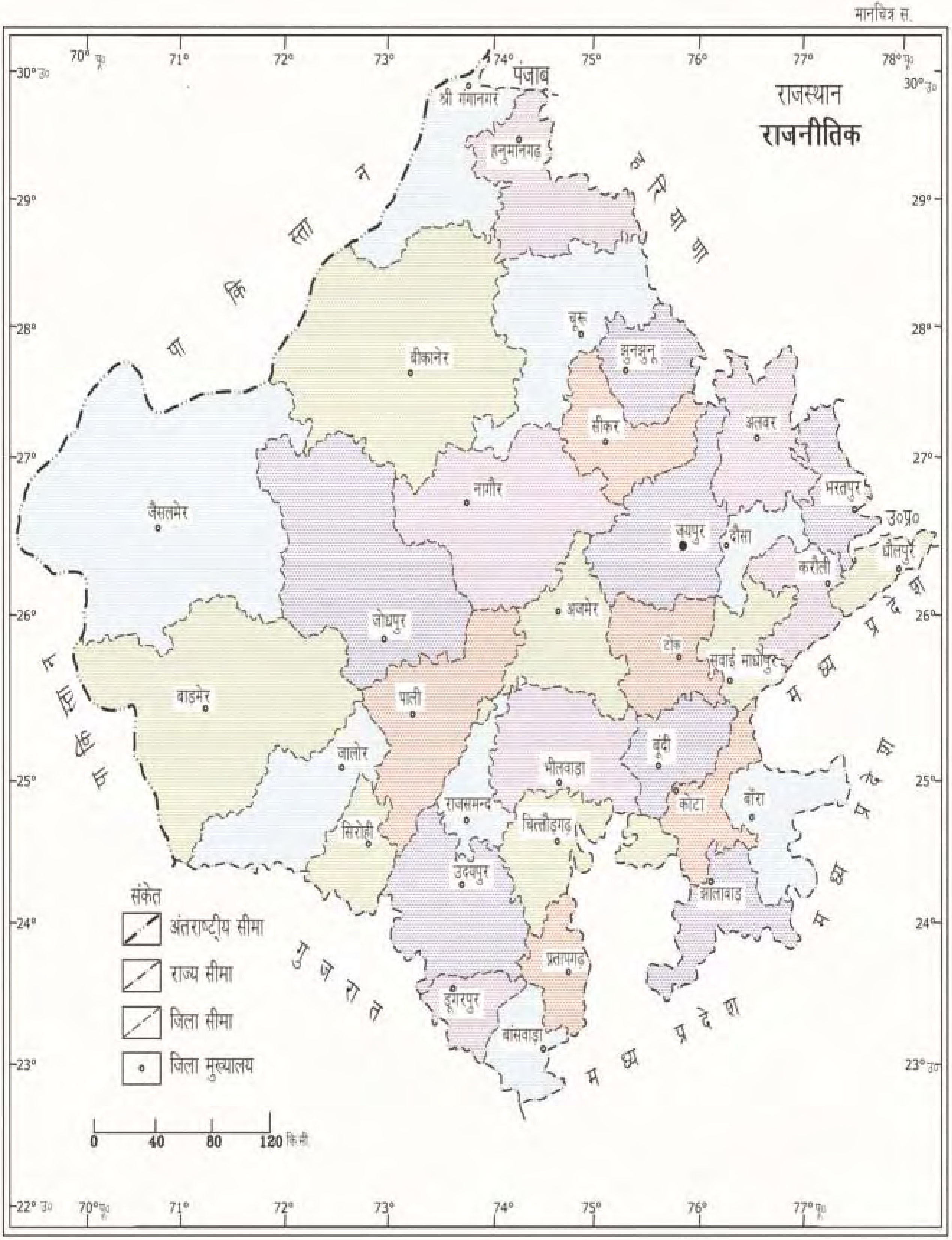
मानचित्र स.
राजस्थान
राजनीतिक
पंजाब
श्री गंगानगर
हनुमानगढ़
बीकानेर
चूरू
झुन्झुनू
सीकर
अलवर
भरतपुर
उ०प्र०
धौलपुर
करौली
दौसा
जयपुर
नागौर
जैसलमेर
जोधपुर
अजमेर
टोंक
सवाई माधोपुर
बाड़मेर
पाली
जालोर
सिरोही
राजसमन्द
भीलवाड़ा
बूंदी
कोटा
बारां
चित्तौड़गढ़
उदयपुर
झालावाड़
प्रतापगढ़
डूंगरपुर
बांसवाड़ा
पाकिस्तान
हरियाणा
गुजरात
मध्य प्रदेश
संकेत
अंतराष्ट्रीय सीमा
राज्य सीमा
जिला सीमा
जिला मुख्यालय
0 40 80 120 कि.मी.

बांसवाड़ा, बाड़मेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, बीकानेर, बूंदी, चित्तौड़, चुरू, धौलपुर, दौसा, डूंगरपुर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, जयपुर, जैसलमेर, जालौर, झालावाड़, झुंझुनू, जोधपुर, करौली, कोटा, नागौर, पाली, प्रतापगढ़, राजसमन्द, सवाईमाधोपुर, सीकर, सिरोही, टोंक व उदयपुर।

राजस्थान का भौतिक स्वरूप

राजस्थान में पर्वत, पठारी, मैदानी व रेगिस्तानी भूदृश्य मिलते हैं। राजस्थान का अधिकांश पश्चिमी एवं उत्तरी–पश्चिमी भाग टेथिस महासागर का ही अवशेष था जो कालान्तर में हिमालय की नदियों द्वारा लाई गई मिट्टियों से पाट दिया गया। टेथिस सागर के अवशेष के रूप में राजस्थान में आज भी सांभर, डीडवाना, पचपदरा, लूणकरणसर आदि में खारे पानी की झीलें मौजूद हैं।

राजस्थान की अरावली पर्वतमाला तथा दक्षिणी पठारी

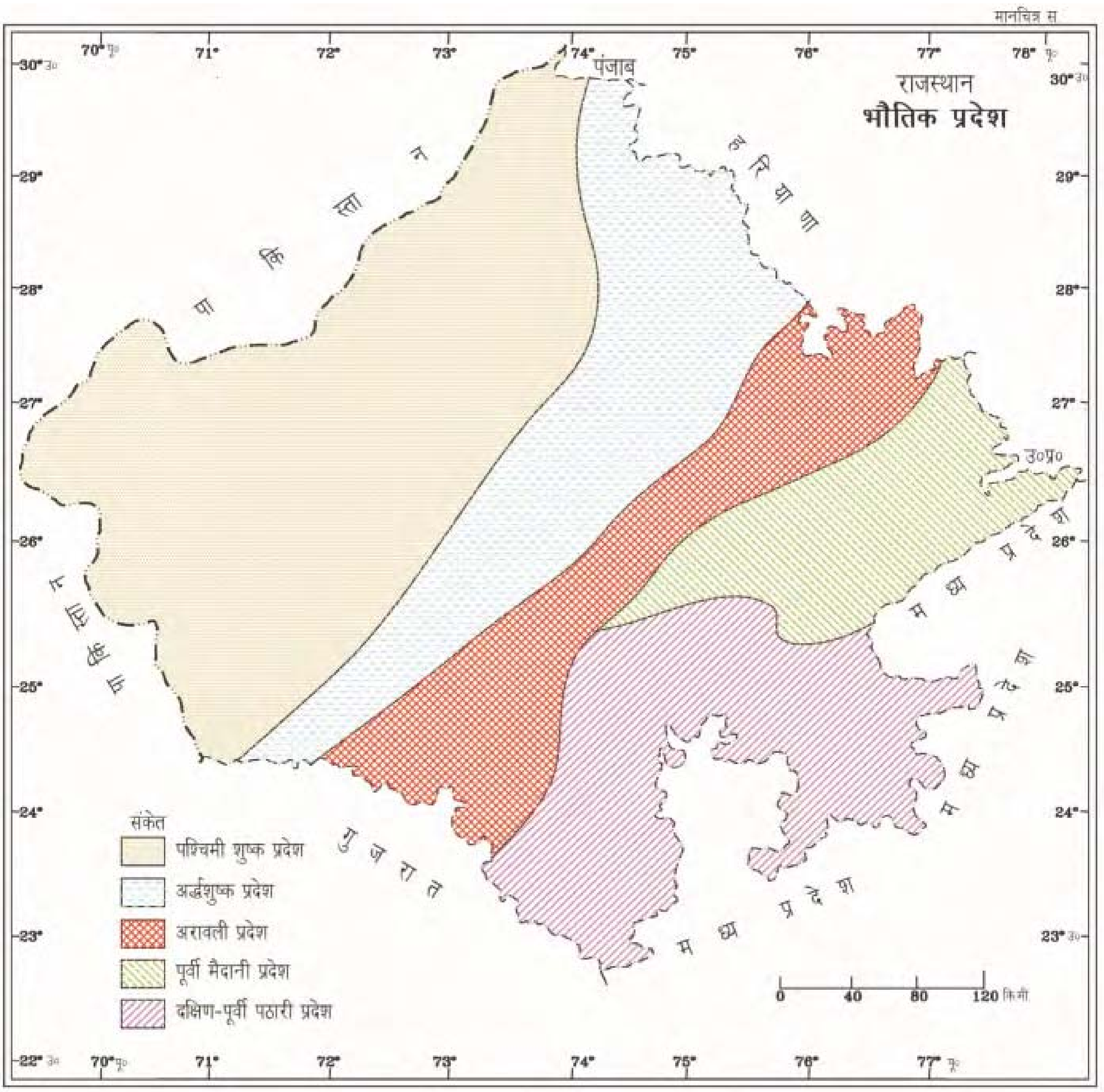

भाग गौंडवाना लैण्ड के भू–भाग हैं। अरावली पर्वतमाला विश्व की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक मानी जाती है। अरावली पर्वतमाला राज्य की मुख्य जल विभाजक है तथा उसे दो भागों में बाँटती है। राज्य का भौतिक स्वरूप भूगर्भिक हलचलों, भूगर्भिक संरचना, अनाच्छादन एवं जल प्रवाह प्रणाली के मिले–जुले प्रभाव का परिणाम है। राजस्थान के धरातलीय स्वरूप में पर्वत, पठार, मैदान व मरूस्थल पाये जाते हैं, जो प्राचीनतम शैल समूहों से लेकर नवीनतम जलोढ़ से बने है।

राज्य में मिलने वाली भौतिक विविधताओं की दृष्टि से इसको भौगोलिक स्थिति के अनुसार निम्नलिखित पांच भागों में बांटा गया है –

(अ) पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश (आ) अर्द्ध–शुष्क प्रदेश
(इ) अरावली प्रदेश (ई) पूर्वी मैदानी प्रदेश
(उ) दक्षिण–पूर्वी पठारी प्रदेश

(अ) पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश –

यह आकार में सबसे बड़ा प्रदेश है। इसे तीन समानान्तर पेटियों मरूस्थली, बांगर व राही के रूप में बांट सकते हैं जो पश्चिम से पूर्व की ओर विस्तृत है। मरूस्थली में बालूका स्तूपों की अधिकता, बांगर विस्तृत रेतीली मिट्टी के मैदान व राही बाढ़ के मैदान है जो कि छोटी नदियों से बने हैं। इसकी औसत ऊँचाई 300 मीटर है। पूर्वी सीमा 25 सेंटीमीटर की वर्षा रेखा बनाती है। यहाँ बालू की पहाड़ियाँ पायी जाती हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में ''घोरे'' कहते हैं। इंदिरा गांधी नहर के आने से यहाँ की पारिस्थितकीय में बदलाव आया है।

(आ) अर्द्ध शुष्क प्रदेश –

यह अरावली पर्वतमाला के पश्चिम में उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम तक विस्तृत है। औसत ऊँचाई 450 मीटर है। पश्चिमी सीमा 25 सेंटीमीटर वर्षा रेखा बनाती है। इसके अंतर्गत पाली, जालौर, सीकर, जोधपुर, झुंझुनू, चूरू व हनुमानगढ़ के भाग आते हैं। इसका कुछ भाग आंतरिक अपवाह (प्रवाह मार्ग) का क्षेत्र है। इसे राजस्थानी में बांगड भी कहा जाता है। इसके उप प्रदेश लूनी बेसिन, शेखावाटी भाग, नागौरी उच्च भूमि व घग्घर मैदान है।

(इ) अरावली प्रदेश –

अरावली को आड़ावाला पहाड़ भी कहा जाता है। यह दिल्ली से गुजरात के पालनपुर कस्बे में खेड़ ब्रह्मा तक 692 किलोमीटर लम्बाई में फैला हुआ है। यह विश्व की प्राचीनतम पर्वत श्रेणियों में से है। इसकी ऊँचाई दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर कम होती जाती है। सिरोही जिले में माउन्ट आबू के पास गुरूशिखर इसकी सर्वोच्च 1722 मीटर ऊँची चोटी है। जेम्स कर्नल टॉड ने इसे संतों का शिखर कहा है। यह हिमालय व नीलगिरि के मध्य सबसे ऊँची चोटी है। इसे उत्तर–पूर्वी पहाड़ी, मध्य अरावली, मेवाड़ की पहाड़ियाँ या भोराट पठार तथा आबू पर्वत उपविभागों में बांटा गया है।

(ई) पूर्वी मैदानी प्रदेश –

यह राज्य के पूर्वी भाग में फैला है। इसमें प्रमुखतः चम्बल बेसिन की निम्न भूमि, बनास व माही बेसिन शामिल है। चम्बल बेसिन बाढ़ के मैदान, नदी कगार, बीहड़ व अंतःसरितायें पायी जाती हैं। बनास बेसिन दो भागों में मालपुरा–करौली मैदान व मेवाड़ मैदान में बंटा हुआ है। इसके मध्य माही मैदान को छप्पन का मैदान भी कहते हैं। माही व बनास प्रमुख नदियाँ हैं।

(उ) दक्षिण–पूर्वी पठारी प्रदेश

इसे हाड़ौती पठार के नाम से भी जाना जाता है। यह बारां, बून्दी, कोटा, झालावाड़ जिलों में विस्तृत है। यहाँ काली उपजाऊ मिट्टी की अधिकता पायी जाती है। इस क्षेत्र में चम्बल प्रमुख नदी है। चम्बल पर भैंसरोड़गढ़ के निकट प्रसिद्ध चूलिया जल प्रपात है। भैंसरोड़गढ़ व बिजौलिया के बीच के पठारी भाग को ''ऊपरमाल'' कहा जाता है। चम्बल व इसकी सहायक नदियों यथा काली सिंध व पार्वती से बारां व कोटा में कांपीय बेसिन का निर्माण हुआ है। इस भाग में मुकन्दरा व बून्दी पहाड़ियाँ स्थित है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. हमारे देश को पांच भौगोलिक विभागों में बांटा जाता है– उत्तरी पर्वतीय प्रदेश, मध्यवर्ती विशाल मैदान, थार का मरूस्थल, दक्षिण का पठार तथा समुद्र तटीय मैदान व द्वीप समूह।
2. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश को तीन भागों में उपविभाजित किया जा सकता है – महान हिमालय, लघु हिमालय एवं उप हिमालय
3. विशाल मैदान उपजाऊ व समतल होने से सर्वाधिक

घना—बसा है।

4. दक्षिण का पठार विपुल खनिज सम्पदा का भण्डार है।
5. समुद्र तटीय मैदान दो भागों में विभक्त है – पश्चिमी तटीय मैदान, पूर्वी तटीय मैदान।
6. द्वीप समूह – तटीय द्वीप – कांप मिट्टी के द्वीप व पथरीले द्वीप। दूरस्थ द्वीप –पर्वतीय व प्रवाल द्वीप।
7. राजस्थान $23^{\circ}30'$ से $30^{\circ}12'$ उत्तरी अक्षांश तथा $69^{\circ}30$ से $78^{\circ}17$ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित भारत का सबसे बड़ा राज्य है।
8. राजस्थान के प्रमुख भौतिक विभाग—पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश, अर्द्धशुष्क प्रदेश, अरावली प्रदेश, पूर्वी मैदानी प्रदेश व दक्षिण—पूर्वी पठारी प्रदेश है।
9. अरावली पर्वत श्रेणी की सर्वोच्च चोटी गुरूशिखर है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.भारत के मध्य से गुजरने वाली रेखा है –
(अ) कर्क रेखा (ब) मध्य रेखा
(स) विषवत् रेखा (द) मकर रेखा

2.उत्तरी पर्वतीय प्रदेश किसका भाग है –
(अ)अरावली का (ब) पामीर गांठ का
(स) आरमीनिया गांठ का (द) कैलाश पर्वत का

3.भारत का सबसे घना बसा भौतिक विभाग है –
(अ) मध्यवर्ती विशाल मैदान (ब) थार मरूस्थल
(स) दक्षिण पठार (द) तीनों ही गलत है

4. भारत का दक्षिणतम बिन्दु इंदिरा पाइंट स्थित है –
(अ) अण्डमान में (ब) निकोबार में
(स) लक्षद्वीप में (द) मिनीकॉय में

5. क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का भारत में स्थान है –
(अ) पहला (ब) दूसरा
(स) तीसरा (द) पांचवाँ

6. राजस्थान का सबसे छोटा जिला है–
(अ) करौली (ब) डूंगरपुर
(स) धौलपुर (द) सीकर

7. नीलगिरि व हिमालय के मध्य सर्वोच्च चोटी है–
(अ) गुरूशिखर (ब) सेर
(स) महाबलेश्वर (द) अचलगढ

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ढांढ़ किसे कहते है ?
2. भारत का सर्वाधिक घना बसा भू—भाग कौनसा है?
3. भाबर कहाँ मिलते हैं ?
4. मर्ग कहां मिलते हैं ?
5. राजस्थान का कुल क्षेत्रफल कितना है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. हिमालय के तीन प्रमुख विभागों के नाम बताइए ?
2. दक्षिण के पठार का महत्व बताइए ?
3. भारत के पूर्वी व पश्चिमी घाट में क्या अन्तर है।
4. भारत के उन द्वीपों के नाम बताइये जो प्रवाह से बने हैं ?
5. पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थलीय प्रदेश की विशेषताएं लिखिये ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत को भौतिक विभागों में बांटिये। किसी एक का वर्णन कीजिये ?
2. उत्तरी पर्वतीय प्रदेश का विस्तार से विवरण दीजिये।
3. दक्षिण पठार के महत्व व विशेषताओं पर प्रकाश डालिये
4. राजस्थान को भौतिक विभागों में बांटते हुये किसी एक का विस्तार से वर्णन करिये।

आंकिक

1. भारत के मानचित्र में प्रमुख भौतिक विभाग दिखाएँ।
2. भारत के प्रमुख ऊँची पर्वत चोटियों को मानचित्र में दर्शाएँ।
3. राजस्थान के मानचित्र में इसके भौतिक विभाग बनाइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर –

1. (अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (ब) 5. (अ) 6. (स) 7. (अ)

अध्याय 14

भारत की जलवायु

अत्यधिक विस्तार व भू–आकारों की भिन्नता के कारण हमारे देश के विभिन्न भागों में जलवायु सम्बन्धी विविधताएं पाई जाती है। भारत की जलवायु पर मानसूनी हवाओं का सर्वाधिक प्रभाव होने से हमारे देश की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहते हैं।

मानसून

मानसून अरबी शब्द ''मौसिम'' से बना है, जिसका अर्थ मौसमी हवाओं या ऋतु से है। हमारे देश में ऋतुओं के अनुसार मानसूनी हवाओं की दिशा में परिवर्तन होते हैं। ऐसी मानसूनी हवाएं हमारे देश की जलवायु की निर्धारक हैं। हमारे देश की जलवायु अक्षांशीय स्थिति समुद्रतल से ऊँचाई, समुद्र से दूरी, पर्वतों की स्थिति व दिशा, पवनों की दिशा तथा धरातल की बनावट आदि तत्वों से प्रभावित है।

मानसून की उत्पत्ति एवं विकास

मानसूनी हवाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित परम्परागत विचारधारा सूर्य के कर्क रेखा व मकर रेखा पर लम्बवत् चमकने से सम्बन्धित है। इस विचारधारा के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध विशेषतः भारत में उस समय तेज गर्मी पड़ती है, जब सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर या इसके आसपास लम्बवत् पड़ती हैं। इसके कारण एक न्यून वायुदाब का केन्द्र पाकिस्तान में मुल्तान के आसपास बन जाता है। इसी समय हिन्द महासागर व आस्ट्रेलिया में तथा जापान के दक्षिण में प्रशान्त महासागर में उच्च वायुदाब का केन्द्र बन जाता है। हवाओं का यह स्वभाव होता है कि वे उच्च वायु दाब से न्यून वायु दाब की ओर चलती हैं। समुद्र से चलने के कारण ये हवायें वाष्प से भरी हुई होती हैं। हिन्द महासागर के दक्षिण से उठने वाली वे दक्षिण–पश्चिमी हवाएं भारत की ओर आती हैं तथा यहाँ पर हिमालय के अवरोध के कारण वर्षा करती हैं। इन्हें ही दक्षिण–पश्चिमी मानसून कहा जाता है। इसे ग्रीष्मकालीन मानसून भी नाम दिया गया है।

इस दिशा के विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें मकर रेखा व उसके आसपास के क्षेत्र पर लम्बवत् पड़ने पर मध्य एशिया में बेकाल झील के पास व मुल्तान के आसपास उच्च दाब का केन्द्र बन जाता है। जबकि समुद्री धरातल पर न्यून दाब कायम हो जाता है। ऐसी स्थिति में हवायें स्थल से समुद्र की ओर चलती है। ये स्थल से आने के कारण प्रायः शुष्क होती है। इन्हें ही शीतकालीन शुष्क हवायें कहा जाता है। इनको शीतकालीन मानसून भी कहते हैं।

डॉ. कोटेश्वरम की खोजों तक मानसून की उत्पति के संदर्भ मे उपर्युक्त विचारधारा ही मान्य व प्रचलित थी। डॉ. कोटेश्वरम के अलावा रामास्वामी, राममूर्ति तथा जम्बूनाथ, अनन्तकृष्णन, फ्लोन आदि विशेषज्ञों ने मानूसन की उत्पति पर नवीनतम विचार प्रकट किये हैं।

नवीनतम विचारधाराओं के अनुसार मानसून की उत्पति क्षोभमण्डल में विकसित सामयिक आंधियों से मानी जाती है। वायुमण्डल की वाष्प वाली हवाएं क्षोभमण्डल में उत्पन्न होने वाली आंधियों के कारण एक दिशा में प्रवाहित होते हुए ऊपरी क्षोभमण्डल में पहुँच जाती है। इनका प्रवाह अनेक दिशाओं में हो जाता है। हवाओं का ऐसा प्रवाह जो निम्न क्षोभमण्डल में पहुँचता है, उसी जेट स्ट्रीम से धरातल पर वर्षा होती है। इस जेट स्ट्रीम को क्षेत्र अनुसार उष्णकटिबंधीय, पूर्वी जेट तथा अर्द्ध उष्ण कटिबंधीय पश्चिमी जेट नाम दिया गया है।

जलवायु : परिस्थितियाँ

भारत की जलवायु मानसूनी जलवायु है। यहाँ की जलवायु परिस्थितियाँ को सामान्य रूप से मानसून पूर्व की स्थिति, मानसून काल एवं मानसून वापसी के कालक्रम में बांटा जा सकता है।

मानसून पूर्व की स्थिति में देश में भंयकर गर्मी पड़ती है। कई स्थानों पर तेज आँधियाँ एवं गरम हवाएं चलती है। उत्तरी भारत में निम्न वायुदाब विकसित हो जाता है। इससे पवनों की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। पवनें तीव्र वेग से

समुद्र से स्थल की ओर बढ़ने लगती है।

मानसून काल आने पर दक्षिण–पश्चिम से आने वाली पवनें अरब सागर के मानूसन एवं बंगाल की खाड़ी के मानसून के रूप में भारत में वर्षा करती है। यह काल वर्षाकाल कहा जाता है। मानसून वापसी का समय शीत ऋतु एवं ग्रीष्म से सम्बन्धित है। भारत की जलवायु को अनेक भौगोलिक कारक प्रभावित करते हैं, यथा–

जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक –

1. समुद्र तल से ऊँचाई – किसी भी स्थान की ऊँचाई से वहाँ के तापमान से विपरीत सम्बन्ध है। सामान्यतः प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1^{0} से.ग्रे. तापमान कम होता जाता है। इसके फलस्वरूप हिमालय जैसे उच्च स्थानों पर सदैव बर्फ जमी रहती है। एक ही अक्षांश पर स्थित होते हुए भी ऊँचाई की भिन्नता के कारण ग्रीष्मकालीन औसत तापमान मसूरी में 24^{0}से.ग्रे. देहरादून में 32^{0}से.ग्रे. तथा अम्बाला में 40^{0}से.ग्रे.रहता है।

2. समुद्र से दूरी – समुद्र तट पर स्थित नगरों में तापान्तर अति न्यून रहता है तथा जलवायु नम रहती है। जैसे–जैसे समुद्र से दूरी बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे विषमता अर्थात् तापान्तर एवं शुष्कता बढ़ती जाती है। पश्चिमी तटीय क्षेत्रों में वर्षा का वार्षिक औसत 200 से.मी. से अधिक रहता है, जबकि जैसलमेर में यह औसत घटते–घटते 5 से.मी. रह जाता है।

3. अक्षांशीय स्थिति –यह तापमान को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है।

पर्वतो की स्थिति का प्रभाव

बढ़ते हुए अक्षांश के साथ तापमान में कमी आती जाती है, क्योंकि सूर्य की किरणों का तिरछापन बढ़ता जाता है।

इससे सौर्यताप की मात्रा प्रभावित होती है। कर्क रेखा भारत के लगभग मध्य से गुजरती है। अतः उत्तरी भारत शीतोष्ण प्रदेश में तथा दक्षिणी भारत उष्ण प्रदेश में सम्मिलित किया जाता है।

4. पर्वतों की स्थितिः– जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों में पर्वतों की स्थिति एक महत्वपूर्ण कारक है। पश्चिमी घाट की स्थिति प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिमी तट के निकट है। इस कारण दक्षिणी–पश्चिमी मानसून से इनके पश्चिमी ढालों पर प्रचुर वर्षा होती है, जबकि इसके विपरीत ढाल एवं प्रायद्वीपीय पठार दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के सृष्टि–छाया क्षेत्र में अन्तर है।

5. पर्वतों की दिशा – हिमालय पर्वत की स्थिति व दिशा के कारण ही भारत की जलवायु सौम्य है। एक और हिमालय साइबेरियाई ठण्डी पवनों से हमारे देश की रक्षा करते हैं तो दूसरी ओर ग्रीष्मकालीन मानसून को रोककर भारत में ही वर्षा करने के लिये भी बाध्य करते हैं। पश्चिमी राजस्थान की शुष्क जलवायु का एक कारण यह भी है कि अरावली श्रेणी की दिशा दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के समानान्तर है। अतः यह पवनों के मार्ग मे अवरोध उपस्थित नहीं करती।

6. पवनों की दिशा – पवनें अपने उत्पति वाले स्थान एवं मार्ग के गुण साथ लाती है। ग्रीष्मकालीन मानसून हिन्द महासागर से चलने के कारण उष्ण व आर्द्र होते हैं, अतः वर्षा करते हैं। शारदकालीन मानसून स्थली व शीत क्षेत्रों से चलते हैं, अतः सामान्यतः शीत व शुष्कता लाते हैं।

7. उच्चस्तरीय वायु संचरण – उच्चस्तरीय वायु संचरण का मानसून से गहरा सम्बन्ध है। भारत की जलवायु मानसूनी होने से काफी हद तक क्षोभमण्डल की गतिविधियों से प्रभावित होती है। मानूसन की कालिक व मात्रात्मक अनिश्चितता भी उच्चस्तरीय वायु संचरण की दशाओं पर निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त मेघाच्छादन की मात्रा, वनस्पति आवरण, समुद्री धारा आदि भी भारत के जलवायु को आंशिक रूप से प्रभावित करती है। भारत सरकार के मौसम विभाग के अनुसार भारत की जलवायु परिस्थितियों को चार विभिन्न ऋतुओं में बांटा है –

(क) उत्तर–पूर्वी या शीतकालीन मानसून काल –
1. शीत ऋतु – दिसम्बर से फरवरी तक।
2. ग्रीष्म ऋतु – मार्च से मध्य जून तक।

(ख) दक्षिण–पश्चिमी या ग्रीष्म कालीन मानसूनी काल –
1. वर्षा ऋतु – मध्य जून से मध्य सितम्बर तक
2. शरद ऋतु – मध्य सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक

भारतीय संस्कृति के अनुसार छः ऋतुएं मानी गई है–

1. बसन्त ऋतु – चैत्र–बैशाख
2. ग्रीष्म ऋतु – ज्येष्ठ–आषाढ
3. वर्षा ऋतु – श्रावण–भ्राद्रपद
4. शरद ऋतु – आश्विन–कार्तिक
5. शीत ऋतु – मार्गशीष– पोष
6. हेमन्त ऋतु – माघ–फाल्गुन

विभिन्न ऋतुओं के उपर्युक्त काल में देश की विशालता के कारण स्थानिक भिन्नताएं पायी जाती है। प्रत्येक ऋतु में तापमान, वायुदाब, पवनों व वर्षा की मात्रा में भिन्नता मिलती है।

(क) उत्तर–पूर्वी या शीतकालीन मानसून काल –

1.शीत ऋतु–

(अ) तापमान – उत्तर से दक्षिण जाने पर इस ऋतु में तापमान में वृद्धि होती जाती है। भूमध्य रेखा व समुद्र से दूरी तथा समुद्र

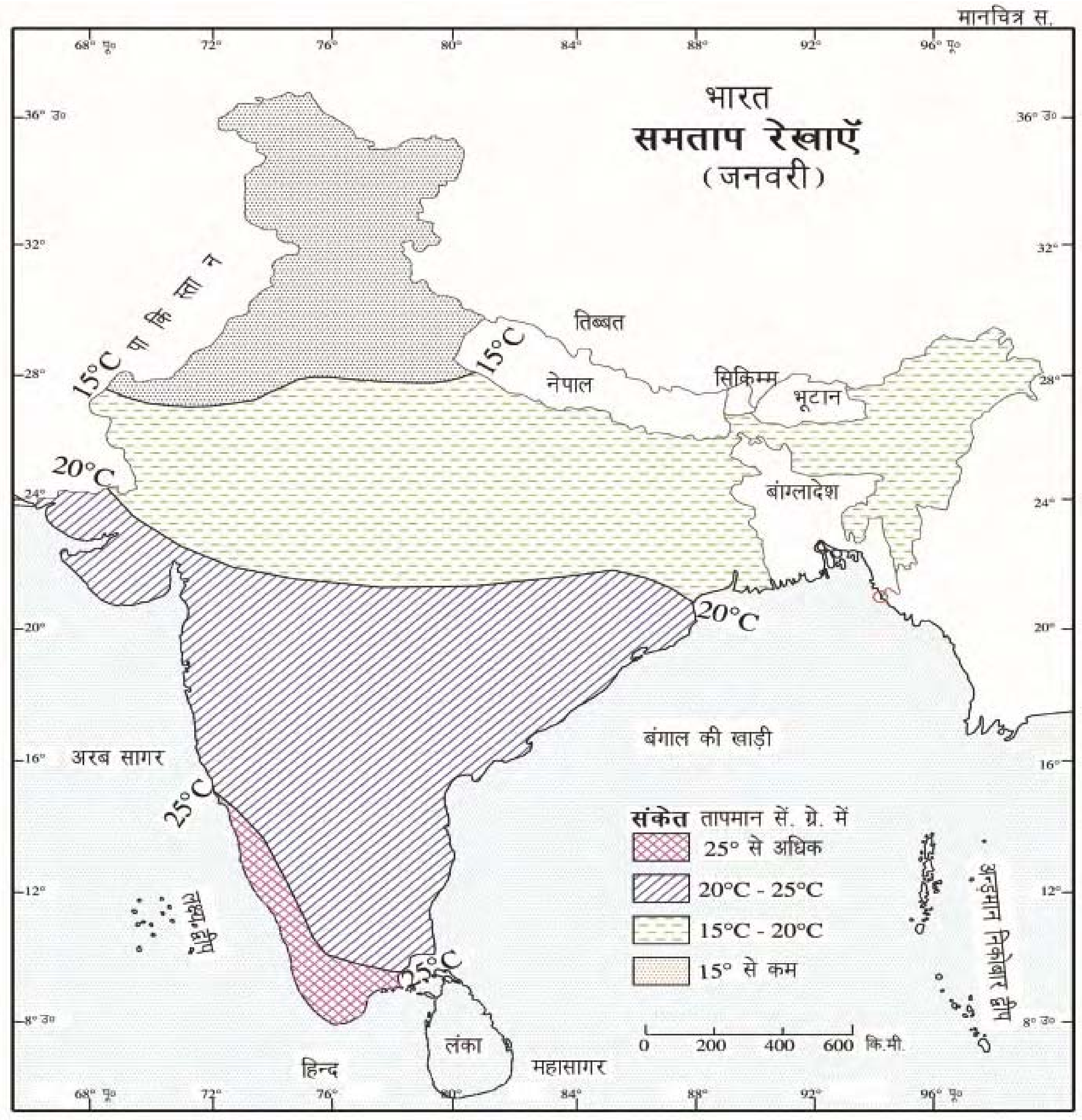

तल से ऊँचाई में वृद्धि से उत्तरी भारत में तापमान कम तथा तेज सर्दी होती है। दक्षिणी भारत में भूमध्य रेखा से निकटता व समुद्री प्रभाव से तापमान अधिक रहता है। इस ऋतु में उत्तरी भारत में कई स्थानों पर तापमान हिमांक से भी नीचे चला जाता है। इस समय उत्तरी भारत में औसत तापमान 21^{0} सेंटीग्रेड से कम तथा दक्षिणी भारत मे इससे अधिक रहता है।

(आ) वायु दाब व पवनें – इस ऋतु में उच्च दाब मध्य एशिया तथा निम्न दाब हिन्द महासागर क्षेत्र में केन्द्रित होता है। इससे पवनें मध्य एशिया के उच्च दाब क्षेत्र से महासागरीय निम्न दाब क्षेत्र की ओर चलने लगती है। इन्हें उत्तरी–पूर्वी मानसूनी पवनें कहा जाता है।

(इ) वर्षा – इस ऋतु में देश के उत्तर–पश्चिमी भाग में भूमध्य

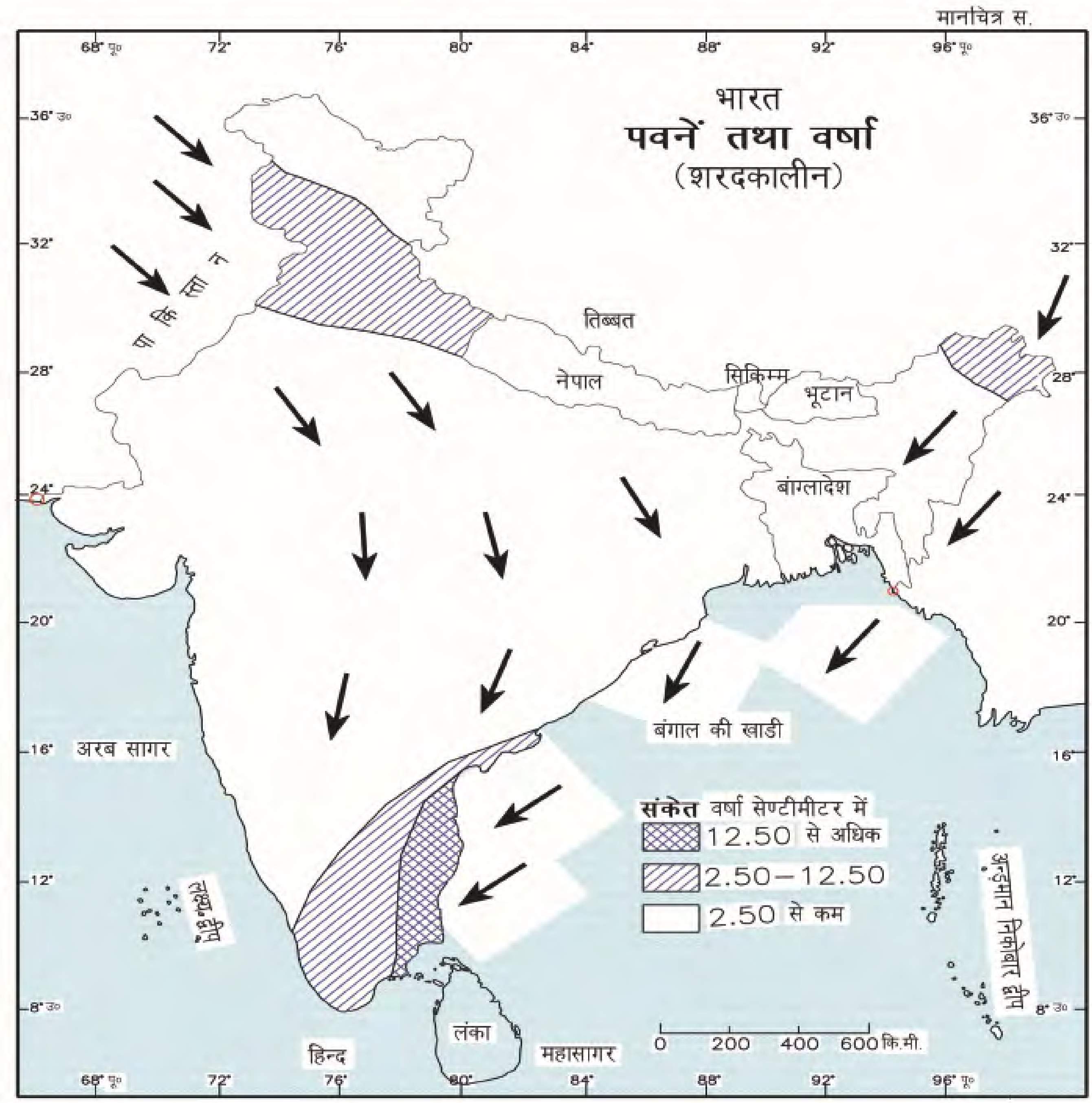

सागरीय चक्रवातों तथा दक्षिण में लौटते मानूसन से वर्षा होती है। भूमध्यसागरीय चक्रवातों (पश्चिमी विक्षोभ) से होने वाली वर्षा रबी की फसल के लिये वरदान होती है। इसे स्थानीय भाषा में ''मावठ'' कहा जाता है। यह वर्षा जम्मू–काश्मीर, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तराखण्ड, उत्तर–प्रदेश में होती है। दक्षिण में उत्तरी पूर्वी मानसून से होने वाली वर्षा तमिलनाडु में होती है।

2 ग्रीष्म ऋतु : इस ऋतु में तापमान अधिक होने से अत्यधिक गर्मी पड़ती है। उत्तरी भारत में ऋतु में तापमान अधिक होने के तीन प्रमुख कारण हैं – (i) सूर्य की किरणों का उत्तरी गोलार्द्ध में लम्बवत् पड़ना, (ii) समुद्र से दूरी, (iii) प्रति चक्रवातों के कारण तापमान में वृद्धि। इस ऋतु में उत्तरी भारत में तापमान 50° सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। दक्षिणी भारत में सागरीय प्रभाव से अपेक्षाकृत कम तापमान रहता हैं। इस समय के निकटवर्ती तथा पहाड़ी भाग ठण्डे रहते है।

(अ) वायुदाब व पवनें – इस समय उत्तरी भारत में अत्यधिक गर्मी के कारण निम्न वायुदाब का क्षेत्र बन जाता है। राजस्थान के मरूस्थली क्षेत्र व पंजाब में अति निम्न दाब हो जाता है। इसके विपरीत हिन्द महासागरीय क्षेत्र में अधिक दाब रहता है। इस ऋतु में उत्तरी भारत में पवनें चलती हैं, जिन्हें ''लू'' कहा जाता हैं। कभी–कभी तेज आंधियां व उनके साथ साधारण वर्षा भी हो जाती है। पश्चिमी बंगाल में इन आंधी–तूफानों को 'काल

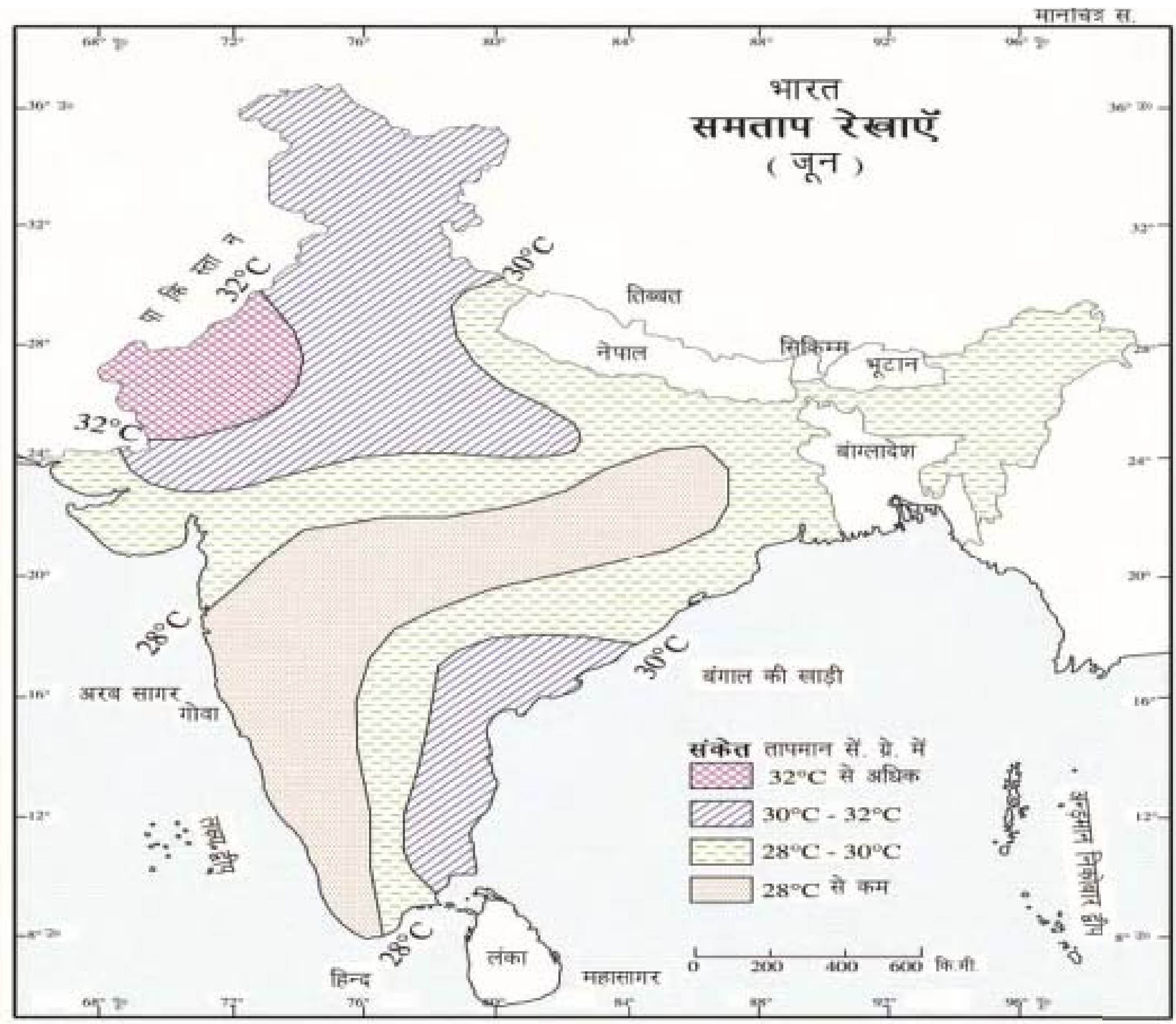

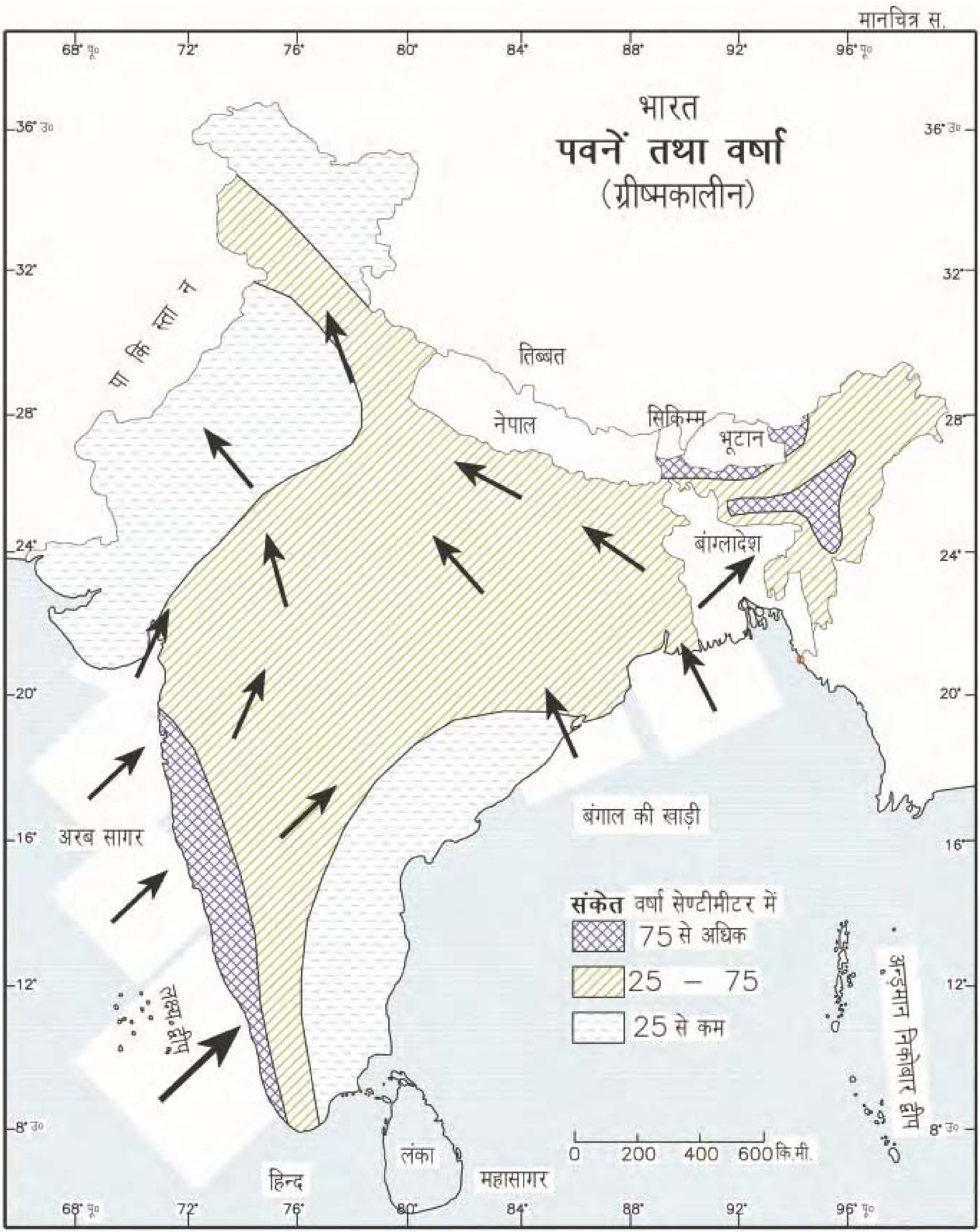
मानचित्र स.
भारत
पवनें तथा वर्षा
(ग्रीष्मकालीन)
पाकिस्तान
तिब्बत
नेपाल
सिक्किम
भूटान
बांग्लादेश
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
लक्षद्वीप
अण्डमान निकोबार द्वीप
लंका
हिन्द
महासागर
संकेत वर्षा सेण्टीमीटर में
75 से अधिक
25 – 75
25 से कम
0 200 400 600 कि.मी.
68° पू॰
72°
76°
80°
84°
88°
92°
96° पू॰
36° उ॰
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8° उ॰

बैशाखी' कहते है।

(आ) वर्षा– इस ऋतु में वर्षा बहुत कम मात्रा में होती है। पश्चिमी बंगाल में ''काल बैशाखी'' तूफानों के साथ वर्षा होती है। दक्षिणी भारत में मालाबार तट के पास होने वाली वर्षा को ''आम्र वर्षा'' तथा कहवा उत्पादन वाले क्षेत्रों की वर्षा को ''फूलों की बौछार'' कहते हैं। पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, असम में तूफानों के साथ ओला वृष्टि हो जाती है।

(ख) दक्षिण–पश्चिमी या ग्रीष्मकालीन मानसून काल

2. वर्षा ऋतु – यह ऋतु हमारे देश की कृषि को जीवन प्रदान करती है। देश के अधिकांश भागों में वर्षा इसी समय होती है। वर्षा ऋतु का काल पूर्णतः मानसून पर निर्भर करता है।

(अ) तापमान – मानसूनी वर्षा में वृद्धि के साथ–साथ तापमान में भी कमी आने लगती है। जुलाई–अगस्त के बाद कुछ क्षेत्रों में सितम्बर में तापमान में वृद्धि हो जाती है। राजस्थान में सितम्बर में तापमान 38° सेन्टीग्रेड तक हो जाता है।

(आ) वायुदाब व पवनें – इस समय निम्न वायुदाब घने रूप में राजस्थान के थार मरूस्थल व पंजाब में केन्द्रित हो जाता है। उच्च वायुदाब दक्षिणी में हिन्द महासागर में केन्द्रित होता है। इससे हवाओं की दिशा दक्षिण–पश्चिम से बनने के कारण ही यह दक्षिण–पश्चिमी मानसून के नाम से जाना जाता है। वायुदाब का केन्द्र सरकने के साथ ही मानसून के नाम से जाना जाता है। वायुदाब का केन्द्र सरकने के साथ ही मानसून पवनें आगे बढ़ती रहती है।

(इ) वर्षा – दक्षिण पश्चिमी मानसून दक्षिण प्रायद्वीप की स्थिति के कारण दो शाखाओं में बंट कर हमारे देश में वर्षा करता है। ये दो शाखाएं है – (i) अरब सागरीय शाखा

(ii) बंगाल की खाड़ी की शाखा

(i) अरब सागरीय शाखा – यह शाखा बंगाल की खाड़ी की शाखा से अधिक शक्तिशाली है। यह सबसे पहले पश्चिमी घाट से सीधी टकराती है। यहाँ पर इससे 250 से 300 सेंटीमीटर तक वर्षा होती है। इस शाखा का वेग यहीं पर समाप्त हो जाता है। इससे पठार के भीतरी भागों में अल्प वर्षा होती है, क्योंकि यह क्षेत्र वृष्टि छाया क्षेत्र होता है।

इसकी नागपुर उपशाखा नर्मदा – ताप्ती घाटियों के मध्य में होती हुई आगे जाकर बंगाल की खाड़ी की शाखा में मिल जाती है। एक अन्य उपशाखा गुजरात, राजस्थान होते हुये सीधी पश्चिमी हिमालय तक पहुँच जाती है। राजस्थान में अरावली श्रेणियों की स्थिति मानसून पवनों के समानान्तर होने के कारण यहां इनमें कम वर्षा प्राप्त होती है।

(ii) बंगाल की खाड़ी की शाखा – यह शाखा अवरोध के कारण दो उपशाखाओं में बंट जाती है। एक उपशाखा अरूणाचल प्रदेश व असम की ओर चली जाती है। यह उपशाखा गारो पहाड़ियों से टकराकर इस क्षेत्र में भारी वर्षा करती है। यहाँ पर मौसिनराम में इससे सर्वाधिक वर्षा प्राप्त होती है।

इसकी दूसरी उपशाखा हिमालय की तराई के सहारे आगे बढ़ती है। इससे बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तराखण्ड में अधिक वर्षा होती है। पश्चिम में जाने के साथ–साथ इससे वर्षा प्राप्ति की मात्रा घटती जाती है। इससे पश्चिमी पंजाब व राजस्थान में बहुत कम वर्षा होती है।

3. शरद् ऋतु – यह मानसून लौटने का काल है। इस समय मानूसन के लौटने से एवं सूर्य के दक्षिणी गोलार्द्ध में जाने से तापमान में कमी आ जाती है। तापमान में परिवर्तन से वायु दाब का क्षेत्र भी दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। पवनों की दिशा दक्षिण–पश्चिम से बदलकर उत्तर–पूर्वी हो जाती है। इनके द्वारा तमिलनाडु व पठार के कुछ आंतरिक भागों में वर्षा होती है।

भारत में वर्षा का वितरण –

हमारे देश में वर्षा का वितरण समान नहीं है। वर्षा के क्षेत्रीय वितरण के आधार पर देश को चार भागों में बांटा जा सकता है –

(क) अधिक वर्षा वाले भाग – इसमें असम, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, नागालैण्ड, मिजोरम व हिमालय की दक्षिणवर्ती तलहटी, पश्चिमी बंगाल, बिहार, झारखण्ड, उत्तर–प्रदेश, उत्तराखण्ड एवं पश्चिमी तटीय मैदान तथा पश्चिमी घाट का पश्चिमी ढ़ाल वाला भाग शामिल है। यहाँ पर 200 सेंटीमीटर से अधिक वर्षा प्राप्त होती है। अधिक वर्षा के कारण यहाँ उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन पाये जाते हैं।

(ख) साधारण वर्षा वाले भाग – इसके अन्तर्गत पश्चिमी घाट के पूर्वोतर ढ़ाल, दक्षिण पश्चिमी– बंगाल, छत्तीसगढ़,

मानचित्र स.

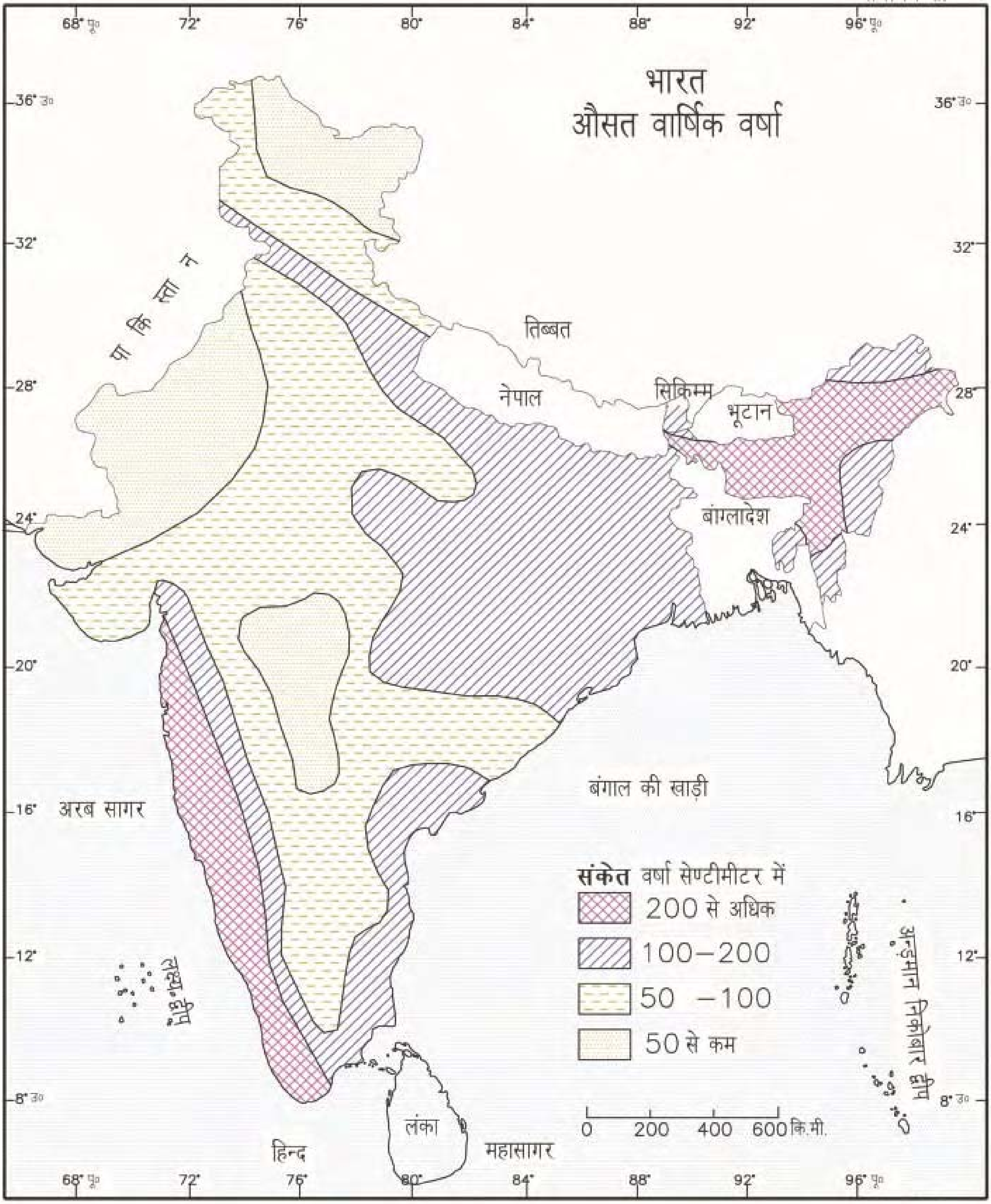
भारत
औसत वार्षिक वर्षा
पाकिस्तान
तिब्बत
नेपाल
सिक्किम
भूटान
बांग्लादेश
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
संकेत वर्षा सेण्टीमीटर में
200 से अधिक
100–200
50 –100
50 से कम
0 200 400 600 कि.मी.
लंका
हिन्द महासागर
अण्डमान निकोबार द्वीप
68° पू० 72° 76° 80° 84° 88° 92° 96° पू०
36° उ० 32° 28° 24° 20° 16° 12° 8° उ०

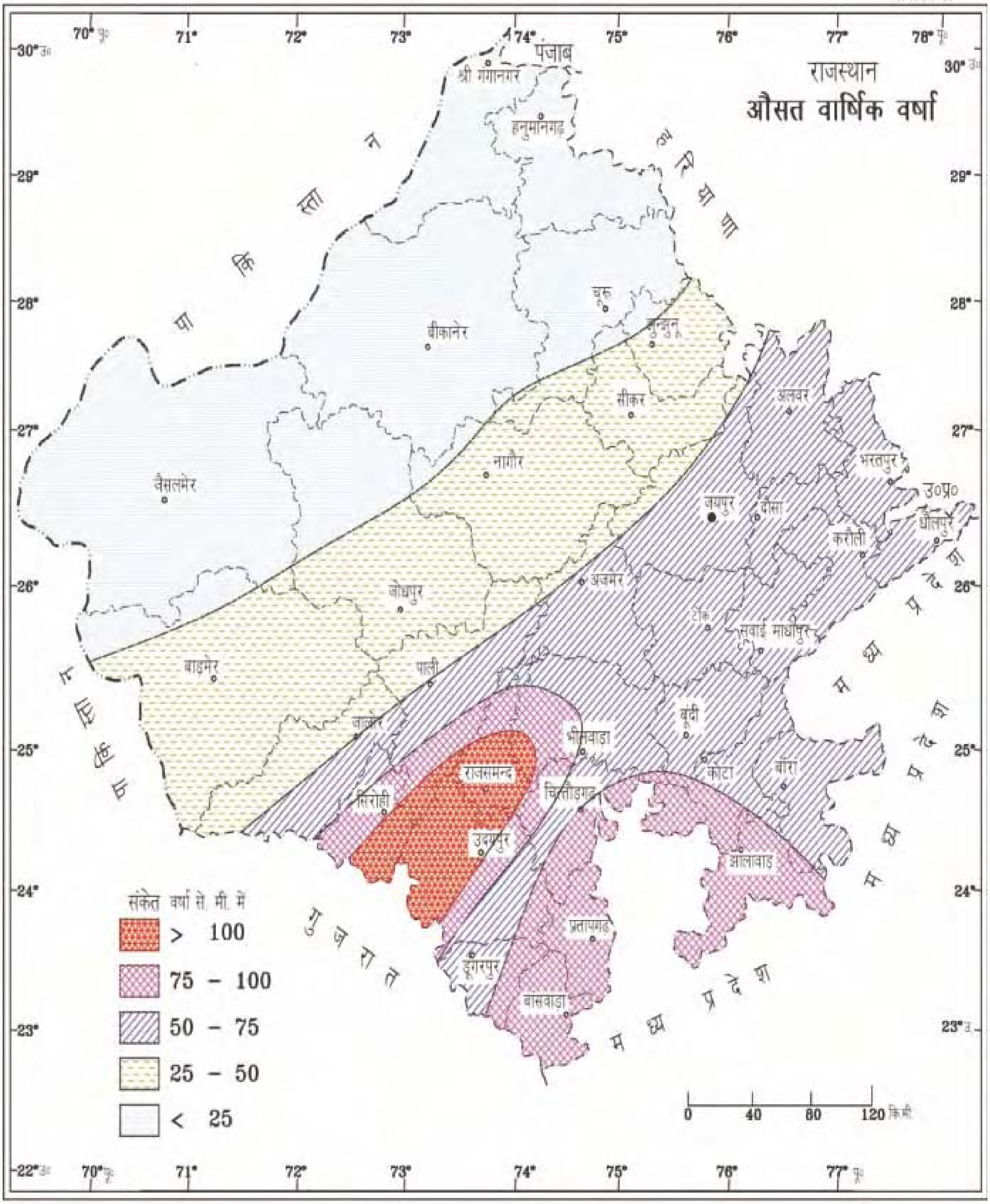
राजस्थान
औसत वार्षिक वर्षा
पंजाब
श्री गंगानगर
हनुमानगढ़
हरियाणा
पाकिस्तान
चूरू
बीकानेर
झुन्झुनू
सीकर
अलवर
भरतपुर
उ०प्र०
धौलपुर
करौली
जयपुर
दौसा
नागौर
जैसलमेर
जोधपुर
अजमेर
टोंक
सवाई माधोपुर
बाड़मेर
पाली
जालोर
भीलवाड़ा
बूंदी
कोटा
बारां
राजसमन्द
सिरोही
चित्तौड़गढ़
उदयपुर
झालावाड़
प्रतापगढ़
डूंगरपुर
बांसवाड़ा
गुजरात
मध्य प्रदेश
संकेत वर्षा से. मी. में
> 100
75 - 100
50 - 75
25 - 50
< 25
0
40
80
120 कि.मी.

झारखण्ड, उड़ीसा, दक्षिण–पूर्वी उत्तर–प्रदेश, हिमालय के तराई क्षेत्र, पूर्वी तमिलनाडु आदि शामिल है। यहाँ वर्षा 100 से 200 सेन्टीमीटर के मध्य होती है। यहाँ पर मानसूनी वन मिलते है।

(ग) न्यून वर्षा वाले भाग – इसके अन्तर्गत दक्षिणी प्रायद्वीप का आंतरिक भाग, मध्य–प्रदेश, पूर्वी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दक्षिणी उत्तर–प्रदेश, उत्तरी व दक्षिणी आंध्र–प्रदेश तथा मध्य पूर्वी महाराष्ट्र शामिल है। इस भाग में वर्षा 50 से 100 सेन्टीमीटर के मध्य होती है।

(घ) अपर्याप्त वर्षा वाले भाग – इस भाग में तमिलनाडु का रायलसीमा क्षेत्र, कच्छ, पश्चिमी राजस्थान, पश्चिमी पंजाब व लद्दाख आदि शामिल है। यहाँ पर वर्षा 50 सेन्टीमीटर से भी कम होती है।

राजस्थान की जलवायु

राजस्थान की जलवायु विस्तृत रूप से मानसूनी जलवायु का ही भाग है लेकिन यहाँ अनेक स्थानीय विषमताएं पायी जाती हैं। अधिकांश राजस्थान शीतोष्ण जलवायु कटिबंध में आता है। राज्य की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों में अक्षांशीय स्थिति, समुद्र से दूरी, ऊँचाई, पर्वतीय दिशा, पवनों की दिशा, मिट्टी का प्रकार व वनस्पति की मात्रा आदि महत्वपूर्ण हैं।

जलवायु परिस्थितियां –

परम्परागत रूप से राजस्थान को जलवायु के आधार पर मुख्तः तीन ऋतुओं में बांटा गया है। 1. ग्रीष्म ऋतु, 2. वर्षा ऋतु, 3. शीत ऋतु। भारत सरकार के मौसम विभाग द्वारा मानसून काल को आधार बनाकर वर्ष को निम्न ऋतुओं में बांटा गया है –

(अ) शीतकालीन मानसून काल

1.शीत ऋतु– दिसम्बर से फरवरी तक

2.ग्रीष्म ऋतु– मार्च से मध्य जून तक

(ब) ग्रीष्मकालीन मानसून काल

1.वर्षा ऋतु –मध्य जून से मध्य सितम्बर तक

2.शरद ऋतु – मध्य सितम्बर से दिसम्बर तक

शीतकालीन मानसून काल

1. शीत ऋतु

तापमान– दिसम्बर से फरवरी के महीनों में सूर्य की स्थिति दक्षिणी गोलार्द्ध मे होती है। इसलिए प्रदेश में तापक्रम कम होता जाता है। न्यूनतम तापमान कई बार कुछ स्थानों पर हिमांक से भी कम होता जाता है। सीकर, चूरू, डेगाना, फलौदी, माउण्ट आबू में तापमान काफी निम्न रहते हैं। सामान्य प्रादेशिक वितरण के अनुसार उत्तर में न्यूनतम तापमान 12° सेन्टीग्रेड से कम व दक्षिण में 16° सेन्टीग्रेड से अधिक रहता है।

वायुदाब, पवनें व वर्षा – शीत ऋतु में बेकाल झील व पेशावर के निकट विकसित उच्च वायुदाब केन्द्र शरदकालीन मानसून को प्रभावित करते हैं। इस ऋतु में हिन्द महासागर क्षेत्र पर निम्न वायुदाब रहता है। अतः स्थलीय उच्च वायुदाब से महासागरीय निम्न वायुदाब की ओर पवनें चलने लगती है। स्थलीय उत्पति के कारण ये पवनें शुष्क होती है। किन्तु उत्तर–पश्चिम से आने वाले भूमध्यसागरीय चक्रवातों के साथ मिलकर ये पवनें कहीं–कहीं थोड़ी वर्षा करती है। इसे स्थानीय भाषा में ''मावठ'' करते हैं।

2. ग्रीष्म ऋतु –

तापमान – मार्च में तापमान धीरे–धीरे बढ़ने लगता है, क्योंकि सूर्य की स्थिति उत्तरायण होने लगती है। जून माह में तापमान उच्चतम हो जाता है। इस समय पूरे राज्य का औसत तापमान 38° सेन्टीग्रेड से अधिक रहता है किन्तु सर्वाधिक तापमान 40°से 45° सेन्टीग्रेड तक रहता है।

वायुदाब, पवनें व वर्षा – भीषण गर्मी के कारण राजस्थान के पश्चिमी भाग में निम्न वायुदाब विकसित हो जाता है। मेघरहित आकाश, सूर्य की सीधी व प्रखर किरणों के कारण धरातल अत्यन्त गर्म हो जाता है। इसके सम्पर्क में आकर धूल भरी, गर्म व शुष्क हवायें चलती हैं, जिन्हे ''लू'' कहते हैं। इस ऋतु में तेज, गर्म हवायें व आँधियों का चलना पश्चिमी राजस्थान की जलवायु की विशेषता हैं। इस ऋतु में चलने वाली आंधियों से कहीं–कहीं पूर्व मानसून वर्षा हो जाती है।

ग्रीष्मकालीन मानसून काल

3. वर्षा ऋतु

तापमान – इस ऋतु में वर्षा के कारण ग्रीष्मकालीन तापमान थोड़ा कम हो जाता है। वर्षा प्रारम्भ होने के बाद राजस्थान के विभिन्न भागों में सामान्यतः तापमान 18° से 30° सेन्टीग्रेड तक

रहता है।

वायुदाब व पवनें – भीषण गर्मी के कारण पश्चिमी राजस्थान में वायुदाब काफी कम हो जाता है। इसके विपरीत हिन्द महासागरीय क्षेत्र में वायुदाब अधिक रहता है। अतः महासागरीय उच्च दाब से स्थलीय निम्न दाब की ओर मानसूनी पवनें चलने लगती हैं। इसकी दो शाखायें हो जाती है – बंगाल की खाड़ी का मानसून व अरबसागरीय मानसून। इन दोनों ही शाखाओं से राजस्थान में वर्षा होती है।

वर्षा – सामान्यतः जून के अन्तिम सप्ताह तक मानसून राजस्थान में पहुँच जाता है। बंगाल की खाड़ी व अरब सागरीय मानसून से राजस्थान में वर्षा होती है। राजस्थान की कुल वर्षा का 95 प्रतिशत भाग इन्हीं पवनों से प्राप्त होता है। अरबसागरीय मानसून के मार्ग में अवरोध नहीं होने के कारण ये अधिक वर्षा किये बिना राज्य से गुजर जाते हैं। बंगाल की खाड़ी के मानसून की शाखा सारे देश में वर्षा करती हुई यहाँ

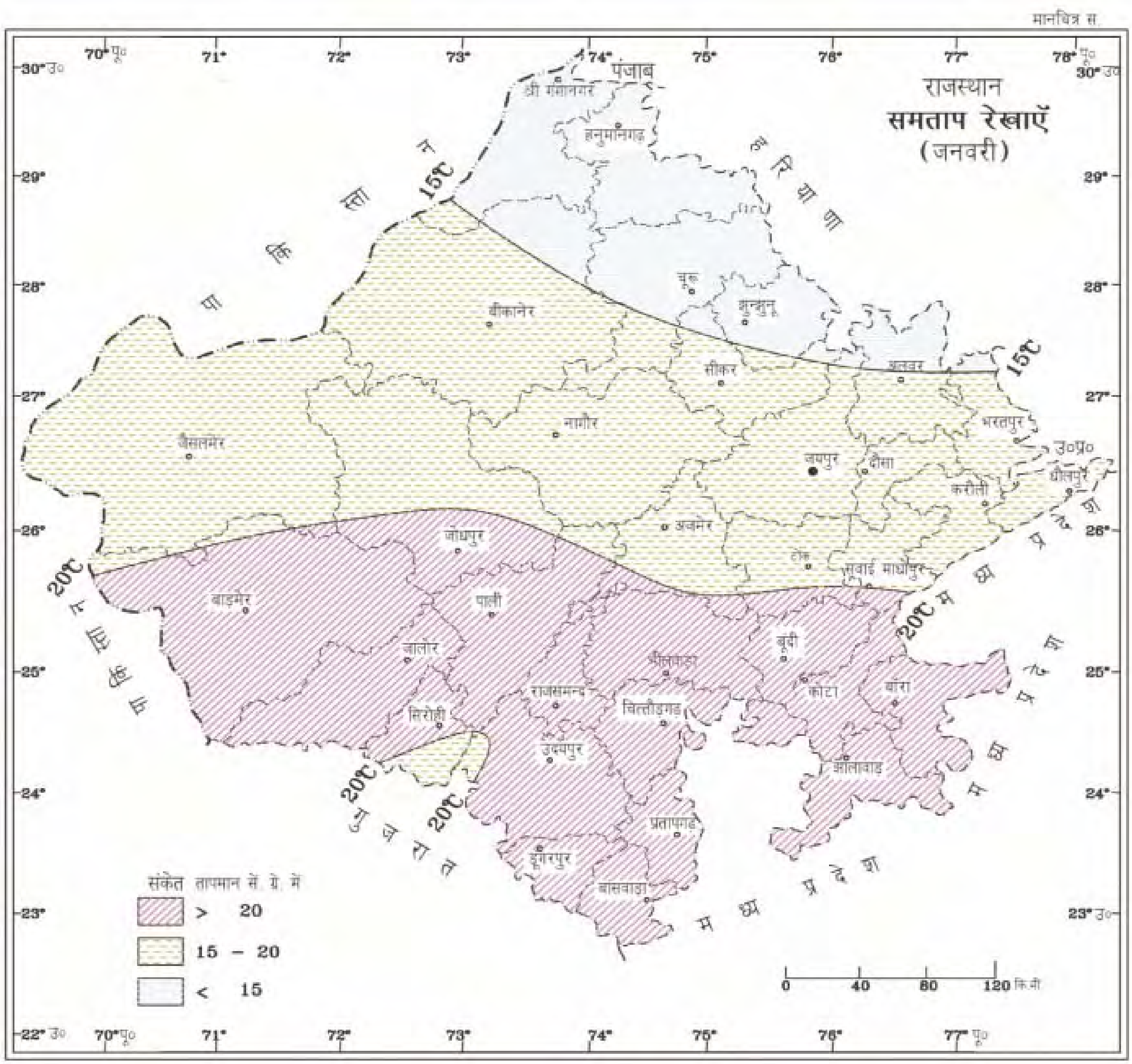

तक पहुँचते–पहुँचते काफी शुष्क हो जाती है। इन कारणों से राज्य का पश्चिमी भाग वर्षा से वंचित रह जाता है। किन्तु अरावली के दक्षिणी–पूर्वी भाग में वार्षिक वर्षा का औसत 100 सेन्टीमीटर से अधिक रहता है। पश्चिमी राजस्थान में 25 सेन्टीमीटर, दक्षिण–पूर्वी भाग में 75 से 100 सेन्टीमीटर तथा शेष उत्तरी–पूर्वी राजस्थान में 50 से 70 सेन्टीमीटर के बीच वर्षा का औसत रहता है। दक्षिण–पूर्व से उत्तर–पश्चिम व पश्चिम की ओर वर्षा की मात्रा कम तथा वर्षा की अनिश्चितता बढ़ती जाती है।

4. शरद ऋतु

तापमान – वर्षा के बाद इस ऋतु के प्रारम्भ में आकाश स्वच्छ रहने के कारण तापमान 38° सेन्टीग्रेड तक बढ़ जाता है किन्तु सूर्य के दक्षिणायन होते जाने से तापमान धीरे–धीरे गिरने लगता है। उत्तरी राजस्थान में 20° सेन्टीग्रेड से दक्षिण की ओर 30° सेन्टीग्रेड तक तापमान रहता है।

वायुदाब, पवनें व वर्षा – इस ऋतु में कोई स्पष्ट वायुदाब क्रम नहीं बनता है। अतः पवने भी शान्त रहती है। इसी कारण इस ऋतु में यहां वर्षा भी नहीं होती है।

राजस्थान : वार्षिक वर्षा

आन्तरिक भाग में स्थित होने के कारण राजस्थान में वर्षा का औसत अधिक नहीं हैं। वर्षा का वितरण भी असमान है। न्यूनतम वर्षा पश्चिमी मरूस्थली क्षेत्र में होती है जहां वार्षिक वर्षा का औसत 25 सेन्टीमीटर से कम रहता है। यहाँ से पूर्व की ओर अरावली पर्वतमाला तक के क्षेत्र में वार्षिक वर्षा का औसत 25 से 50 सेन्टीमीटर तक रहता है। सर्वाधिक वर्षा दक्षिणी राजस्थान के उन क्षेत्रों में होती है, जहाँ वर्षा का औसत 75 सेन्टीमीटर से अधिक रहता है। राज्य में प्राप्त कुल वर्षा का लगभग 95 प्रतिशत भाग अरब सागरीय व बंगाल की खाड़ी के मानसून से प्राप्त होता है। शीत ऋतु में मावठ के माध्यम से बहुत कम वर्षा होती है।

राज्य में कम वर्षा प्रमुखतः अरावली, श्रेणियों के लम्बवत् विस्तार, दक्षिण–पूर्वी पवनों के यहाँ पहुँचने से पहले ही वर्षा कर दिये जाने आदि के कारण होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत की कुल वर्षा का 90 प्रतिशत भाग ग्रीष्म ऋतु में दक्षिणी–पश्चिमी मानसून से प्राप्त होता है।
2. भारत में वर्षा का क्षेत्रीय वितरण अत्यन्त असमान है।
3. शीत ऋतु प्रायः शुष्क होती है। देश की 10 प्रतिशत वर्षा शरदकालीन मानसून तथा चक्रवातों से प्राप्त होती है।
4. भारतीय संस्कृति के अनुसार देश में छः ऋतुएं हैं।
5. दक्षिण–पश्चिमी मानसून दो शाखाओं में बाँटकर देश में वर्षा करता है, यथा– अरब सागरीय शाखा व बंगाल की खाड़ी की शाखा।
6. राजस्थान की जलवायु विषम है।
7. राजस्थान में गर्मी में तेज ''लू'' चलती है व सर्दी में

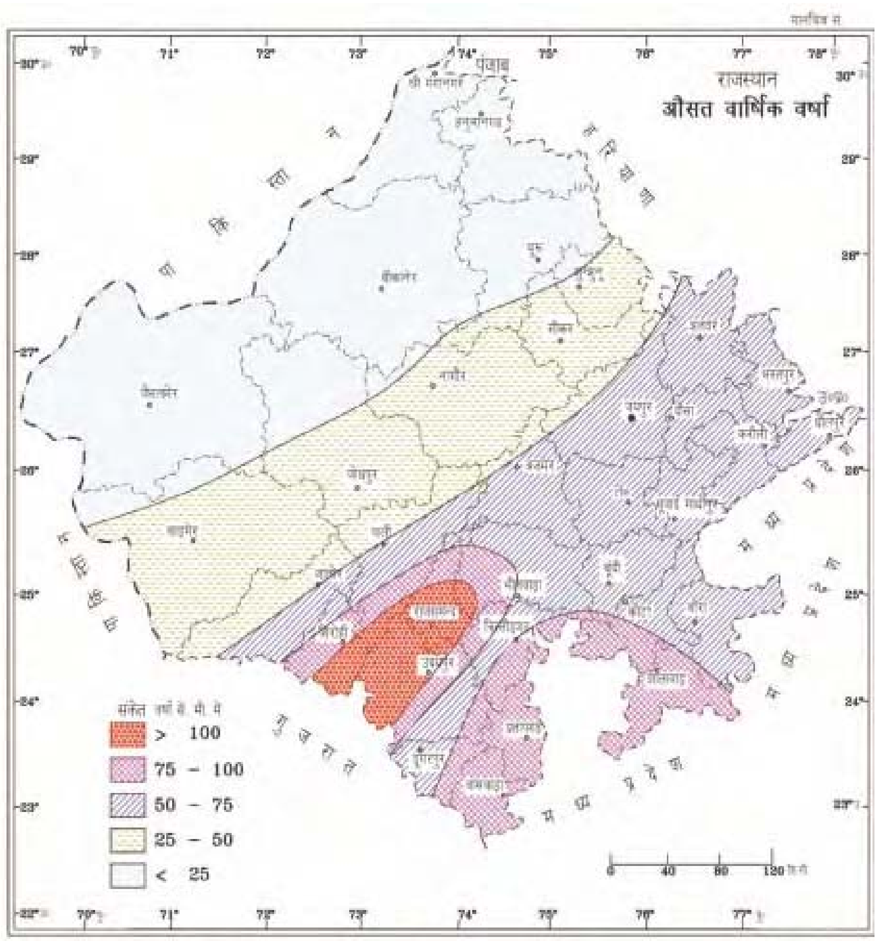

''मावठ'' से वर्षा होती है।

8. राजस्थान में अधिकांश वर्षा दक्षिण–पश्चिमी मानसून से ही प्राप्त होती है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानसून शब्द रूपांतर है–

(अ) मौसिम का (ब) मोनिस का

(स) मानस का (द) तीनों ही सही

2.''मावठ'' की वर्षा होती है –

(अ) बंसतकालीन वर्षा (ब) शीतकालीन वर्षा

(स) ग्रीष्मकालीन वर्षा (द) सामान्य वर्षा

3.भारतीय संस्कृति अनुसार ऋतुओं की संख्या है –

(अ) दो (ब) चार (स) तीन (द) छः

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''मौसिम'' शब्द किस भाषा का है ?
2. सूर्य के कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकने पर उच्च दाब कहाँ होता है ?
3. सूर्य के मकर रेखा पर लम्बवत् चमकने पर निम्न दाब कहाँ होता है ?
4. जेट स्ट्रीम कहाँ चलती है ?
5. राजस्थान में ग्रीष्मकालीन निम्न वायुदाब कहाँ बनता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारण बताइए।
2. शीतकालीन व ग्रीष्मकालीन मानसून काल की ऋतुओं के नाम अवधि सहित लिखिये।
3. अरबसागरीय मानसून के बारे में बताइये।
4. मानूसन की उत्पति के बारे में जेटस्ट्रीम विचारधारा बताइये।
5. राजस्थान की वर्षा का अरावली श्रेणी से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. दक्षिण–पश्चिमी मानसून के समय के तापक्रम, वायुदाब, पवनों की स्थिति व वर्षा का वर्णन कीजिये।
2. भारत में वर्षा के वितरण का विवरण लिखिये।
3. राजस्थान की जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियों को समझाइये।

आंकिक

1. भारत के मानचित्र में दक्षिण–पश्चिमी मानसून पवनों की स्थिति को दर्शाइयें।
2. राजस्थान के मानचित्र में वार्षिक वर्षा का वितरण दर्शाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर –

1. (अ) 2. (ब) 3. (द)

अध्याय 15

प्राकृतिक वनस्पति एवं मृदाएँ

प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीव किसी भी राष्ट्र की समृद्धि के आधार होते हैं। हमारे भारत के प्राकृतिक पर्यावरण का यह एक महत्वपूर्ण घटक है। भारत में प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीव बहुतायत में रहे हैं लेकिन अब अविवेकपूर्ण दोहन से इनका विनाश बढ़ता जा रहा है। मानव सभ्यता को बनाये रखने के लिये प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीवों को बचाये रखना अत्यंत आवश्यक है।

भारत की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार भौगोलिक क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत भाग पर वन होना अनिवार्य है। प्राकृतिक पर्यावरण में भिन्नता के कारण हमारे देश में वनों के प्रकार व वितरण में राज्य व क्षेत्र अनुसार भी भिन्नता पायी जाती है। भारत एक विशाल देश है, जिससे यहाँ तापमान, वर्षा, मिट्टी, धरातल की प्रकृति, पवनों व सूर्य–प्रकाश के प्रारूप में भिन्नता पायी जाती है। इसलिए देश में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का पाया जाना स्वाभाविक है।

वनों के प्रकार व वितरण

भारत में पाई जाने वाली वनस्पति के अनुसार प्रमुख प्रकार के वन निम्नलिखित है–

1. सदाबहार वन –

ये वन देश के उन भागों में मिलते हैं, जहाँ औसत वर्षा 200 से.मी. से अधिक तथा वार्षिक औसत तापमान 24^{0} से.ग्रे के लगभग रहती है। इसके तीन प्रमुख क्षेत्र हैं – 1 पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल, 2. अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह एवं 3. उत्तरी–पूर्वी भारत में बंगाल, असम, मेघालय और तराई प्रदेश। इस प्रकार के वनों में मुख्य रूप से रबर, महोगनी, एबोनी, लौह–काष्ठ, जंगली आम, ताड़ आदि वृक्ष व बांस तथा कई प्रकार की लताएं पायी जाती है। इन वृक्षों की ऊँचाई 30 से 45 मीटर तक होती है। वृक्षों की सघनता इतनी अधिक होती है कि धरातल पर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता।

इन वृक्षों का शोषण कम होता है क्योंकि इनकी लकड़ी कठोर होती है। एक ही स्थान पर विभिन्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। वृक्षों, लताओं व छोटे–छोटे पौधों की सघनता होती है, जिससे वृक्षों को काटने में असुविधा होती है तथा परिवहन के साधनों की कमी है, इसलिये आर्थिक दृष्टि से इनका उपयोग अधिक नहीं हुआ है।

2. पतझड़ी या मानसूनी वन –

ऐसे वन उन भागों में पाए जाते हैं, जहाँ 100 से.मी. से 200 से.मी. तक औसत वार्षिक वर्षा होती है। ये वन उत्तरी पर्वतीय प्रदेश के निचले भाग, विंध्याचल व सतपुड़ा पर्वत, छोटा नागपुर व असम की पहाड़ियां, पूर्वी घाट के दक्षिणी भाग एवं पश्चिमी घाट का पूर्वी क्षेत्र में पाये जाते है। ये वन न अधिक घने और वृक्ष न अधिक ऊँचे होते हैं। इनमें प्रमुख वृक्ष साल, सागवान, नीम, चन्दन, रोजवुड, आंवला, शहतूत, एबोनी, आम, शीशम, बाँस आदि हैं। इनकी लकड़ी अधिक कठोर नहीं होती है। ये आसानी से काटे जा सकते हैं। इनकी लकड़ी से जलयान, फर्नीचर आदि बनाए जाते हैं। इन क्षेत्रों में यातायात के साधनों के विकसित होने के पश्चात् अधिक मांग व अधिक उपयोग से लगातार दोहन के कारण ऐसे वनों का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है।

3. शुष्क वन –

ये वन उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं, जहाँ वर्षा का औसत 50 से.मी. से 100 से.मी. तक होता है। इन क्षेत्रों में जल की कमी सहन करने वाले वृक्षों की बहुतायता मिलती है। इन वृक्षों की जड़े लम्बी व मोटी होती है। इस प्रकार के वन मुख्यतः दक्षिणी–पश्चिमी पंजाब, हरियाणा, पूर्वी राजस्थान व दक्षिणी–पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाए जाते हैं। प्रमुख वृक्ष कीकर, बबूल, नीम, आम, महुआ, करील, खेजड़ी आदि हैं। वर्षा के अभाव में वृक्ष कम ऊँचे होते हैं। वृक्षों की ऊँचाई 6 से 9 मीटर होती है। इन वनों का केवल स्थानीय महत्व है।

4. मरूस्थलीय वन –

ये वन 50 से.मी. से कम वर्षा वाले भागों में पाए जाते

मानचित्र स.

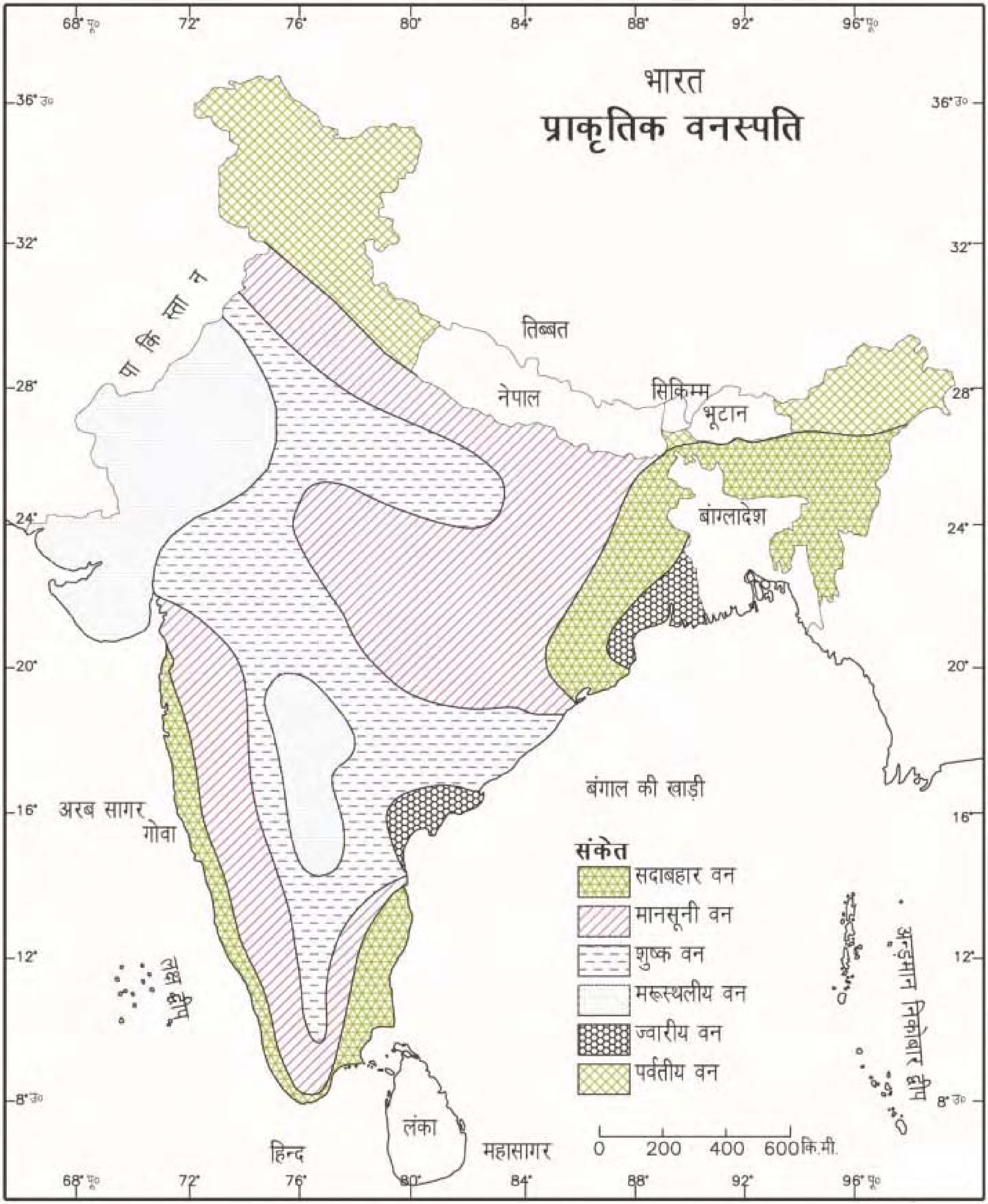

भारत
प्राकृतिक वनस्पति
68° पू०
72°
76°
80°
84°
88°
92°
96° पू०
36° उ०
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8° उ०
पाकिस्तान
तिब्बत
नेपाल
सिक्किम
भूटान
बांग्लादेश
अरब सागर
गोवा
बंगाल की खाड़ी
लक्षद्वीप
अंडमान निकोबार द्वीप
लंका
हिन्द
महासागर
संकेत
सदाबहार वन
मानसूनी वन
शुष्क वन
मरूस्थलीय वन
ज्वारीय वन
पर्वतीय वन
0
200
400
600 कि.मी.

है। यहाँ के वृक्षों में पत्तियाँ कम, छोटी तथा काँटेदार होती हैं। बबूल यहाँ बहुतायत से उगते हैं। नागफनी, रामबांस, खेजड़ी, खैर, खजूर आदि यहाँ की प्रमुख वनस्पति हैं। ये वनस्पतियाँ दक्षिणी–पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान, गुजरात, मध्य–प्रदेश आदि राज्यों में पायी जाती हैं। इनका केवल स्थानीय महत्त्व है।

5. ज्वारीय वन –

इन्हें दलदली वन भी कहा जाता है। ये वन महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि प्रायद्वीपीय नदियों के मुहानों पर तथा गंगा–ब्रह्मपुत्र के डेल्टाई भागों में पाए जाते हैं। ज्वार–भाटे के समय समुद्र का अग्रसित जल वृक्षों की जड़ों को सींचता है। ऐसे प्रदेशों में कीचड़ तथा दलदल होती है। इन वनों के सुन्दरी वृक्ष गंगा–ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में विशेष रूप से पाए जाते हैं। अन्य वृक्ष ताड़, नारियल, हैरोटीरिया, राइजोफोरा, सोनेरेशिया आदि हैं। इन वृक्षों की लकड़ी मुलायम होती है।

6. पर्वतीय वन –

इस प्रकार के वन दक्षिणी भारत में महाराष्ट्र के महाबलेश्वर तथा मध्य प्रदेश के पचमढ़ी आदि ऊँचे भागों में 1500 मीटर की ऊँचाई पर पाए जाते है। यहाँ वृक्ष 15 से 18 मीटर ऊँचे होते हैं। वृक्ष मोटे तने वाले होते हैं, जिनके नीचे सघन झाड़ियाँ मिलती हैं। वृक्षों की पत्तियाँ घनी व सदाबहार तथा टहनियों पर लताएँ छाई रहती हैं। अधिक ऊँचें भागों में यूजेनिया, मिचेलिया व रोडेनड्रॉस आदि वृक्ष मिलते हैं। उत्तरी भारत में हिमालय पर्वत श्रेणियों पर भिन्न–भिन्न ऊँचाई पर भिन्न भिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। 1000 से 2000 मीटर की ऊँचाई पर चौड़ी पत्ती वाले ओक तथा चेस्तनत, 1500 से 3000 मीटर की ऊँचाई पर शंकुधारी वृक्ष जैसे देवदार, स्प्रूस,चीर इत्यादि तथा 3500 से अधिक ऊँचाई पर अल्पाइन वनस्पति जैसे सिल्वर फर, बर्च, जूनिपर इत्यादि पाए जाते हैं।

भारत में वन्य जीव

भारत में विभिन्न प्रकार के प्राणी बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। यहाँ प्राणियों की लगभग 75,000 प्रजातियाँ पायी जाती है। उनमें 350 स्तनधारी, 1,313 पक्षी, 408 सरीसृप, 197 उभयचर, 2,546 मछलियां, 50,000 कीट, 4,000 मोलस्क तथा अन्य बिना रीढ़ वाले प्राणी है। यह विश्व का कुल 13 प्रतिशत है।

स्तनधारी जानवरों में हाथी सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ये असम, कर्नाटक और केरल के उष्ण तथा आर्द्र वनों में पाए जाते हैं। एक सींग वाले गैंडे पश्चिमी–बंगाल तथा असम के दलदली क्षेत्रों में रहते हैं। कच्छ के रन तथा थार मरूस्थल में क्रमशः जंगली गधे तथा ऊँट रहते हैं। भारतीय भैंस, गाय, बैल, नील गाय, घोड़ा, चौसिंघा, छोटा मृग (गैजल), कुत्ते तथा विभिन्न प्रजातियों वाले हिरण आदि कुछ अन्य जानवर हैं जो भारत में पाए जाते हैं। यहाँ बंदरों की भी अनेक प्रजातियाँ पाई जाती है।

भारत विश्व का अकेला देश है जहाँ शेर तथा बाघ दोनों पाए जाते हैं। भारतीय शेरों का प्राकृतिक वास स्थल गुजरात में गिर जंगल है। बाघ मध्य प्रदेश तथा झारखंड के वनों, पश्चिमी बंगाल के सुन्दरवन तथा हिमालयी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। बिल्ली जाति के सदस्यों में तेंदुआ भी है। यह शिकारी जानवरों में मुख्य है।

हिमालय क्षेत्रों में पाए जाने वाले जानवर अपेक्षाकृत कठोर जलवायु को सहन करने वाले होते हैं जो अत्यधिक ठंड में भी जीवित रहते हैं। लद्दाख की बर्फीली ऊँचाइयों में याक पाए जाते हैं जो गुच्छेदार सींगों वाला बैल जैसा जीव है जिसका भार लगभग एक टन होता है। तिब्बतीय बारहसिंघा, भारल (नीली भेड़), जंगली भेड़ तथा किआंग (तिब्बती जंगली गधे) भी यहाँ पाए जाते हैं। कहीं–कहीं लाल पांडा भी कुछ भागों में मिलते हैं।

नदियों, झीलों तथा समुद्री क्षेत्रों में कछुए, मगरमच्छ और घड़ियाल पाए जाते हैं। घड़ियाल, मगरमच्छ की प्रजाति का एक ऐसा प्रतिनिधि भी है जो विश्व में केवल भारत में पाया जाता है।

भारत में अनेक रंग–बिरंगे पक्षी पाए जाते हैं। मोर, बत्तख, तोता, मैना, सारस,गिद्ध, उल्लू, कौआ तथा कबूतर आदि कुछ पक्षी प्रजातियाँ हैं जो देश के वनों तथा आर्द्र क्षेत्रों में रहती है।

राजस्थान की प्राकृतिक वनस्पति

राजस्थान में लगभग 34,610 वर्ग किलोमिटर क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां मिलती है। यह राज्य के कुल क्षेत्रफल का 10.12 प्रतिशत है। राजस्थान में सघन वन आवरण

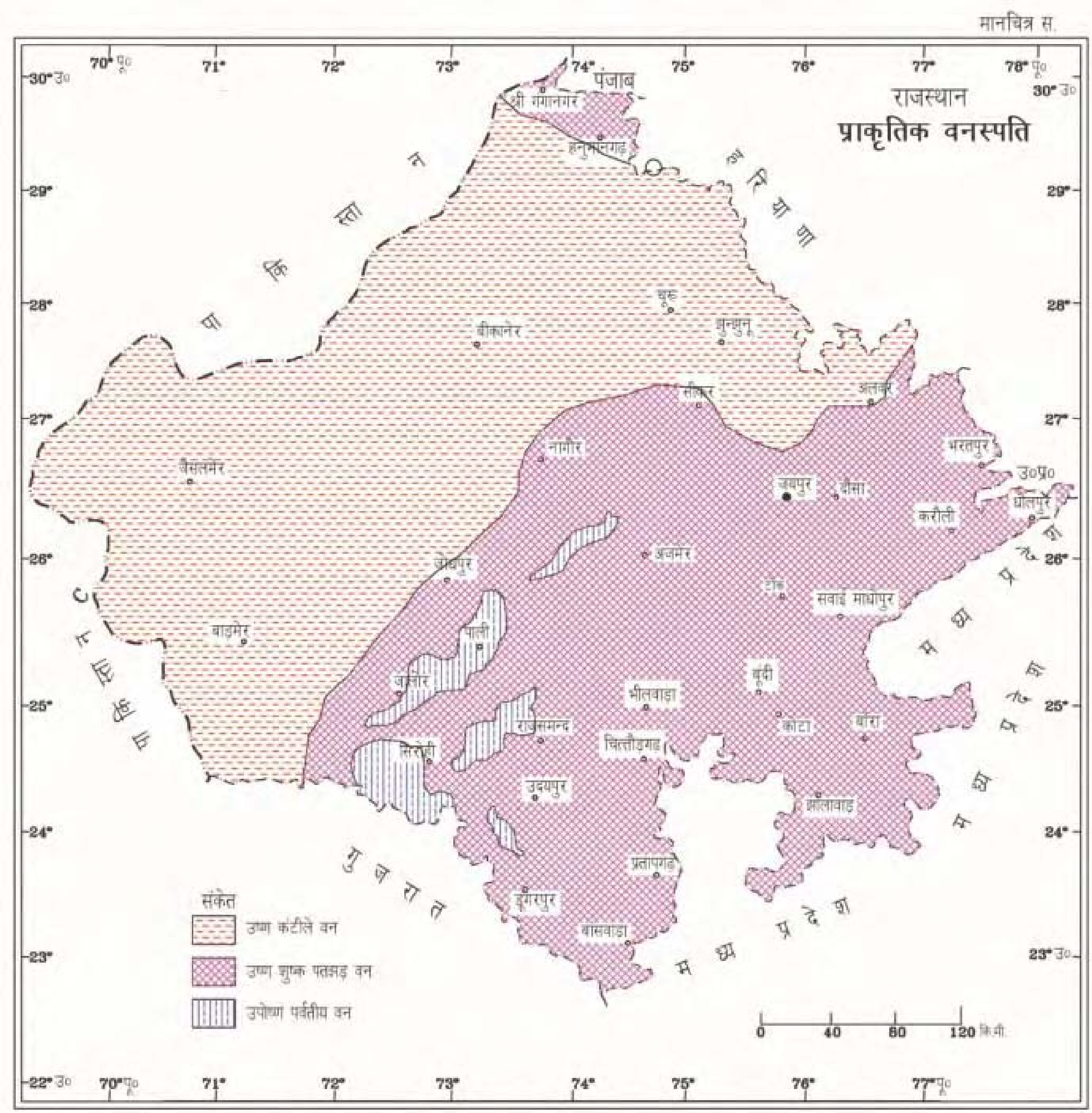

क्षेत्र तो 3.83 प्रतिशत ही है। राजस्थान में प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र मात्र 0.03 हैक्टर है। जो सम्पूर्ण भारत के प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र 0. 13 हैक्टर से काफी कम है। राजस्थान में वनों के भौगोलिक वितरण में बहुत भिन्नता है। राज्य की वनस्पतियां यहाँ की जलवायु, मिट्टी, भूमि की स्थिति तथा भूगर्भिक इतिहास से प्रभावित है। यहाँ पर प्राकृतिक वनस्पति तीन प्रकार की पायी जाती है। वन, घास व मरूस्थलीय वनस्पति। राज्य के वनों का वर्गीकरण एवं वितरण इस प्रकार है –

वनों के प्रकार

धरातलीय स्वरूप, जलवायु व मिट्यिों की भिन्नता के कारण राजस्थान में भौगोलिक दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के वन मिलते हैं –

1. उष्ण कटिबंधीय कंटीले वन,
2. उष्ण कटिबंधीय शुष्क पतझड़ वाले वन तथा
3. उपोष्ण पर्वतीय वन।

1. उष्ण कटिबंधीय कंटीले वन – इस प्रकार के वन पश्चिमी मरूस्थलीय शुष्क व अर्द्ध–शुष्क प्रदेशों में पाये जाते हैं। जैसलमेर, बाड़मेर, पाली, बीकानेर, चूरू, नागौर, सीकर, झुन्झुनूं आदि जिलों में इस प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। इन वनों में पेड़ बहुत छोटे आकर के होते हैं व छोटी झाड़ियों की अधिकता होती है। इस प्रकार के शुष्क जलवायु वाले वनों में खेजड़ी, रोहिड़ा, बैर, कैर, थोर आदि के वृक्ष व झाड़ियाँ उगते हैं। इन पेड़ों व झाड़ियों की जड़े लम्बी होती हैं तथा पत्तियाँ कंटीली होती हैं। मरूस्थलीय प्रदेश में खेजड़ी की अत्यधिक उपयोगिता के कारण इसे मरूस्थल का कल्पवृक्ष कहा जाता है।

इन वनों में कई तरह की झाड़ियां भी पाई जाती हैं। फोग, आकड़ा, कैर, लाना, अरणा व झड़बेर इस क्षेत्र की प्रमुख झाड़ियां है। इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में कई तरह की घास भी पाई जाती है। इन घासों में सेवण व धामण नाम की घास बहुत प्रसिद्ध है। धामण घास दुधारू पशुओं के लिए बहुत उपयोगी होती है जबकि सेवण घास सभी पशुओं के लिए पौष्टिक होती है।

2. उष्ण कटिबन्धीय शुष्क पतझड़ वाले वन – इन वनों का विस्तार राजस्थान के बहुत बड़े क्षेत्र में है। ये वन राजस्थान के 50 से 100 से.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये वन राजस्थान के मध्य, दक्षिणी व दक्षिणी–पूर्वी भागों में बहुतायत से पाये जाते हैं। विभिन्न तरह के वृक्षों की विविधता के कारण इन वनों के कई उप प्रकार हैं जो निम्नलिखित है –

(i) शुष्क सागवान के वन – ये वन 250 से 450 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मिलते हैं। इन वनों में सागवान वृक्ष बहुतायत से पाये जाने पर इन्हें यह नाम दिया गया है। इन वनों का विस्तार उदयपुर, डूंगरपुर, झालावाड़, चित्तौड़गढ़ व बारां जिलों में है। इन वनों में सागवान की मात्रा 50 से 75 प्रतिशत के मध्य मिलती है। इनके अतिरिक्त इन वनों में तेंदू, धावड़ा, गुरजन, गोंदल, सिरिस, हल्दू, खैर, सेमल, रीठा, बहेड़ा व इमली के वृक्ष भी पाये जाते हैं।

सागवान अधिक सर्दी व पाला सहन नहीं कर पाता है अतः इन वृक्षों का विस्तार राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्रों में अधिक है। सागवान की लकड़ी कृषि औजारों व इमारती कार्यों के लिए बहुत उपयोगी है।

(ii) सालर वन – ये वन 450 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में मिलते हैं। राजस्थान में इन वनों का विस्तार उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, सिरोही, पाली, अजमेर, जयपुर, अलवर व सीकर जिलों में मिलता है। इन वनों के प्रमुख वृक्ष सालर, धोक, कठीरा व धावड़ है। सालर वृक्ष गोंद का अच्छा स्रोत हैं। इसकी लकड़ी पैकिंग के डिब्बे बनाने में ली जाती है। सालर वृक्षों की अधिकता के कारण इन वनों को सालर वन नाम दिया गया है।

(iii) बांस के वन – बांस की अधिकता के कारण इन्हें बांस वन नाम दिया गया है। राजस्थान के प्रचुर वर्षा वाले क्षेत्रों में इन वनों का विस्तार है। राजस्थान में बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, बारां, कोटा व सिरोही जिलों में इन वनों का विस्तार हैं। बांसवाड़ा का नाम बांसवाड़ा, बांस के वृक्षों की अधिकता के कारण ही पड़ा है। बांस के वृक्षों के साथ इन वनों में धाकड़ा, सागवान, धोकड़ा आदि वृक्ष भी पाये जाते है।

(iv) धोकड़ा के वन – धोकड़ा के वन राजस्थान के बहुत बड़े क्षेत्र में पाये जाते हैं। रेगिस्तानी क्षेत्रों को छोड़कर राजस्थान के सभी क्षेत्रों का भौगोलिक पर्यावरण इसके अनुकूल है। अतः राजस्थान में इन वनों का विस्तार सबसे अधिक है। राजस्थान में ये वन 240 से 760 मीटर की ऊँचाई के मध्य अधिक मिलते हैं। इनका विस्तार कोटा, बूंदी, सवाईमाधोपुर, जयपुर, अलवर, अजमेर, उदयपुर, राजसमन्द व चित्तौड़गढ़ जिलों में है। राजस्थान में धोकड़ा को धोक के नाम से भी जाना जाता है। ये वन राज्य की प्रमुख वन सम्पदा में शामिल किये जाते हैं।

इन वनों के धोक के साथ–साथ अरूंज, खैर, खिरनी, सालर, गोंदल के वृक्ष भी पाये जाते हैं। पहाड़ी, तलहटी खेत्रों में धोक के साथ पलाश बहुतायत से मिलता है। कहीं–कहीं झड़बेर व अडूसा भी मिलता है। धोक की लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसे जलाकर इसका कोयला बनाया जाता है।

(v) पलाश के वन – ये वन उन क्षेत्रों में फैले हैं जहाँ धरातल कठोर व पथरीला है। पहाड़ियों के मध्य जल पठारी धरातल है, वहाँ यह बहुतायत में पाये जाते है। ऐसे मैदानी क्षेत्र जो कंकरीले हैं व जहाँ मिट्टी अपेक्षाकृत कम हैं वहाँ भी ये वन मिलते हैं। इसका फैलाव अलवर, अजमेर, सिरोही, उदयपुर, पाली, राजसमन्द व चित्तौड़गढ़ में है।

(vi) खैर के वन – इन वनों का फैलाव राजस्थान के

दक्षिणी पठारी भाग में है। इसके अन्तर्गत झालावाड़, कोटा, बारां, चित्तौडगढ़ व सवाई माधोपुर जिलों के क्षेत्र शामिल हैं। इन वनों में खैर के साथ बेर, धोकड़ा व अरूंज के वृक्ष भी मिलते है।

(vii) बबूल के वन – ये वन गंगानगर, बीकानेर, नागौर, जालौर, अलवर, भरतपुर आदि जिलों में मिलते हैं। जिन क्षेत्रों में धरातल में नमी कम है, वहाँ इनके वृक्षों की मात्रा कम है। अधिक नमी वाले क्षेत्रों में इनकी सघनता बढ़ जाती है। इन वनों में बबूल के साथ नीम, हिंगोटा, अरूंज, कैर व झड़बेर के वृक्ष भी मिलते है।

(viii) मिश्रित पर्णपाती – ये वन राजस्थान के दक्षिणी पहाड़ी क्षेत्र में पाये जाते हैं। सिरोही, उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौडगढ़, कोटा व बारां जिलों में इनका विस्तार अधिक है। इन वनों में किसी एक वृक्ष की प्रधानता नहीं है। इनमें सभी तरह के वृक्ष पाये जाते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले प्रमुख वृक्ष आँवला, शीशम, सालर, तेंदू, अमलताश, रोहन, करंज, गूलर, जामुन, अर्जुन आदि है।

3. उपोष्ण पर्वतीय वन – इस प्रकार के वन केवल आबू पर्वतीय क्षेत्र में पाये जाते हैं। इन वनों में सदाबहार एवं अर्द्ध–सदाबहार वनस्पति होती है। यहां वृक्षों के सघनता अधिक है। अतः सालभर हरियाली बनी रहती है। इन वनों में आम, बांस, नीम, सागवान आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। राजस्थान के कुल वन क्षेत्र के आधे प्रतिशत से भी कम भाग पर इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।

वन नीति एवं संरक्षण

वन जीवन का आधार है। वनों की अनियंत्रित कटाई से हमारे देश की जलवायु व स्थलाकृति पर अनेक प्रतिकूल प्रभाव पड़े हैं जैसे – मिट्टी अपरदन, मरूस्थल का प्रसार, बाढ़ों का आना, बंजर भूमि का बढ़ना, जलवायु की विषमता, सूखा, भूमिगत जलस्तर में गिरावट वन्य जीवों की कमी तथा पर्यावरण प्रदूषण आदि।

तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या के बसाव, बढ़ते औद्योगीकरण व कृषि हेतु भूमि प्राप्त करने के लिये विकास के नाम पर वनों को काटा जा रहा है। इन बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति एवं पर्यावरण आपदाओं से बचने के लिये वनों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

भारत में सबसे पहली वन नीति 1894 में अपनायी गयी थी। स्वतंत्रता के बाद 31 मई 1954 को घोषित नई वन नीति के अनुसार भूमि के 33 प्रतिशत भाग पर वन होने चाहिये। हमारे देश में 1988 में नवीन वन नीति घोषित की गई। उसके तीन लक्ष्य बताये गये – पर्यावरण स्थिरता, वनस्पति व जीव–जंतुओं जैसी प्राकृतिक धरोहरों को सुरक्षित रखना तथा जन सामान्यत की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति।

सरकार द्वारा वन संरक्षण की दिशा में अनेक कार्यक्रम व योजनाएं चलायी जा रही है। सामाजिक वानिकी योजना, राष्ट्रीय पार्कों व अभयारण्यों की स्थापना आदि इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास है। वन क्षेत्रों के विस्तार व मरूस्थल के प्रसार को नियंत्रित करने के लिए वन अनुसंधान केन्द्र देहरादून तथा केन्द्रीय मरू वन क्षेत्र अनुसंधान जोधपुर द्वारा प्रयास जारी है। वन संरक्षण केवल सरकारी प्रयासों के सहारे नहीं हो सकता है, इसके लिए जनमानस की जागरूकता व सक्रिय सहभागिता आवश्यक है।

वनों के महत्त्व को देखते हुए हमारे राजस्थान में सरकार द्वारा वन विकास के लिए सामाजिक वानिकी, अरावली वृक्षारोपण व वन संरक्षण कार्यक्रम पर विभिन्न प्रकार के वानिकी पुरस्कार दिये जाते है। ये है– वानिकी पंडित पुरस्कार, वृक्ष मित्र पुरस्कार आदि।

वन्य जीव संरक्षण

वनों की बड़े पैमाने पर कटाई से वन्य जीव कम होते जा रहे हैं जो बचे हुये हैं, उनके लिये प्राकृतिक आवास व भोजन की समस्या बनी हुई है। इनका संरक्षण आवश्यक है। वन्य जीवों के प्रति प्रेम भारतीय संस्कृति का अंग रहा है। भारत के सम्राट अशोक महान् के शिलालेखों में वन्य जीवों के शिकार पर अंकुश व संरक्षण के बारे में विवरण मिलता है।

वन्य जीवों को बचाये रखने हेतु निम्न उपाय किए जाने चाहिये –

1. शिकार पर पूर्णतः प्रतिबंध।
2. प्राकृतिक आवास की उपलब्धता।
3. वन्य जीव संरक्षण कानून बनाना एवं उनका कठोरतापूर्वक क्रियान्वयन।

4. राष्ट्रीय उद्यानों व वन्य जीव अभयारण्यों की स्थापना एवं सुदृढ़ प्रबन्धन।

5. जन चेतना का प्रसार एवं जन भागीदारी सुनिश्चित करना।

जैव मण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र –

हमारे देश में वन्य जीवों के संरक्षण हेतु 15 जीव मण्डल निकय (आरक्षित क्षेत्र) स्थापित किये गये है। ये हैं – नंदादेवी, सुन्दरवन, मानस, नोकरेक, मन्नार खाड़ी, नीलगिरि, सिमलीपाल, नामदफा, थार का रेगिस्तान, उत्तराखण्ड, कच्छ का छोटा रन, कान्हा, उत्तरी अंडमान, वृहद निकोबार व काजीरंगा।

राष्ट्रीय उद्यान व अभयारण्य –

भारत में वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करने हेतु अब तक 565 वन्य जीव अभयारण्यों तथा 89 राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना की गयी है। देश के दो राष्ट्रीय उद्यानों काजीरंगा (असम) तथा केवलादेव (राजस्थान) को प्रथम बार विश्व विरासत स्थल बनाया गया है। देश के प्रमुख महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यान हैं – जिम कार्बेट (उत्तराखण्ड), कान्हा (मध्यप्रदेश) काजीरंगा (असम), बांदीपुर (कर्नाटक), पलामू (बिहार), दाचीगाम (जम्मू काश्मीर), सुन्दर वन (पश्चिमी बंगाल), शांत घाटी (केरल), नन्दनकानन (उड़ीसा), केवलादेव (राजस्थान), काइबुल लम्जाओ (मणिपुर), अन्नामलाई (तमिलनाडु) आदि।

विभिन्न संकटापन्न वन्य जीवों जैसे – बाघ, चीता, हाथी, गिर–सिंह, घड़ियाल, गेंडा, कस्तूरी मृग आदि हेतु विशेष परियोजनाएं चलायी जा रही है।

राजस्थान के वन्य जीव एवं अभयारण्य

प्राकृतिक आवास में रहने वाले जीव–जन्तुओं को वन्य जीव कहते हैं। हमारे राज्य में मुख्यतः बाघ, बघेरे, चीतल, सांभर, चिंकारा, काला हिरण, भेड़िया, रीछ, लोमड़ी आदि वन्य जीव मिलते हैं। यहाँ का राज्य पशु चिंकारा है। राज्य में 22 वन्य जीव अभयारण्य हैं। रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान–सवाई माधोपुर तथा केवला देव राष्ट्रीय उद्यान–भरतपुर राजस्थान में स्थित राष्ट्रीय उद्यान हैं।

राष्ट्रीय मरू उद्यान–जैसलमेर, सरिस्का अभयारण्य–अलवर व मुकन्दरा हिल्स अभयारण्य–कोटा को राष्ट्रीय उद्यान प्रस्तावित किया गया है। रणथम्भोर राष्ट्रीय उद्यान व सरिस्का अभयारण्य बाघ संरक्षण के लिये है। केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान विश्व विरासत सूची में शामिल है। यह साइबेरियन सारस के लिये प्रसिद्ध रहा है। अब यहाँ पर इनका आना बहुत कम हो गया है। राष्ट्रीय मरू उद्यान, जैसलमेर वन्य जीवों के साथ ही जीवाश्म (फॉसिल्स) के संरक्षण के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ पर आकल क्षेत्र के विशाल जीवाश्म पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है।

कुरजां राज्य के लोक साहित्य का चर्चित प्रवासी पक्षी है। इनका महत्वपूर्ण केन्द्र खींचन (जोधपुर) है। राज्य में 33 आखेट निषिद्ध क्षेत्र हैं। राज्य का जैविक उद्यान नाहरगढ़ (जयपुर) में है। राजस्थान का राज्य पक्षी गोडावन है जो कि इसके मूल प्राकृतिक वास स्थान पश्चिमी राजस्थान में भी दुर्लभ है। घड़ियालों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय चम्बल घड़ियाल अभयारण हैं। राज्य के प्रमुख अभ्यारण्य तालछापर (चुरू), रामगढ़ विषधारी (बून्दी), कुंभलगढ़ व सज्जनगढ़ (उदयपुर), माउण्ट आबू (सिरोही), कैलादेवी (करौली), सीतामाता व भैंसरोड़गढ़ (चित्तौड़) बंध बारेठा (भरतपुर) टाडगढ़–रावली (अजमेर), जमवारामगढ़ (जयपुर), रामसागर (धौलपुर) आदि है।

खेजड़ली बलिदान

राजस्थान का ''खेजड़ली बलिदान'' पर्यावरण के प्रति जागरूकता का प्रतीक है। खेजड़ी वृक्ष थार का कल्पवृक्ष है। 28 अगस्त, 1730 में जोधपुर के महाराजा ने ग्राम खेजड़ली में खेजड़ी के वृक्षों को काटने का आदेश दिया लेकिन वहाँ के निवासियों द्वारा इसका विरोध किया गया। इसका नेतृत्व अमृता देवी ने किया। उसने पेड़ काटने वालों को ललकार कर कहा ''जो सिर साटे रूख रहें तो भी सस्तो जाण'' इतना कहकर वह पेड़ से चिपक गई तथा खेजड़ी वृक्ष की रक्षा के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। खेजड़ली बलिदान में कुल 363 व्यक्ति (294 पुरूष तथा 69 स्त्री) बलिदान हुए। इसलिए 21 सितम्बर को भारत में पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। खेजड़ली गांव में उन अमर बलिदानियों का स्मारक बना हुआ है, जहाँ प्रतिवर्ष वृक्ष शहीद मेला लगता है। उनकी स्मृति बनाये रखने के लिये जोधपुर में अमृतादेवी कृष्ण मृग अभ्यारण्य विकसित किया गया है। पर्यावरण संरक्षण व चेतना के क्षेत्र में

राज्य सरकार द्वारा अमृतादेवी स्मृति पुरस्कार भी दिया जाता है।

जैव विविधता का संरक्षण –

किसी प्राकृतिक प्रदेश में मिलने वाले पालतु व जंगली जीव–जन्तुओं तथा वनस्पति की विभिन्नता की बहुलता को जैव विविधता कहा जाता है। हमारा देश जैव विविधता की दृष्टि से एक समृद्ध देश है। विश्व में मिलने वाले कुल 15 लाख जैव विविधताओं में से 40 प्रतिशत भारत में पायी जाती है। भारत में अभी तक लगभग 81,000 जीव–जंतु तथा 45,000 वनस्पति की प्रजातियों को पहचाना जा चुका है। आर्थिक दृष्टि से जीव –जंतु व वनस्पतियाँ बहुत उपयोगी है।

प्रकृति के निर्माण व उसको बनाये रखने में जैव विविधता की अहम भूमिका रहती है। प्रकृति में किसी भी प्रकार के जीव अथवा वनस्पति का विनाश प्रकृति एवं पर्यावरण के लिये खतरनाक हो सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक प्रमुखतः बड़े बांधों के निर्माण, औद्योगिकरण, सघन खेती, बढ़ती आबादी हेतु आवास व भोजन आदि की आवश्यकता से जैव विविधता का खूब विनाश हुआ है। जीव–जंतु व वनस्पतियाँ पर्यावरण संतुलन बनाये रखते हैं। जैव विविधता का विनाश ओजोन परत में छिद्र, हरितगृह प्रभाव के कारण वातावरण में गर्मी बढ़ना इत्यादि पर्यावरणीय समस्यायें बढ़ती जा रही हैं। इस हेतु अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन (IUCN) बना हुआ है। इसका मुख्यालय स्विट्जरलैण्ड में है। इस दिशा में विश्व प्रकृति निधि (WWF) द्वारा भी कार्य किया जा रहा है।

हमारे देश की जैव विविधता को सतत विकास की दृष्टि से बचाया जाना चाहिये। उनको संरक्षण प्रदान करना समय की आवश्यकता है। देश में जैव विविधता संरक्षण हेतु विभिन्न राष्ट्रीय उद्यान, वन्य जीव अभयारण्य, जैव मण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र की स्थापना तथा बाघ परियोजनायें आदि चल रही है। इस हेतु देश के कुछ शोध संस्थान भी कार्य कर रहे हैं, जिनमें प्रमुख हैं– भारतीय वन अनुसंधान– देहरादून, भारतीय वनस्पति उद्यान–कोलकाता, पारिस्थितिकी अनुसंधान संस्थान – बैंगलोर, राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी संस्थान – नागपुर आदि।

पर्यावरण चेतना

भारत में पर्यावरण के प्रति वैदिक काल से जागरूकता रही है। विभिन्न पौराणिक ग्रंथों में पर्यावरण के विभिन्न कारकों का महत्त्व व उनको आदर देते हुये संरक्षण की बात कही गयी है। भारतीय ऋषियों ने सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को ही देवता स्वरूप माना है। सूर्य, जल, वनस्पति, वायु व आकाश को शरीर का आधार बताया गया है। अथर्ववेद का "भूमिसूक्त" पर्यावरण चेतना का प्रथम लिखित दस्तावेज हैं। ऋग्वेद में जल की शुद्धता, यजुर्वेद में सभी प्रकृति तत्वों को देवताओं के समान आदर देने की बात कही गई है। वैदिक उपासना के शांति पाठ में भी अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, वनस्पति, आकाश आदि सभी में शांति एवं श्रेष्ठता की प्रार्थना करी गई है। वेदों में ही एक वृक्ष लगाने का पुण्य सौ पुत्रों के पालन समान माना गया है। हमारे राष्ट्र गीत वंदेमातरम् में पृथ्वी को ही माता मानकर उसे पूजनीय माना गया है।

हमारी संस्कृति को अरण्य संस्कृति भी कहा जाता हें इसके पीछे भाव यही है कि वन तथा हरे–भरे वृक्षों से सदैव यहाँ का पर्यावरण समृद्ध रहा है। महाभारत एवं रामायण में वृक्षों के प्रति अगाध श्रद्धा बताई गई है। विष्णु धर्मसूत्र, स्कन्द पुराण तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में वृक्षों के काटने को अपराध बताया गया है तथा वृक्ष काटने वाले के लिये दण्ड का विधान बताया गया है।

पर्यावरण की हमारी वैदिक परम्परा रही है कि प्रत्येक मनुष्य पर्यावरण में ही पैदा होता है, पर्यावरण में ही वह जीता है और पर्यावरण में ही वह लीन हो जाता है।

वर्तमान में पर्यावरण चेतना के प्रति जागरूकता अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि पर्यावरण प्रदूषित हो जाने से 'ग्लोबल वार्मिंग' की समस्या उत्पन्न हो गई है। इसको रोकने के लिये पर्यावरण प्रबंधन व पर्यावरण शिक्षा का प्रसार जरूरी है, हमारे देश में खेजड़ली आंदोलन, चिपको आंदोलन, अप्पिको आंदोलन, शांतघाटी आंदोलन व नर्मदा बचाओं आंदोलन पर्यावरण चेतना के प्रति जागरूकता के ही परिचायक हैं। राजस्थान में बिश्नोई समाज के 29 सूत्र पर्यावरण संरक्षण के महत्वपूर्ण नियम है।

भारत की मृदा

प्रत्येक देश के आर्थिक जीवन में मिट्टी का बहुत महत्त्व होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में तो इसका महत्व

और भी अधिक है, क्योंकि हमारे देश में 70 प्रतिशत से अधिक लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही आधारित है। मृदा भूमि की वह परत है, जो चट्ानों के विखण्डन, विघटन और जीवांशों के सड़ने—गलने से मिलकर बनती है। इसमें पेड़—पौधों को उगाने की क्षमता होती है। इसका निर्माण व गुण चट्टानों, जलवायु वनस्पति और समय पर निर्भर करता है।

रचना विधि के अनुसार मिट्टी के दो प्रकार हैं – स्थानीय और विस्थापित। ऋतु क्रिया के प्रभाव से विखण्डित चट्ानें जब अपने मूल स्थान से नहीं हटती या बहुत कम हटती हैं, तो इस प्रकार से निर्मित मिट्ी को स्थानीय मिट्टी कहा जाता है। दक्षिण भारत के पठारों पर ऐसी मिट्टी मिलती है। ऐसी मिट्टी जिन चट्टानों से बनती हैं, उनके गुण उसमें विद्यमान रहते है। यही कारण है कि वहां की रवेदार परिवर्तित चट्ानों से निर्मित मिट्टी कंकरीली, मोटे कणों वाली, लाल रंग की और अनुपजाऊ होती है। जहाँ लावा के विघटन से मिट्टी का निर्माण हुआ है, वहां मिट्टी काली और उपजाऊ होती है।

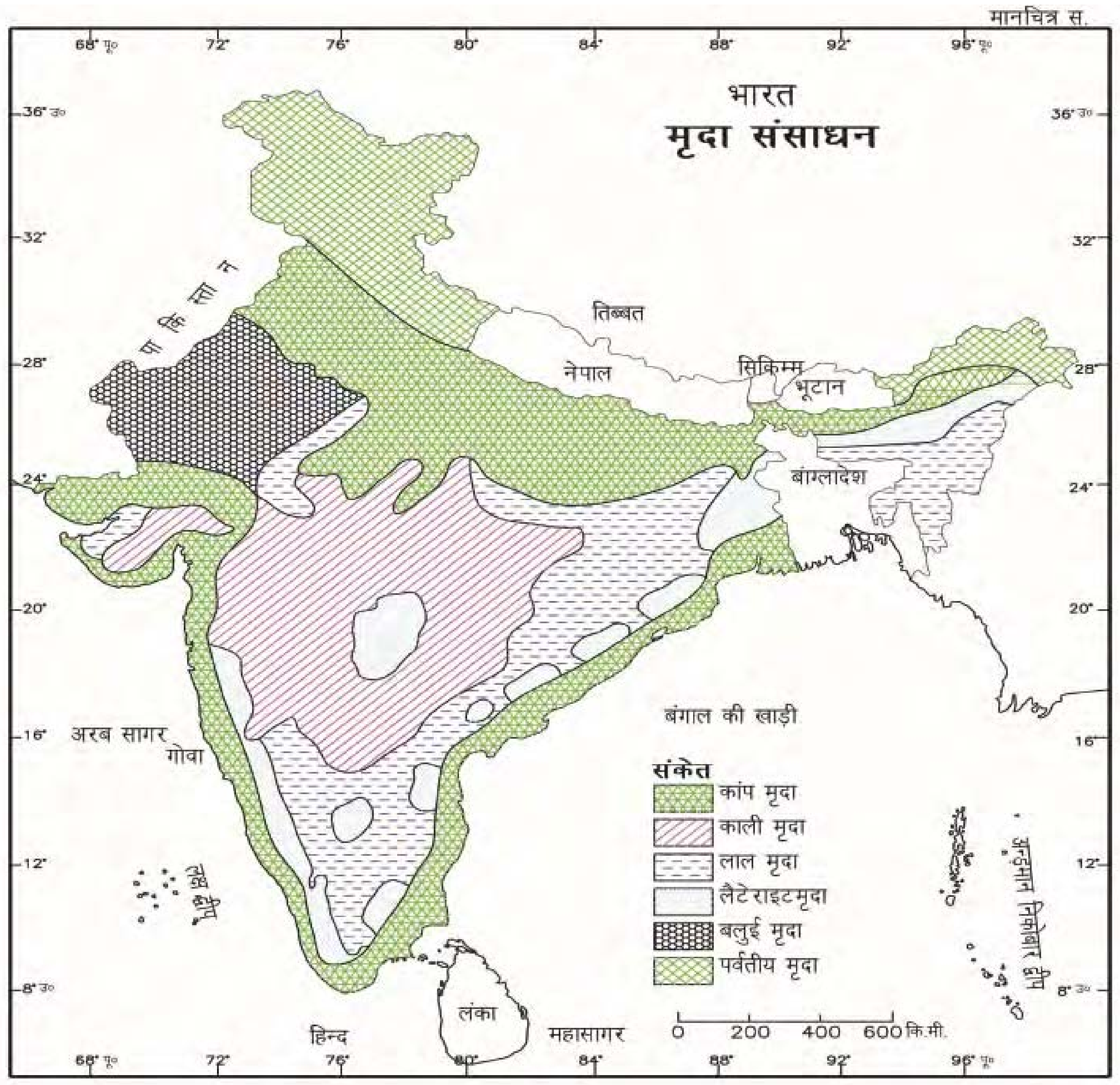

नदी, हिमनद, पवन आदि के प्रभाव से विखण्डित चट्टानों से बनी मिट्टी जब अपने मूल स्थन से हटकर दूर चली जाती है, तो इस तरह से निर्मित मिट्टी को विस्थापित मिट्टी कहा जाता है। भारत में मध्यवर्ती मैदानों तथा तटीय मैदानों की मिट्टियाँ इसी प्रकार की हैं। ये मिट्टियाँ बहुत ही उपजाऊ होती है।

हमारे देश की विशालता व भिन्न प्राकृतिक रचना के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का पाया जाना स्वाभाविक है। आर्थिक दृष्टि से इसकी प्रमुख उपयोगिता फसलें उगाने में है। फसलों को उगाने में जुताई की इकाई, भूमि की सिंचाई, उपयुक्त फसलों का चुनाव, अपनाई जाने वाली कृषि–पद्धति इत्यादि का ध्यान रखना पड़ता है, जो बहुत कुछ मिट्टी की किस्म पर भी निर्भर करता है। मिट्टी की रचना व गुणों के आधार पर भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है –

1. कांप मृदा –

भारत के विशाल मैदान व तटीय मैदान कांप मिट्टी से बने है। यह काँप मिट्टी नदियों द्वारा लाकर जमा की गई है। यह मिट्टी लगभग 8 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार इसे तीन भागों में बांटा जाता है।

(अ) पुरातन कांप मृदा – नदियों के बाढ़–क्षेत्रों से ऊँचें भागों में जहाँ बाढ़ का पानी नहीं पहुँच पाता है, पुरातन कांप मिट्टी पायी जाती है। ऐसे क्षेत्रों को बांगर के नाम से भी पुकारा जाता है। इनमें गहन खेती करके वर्ष में दो फसलें उत्पन्न की जाती है। इनमें सिंचाई की आवश्यकता अधिक होती है।

(ब) नूतन कांप मृदा – जहाँ तक नदियों के बाढ़ का पानी पहुँच पाता है, वहाँ तक नूतन कांप मिट्टी पायी जाती है। इसे नूतन कांप इसलिए कहते हैं क्योंकि प्रतिवर्ष नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी की नई परत जमा होती रहती है। नूतन जलोढ़ वाले क्षेत्र को खादर कहते हैं। खादर क्षेत्र की मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है। इसमें सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(स) नूतनतम कांप मृदा – यह मिट्टी गंगा, ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश में पायी जाती है। इसमें चूना, मैग्निशियम, पोटाश, फॉस्फोरस तथा जीवांश की अधिकता होती है, जिससे कृषि के लिए यह मिट्टी बहुत उपयोगी होती है। यह मिट्टी तटीय मैदानों में भी मिलती है।

इस मिट्टी के क्षेत्र सामान्यतः समतल होते हैं जिन पर नहरें निकलना, कुएँ खोदना तथा खेती करना सुगम होता है। इसमें नमी अधिक समय तक रहती है। यह बारीक कण वाली भूर–भूरी मिट्टी होती है, जिसमें फसलों का उगना तथा पौधों द्वारा सरलता से खुराक प्राप्त करना संभव होता है। इनमें वानस्पतिक अंश (ह्यूमस) अधिक मिलता है क्योंकि नदियों के जल से अनेक वस्तुएं सड़ कर मिट्टी में मिल जाती है। प्रतिवर्ष मिट्टी की नई परत बिछ जाने के कारण इस मिट्टी का प्राकृतिक रूप से नवीनीकरण होता रहता है। अतः खाद देने की आवश्यकता नहीं होती है। ये स्थानान्तरित मिट्टियाँ होने के कारण उपजाऊ होती है।

2. काली या लावा मृदा

यह मिट्टी दक्षिणी भारत के लावा प्रदेश में (महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग, आन्ध्र प्रदेश के पश्चिमी भाग व कर्नाटक के उत्तरी भाग, गुजरात व दक्षिण–पूर्वी राजस्थान) में पायी जाती है। भारत में लगभग 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में इसका विस्तार है। इस मिट्टी की विशेषता यह है कि इसमें आर्द्रता बनाये रखने की अपूर्व क्षमता होती है। उन स्थानों की मिट्टियां ह्यूमस व जीवांशों की अधिकता के कारण उपजाऊ हैं और लावा निर्मित होने के कारण इसमें लोहा और एल्यूमीनियम खनिजों का अंश अधिक है। पोटाश और चूने का अंश अधिक होता है किन्तु फॉस्फोरस की मात्रा कम होती है। इसकी उर्वरा शक्ति अधिक है और कपास की कृषि के लिये बहुत उपयुक्त है। इसलिये इसे कपास की काली मिट्टी की संज्ञा दी जाती है। इस मिट्टी को रेगर भी कहते है। इसमें सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है और खाद का भी उपयोग कम ही करना पड़ता है। सूखने पर यह मिट्टी कड़ी हो जाती है और इसमें दरारें पड़ जाती है। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों में इसकी परतें 7 मीटर तक गहरी मिलती है। इसमें अब मूंगफली व गन्ने की भी खेती की जाने लगी है और सिंचाई की सुविधा के परिणामस्वरूप उपज में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

3. लाल मृदा –

इस मिट्टी की विशेषता यह है कि यह छिद्रदार होती है। इसमें आर्द्रता बनाये रखने की क्षमता नहीं होती है। इसलिये इसमें सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। यह उपजाऊ नहीं

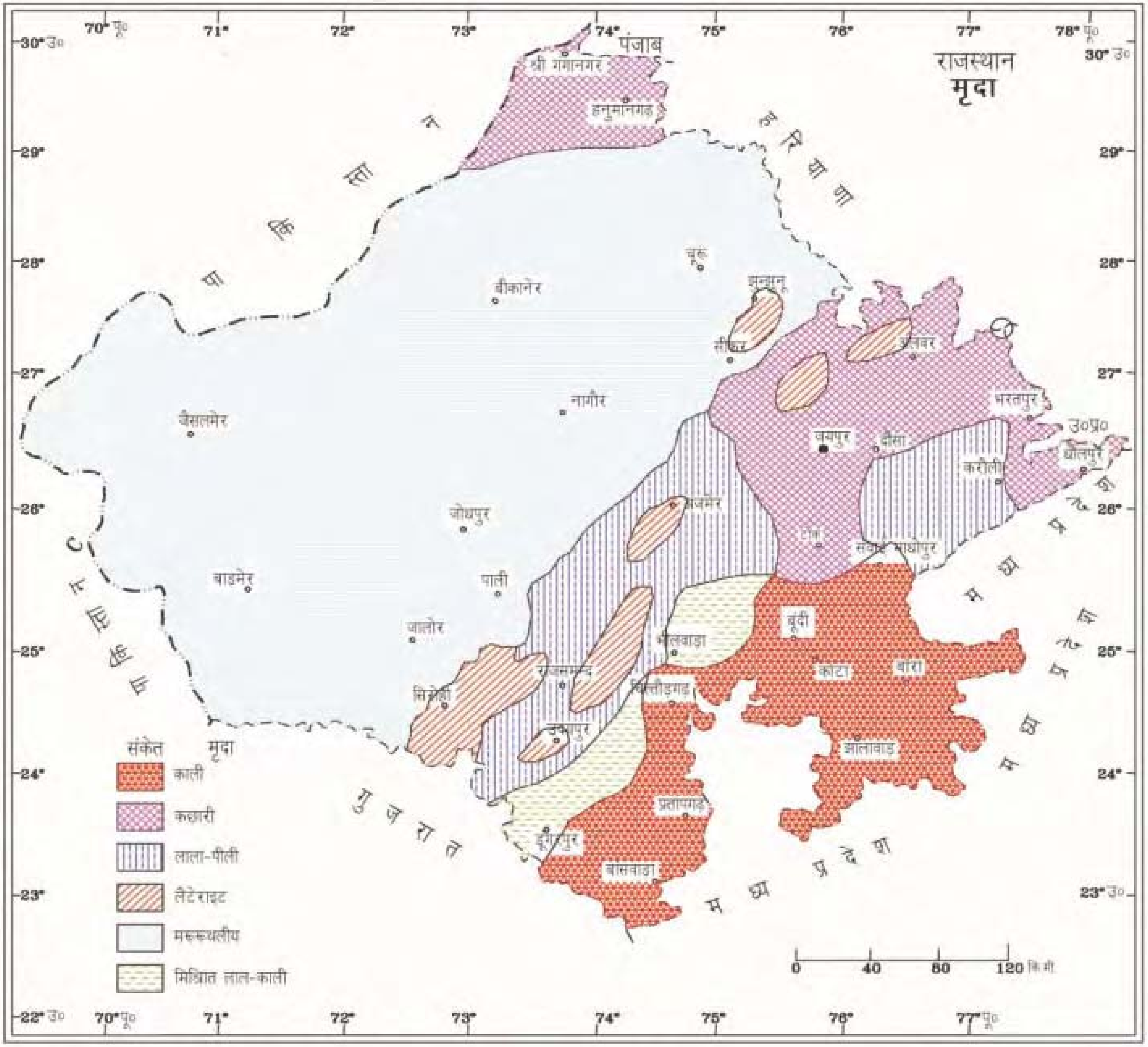

होती है। खाद के उपयोग से इसकी उत्पादकता बढ़ाई जाती है। इसका रंग भूरा और लाल होता है, क्योंकि इसमें लोहे का अंश अधिक रहता है। इसमें कंकड़ भी पाये जाते है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा जीवांश की कमी रहती है। चूने का अंश भी कम रहता है। इसकी परत पतली होती है। केवल नदी–घाटियों में इसकी गहराई अधिक मिलती है। इस मिट्टी में बार–बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। यह मिट्टी छत्तीसगढ़, छोटा नागपुर, उड़ीसा, आन्ध्र–प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में मुख्य रूप से मिलती है।

4. लैटेराइट मृदा –

यह पकी ईंट जैसी लाल रंग की मिट्टी होती है, जिसमें कंकड़ों की प्रधानता रहती है। यह पुरानी चट्टानों के विखण्डन से बनी होती है। इसमें लोहा और एल्यूमीनियम की मात्रा अधिक रहती है, किन्तु चूना, फॉस्फोरस, नाइट्रोजन, पोटाश और जीवांश की कमी रहती है। यह उन भागों में मिलती है, जहाँ अधिक वर्षा होती है, साथ ही तापमान भी अधिक रहता है। अधिक वर्षा के कारण सिलिका, रसायनिक लवण तथा बारीक उपजाऊ कण बह जाते हैं। इस मिट्टी के क्षेत्र ऊसर हैं। सूखने पर यह मिट्टी

पत्थर की तरह कड़ी हो जाती है। यह मिट्टी मुख्य रूप से पश्चिमी घाट क्षेत्र में मिलती है। पूर्वी घाट के किनारे से राजमहल पहाड़ी और पश्चिमी बंगाल होते हुए असम तक इसकी संकड़ी पट्टी पाई जाती है। इस पर चाय की खेती खूब होती है। इस मिट्टी में कहीं–कहीं वृक्ष भी उगते हैं जिनसे इमारती लकड़ी प्राप्त की जाती है।

5. बलुई मृदा –

यह मिट्टी पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र व कच्छ की मरूभूमि में मिलती है। इसमें क्षारीय तत्वों की अधिकता होती है, किन्तु नाइट्रोजन, ह्यूमस आदि तत्वों की कमी रहती है। शुष्क व रंध्रमय होने के कारण पवनों के द्वारा स्थानान्तरित होती रहती है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो जाने पर यह मिट्टी काफी उत्पादक सिद्ध होती है। हनुमानगढ़, गंगानगर व बीकानेर में कृषि की समृद्धि इसकी पुष्टि करती है। इसी से प्रेरणा लेकर इन्दिरा गांधी नहर योजना पर तेजी से कार्य चल रहा है। यह नहर जैसलमेर के निकट मोहनगढ़ से आगे तक पहुंच गई है। इसके पूर्ण हो जाने पर थार का मरूस्थल लहलहाने लगेगा।

6. पर्वतीय मृदा –

यह मिट्टी हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में मिलती है। अपरिपक्व होने के कारण यह मिट्टी मोटे कणों वाली व कंकड़–पत्थर युक्त होती है। अतः इसे अपरिपक्व मिट्टी कहा जाता है। इसकी ह्यूमस व चूने के तत्व कम होते हैं। यह मिट्टी अम्लीय होती है। कुछ स्थानों पर इसकी परत मोटी है। उन स्थानों पर चाय व आलू की कृषि की जाती है। बारीक कणों वाली मिट्टी में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर चावल की कृषि की जाती है। कहीं–कहीं उपजाऊ मिट्टी वाले ढालों पर चरागाह पाये जाते है।

राजस्थान की मृदा

प्रकृति प्रदत्त उपहारों में मिट्टी का स्थान सर्वोपरी है। यह कृषक की अमूल्य सम्पदा है। इस पर सम्पूर्ण कृषि उत्पादन निर्भर करता है। राजस्थान एक कृषि प्रधान राज्य है तथा यहां के लोगों का कृषि के साथ–साथ पूरक व्यवसाय पशुपालन है, अतः मिट्टियों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

प्राकृतिक पर्यावरण में विद्यमान विविधता मिट्टी के विविध प्रकारों को जन्म देती है। मिट्टी के निर्माण पर उच्चावच, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, समय आदि कारकों का प्रभाव पड़ता है। पैतृक पदार्थ, जल, वायु व ह्यूमस मिट्टी के चार मुख्य घटक है जो इसमें पाये जाते हैं। मिट्टी ठोस, द्रव व गैसीय पदार्थों का मिश्रण हैं जो चट्टानों के अपक्षय, जलवायु, पौधों व अनन्त जीवाणुओं के बीच होने वाली अंतः क्रिया का परिणाम है।

मृदा के प्रकार

राजस्थान की मिट्टियों को रंग, गठन व उपजाऊपन के आधार पर छः वर्गों में बांटा गया हैः–

1. मरूस्थलीय मिट्टी – यह मिट्टी पश्चिमी राजस्थान में पाई जाती है। जालोर, बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, चूरू, झुंझुनू, नागौर आदि जिलों के अधिकांश क्षेत्रों में यह मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी कम उपजाऊ होती है। अधिक तापान्तर व भौतिक अपक्षय इस मिट्टी के प्रमुख निर्माणक तत्व है। इसका निर्माण प्रधानतः भौतिक अपक्षय द्वारा होता है। यह मृदा पवनों के द्वारा स्थानान्तरित होती रहती है। इसमें उपजाऊ तत्वों की मात्रा कम व लवणता अधिक पाई जाती है। इसमें जल धारण क्षमता कम पाई जाती है।

2. लाल–पीली मिट्टी – इस प्रकार की मृदा सवाईमाधोपुर, सिरोही, राजसमन्द, उदयपुर व भीलवाड़ा जिलों के पश्चिमी भागों में पाई जाती है। इस मिट्टी में उपजाऊ तत्वों की कमी होती है। यह मिट्टी ग्रेनाईट, शिस्ट व नीस चट्टानों के विखण्डन से निर्मित है। इसमें चूना व नाइट्रोजन की कमी पाई जाती है। लौह अंश के कारण इस मिट्टी का रंग लाल व पीला होता है। यह मिट्टी मूंगफली व कपास की कृषि के लिए उपयुक्त है।

3. लैटेराइट मिट्टी – यह डूंगरपुर, उदयपुर के मध्य व दक्षिणी भागों एवं दक्षिणी राजसमन्द जिले में मिलती है। यह प्राचीन स्फट्कीय व कायान्तरित चट्टानों से निर्मित है। इसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, ह्यूमस आदि की कमी पाई जाती है। लौह तत्व की उपस्थिति के कारण इस मिट्टी का रंग लाल दिखाई देता है। इस मिट्टी में मक्का, चावल व गन्ने की खेती की जाती है।

4. मिश्रित लाल व काली मिट्टी – यह मिट्टी बांसवाड़ा, पूर्वी उदयपुर, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ व भीलवाड़ा जिलों में मिलती है। इसमें चूना, नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की कमी पाई जाती है पर

पोटाश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इस मिट्टी में चीका की अधिकता पाई जाती है। यह उपजाऊ मिट्टी है, इसमें कपास, गन्ना, मक्का आदि की खेती की जाती है।

5. काली मिट्टी – यह मिट्टी राज्य के दक्षिणी–पूर्वी जिलों कोटा, बूंदी, बारां व झालावाड़ में मिलती है। यह चीका प्रधान दोमट मिट्टी है। इस मिट्टी में कैल्शियम व पोटाश पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है पर नाइट्रोजन की कमी मिलती है। यह उपजाऊ मिट्टी है जिसमें व्यापारिक फसलों, गन्ना, धनिया, चावल व सोयाबीन की अच्छी पैदावार होती है।

6. कछारी मिट्टी – यह राज्य के उत्तरी व पूर्वी जिलों गंगानगर, हनुमानगढ़, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, सवाई माधोपुर, दौसा, जयपुर व टोंक में मिलती है। यह हल्के भूरे लाल रंग की होती है। यह गठन में रेतीली दोमट प्रकार की होती है। यह मिट्टी उपजाऊ होती है। इसमें चूना, फॉस्फोरस, पोटाश व लौह अंश पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं पर नाइट्रोजन की कमी पाई जाती है। यह मिट्टी गेहूँ, सरसों, कपास व तम्बाकू के लिए बहुत उपयोगी है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में प्राकृतिक वनस्पति के तीन मुख्य भाग हैं – वन, घास, झाड़ियां।
2. भारत के वनों को सदाबहार वन, मानसून वन, शुष्क कंटीले वन, मरूस्थलीय वन, ज्वारीय व पर्वतीय वनों में बांटा जाता है।
3. किसी प्रदेश में पाये जाने वाले जंगली जीव–जंतुओं व वनस्पतियों की विभिन्नता की बहुलता को जैव विविधता कहते हैं।
4. चट्टानों के विखण्डन व विघटन तथा जीवावशेषों के सड़े–गले अंश से मृदा का निर्माण होता है।
5. काली मृदा (रेगर मृदा) कपास, मूंगफली, गन्ने आदि की कृषि के लिए उपयोगी है।
6. केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान विश्व विरासत सूची में शामिल है।
7. राजस्थान का राज्य पशु चिंकारा व राज्य पक्षी गोडावन है।
8. खेजड़ी को राजस्थान का कल्प वृक्ष कहा जाता है

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश के भौगोलिक क्षेत्रफल के कितने प्रतिशत भाग पर वन आवश्यक हैं–

   (अ) 22 प्रतिशत (ब) 33 प्रतिशत

   (स) 10 प्रतिशत (द) 20 प्रतिशत

2.सदाबहार वन कितने वर्षा वाले भागों में पाये जाते हैं–

   (अ) 100 सेन्टीमीटर (ब) 50 सेन्टीमीटर

   (स) 200 सेन्टीमीटर (द) 100 से 150 सेन्टीमीटर

3. भारतीय वन अनुसंधान संस्थान स्थित है –

   (अ) जयपुर (ब) मसूरी

   (स) नागपुर (द) देहरादून

4. खेजड़ली आंदोलन का नेतृत्व किसने किया था –

   (अ) अमृता देवी (ब) रामो जी

   (स) खेजड़ी देवी (द) सभी गलत

5. भारत में कपास की कृषि के लिये सर्वाधिक उपयुक्त हैं–

   (अ) पर्वतीय (ब) काली

   (स) लाल (स) लैटेराइट

6. भारत में काली मिट्टी है –

   (अ) विस्थापित (ब) दलदली

   (स) लावा जन्य (स) विक्षालन जन्य

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ज्वारीय वन पाये जाने वाले दो क्षेत्रों के नाम लिखिये।
2. भारत के संविधान अनुसार वनों की कितनी श्रेणियाँ बताई गई है ?
3. राजस्थान में सदाबहार वन कहाँ पर मिलते हैं ?
4. जैव विविधता किसे कहते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जैव विविधता विनाश के कारणों को बताइये।
2. वन्य जीवों के संरक्षण के उपाय लिखिये।
3. पर्यावरण चेतना के बारे में लिखी बातों को बताइये।
4. राजस्थान के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों व अभयारण्यों के बारे में लिखिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में वनों के प्रकार व संरक्षण का वर्णन कीजिये।
2. राजस्थान के वनों के प्रकार व वन्य जीवों का वर्णन कीजिये।
3. राजस्थान की मिट्टियों का संक्षेप में वर्णन किजिए।

आंकिक

1. भारत के मानचित्र में सदाबहार व ज्वारीय वनों के क्षेत्र दर्शाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ब) 2. (स) 3. (द) 4. (अ) 5. (ब) 6. (स)

अध्याय 16

अर्थशास्त्र एवं अर्थव्यवस्था

1. अर्थशास्त्र का अर्थ

मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित होती है परन्तु इन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने हेतु उपलब्ध साधन सीमित होते है। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु मनुष्य को विभिन्न प्रकार की आर्थिक एवं अनार्थिक क्रियाएं करनी पड़ती है। व्यक्ति एवं समाज के आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में **मनुष्य द्वारा सम्पन्न की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन ही अर्थशास्त्र है।**

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में जन्म से मृत्यु तक तथा अपनी दैनिक दिनचर्या में प्रातःकाल जागने से लेकर रात्रि को सोने तक विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पादित करता है। इन सभी मानवीय क्रियाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

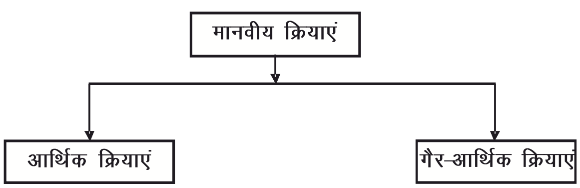

(क) आर्थिक क्रियाएं

मनुष्य द्वारा सम्पादित वह क्रियाएं जिनका मुद्रा के रूप में मापन संभव है आर्थिक क्रिया कहलाती है। किसान द्वारा खेती करना, श्रमिक द्वारा उद्योगों में सेवा देना, अध्यापक द्वारा कक्षा में पढ़ाना, कर्मचारी द्वारा कार्यालय में कार्य करना आदि सभी क्रियाएं आर्थिक है, जिन्हें जीविकोपार्जन के उद्देश्य से सम्पादित किया जाता है।

अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री के अनुरूप प्रमुख आर्थिक क्रियाओं को निम्न भागों में बांटा जा सकता है:–

(I) उत्पादन

कच्चे माल का निर्मित माल में रूपान्तरण जिससे आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके, उत्पादन कहलाता है। दूसरे शब्दों में उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन है। लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करने वाला उत्पादक कहलाता है। उदाहरण के लिए किसान द्वारा खेती करना। इस उदाहरण में किसान एक उत्पादक है एवं खेती का कार्य उत्पादन है।

(ii) उपभोग

आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष सन्तुष्टि हेतु वस्तुओं व सेवाओं का प्रयोग करना उपभोग कहलाता है। आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग करने वाला उपभोक्ता कहलाता है। उदाहरण के लिए सचिन द्वारा खेलने हेतु बाजार से खरीदी गई फुटबाल। इस उदाहरण में सचिन एक उपभोक्ता है एवं फुटबाल का क्रय उपभोग है।

(iii) विनिमय

विनिमय का अर्थ है व्यक्ति द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए स्वयं द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं को दूसरे व्यक्तियों को देकर बदले में दूसरों के द्वारा उत्पादित वस्तुएं व सेवाएं प्राप्त करना विनिमय कहलाता है। अन्य शब्दों में उपभोक्ताओं व उत्पादकों द्वारा बाजार में वस्तुओं व सेवाओं का किया गया क्रय–विक्रय विनिमय कहलाता है। उदाहरण के लिये कर्मचारी द्वारा कम्पनी में सेवा देना तथा सेवा के बदले कम्पनी से वेतन प्राप्त करना। इसी प्रकार किसी उपभोक्ता द्वारा बाजार से गेहूं खरीदना व बदले में उसकी कीमत का भुगतान करना आदि विनिमय है।

(iv) वितरण

वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के लिए उत्पादक को उत्पादन के विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है। उत्पत्ति के साधन पांच प्रकार के है– भूमि, पूंजी, श्रम, प्रबन्ध एवं साहस। उत्पत्ति के सभी साधनों के संयुक्त व सम्मिलित प्रयास से ही वस्तुओं का उत्पादन होता है। उत्पादन का उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में विभाजन ही वितरण कहलाता है। अन्य शब्दों में उत्पादन के विनिमय से प्राप्त आय का उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में विभाजन वितरण कहलाता है।

(ख) गैर–आर्थिक क्रियाएं

स्नेह, प्रेम, सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्य, शारीरिक आवश्यकता, देश प्रेम आदि भावनाओं से प्रेरित होकर सम्पादित

किया जाने वाला कार्य, लोगों द्वारा मन्दिर में की जाने वाली प्रार्थना आदि, की जाने वाली क्रियाएं गैर–आर्थिक क्रियाएं कहलाती है। इस प्रकार की गतिविधियों का मौद्रिक मूल्यांकन सम्भव नहीं होता है। उदाहरण के लिए बच्चों द्वारा खेल खेलना, गृहणी द्वारा स्वयं के परिवार के लिए किया जाने वाला कार्य, लोगों द्वारा मन्दिर में की जाने वाली प्रार्थना व्यक्ति द्वारा सामाजिक कार्य में योगदान आदि।

2.उत्पत्ति के साधन

उत्पादन एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है। किसी भी वस्तु के उत्पादन को अनेक चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। उत्पादन प्रक्रिया के सम्पादन हेतु विभिन्न उत्पादन साधनों की आवश्यकता होती है। किसी भी वस्तु की उत्पादित मात्रा उसके उत्पादन में प्रयोग किए गए साधनों की मात्रा पर निर्भर करती है। हम इन उत्पादकीय साधनों को निम्न भागों में बांट सकते हैः–

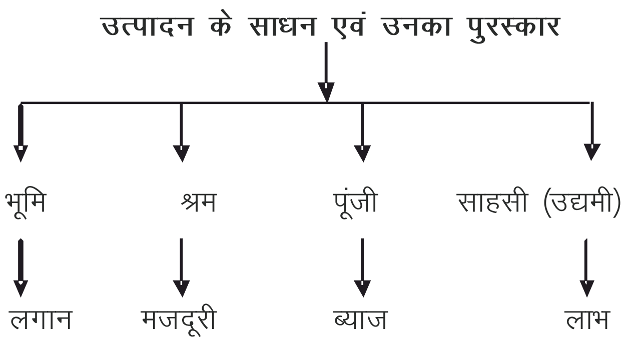

(क) भूमि

प्राचीन दृष्टिकोण के अनुसार भूमि, प्रकृति का निःशुल्क उपहार है। अर्थशास्त्र में 'भूमि' शब्द का अर्थ मात्र मिट्टी या धरातल ही नहीं है। भूमि में भूमि के अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधन, जलवायु, वनस्पति, पर्वत, जल, खानें आदि सभी सम्मिलित है। उपलब्धता की दृष्टि से भूमि की आपूर्ति स्थिर है। भूमि उत्पादन का एक अचल घटक है क्योंकि भूमि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है। भूमि अपनी उत्पादकीय शक्ति (उर्वरा–शक्ति) व उपयोग के आधार पर अलग–अलग श्रेणी की होती है। उत्पादन प्रक्रिया में भूमि के प्रयोग के बदले भूस्वामी को दिया जाने वाला प्रतिफल लगान कहलाता है।

(ख) श्रम

वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन हेतु मनुष्य द्वारा किया गया शारीरिक व मानसिक प्रयास श्रम कहलाता है। प्रेम, सद्भावना एवं मनोरंजन के उद्देश्य से किया गया प्रयास या परिश्रम अर्थशास्त्र में श्रम नहीं माना जाएगा। केवल उस परिश्रम को ही श्रम माना जाएगा जो उत्पत्ति करने के उद्देश्य से किया जाए एवं जिससे किसी आर्थिक प्रतिफल की आशा हो। उदाहरण के लिए गृहिणी की सेवाएं श्रम नहीं मानी जाएगी जबकि नौकर की सेवाएं श्रम है। श्रम उत्पत्ति का एक साधन है जो प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य से जुड़ा है जबकि अन्य साधन प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य से सम्बन्धित नहीं होते है। श्रम उत्पत्ति का एक गतिशील साधन है। सभी श्रम उत्पादक नहीं होते है। अर्थात् यह आवश्यक नहीं है कि श्रम के द्वारा उत्पत्ति हो क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया में कई बार प्रयास करने पर भी इच्छित परिणामों की प्राप्ति नहीं होती है। उत्पादन प्रक्रिया में श्रमिक को श्रम के बदले प्राप्त होने वाला प्रतिफल मजदूरी कहलाता है।

(ग) पूंजी

समस्त वस्तुएं एवं मानवीय योग्यताएं जो कि वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में उपयोगी होती है एवं जिससे मूल्य की प्राप्ति होती है, सम्पत्ति कहलाती है। सम्पत्ति का कुछ भाग व्यर्थ पड़ा रहता है तथा कुछ भाग आगे और सम्पत्ति के उत्पादन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पूंजी मनुष्य की सम्पत्ति का वह भाग है जो और आगे उत्पत्ति करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पूंजी उत्पादन का ही एक उत्पादित घटक है जिसे प्राकृतिक साधनों के साथ उपयोग करके मनुष्य द्वारा अर्जित किया जाता है। पूंजी को उत्पादन का मानवीय उपकरण भी कहा जा सकता है। मशीन, उपकरण, कारखाने, यातायात आदि पूंजी के उदाहरण है।

(घ) साहसी अथवा उद्यमी

उत्पादन प्रक्रिया में भूमि, पूंजी व श्रम का गतिशीलन करने वाला साहसी अथवा उद्यमी कहलाता है। साहसी उत्पत्ति के सभी साधनों का उचित अनुपात निर्धारित कर उत्पादन करता है। उद्यमी जोखिमों को सहन कर उत्पादन करता है, अतः इसे साहसी भी कहा जाता है। बिना जोखिम उठाये उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। अतः साहसी का काम उत्पादन कार्य प्रारम्भ करना व उसकी जोखिमों को सहन करना माना गया है। साहसी को प्रबन्धक, संगठनकर्ता भी कहा जाता है। साहसी का पुरस्कार उत्पादन का वह भाग होता है जो उत्पत्ति के सभी साधनों को भुगतान करने के पश्चात् शेष बचता है। इसे लाभ कहते है, परन्तु लाभ निश्चित नहीं होता। उत्पादन प्रक्रिया में साहसी लाभ भी कमा सकता है और उसे हानि का सामना भी करना पड़ सकता है।

3.अर्थव्यवस्था

प्रत्येक देश में व्यक्ति अपनी जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न प्रकार के आर्थिक क्रियाकलापों में संलग्न है। किसान हो या श्रमिक, उद्योगपति हो या दुकानदार, अध्यापक हो या डॉक्टर, सभी अपनी अपनी आजीविका कमाने हेतु कार्य कर रहे हैं। विभिन्न आर्थिक वर्गों द्वारा सम्पादित इन विभिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यों के सम्पादन हेतु किसी सुव्यवस्थित व्यवस्था, संगठन अथवा प्रणाली की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली या व्यवस्था को ही अर्थव्यवस्था कहा जाता है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि एक ऐसी प्रणाली अथवा व्यवस्था जिसके द्वारा लोग अपना जीविकोपार्जन करते है, अर्थव्यवस्था कहलाती है।

अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढांचा है जिसमें विभिन्न वस्तुओं के उत्पादकों के बीच आपसी तालमेल व परस्पर सहयोग का जन्म होता है। अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण आदि आर्थिक क्रियाएं निरन्तर चलती रहती है। सामान्यतः यह कहा भी जा सकता है कि एक ऐसी व्यवस्था जिसके तहत किसी निश्चित क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है, अर्थव्यवस्था कहलाती है। उदाहरण के लिए शक्कर का उत्पादन शक्कर मिल द्वारा किया जाता है। शक्कर के उत्पादन के लिए उत्पादक गन्ना किसान से, मशीनें व उपकरण उद्योगों से तथा बिजली ऊर्जा संयन्त्रों से प्राप्त करता है। उत्पादित शक्कर को देश के विभिन्न भागों में एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने ले जाने के लिए परिवहन के साधनों (रेल, ट्रक, जहाज आदि) की आवश्यकता पड़ती है। शक्कर उत्पादन हेतु विभिन्न उत्पादकों के मध्य परस्पर सहयोग व तालमेल का यह ढांचा ही अर्थव्यवस्था है।

आपके गॉव अथवा कस्बे की अर्थव्यवस्था

सम्पूर्ण गॉव अथवा कस्बे के निवासियों के आर्थिक क्रियाकलापों का अध्ययन।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था

राजस्थान राज्य के निवासियों के आर्थिक क्रियाकलापों का अध्ययन।

भारत की अर्थव्यवस्था

सम्पूर्ण देश के निवासियों के आर्थिक क्रियाकलापों का अध्ययन।

4. अर्थ व्यवस्था के प्रकार

किसी भी देश में उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण आदि आर्थिक क्रियाओं का संचालन, अर्थव्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर करता है। देश में आर्थिक क्रियाओं के संचालन में राज्य का हस्तक्षेप कितना होगा ? उत्पत्ति के साधनों पर स्वामित्व का आधार क्या होगा? आर्थिक क्रियाओं के संचालन का उद्देश्य क्या होगा? आदि आधारों पर विश्व की विभिन्न अर्थ व्यवस्थाओं को हम निम्न तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैंः–

(क) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था

(ख) समाजवादी अर्थव्यवस्था

(ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था

(क) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था

अर्थ : पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था से अभिप्रायः एक ऐसी आर्थिक प्रणाली से है जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व व नियंत्रण होता है तथा आर्थिक क्रियाओं का संचालन निजी हित एवं लाभ प्रेरणा के उद्देश्य से किया जाता है। सरकार आर्थिक कामकाज के प्रबन्ध में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को 'स्वतंत्र बाजार अर्थ व्यवस्था', 'बाजार अर्थव्यवस्था' एवं 'मुक्त अर्थव्यवस्था' भी कहा जाता है। विश्व में इस आर्थिक प्रणाली का उदय सन् 1760 से 1820 के मध्य औद्योगिक क्रान्ति के समय हुआ। आज विश्व के किसी भी देश में पूंजीवाद अपने विशुद्ध रूप में नहीं है, परन्तु आर्थिक गतिविधिओं के संचालन व नियन्त्रण के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, कनाडा, इटली, जापान, फ्रांस, आस्ट्रेलिया आदि देशों के अर्थतन्त्र पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था कहलाते है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताएं :

इस अर्थ व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैः

I. निजी सम्पत्ति का अधिकार :

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के घटक जैसे भूमि, खानें, कारखाने, मशीनें आदि सभी पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व होता है। इन साधनों के स्वामी अपनी इच्छानुसार इनका प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। व्यक्तियों को सम्पत्ति रखने, उसे बढ़ाने व उसे प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

ii. उपभोक्ताओं को चयन की स्वतंत्रता :

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता प्रभुसत्ता सम्पन्न होते है अर्थात् उपभोक्ता के खर्च व उसकी इच्छा के अनुरूप ही उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इसे ही उपभोक्ता की संप्रभुता कहा जाता है। इस आर्थिक प्रणाली में उपभोक्ता अपनी आय को इच्छानुसार व्यय करने के लिए स्वतंत्र होता है। उपभोक्ता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होने के कारण इस आर्थिक प्रणाली में उपभोक्ता को 'बाजार का राजा' कहा जाता है।

iii. उद्यम की स्वतंत्रता

प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी आर्थिक गतिविधि का संचालन कर सकता है। उत्पादन करने की, तकनीक के चयन करने की, उद्योग स्थापित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होने के कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था "स्वतंत्र उद्यम वाली अर्थव्यवस्था" भी कहलाती है।

iv. प्रतिस्पर्द्धा

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में विक्रेताओं के बीच अपने–अपने उत्पाद अथवा वस्तुओं को बेचने के लिए तथा क्रेताओं के बीच अपनी–अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वस्तुओं को खरीदने के लिए प्रतियोगिता चलती रहती है। जिससे बाजार में कुशलता बढ़ती है। विज्ञापन देना, उपहार देना, मूल्य में कमी कर देना आदि तरीके प्रतिस्पर्द्धा हेतु अपनाएं जाते हैं।

v.निजी हित एवं लाभ का उद्देश्य

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किसी भी कार्य को करने का निर्णय अथवा किसी वस्तु के उत्पादन का निर्णय मुख्य रूप से लाभ भावना के आधार पर ही लिया जाता है अर्थात् काम करने में क्या व कितना लाभ प्राप्त होगा? इसी प्रकार उपभोक्ता भी वस्तुओं का उपभोग निजी हित के लिए ही करते हैं।

vi.वर्ग संघर्ष

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है। एक ओर साधन सम्पन्न वर्ग होता है जो पूंजीपति कहलाता है तथा दूसरी ओर साधन विहीन वर्ग होता है जो श्रमिक कहलाता हैं। पूंजीपतियों में लाभ बढ़ाने का उद्देश्य व श्रमिकों में शोषण से बचने का उद्देश्य वर्ग–संघर्ष को जन्म देते हैं।

vii.आय की असमानता

सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में गरीब व अमीर के बीच विषमता की खाई बढ़ती जाती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विश्लेषण इस प्रकार से कर सकते है:–

(क) गुण

i. उत्पादन क्षमता व कुशलता का बढ़ना
ii उपभोक्ताओं को अधिक सन्तुष्टि
iii साधनों का अनुकूलतम उपयोग
iv तकनीकी विकास
v रहन–सहन का स्तर ऊँचा होना
vi आर्थिक स्वतंत्रता
vii शोध, अनुसंधान का विकास

(ख) दोष

i आय व सम्पत्ति की विषमताएं
ii क्षेत्रीय असमानताएं
iii आर्थिक अस्थिरता
iv एकाधिकारों का सृजन
v उत्पादकीय संसाधनों का दुरूपयोग
vi अमर्यादित उपभोग
vii नैतिक मूल्यों में गिरावट

(ख) समाजवादी अर्थव्यवस्था

अर्थ : समाजवादी अर्थव्यवस्था से अभिप्राय: एक ऐसी आर्थिक प्रणाली से है जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों पर सरकार द्वारा अभिव्यक्त सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व होता है तथा आर्थिक क्रियाओं का संचालन एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा सामूहिक हित एवं कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था को 'समान अर्थव्यवस्था' अथवा 'केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था' भी कहा जाता है।

कार्ल मार्क्स द्वारा विकसित समाजवादी विचारधारा से प्रभावित होकर सन् 1917 में रूस में क्रान्ति हुई एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ हुआ।

रूस के बाद चेकोस्लावाकिया, बुल्गारिया, चीन, यूगोस्लोविया, वियतनाम आदि देशों ने इस आर्थिक प्रणाली को अपनाया, परन्तु वर्तमान में चीन, उत्तरी कोरिया आदि को छोड़कर शेष देशों ने इस प्रणाली को छोड़ दिया है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताएं :

समाजवादी अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण या विशेषताएं निम्नलिखित हैः–

i. साधनों पर सामूहिक स्वामित्व

इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन के भौतिक साधन अर्थात् भूमि, वन, कारखानों, पूंजी, खानों आदि पर सरकार या समाज का स्वामित्व व नियंत्रण होता है। इसके परिणामस्वरूप लाभ का उद्देश्य या निजी हित के लिए आर्थिक गतिविधियों का संचालन नहीं होता।

ii. उपभोक्ता चयन का अन्त

इस अर्थव्यवस्था में वस्तुओं में उपयोग हेतु उपभोक्ता के चयन की प्रभुसत्ता उन्हीं वस्तुओं तक रहती है जिन्हें सरकार के निर्देशानुसार उत्पादित किया गया है। सरकार द्वारा निर्धारित मात्रा में ही उपभोक्ता द्वारा उपभोग किया जाएगा।

iii. केन्द्रीय नियोजन अथवा आर्थिक नियोजन

समाजवादी अर्थव्यवस्था में सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों में निर्धारण व प्राप्ति हेतु एक केन्द्रीय सत्ता होती है। महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय जैसे क्या उत्पादन करना है? उत्पादन कैसे करना है। आदि निर्णय केन्द्रीय सत्ता द्वारा ही लिए जाते है।

iv. सामाजिक लाभ का उद्देश्य

समाजवादी अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता द्वारा सभी प्रकार के आर्थिक निर्णय अधिकतम सामाजिक व सामूहिक लाभ के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही लिए जाते है न कि निजी लाभ के उद्देश्य से।

v. आर्थिक समानता

समाजवादी अर्थव्यवस्था समान कार्य के लिए समान मजदूरी के सिद्धान्त पर कार्य करती है। अतः इस आर्थिक प्रणाली में वर्ग संघर्ष की समाप्ति हो जाती है। साथ ही निजी पूँजी स्थापित करने हेतु अवसरों की कमी के कारण आय की असमानता भी कम हो जाती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था का विश्लेषण

गुण

i. धन व आय का समान वितरण
ii. अवसरों की समानता
iii. नियोजित अर्थव्यवस्था
iv. वर्ग–संघर्ष का अन्त
v. आर्थिक उतार–चढ़ाव की समाप्ति (आर्थिक स्थिरता)
vi. काम का अधिकार
vii. लोगों को न्यूनतम जीवन स्तर का आश्वासन

दोष

i. नौकरशाही व लालफीताशाही
ii. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रतिबन्धित
iii. उत्पादन में कमी
iv. आर्थिक प्रेरणा का अभाव
v. उपभोक्ता की स्वतंत्रता में कमी
vi. अधिकारों का हनन (निजी सम्पत्ति का अधिकार)

(ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था

अर्थ : यह आर्थिक प्रणाली पूंजीवाद व समाजवाद दोनों के आदर्श लक्षणों का देश की आवश्यकतानुसार समावेश करने का एक प्रयास है। दूसरे शब्दों में यह प्रणाली पूंजीवाद व समाजवाद के बीच का रास्ता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सह–अस्तित्व होता है। यह निजी उपक्रम तथा निजी लाभों का समर्थन करती है परन्तु साथ ही साथ सम्पूर्ण समाज के हितों की रक्षा के लिए सरकार के अस्तित्व को भी महत्वपूर्ण मानती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में यह प्रयास रहता है कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों संयुक्त रूप से इस प्रकार कार्य करें जिससे देश के सभी वर्गों का आर्थिक कल्याण बढ़े एवं देश में वृद्धि व विकास की संभावनाओं का प्रसार हो। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने इसी प्रणाली को अपनाया है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ :

मिश्रित अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण या विशेषताएं निम्नलिखित हैः–

i. निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह अस्तित्व

मिश्रित अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है निजी तथा सार्वजनिक उपक्रम दोनों का सह अस्तित्व। सामाजिक लाभ के उद्देश्य से महत्वपूर्ण उद्योगों पर सरकार का एकाधिकार होता है जैसे– पेयजल, विद्युतीकरण, उर्जा उत्पादन, आन्तरिक व बाहरी सुरक्षा आदि। इस आर्थिक प्रणाली में भारी व आधारभूत उद्योगों का संचालन व विकास सरकार

द्वारा किया जाता है तथा कुटीर उद्योग, कृषि कार्य आदि निजी क्षेत्र के अधीन होते हैं। इनके अतिरिक्त संयुक्त क्षेत्र की स्थापना भी की जाती है।

ii. प्रशासित मूल्य

मिश्रित अर्थव्यवस्था में वस्तु की कीमत निर्धारण की दोहरी प्रणाली होती हैं। निजी क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं की कीमत बाजार में स्वतंत्र रूप से होती हैं परन्तु सरकार कुछ आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को तय करने का अधिकार अपने पास रखती है जो सामान्य आदमी द्वारा उपयोग की जाती है।

उदाहरण के लिए भारत में पेट्रोल, डीजल, एल.पी.जी.गैस आदि के मूल्य सरकार द्वारा तय किए जाते हैं।

iii. आर्थिक नियोजन

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है जिसमें सरकार पूर्ण नियोजन के साथ सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों का निर्माण करती है। इन्हीं नीतियों के अनुरुप सामाजिक कल्याण के कार्यो को करती है जैसे– नदी घाटी परियोजना का निर्माण कर पेयजल, सिंचाई, पर्यटन, मछली पालन, विद्युत उत्पादन आदि कार्यों का विकास करना तथा सामाजिक लाभ के लिए आम जनता को आपूर्ति करना।

iv. क्षेत्रीय सन्तुलन

सामाजिक महत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर सरकार का नियंत्रण होने के कारण सरकार नियोजन प्रक्रिया को इस प्रकार क्रियान्वित करती है कि सभी क्षेत्रों का समान रुप से विकास हो सके। जैसे– शिक्षा, चिकित्सा, सड़क, परिवहन, पेयजल इत्यादि सुविधाओं का विस्तार एवं विकास।

v. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र में उत्पादन करने, उपभोग करने, विनिमय तथा वितरण करने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता होती है, लेकिन यह स्वतंत्रता सामाजिक हित या कल्याण में वृद्वि करने की दिशा पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सके इसलिए सरकार इस स्वतंत्रता पर आंशिक नियंत्रण रखती है। जैसे– सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान तथा मद्यपान का निषेध होना, बाल विवाह, मृत्यु भोज, भव्य विवाह आयोजन इत्यादि पर रोक।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का विश्लेषण

गुण

i. पूंजीवाद–समाजवाद दोनों के गुणों का समावेश

ii. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का संरक्षण (व्यवसाय व उपभोग की)

iii. वर्ग संघर्ष में कमी

iv. आपसी विषमताओं में कमी

v. आर्थिक उतार–चढ़ावों पर नियन्त्रण

vi. अल्प विकसित देशों का संतुलित विकास

दोष

i. संचालन कठिन (समन्वय का अभाव)

ii. अस्थायी लाभ

iii. आर्थिक विकास की मध्यम गति

iv. औपचारिकता व पक्षपात को बढ़ावा (उत्पादन दक्षता में कमी)

5. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन

आर्थिक विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों के तीव्र विदोहन, वस्तुओं व सेवाओं के अमर्यादित व असंयमित उपभोग, तीव्र औद्योगिकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट, बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हो रहे मानवीय मूल्यों व नैतिकता के ह्रास ने विश्व की पूंजीवादी एवं समाजवादी आर्थिक प्रणालियों को विकास के एक वैकल्पिक मार्ग को खोजने पर विवश कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में भारतीय आर्थिक चिन्तन व परम्परा का अध्ययन विश्व को न केवल आर्थिक प्रणाली का एक नया विकल्प दे रहा है अपितु वर्तमान आर्थिक समस्याओं के समाधान की दिशा में भी मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन उन सभी आर्थिक विचारों का सार है जिन्हें भारत के सभी प्राचीन ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारत के वैभवशाली अतीत की जानकारी इन ग्रंथों से ही प्राप्त होती है जिसके कारण भारत को 'विश्वगुरू' का सम्मान प्राप्त हुआ। प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं का अध्ययन इस प्रकार हैः–

(क) प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन के प्रमुख स्रोत ग्रन्थों में अर्थशास्त्र, आर्थिक क्रियाएं आदि शब्दों का प्रयोग विशुद्ध रूप से न होकर व्यापक रूप में होता था। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि सभी एक–दूसरे से जुड़े थे। प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन के स्रोत ग्रन्थों की संख्या बहुत अधिक हैं एवं उनमें दिए गए विचारों का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है। उनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थों का परिचय निम्नानुसार है।

क्र. सं.	ग्रंथ	संख्या	विवरण
1.	वेद	4	ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
2.	उपनिषद्	108 से 220 (11 उपनिषद् ही प्रमुख)	ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, छान्दोग्य, बृहदारण्यक एवं श्वेताश्वतर
3.	स्मृतियां	100 से अधिक	प्रमुख स्मृतियां – मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, आदि।
4.	पुराण	18	प्रमुख पुराण – भागवत पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण आदि
5.	महाकाव्य	2	रामायण व महाभारत
6.	नीति साहित्य	–	शुक्र नीति, विदुर नीति, कामन्दक नीति, बृहस्पति नीति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि
7.	लौकिक साहित्य एवं अन्य संस्कृत साहित्य	–	कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति, दण्डी, वराहमिहिर आदि के ग्रन्थ

(ख) प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन की आधारभूत मान्यताएं एवं अवधारणाएं:–

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन निम्न मूलभूत मान्यताओं पर आधारित है ।

i. एकात्म मानव

जहाँ पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली व्यक्ति को धन अर्जित कर अधिक से अधिक सम्पत्ति बनाने वाले 'आर्थिक मानव' के रूप में प्रस्तुत करती है, वहीं दूसरी ओर समाजवादी व्यवस्था उसे मशीन की तरह ही काम करने वाला एक उत्पत्ति का साधन मानती है। **प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन इन दोनों अवधारणाओं के विपरीत व्यक्ति को 'एकात्म मानव' के रूप में प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार मानव शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का एकीकृत रूप है।** मनुष्य जीवन का सर्वांगीणं विचार इन चारों तत्वों (शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा) का समग्र विचार है। व्यक्तित्व के इन चारों पक्षों के सन्तुलित विकास हेतु ही प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन चार पुरूषार्थों – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को कर्त्तव्य के रूप में मनुष्य के समक्ष प्रस्तुत करता है। अतः स्पष्ट है कि भारतीय आर्थिक चिन्तन में मनुष्य की भौतिक प्रगति के साथ–साथ उसकी नैतिक व आध्यात्मिक प्रगति पर भी बल दिया गया है जिससे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो सके।

ii. समग्र विवेकशीलता

पूंजीवादी आर्थिक विचारधारा व्यक्ति को आर्थिक विवेकशील मानते हुए इस बात पर बल देती है कि एक व्यक्ति उत्पादक के रूप में उस वस्तु का उत्पादन करें जिसमें उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो। एक उपभोक्ता उन वस्तुओं को उपभोग करें जिसमें उसे अधिकतम सन्तुष्टि की प्राप्ति हो। अतः व्यक्ति स्वार्थ के आधार पर अपने आर्थिक निर्णय ले।

लेकिन प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन समग्र विवेकशीलता के विचार पर बल देता है, जिसके अनुसार हमारी आर्थिक प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जहां आर्थिक निर्णयों में व्यक्तियों को स्वतंत्रता व स्वहित की प्रेरणा तो हो परन्तु साथ ही साथ उस पर सामाजिक, नैतिक, नियत्रंण भी रहे। दूसरे शब्दों में नैतिक मूल्यों व वैधानिक नियमों से व्यक्ति को सार्वजनिक हित की दिशा में भी मोड़ा जा सके।

iii.. संयमित एवं सह–उपभोग की अवधारणा

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में स्वयं द्वारा अर्जित धन से ही उपभोग का उल्लेख किया गया है। उपभोग सम्बन्धी अवधारणाओं को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:–

(क) संयमित उपभोग

वैदिक साहित्य में इस बात का उल्लेख किया गया है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को स्वयं द्वारा अर्जित धन का न्यूनतम एवं संयमित उपभोग करना चाहिए। अथर्ववेद में यह उल्लेख किया गया है कि मनुष्य को उतना ही अर्जन करना चाहिए जिसमें वह अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकें। इससे अधिक सम्पदा को ग्रहण करने वाला दण्ड का पात्र होगा। भारतीय चिन्तन में इस बात का उल्लेख किया गया है कि व्यक्ति को ईमानदारी से धन कमाना चाहिए तथा अपनी आवश्यकता से अधिक धन नहीं कमाना चाहिए। कौटिल्य (चाणक्य) के अनुसार संयमित उपभोग व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए भी ठीक रहता है। प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में यह भी उल्लेख किया गया है कि हमें किन–किन वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए और किनका नहीं। व्यक्ति वस्तुओं व सेवाओं को ईश्वर का प्रसाद मानते हुए इस प्रकार उपभोग करें कि समाज के कल्याण के लिए अपने जीवन को चलाये रख सके। वस्तुओं व सेवाओं पर वह अपना अधिकार न समझे।

(ख) सह–उपभोग

वैदिक साहित्य के अनुसार व्यक्ति को समाज के अन्य लोगों में बांट कर वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए न कि स्वयं अपने आप के लिए। इससे स्पष्ट होता है कि उपभोग समानता व कल्याण पर आधारित होना चाहिए। ऋग्वेद में उल्लेख किया गया है कि भूखे, मित्र, नौकर, अतिथि तथा पशु–पक्षियों को न खिलाकर स्वयं अकेला उपभोग करने वाला व्यक्ति पापी होता

है। जहां पाश्चात्य आर्थिक व्यवस्था अधिकतम उपभोग को अधिकतम सन्तुष्टि का प्रतीक मानती है, वहीं भारतीय आर्थिक चिन्तन में परिश्रमपूर्वक अर्जित धन को उदारता से बांटकर उपभोग करने में अधिकतम सन्तुष्टि की प्राप्ति मानी गयी है। यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसा विचार करने वाले व्यक्ति निम्न कोटि के होते हैं। उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों के लिए तो सम्पूर्ण विश्व ही कुटुम्ब के समान है। भारतीय संस्कृति में सभी का कल्याण हो तथा सभी की सेवा को ही सार्वभौम मानव धर्म माना गया है।

वर्तमान सन्दर्भ में जब धन तथा सम्पत्ति के असमान वितरण से अमीर–गरीब के बीच की खाई बढ़ रही है, प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन की संयमित व सह–उपभोग की अवधारणा समाज में न्यायपूर्ण वितरण द्वारा समानता की स्थापना में सहायक हो सकती है एवं सामाजिक कल्याण में वृद्धि ला सकती है।

iv. आवश्यकताओं के संदर्भ में दृष्टिकोण

हजारों वर्ष पूर्व ही भारतीय चिन्तन में इस बात का उल्लेख मिलता है कि मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित होती है तथा उनकी पूर्ति के साधन सीमित होते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएं पूरी ना हो पाने से वह दुःखी हो जाता है। कठोपनिषद में कहा गया है कि कोई व्यक्ति कितना ही धन प्राप्त कर ले कभी उस धन से तृप्त नहीं हो सकता। जिस प्रकार भोजन करने से पेट भर जाता है परन्तु खाने की तृष्णा बनी रहती हैं, उसी प्रकार धन प्राप्त करने की इच्छा कभी पूरी नहीं होती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में यह कहा गया है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित ही नहीं होती अपितु एक आवश्यकता पूर्ण होने पर दूसरी नई उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य अपने ज्ञान व परिश्रम द्वारा अपनी आजीविका उत्पन्न करें ताकि समाज में दरिद्रता व अभाव नही हो क्योंकि दरिद्रता से आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं हो सकती है।

v.पुरूषार्थ चतुष्टय

प्राचीन भारतीय साहित्य में शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा के सुख की कल्पना की गई है जिसे 'चतुर्विध सुख' के नाम से जाना जाता है। 'चतुर्विध सुख' की प्राप्ति के लिए कर्त्तव्य के रूप में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चार पुरूषार्थों का उल्लेख किया गया है जिन्हें 'पुरूषार्थ चतुष्टय' कहते हैं। प्राचीन भारतीय चिन्तन में इन चार पुरूषार्थों की तुलना नदी से की गयी है। अर्थ व काम नदी के प्रवाह है तथा धर्म व मोक्ष इस नदी के दो तटबन्ध है।

(क) धर्म

प्राचीन भारतीय साहित्य में धर्म का अर्थ बाह्य आडम्बरों से नहीं है अपितु धर्म की अवधारणा बहुत व्यापक है। धर्म सद्गुण है व इसका सम्बन्ध आजीविका की शुद्धता से है। श्रेष्ठ बनने के लिए धर्म धारणीय व आचरणीय है। धर्म का आधार नैतिक नियम व सदाचरण है। अतः धर्म समाज में व्यवस्था बनाये रखता है।

(ख) अर्थ

शास्त्रों में मनुष्य की सुख–सुविधा का आधार धर्म को माना गया है एवं धर्म का मूल अर्थ को माना गया है। वेदों में वैभव, मुद्रा तथा सम्पत्ति को धन माना गया है। प्राचीन साहित्य में विद्या, भूमि, सोना–चाँदी, पशु, धन–धान्य, धातु निर्मित उपकरण आदि को अर्थ माना गया है।

(ग) काम

प्राचीन साहित्य के अनुसार काम विश्व को चलाने वाला है। काम सबका कर्त्ता है। जिस प्रकार के व्यक्ति के काम होते हैं व्यक्ति भी वैसा ही बन जाता है। अथर्ववेद में काम ही विविध कामनाओं के रूप में विभिन्न कार्यों का कारण व उत्पत्ति स्थान माना गया है।

(घ) मोक्ष

प्राचीन आर्थिक चिन्तन के अनुसार धन साधन है, साध्य नहीं। अपने आपको इच्छाओं से रहित करते हुए बंधन से छूटना ही मोक्ष है। इसे आवागमन के भवचक्र से मुक्ति भी कहा जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1 व्यक्ति एवं समाज के आर्थिक क्रियाकलापों का अध्ययन करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।

2. मनुष्य द्वारा सम्पादित वह क्रिया जिसका मुद्रा के रूप में मापन संभव है, आर्थिक क्रिया कहलाती है।

3. उपयोगिता का सृजन करना उत्पादन कहलाता है।

4. आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु वस्तुओं व सेवाओं का प्रयोग करना उपभोग कहलाता है।

5. उत्पत्ति के साधन पांच प्रकार के है – भूमि, पूंजी, श्रम, प्रबन्ध व साहस।

6. एक ऐसी व्यवस्था जिसके तहत किसी निश्चित क्षेत्र में

आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है, अर्थव्यवस्था कहलाती है।

7. ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पत्ति के साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व व नियत्रंण होता है, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था कहलाती है।
8. ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों पर सरकार द्वारा अभिव्यक्त सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व होता है, समाजवादी अर्थव्यवस्था कहलाती है।
9. ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सह अस्तित्व होता है, मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है।
10. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन उन सभी आर्थिक विचारों का सार है, जिन्हें भारत के सभी प्राचीन ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।
11. एकात्म मानव का अर्थ है, मानव शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का एकीकृत रूप।
12. चतुर्विध सुख (शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा के सुख) की प्राप्ति के लिए प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का उल्लेख किया गया है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौनसी गतिविधि आर्थिक क्रिया है?
   (अ) विद्यालय की दो कक्षाओं के मध्य खेला गया मैत्री मैच
   (ब) माता–पिता द्वारा बच्चों की देखभाल
   (स) अध्यापक द्वारा कक्षा में पढ़ाना
   (द) विद्यालय में होने वाली प्रार्थना सभा
2. भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप है:–
   (अ) पूंजीवादी (ब) समाजवादी
   (स) मिश्रित (द) कोई नहीं
3. निम्न में से कौनसी आर्थिक प्रणाली लोगों को निजी सम्पत्ति का अधिकार देती है:
   (अ) पूंजीवादी
   (ब) समाजवादी
   (स) पूंजीवादी व समाजवादी दोनों
   (द) कोई नहीं
4. निम्न में से कौनसा एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का गुण नहीं है:–
   (अ) व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण
   (ब) वर्ग संघर्ष में कमी
   (स) उपभोक्ताओं को अधिक सन्तुष्टि
   (द) आर्थिक उतार–चढ़ावों पर नियन्त्रण
5. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में मनुष्य को किस रूप में प्रस्तुत किया गया है:–
   (अ) आर्थिक मानव (ब) उत्पत्ति का साधन
   (स) एकात्म मानव (द) उपरोक्त सभी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था किसे कहते है?
2. अर्थशास्त्र का अर्थ बताइये।
3. आर्थिक प्रणाली के प्रकारों के नाम बताइये।
4. उत्पत्ति के साधनों के नाम लिखिए।
5. उत्पादन किसे कहते है?
6. उपभोग को परिभाषित कीजिए।
7. उत्पादन व उत्पादक का एक उदाहरण दीजिए।
8. वितरण का अर्थ बताइये।
9. श्रम किसे कहते हैं?
10. समाजवादी अर्थव्यवस्था का अर्थ लिखिए।
11. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन के किन्ही तीन स्रोतों के नाम लिखिए।
12. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन के स्रोत के रूप में चारों वेदों के नाम बताइये।
13. 'चतुर्विध सुख' क्या है?
14. चार पुरूषार्थों के नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आर्थिक क्रिया किसे कहते है? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

2. सम्पत्ति तथा पूंजी में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. अर्थव्यवस्था की अवधारणा को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. पूंजीवादी व समाजवादी अर्थव्यवस्था में क्या अन्तर है?
5. एकात्म मानव की अवधारणा को समझाइये।
6. आवश्यकताओं के सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण को समझाइये।
7. उत्पादन व उपभोग में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
8. मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुणों का उल्लेख कीजिए।
9. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन के किन्ही तीन स्रोतों का उल्लेख कीजिए।
10. "प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन परम्परा का अध्ययन आर्थिक प्रणाली का एक नया विकल्प है।" व्याख्या कीजिए।
11. समग्र विवेकशीलता की अवधारणा को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक क्रियाओं व गैर आर्थिक क्रियाओं में अन्तर बताइये।
2. उत्पत्ति के प्रमुख साधनों की व्याख्या कीजिए।
3. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षण बताइये।
5. संयमित उपभोग तथा सह–उपभोग की अवधारणा की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता की व्याख्या कीजिए।
6. 'पुरूषार्थ चतुष्टय' पर एक लेख लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1.(स) 2.(स) 3.(अ) 4.(स) 5.(स)

अध्याय 17

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि

प्राचीनकाल से ही कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला रही है। कृषि एवं उससे संम्बद्ध क्षेत्र भारत की अधिकांश जनसंख्या खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के लिए आजीविका का मुख्य साधन है। देश की लगभग आधी आबादी आज भी कृषि पर आश्रित है। हालांकि योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया ने कृषि का राष्ट्रीय आय में अंश कम हुआ है फिर भी भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व कई दृष्टिकोणों से आज भी बना हुआ है।

कृषि का महत्व :— भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व और योगदान को निम्नलिखित तथ्यों के माध्यम से समझा जा सकता है —

1. राष्ट्रीय आय में योगदान :—

भारतीय कृषि हमेशा से ही राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा भाग रही है। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा जारी किये गये आंकड़ों के अनुसार सन् 1950—51 में कृषि एवं उसकी सहायक क्रियाओं जैसे वानिकी, लकड़ी काटना, पशुपालन, मछली पालन, खनन, मुर्गी—पालन आदि का राष्ट्रीय आय में योगदान 59.2 प्रतिशत था जो सन् 2012—13 में घटकर (2004—05 के स्थिर मूल्यों पर) 13.7 प्रतिशत हो गया। फिर भी अन्य विकसित देशों के मुकाबले आज भी कृषि, जी.डी.पी. में काफी अधिक योगदान दे रही है।

2. रोजगार उपलब्ध कराना :—

भारतीय कार्यकारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग आज भी कृषि और उसकी सहायक क्रियाओं पर आश्रित है। 1950—51 ई. में जहा कुल कार्यकारी जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग कृषि एवं उसकी सहायक क्रियाओं में कार्यरत था। वह आज भी 2011 ई., की जनगणना के अनुसार लगभग 48.9 प्रतिशत है। कृषि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का रोजगार प्रदान करती है। प्रत्यक्ष रूप से खेती करना, फसल कटाई, छँटाई, सिंचाई कार्य आदि में रोजगार तथा पशुपालन, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, वानिकी, खाद्य प्रसंस्करण, फल—सब्जियों को बिक्री हेतु तैयार करना, तेल घाणी, लकड़ी चीरना, दालें तैयार करना, पशुचारा तैयार करना, जैविक खाद तैयार करना, खली तैयार करना आदि कार्यों में अनेक गैर कृषि लोगों को अप्रत्यक्ष रुप से रोजगार प्रदान करती है।

भारत में योजना काल में कृषि का अंश रोजगार में काफी ऊँचा बना हुआ है किन्तु राष्ट्रीय आय में इसका अंश घट रहा है, जिसे कृषि की नवीन पद्धतियों को अपनाकर बढ़ाया जा सकता है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में योगदान :—

कृषि का विदेश व्यापार की दृष्टि से भी काफी महत्व है। हम कई प्रकार के कृषिगत पदार्थों का आयात एवं निर्यात करते हैं। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में चाय, गर्म मसालें, कॉफी, चावल, कपास, तम्बाकू, काजू, फल, सब्जियाँ, फूलों का रस, सामुद्रिक पदार्थ, चीनी तथा मांस और मांस से बने पदार्थ मुख्य कृषिगत वस्तुएं हैं। वर्तमान में कुल निर्यातों में कृषि तथा उसके सम्बद्ध क्षेत्र का योगदान लगभग 12.5 प्रतिशत है।

4. औद्योगिक विकास में योगदान :–

औद्योगिक विकास में कृषि का योगदान दो तरह का होता हैं–

पहला कृषि हमारे प्रमुख उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध करवाती है। जैसे– सूती वस्त्र उद्योग के लिए कपास, पटसन उद्योग के लिए जूट, चीनी उद्योग के लिए गन्ना व चुकन्दर, बागानी उद्योगों के लिए फल, सब्जियाँ, वनस्पति तेल उद्योगों के लिए तिलहन आदि। कुछ दवाईयों के लिए भी कृषि उत्पाद काम में लिए जाते हैं और आयुर्वेदिक औषधियाँ तो अधिकांशत कृषि उत्पादों पर ही निर्भर होती है।

दूसरा उद्योगों द्वारा तैयार माल के लिए कृषि बाजार उपलब्ध करवाती है जैसे ट्रेक्टर–ट्राली उद्योग, कृषि उपकरण उद्योग, रासायनिक उर्वरक उद्योग, कीटनाशक दवाई उद्योग, बीज उद्योग, पौधशाला, आदि सभी अपनी वस्तुएं बेचने के लिए कृषि पर ही निर्भर हैं।

5. खाद्यान्न एवं चारा आपूर्ति में योगदान :–

देश में जनसंख्या एवं पशुओं के लिए खाद्यान्न एवं चारे की व्यवस्था कृषि के माध्यम से ही की जाती है।

6. निर्धनता उन्मूलन में योगदान :–

देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए रोजगार एवं आय की व्यवस्था, कृषि एवं उसकी सहायक क्रियाओं में सुधार करके सरलता से की जा सकती है और देश में निर्धनता के प्रसार को रोका जा सकता है।

7. राजस्व में योगदान :–

कृषि एवं उसकी सहायक क्रियाओं से सरकार को अल्पमात्रा में करों के रूप में राजस्व की प्राप्ति होती है।

8. अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास में योगदान :–

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव होने के कारण अन्य सभी क्षेत्र इससे प्रभावित रहते हैं। कृषि एवं उसकी सहायक क्रियाओं के विकास से ही ग्रामीण विकास, परिवहन, संचार, बैंकिग तथा औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। इन सभी कृषि योगदानों को देखते हुए कहा जा सकता है कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की धुरी है।

9. पशुधन के विकास का आधार :–

विश्व के सर्वाधिक पशु भारत में ही है। आज भी कृषि सम्बन्धी अधिकांश कार्य पशुओं के माध्यम से किये जाते है और अधिकांश पशुपालन कृषकों द्वारा ही किया जाता है। डेयरी, ऊन, मांस, दूध तथा दूध से बने पदार्थ का उत्पादन तथा नस्ल सुधार इत्यादि कृषि क्षेत्र में होते है। इसलिए पशुधन विकास भी कृषि क्षेत्र में होता है।

कृषि क्षेत्र की नवीन प्रवृत्तियां

औपनिवेशिक शासनकाल की नीतियों के दुष्परिणाम कृषि क्षेत्र के गतिहीन विकास के रूप में सामने आये। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कृषि अपने दयनीय स्वरूप में थी किन्तु योजनाकाल में हुए विकासात्मक कार्यों के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय सुधार हुए हैं जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –

1. खाद्यान्न उत्पादन –

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ जलवायु, भूमि, मिट्टी, जलस्तर, भौगोलिक संरचना आदि में अनेक विविधताएं पाई जाती है जिससे यहाँ कई प्रकार की फसलें बोई जाती है। मुख्य रूप से हम फसलों का वर्गीकरण दो आधार पर कर सकते है।

(क)ऋतुओं के आधार पर फसलें :–

ऋतुओं के आधार पर फसले तीन प्रकार की होती है।

(i) रबी की फसल :–

ये फसलें अक्टूबर से नवम्बर के मध्य बोई जाती है तथा मार्च–अप्रेल के बीच काटी जाती है। इनमें मुख्यतः गेहूँ, जौ, चना, सरसों, आदि फसलें आती है।

(ii) खरीफ की फसल :–

ये फसलें जून–जुलाई के मध्य बोई जाती है तथा सितम्बर से अक्टूबर के मध्य काटी जाती है। इसके अन्तर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, अरहर, मूंग, मक्का, कपास, तिल, गन्ना, सोयाबीन तथा मूँगफली की फसलें आती है। चावल एक ऐसी फसल है जो रबी तथा खरीफ दोनों के अन्तर्गत आती है।

(iii) जायद फसलें :–

ये फसलें मार्च से जून के मध्य होती है जैसे– खरबूजा, तरबूज, ककड़ी तथा सब्जियां, सूरजमुखी आदि फसलें आती है।

(ख) उपयोग के आधार पर फसलों का वर्गीकरण :–

उपयोग के आधार पर फसलों को दो भागों में बाँटा जाता है :–

(I) खाद्यान्न फसलें :–

खाद्यान्न फसलें वे फसलें होती है जो खाद्य पदार्थों के रूप में उपयोग में ली जाती है। ये निम्न है :– चावल, गेहूँ, मक्का, मोटे अनाज तथा दालें।

(ii) व्यापारिक फसलें या नकदी फसलें :–

नकदी फसलें वे फसलें हैं जो लाभ कमाने के लिए विक्रय के उद्देश्य से ही उगायी जाती है। किसान इन्हें या तो सम्पूर्ण रूप से बेच देता है या आंशिक रूप से उपयोग करता है। शेष बड़ा हिस्सा बेच देता है। जैसे– तिलहन, गन्ना, जूट, कपास, चाय, कॉफी, तम्बाकू।

वर्तमान में सभी फसलों के क्षेत्रफल और उनकी उत्पादकता में परिवर्तन हुआ है।

विगत वर्षों में खाद्यान्नों के उत्पादन में सन् 1950–51 से 2012–13 तक के 62 वर्षों में 4.2 गुना, तिलहनों में लगभग 5.3 गुना, गन्ने में लगभग 5.13 गुना, कपास में लगभग 3.95 गुना वृद्धि हुई तथा जूट में लगभग 2.5 रही है।

स्त्रोत– सांख्यिकी एवं आर्थिक निदेशालय 2015

(2) प्रमुख फसलों के अन्तर्गत उत्पादन की प्रवृत्तियां–

भारत में विश्व के अन्य कई देशों के मुकाबले आज भी उत्पादकता कम है जिसके प्रमुख कारण निम्न है:–

(क) प्राकृतिक कारक– इस के अन्तर्गत निम्न कारणों को शामिल किया जाता है:–

- (i) मानसून पर अत्यधिक निर्भरता
- (ii) सिंचाई के साधनों का अभाव
- (iii) निरन्तर कृषि कार्य से उर्वरा शक्ति का ह्ास
- (iv) पश्चिमी क्षेत्र का विशाल रेगिस्तान
- (v) खरपतवार की समस्या
- (vi) प्राकृतिक आपदाएँ (अकाल, बाढ़, सूखा, चक्रवात)
- (vii) बंजर एवं बेकार भूमि का बड़ा भाग

(ख) तकनीकी कारण–

- (i) सिंचाई सुविधाओं का अविकसित एवं पिछड़ा हुआ होना
- (ii) विद्युत आपूर्ति की कमी
- (iii) कृषि उत्पादक जैसे– उन्नत खाद, बीज, औजार आदि का अभाव
- (iv) परिवहन संचार तथा बैकिंग सुविधाओं का अभाव
- (v) कृषि उत्पादन के भण्डारण की उच्च लागत
- (vi) कृषि विपणन की उचित व्यवस्था का न होना

(ग) संस्थागत कारण–

- (i) भू– जोतों का आकार छोटा होना
- (ii) दोषपूर्ण भू–धारण प्रणाली
- (iii) जनसंख्या की कृषि पर अत्यधिक निर्भरता।
- (iv) कृषक के जोतों का दूर–दूर बिखरा होना।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त प्राकृतिक आपदाएं तथा वित्तीय संकट भी कृषि उत्पादकता के कम होने का मुख्य कारण है।

(3) भूमि सुधार कार्यक्रम :–

कृषिगत उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने तथा किसानों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भूमि सुधार कार्यक्रमों पर बल दिया गया जिसके अन्तर्गत मुख्य कदम जमींदारी उन्मूलन था। इसके अतिरिक्त निम्न भू–सुधार कार्यों का क्रियान्वयन भी किया गया:–

- (I) मध्यस्थों की समाप्ति
- (ii) लगान नियमन
- (iii) भू–धारण की सुरक्षा
- (iv) काश्तकारों को भू–स्वामी बनने का अधिकार दिलाना
- (v) जोतों की सीमा का निर्धारण
- (vi) चकबन्दी
- (vii) सहकारी खेती
- (viii) भूमिहीन मजदूरों को भूमि वितरण
- (ix) अनुसूचित जाति तथा जनजाति के काश्तकारों की भूमि को अन्य जातियों के हस्तातंरण पर रोक।
- (x) भू–रिकॉर्ड के कम्प्यूटरीकरण की सुविधा।

स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक अनेक सुधार कार्यक्रम अपनाये गए है किन्तु आज भी किसानों को अशिक्षा एवं अज्ञानता के

कारण उसका पूरा लाभ उन्हें नहीं मिल पा रहा है।

(4) सिंचाईः— भारतीय कृषि ''मानसून का जुआ'' कहलाती है। वर्षा पर निर्भर रहने के कारण कृषि में सदैव अनिश्तिता तथा अस्थिरता बनी रहती है जिसे ध्यान में रखकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही सिचाईं सुविधाओं के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया है। भारत में सिंचाई के प्रमुख स्रोत नहर, कुएं, चड़स व तालाब आदि है।

भारत सरकार द्वारा योजनाकाल में सिंचाई सुविधाओं के लिए विभिन्न परियोजनाओं का क्रियान्वन किया गया है। सिंचाई परियोजनाओं को तीन भागों में बाँटा गया है—

(I) **लघु सिंचाई परियोजनाएं** — ये 2000 हैक्टेयर तक कृषि योग्य कमाण्ड क्षेत्र वाली परियोजनाएं होती है।

(ii) **मध्यम सिंचाई परियोजनाएं** — ये 2,000 हैक्टेयर से अधिक किन्तु 10,000 हैक्टेयर तक कृषि योग्य कमाण्ड क्षेत्र वाली परियोजनाएं है।

(iii) **वृहत् सिंचाई परियोजनाएं** — ये 10,000 हैक्टेयर से अधिक कृषि योग्य कमाण्ड क्षेत्र वाली परियोजनाएं होती है।

(5) कृषि जोतों का पुनर्गठनः—

भारत में जोतों का आकार छोटा है। साथ ही जोते दूर—दूर तथा बिखरी हुई है। इसका मुख्य कारण उत्तराधिकारी नियम के अनुसार पैतृक भूमि का बंटवारा है जिसे 'उप विभाजन' कहा जाता है। इससे खेतों का आकार छोटा होता जाता है। दूसरा प्रत्येक किसान के अधीन आने वाली जोते एक स्थान पर न होकर दूर—दूर बिखरी हुई है, जिसे 'अपखण्डन' कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक उत्तराधिकारी भूमि की प्रत्येक किस्म में से हिस्सा प्राप्त करता है।

भारत में प्रथम कृषिगत संगणना के अनुसार — सन् 1970—71 में कृषि जोत का आकार 2.28 हैक्टेयर था जो 2000—01 में घटकर 1.33 हो गया है। कृषि में सर्वाधिक भाग 62.88 प्रतिशत सीमान्त जोते हैं। कृषि जोतों को आकार के आधार पर पांच भागों में बांटा गया हैः—

i. सीमान्त जोत — 1 हैक्टेयर से कम
ii. लघु जोत — 1 से 2 हैक्टेयर
iii. अर्द्ध मध्यम जोत — 2 से 4 हैक्टेयर
iv. मध्यम जोत — 4 से 10 हैक्टेयर
v. दीर्घ जोत — 10 व उससे अधिक हैक्टेयर

भारत में छोटी तथा सीमान्त जोतों की संख्या अधिक है जोतों के आकार को छोटा होने से रोकने के लिए निम्न उपाय अपनाये जा रहे हैं—

(I) चकबन्दी
(ii) सहकारी खेती

(6) खाद, उर्वरक एवं कीटनाशक दवाईयांः—

कृषि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए खाद और उर्वरकों का अपना एक अलग ही महत्व है। भारतीय कृषक प्रारम्भ से ही पशुओं के गोबर, फसलों की पत्तियों और जीवों द्वारा निर्मित खाद और उर्वरकों का उपयोग भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए करते आ रहे हैं, किन्तु हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप रसायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग तीव्रगति से बढ़ा है। रसायनिक उर्वरकों में मुख्य रूप से नाइट्रोजन, फॉस्फेट, और पोटाश का उपयोग अधिक मात्रा में होता है। वर्तमान में भारत में उर्वरकों के उपयोग का स्तर 239.59 लाख मी. टन हो गया है।

किन्तु आज भी उर्वरकों के उपयोग में भारत विकसित देशों के मुकाबले नीचे स्तर पर है। यही नहीं, भारत के विभिन्न प्रदेशों में उर्वरकों के उपयोग में भी भारी अन्तर पाया जाता है। पंजाब में उर्वरकों का प्रति हेक्टयर उपयोग सर्वाधिक है, वहीं उड़ीसा में यह सबसे कम है।

रासायनिक उर्वरकों का अधिकांश उपयोग धान, गेहूँ, गन्ना, संकर कपास तथा व्यापारिक फसलों में किया जाता है। इसी प्रकार फसलों को मौसमी बीमारियों और कीटाणुओं से बचाने के लिए कीटनाशक दवाइयों का उपयोग किया जाता है। मूंगफली, कपास, धान व गन्ने की फसलों को कीटाणुओं व बीमारियों से सर्वाधिक हानि होती है। साथ ही, फल व सब्जियों में कीटों का खतरा सदैव बना रहता है। इनसे बचाव के लिए कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग कारगर सिद्ध हुआ है। उर्वरकों का प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है किन्तु आजकल जैविक खेती के लाभों को देखते हुए उसके क्षेत्र में भी बढ़ोतरी होने लगी है।

(7) उन्नत बीजों का उपयोगः—

कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करने के

लिए उन्नत बीजों का प्रयोग अतिआवश्यक है। उन्नत बीजों के प्रयोग से उत्पादन में 10 से 20% की वृद्धि हो सकती है। भारत सरकार ने विभिन्न फसलों के प्रमाणित बीजों के उत्पादन एवं वितरण को प्रोत्साहन देने के लिए सन् 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम और 1969 में भारतीय राज्य फार्म निगम की स्थापना की। किसानों के लिए उन्नत बीजों की व्यवस्था करने के लिए 13 राज्य बीज निगम भी स्थापित किये गये हैं। भारतीय बीज कार्यक्रम में तीन बीज उत्पादनों यथा, प्रजनक, आधारी तथा प्रमाणित बीजों को स्वीकार किया जाता है। उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है।

(8) कृषि यन्त्रीकरणः—

भारतीय किसानों द्वारा खेती हेतु इस्तेमाल किये जाने वाले औजार एवं उपकरण सामान्यतः पुराने और तकनीकी विहीन है। योजना काल में कृषि में हुए विकास के परिणामस्वरूप कृषि में नये—नये उपकरणों का उपयोग होने लगा है, जैसे— ट्रेक्टर, हार्वेस्टर, पावर टिलर, थ्रेसर, पम्पसेट आदि।

कृषि में यन्त्रों के उपयोग से न केवल कृषि कार्य आसान हुआ बल्कि कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक ट्रेक्टरों का उत्पादन नहीं होता था, किन्तु आज देश इनके उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है। विद्युत पम्प सेटों एवं डीजल पम्प सेटों का उत्पादन भी किया जा रहा है। कृषि यन्त्रीकरण में सर्वाधिक प्रगति पंजाब व हरियाणा राज्यों ने की है। कृषि में यन्त्रीकरण एक ओर जहाँ उत्पादकता को बढ़ाता है वहीं दूसरी ओर कृषि परिवहन, फसल कटाई, छँटाई, भूमि की खुदाई, आदि सभी कार्यों को सरल बनाता है तो यंत्रीकृत कृषि भूमिहीन श्रमिकों की बेरोजगारी का कारण भी बनता है। यंत्रीकरण छोटे व बड़े किसानों के बीच असमानता को बढ़ाता है और पर्यावरण प्रदूषण का कारण भी बनता है। इन सब गुण—दोषों के बावजूद भारत जैसे विकासशील देश में बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न आपूर्ति बढ़ाने के लिए कृषि में यन्त्रीकरण अतिमहत्वपूर्ण है, लेकिन यन्त्रीकरण नियन्त्रित और सुदृढ़ होना चाहिए।

(9) कृषि उपजों का न्यूनतम समर्थन मूल्यः—

किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने और कृषि कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है जो वर्ष में दो बार रबी और खरीब के मौसम में की जाती है। इसके लिए सरकार ने 1965 में कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की जिसे बाद मे कृषि लागत एवं मूल्य आयोग के नाम से जाना जाने लगा। न्यूनतम समर्थन मूल्य वे मूल्य होते हैं जिस पर सरकार किसानों द्वारा बेची जाने वाली पूरी फसल खरीदने को तैयार रहती है। दूसरे शब्दों में समर्थन मूल्य वह न्यूनतम मूल्य है जो किसानों को अपनी फसल के लिए आवश्यक रूप से प्राप्त होगा। इसकी घोषणा सरकार फसल बोने से पहले ही करती है। जिन फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किया जाता है, वह निम्न हैः—

(I) **7 प्रकार के अनाजः**— धान, गेहूँ ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी व जौ।

(ii) **दालेंः**— चना, अरहर, मूंग, उड़द, मसूर।

(iii) **तिलहनः**— सोयाबीन, सरसों, सूरजमुखी, मूंगफली, कुसुम्भ, तोरिया, कोपरा, तिल, रामतिल।

(iv) **अन्य फसलेंः**— गन्ना, कपास, पटसन, नारियल।

समर्थन मूल्य का उद्देश्य किसानों के हितों की रक्षा करना होता है। यदि बाजार मूल्य गिर जाता है तो किसान अपनी सम्पूर्ण फसल सरकार को बेचकर हानि से बच सकता है। इनकी घोषणा से किसानों की मूल्य सम्बन्धित आशंका दूर होती है और वे उत्पादन सम्बन्धि सही निर्णय ले पाते है।

दूसरी तरफ सरकार को भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनाज तथा अन्य कृषिगत वस्तुएं न्यूनतम मूल्य पर खरीदने का अवसर मिल जाता है जिससे सरकार अपने पास बफर स्टॉक का निर्माण कर लेती है और कीमतें बढ़ने की स्थिति में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा हेतु इस स्टॉक से अनाज आदि बेचना प्रारम्भ कर देती है जिससे कीमतों पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है।

(10) कृषि ऋणः—

भारत में कृषिगत अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का एक कारण ऋण की सुविधाओं का अभाव माना जा सकता है। किसानों को खाद, बीज, उर्वरक, कीटनाशक, कृषि यन्त्र, मजदूरी आदि सभी कार्यों के लिए पर्याप्त मात्रा में ऋण की

आवश्यकता पड़ती है। कृषकों को अवधि के आधार पर तीन प्रकार के ऋणों की आवश्यकता पड़ती है:–

(i) अल्पकालीन ऋणः–

ये ऋण 15 महीनें से कम की अवधि के लिए दिये जाते है जो कृषक कृषि सम्बन्धी अल्पकालीन आवश्यकताएं जैसे–बीज, खाद, चारा आदि खरीदने तथा घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये होते हैं।

(ii) मध्यम कालीन ऋणः–

ये ऋण 15 महीने से अधिक किन्तु 5 वर्ष से कम की अवधि के लिए दिये जाते हैं। ये सामान्यतया खेत में सुधार करने, पशु खरीदने, कुआँ खुदवाने, कृषि औजार खरीदने के लिए होते हैं।

(iii) दीर्घकालीन ऋणः–

ये 5 वर्ष से अधिक अवधि के लिए दिये जाते हैं। ये सामान्यतया नई भूमि खरीदने, पुराने कर्जों को चुकाने लघु सिंचाई, बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने, भारी मशीनरी खरीदने विद्युतिकरण, ट्यूबवैल खुदवाने आदि के लिए दिए जाते हैं।

इन सभी ऋणों की प्राप्ति कृषकों द्वारा दो प्रकार के स्रोतों से की जाती हैं जो निम्न प्रकार से है–

(अ) गैर संस्थागत स्रोतः–

इसके अन्तर्गत स्थानीय ग्रामीण साहूकार, जमींदार, महाजन, कमीशन एजेंट, व्यापारी, बड़े भूस्वामी व पारिवारिक रिश्तेदार शामिल होते हैं।

(ब) संस्थागत स्रोतः–

राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण साख सुविधाओं के विस्तार हेतु 12 जुलाई, 1982 को कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए बैंक 'नाबार्ड' की स्थापना की गयी। यह ग्रामीण ऋण व्यवस्था की सबसे शीर्ष संस्था है। संस्थागत ऋण के प्रमुख स्रोतों में व्यापारिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक आदि शामिल है।

अल्पकालीन ऋण तथा मध्यमकालीन ऋण प्रायः सहकारी समितियों द्वारा प्रदान किये जाते हैं जबकि दीर्घकालीन ऋण भूमि विकास बैंक जिसे 'भूमि बन्धक बैंक' भी कहा जाता है के द्वारा प्रदान किए जाते है। ऋण के क्षेत्र में संस्थागत स्रोतों के आगमन से कृषकों को संस्थागत स्रोतों द्वारा किए गए शोषण से मुक्ति मिली है तथा 'ब्याज' भी कम चुकाना पड़ता है।

(11) किसान क्रेडिट कार्ड योजनाः–

किसानों को अल्पकालीन ऋण उपलब्ध करवाने के लिए 1998–99 में किसान क्रेडिट कार्ड योजना शुरु की गयी जिसके अन्तर्गत ऐसे किसान जो 5,000 रु. या अधिक मूल्य के उत्पादन ऋण के लिए पात्र होते है, वे किसान क्रेडिट कार्ड के हकदार होंगे। इसके अन्तर्गत किसानों को क्रेडिट कार्ड तथा पास बुक दी जाती है। यह कार्ड तीन वर्ष के लिए वैद्य होता है तथा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत निकाली गई राशि का भुगतान 12 माह के भीतर करना होगा। अच्छे निष्पादन की स्थिति में ऋण की सीमा को बढ़ाया भी जा सकता है। किसान क्रेडिट कार्ड की सीमा का निर्धारण जोत के आकार, फसल पैटर्न तथा वित्त के आकार के आधार पर किया जाता है।

सन् 2001–02 के पश्चात् किसान क्रेडिट कार्ड के धारकों को दुर्घटना से मृत्यु पर 50,000 रुपये तथा स्थाई विकलांगता पर 25,000 रुपये की बीमा सुरक्षा की व्यवस्था भी की गई है। वर्तमान में 3,00,000 रुपये तक के ऋण पर कोई प्रक्रिया शुल्क भी वसूल नहीं किया जाता है।

किसान क्रेडिट कार्ड व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के द्वारा जारी दिये जाते हैं। सर्वाधिक किसान क्रेडिट कार्ड व्यापारिक बैंकों द्वारा जारी किये गये हैं।

जून, 2012 तक 11.39 करोड़ किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जा चुके है।

इस प्रकार किसान क्रेडिट कार्ड योजना किसानों के ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने में एक महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

(12) कृषि बीमाः–

भारतीय कृषि सदैव प्राकृतिक प्रकोपों जैसे–अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ओलावृष्टि, पाला, टिड्डियों का प्रकोप, बीमारियां आदि से प्रभावित रहती है। इन प्रकोपों के कारण किसान सदैव आशंका से घिरा रहता है। किसानों की इनसे होने वाली हानियों से एक सीमा तक रक्षा करने के लिए सरकार दवारा विभिन्न बीमा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया है।

इसके अन्तर्गत सन्1999–2000 में राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना शुरु की गयी जिसमें फसल वाले मौसम में प्राकृतिक आपदाओं, कीटों तथा बीमारियों से फसलों को होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए किसानों को वित्तीय सहायता दी जाती है। इसमें भू–जोत के आकार को ध्यान में रखे बिना ऋणी व गैर ऋणी सभी किसानों को सहायता दी जाती है। यह देश के 25 राज्यों तथा 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में संचालित है। कृषि बीमा योजना किसानों के लिए एक लाभप्रद योजना है जो उन्हें जोखिम से बचाती है किन्तु अभी भी इसके विस्तार की आवश्यकता है क्योंकि सभी किसानों को इन योजनाओं का लाभ नहीं मिल पा रहा है।

कृषि की समस्याएं

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की अधिकांश जनसंख्या के रोजगार तथा आय का मुख्य स्रोत कृषि है। देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार स्तम्भ है। इसके बावजूद यहां कृषि की दशा सन्तोषजनक नहीं है। आज कृषि क्षेत्र में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जिनका विवरण निम्न प्रकार से है:–

(i) प्राकृतिक विपदाएं :–

भारतीय कृषि मानसून का जुआ है। यहां वर्षा की अनियमितता तथा अनिश्चितता सदैव बनी रहती है। कृषि को सूखा, बाढ़, पाला, चक्रवात, तेज आंधियों का सदैव भय बना रहता है। इसके अतिरिक्त मृदा अपरदन, मरूस्थल प्रसार, भूमि की उर्वरता की क्षति, सेम की समस्या, क्षारीयता, कीड़ों का प्रकोप, बीमारियों आदि से भी कृषि क्षेत्र में भारी हानि होती है।

प्राकृतिक विपदाएं : सूखा

(ii) जोतों कों छोटा आकार :–

भारतीय कृषि में पिछड़ेपन का मुख्य कारण जोतों का छोटा आकार है। इस कारण इन पर उन्नत कृषि तकनीक का प्रयोग कर पाना संभव नहीं है। दूसरा जोतें बिखरी हुई होने के कारण उसका बहुत बड़ा भाग मेड़बन्दी में चला जाता है और प्रत्येक जोत पर कृषक उचित ध्यान व तकनीक उपयोग में नहीं ला पाता है जिससे उत्पादकता में कमी आती है।

(iii) कृषि वित्त का अभाव :–

फसल बोने से लेकर काटकर बाजार में बेचने तक किसानों को कृषि कार्य तथा जीवन–निर्वाह हेतु वित्त की अत्यन्त आवश्यकता होती है। खाद, बीज, कीटनाशक, उपकरण, बिजली का बिल, मजदूरी आदि का भुगतान करने के लिए किसानों को स्थानीय साहूकारों, महाजनों तथा व्यापारियों से उधार लेना पड़ता है जो उनसे ऊँची ब्याज दरें वसूल करते है तथा किसानों को अपनी उपज जबरन उन्हें ही बेचने को बाध्य करते है तथा उपज का उचित मूल्य भी नहीं देते है। इसलिए कृषक सदैव अभाव में ही जीवन यापन करता है। इससे कृषि उत्पादकता प्रभावित होती है।

(iv) कृषि आगतों का अभावः–

किसानों के पास उन्नत बीज, खाद, कीटनाशक, अच्छे औजार आदि की अपर्याप्तता एवं अभाव बना रहता है। अच्छे बीजों एवं तकनीक के अभाव में उत्पादन कम हो पाता है। खाद तथा कीटनाशकों के अभाव में फसल खराब हो जाती है।

(v) सिंचाई सुविधाओं का अभावः–

भारतीय कृषि सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर है क्योंकि यहाँ कृत्रिम सिंचाई सुविधाओं का अभाव है तथा जो उपलब्ध हैं उनमें भी भारी क्षेत्रीय असन्तुलन पाया जाता है। तालाबों, बावड़ियों, पोखरों, जोहड़ों आदि का अनियोजित विदोहन तथा रखरखाव के अभाव के कारण धीरे–धीरे अनुपयोगी होते चले गये। उनकी जगह ट्यूबवैल व नलकूपों के अत्यधिक उपयोग के कारण भूजल स्तर बहुत नीचे चला गया है। सिंचाई के अभाव में यदि वर्षा समय पर नहीं हो पाती है तो फसलों को भारी हानि होती है।

(vi) भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रासः–

रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति लगातार कम होती जा रही है जिससे उत्पादकता में गिरावट आती है।

(vii) कृषि विपणन की समस्याः–

भारतीय किसान की एक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि उसे अपनी फसल बेचने के लिए जिन मण्डियों तक जाना पड़ता है वे काफी दूर होती है। यातायात की उचित व्यवस्था नहीं होने के कारण वहां तक पहुंचना कठिन होता है। इन मण्डियों में भण्डारण की उचित व्यवस्था न होने के कारण वर्षा, कीड़े, चूहों आदि के कारण किसानों की फसलें खराब हो जाती है। कभी–कभी उन्हें अपनी उपज मजबूरीवश गांव में ही साहूकारों या बिचोलियों को कम मूल्य पर भी बेचना पड़ता है।

(viii) किसानों की रूढ़िवादिताः–

आज भी अधिकांश भारतीय किसान रूढ़िवादी परम्पराओं में जकड़े हुए हैं। वे कृषि कार्यों में व्यय की तुलना में शादी, मृत्युभोज एवं अन्य सामाजिक परम्पराओं के निर्वाह करने में व्यय अधिक करते हैं। इन कार्यों के लिए वे कर्ज भी लेते हैं। वहीं दूसरी ओर भाग्यवादिता के कारण अपनी गरीबी को किस्मत का लेख मानकर उससे बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते हैं।

(ix) किसानों में अशिक्षा :–

आज भी भारत में किसानों में अशिक्षा अधिक पाई जाती है जिससे वे न तो कृषि की उन्नत एवं उचित तकनीक को समझ पाते है और न ही प्रयोग में ले पाते हैं। इसी अशिक्षा के कारण उचित मूल्य पर अपनी उपज बेचने के प्रयास कर पाते है।

(x) भू–सुधार कार्यक्रमों का उचित क्रियान्वन नहीं होनाः–

जमींदारी व जागीरदारी प्रथा तथा बिचोलियों का अन्त तथा कृषकों को भूस्वामित्व दिलाने के लिए चलाये गये भू–सुधार कार्यक्रमों का पूरा लाभ किसानों को नहीं मिल पाया है। कानून की सीमाओं का लाभ उठाकर आज भी बड़े किसानों तथा ज़मीदारों ने भूमिहीन किसानों को भूस्वामित्व नहीं दिया है। वे सिर्फ खेतीहर श्रमिक बनकर रह गये हैं।

(xi) उचित मूल्य की समस्याः–

किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। व्यापारियों द्वारा किसानों से उपज कम से कम मूल्य पर खरीदी जाती है। कई बार तो फसल का मूल्य इतना कम रहता है कि किसानों की लागत भी नहीं निकल पाती है। सरकार द्वारा कुछ फसलों के समर्थन मूल्य जारी किए गए है, किन्तु वे भी अपर्याप्त है।

कृषि समस्याओं के निराकरण के उपाय

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि क्षेत्र में विकास के लिए अनेक प्रयास किये गए हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना की तो प्राथमिकता ही कृषि थी। इसके बाद भी सभी योजनाओं में कृषि विकास पर विशेष जोर दिया गया है किन्तु फिर भी भारतीय कृषि अनेक समस्याओं से ग्रसित है जिसके सुधार हेतु निम्न सुझाव दिए जा सकते हैंः–

(i) भू सुधारों को प्रभाव पूर्ण ढ़ंग से लागू करना :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भू सुधार हेतु किए गए प्रयास चकबन्दी, सहकारी खेती, काश्तकारी सुधार, भू–स्वामित्व निर्धारण आदि का प्रभावी क्रियान्वन करवाने हेतु उचित कदम उठाए जायें। इसके कड़े कानून तथा नीतियों को लागू किया जाये।

(ii) सीमान्त किसानों तथा खेतीहर श्रमिकों को कृषि आगते उपलब्ध करवानाः–

सम्पन्न तथा बड़े किसान कृषि सम्बन्धी सभी आगते उन्नत खाद, बीज, कीटनाशक, उर्वरक, यन्त्र आदि सभी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं किन्तु छोटे व सीमान्त किसानों के लिए इन्हें प्राप्त करना कठिन होता है। अतः सरकार को इन किसानों को उचित मूल्य पर तथा अनुदानित आगते उपलब्ध करवानी चाहिए, साथ ही इन आगतों के उपयोग किये जाने हेतु उन्हें प्रशिक्षित भी करना चाहिए।

(iii) शुष्क खेती की विधियों का प्रसार :–

कम वर्षा तथा सिंचाई सुविधाओं से वंचित क्षेत्रों में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए शुष्क खेती की विधियों को अपनाने के लिए किसानों को प्रेरित किया जाना चाहिए, साथ ही ऐसी तकनीकी के लिए प्रशिक्षित किया जाये जिससे वे कम पानी से अधिक उत्पादन कर सके। जैसे–बूंद–बूंद सिंचाई, फव्वारा सिस्टम आदि।

(iv) शिक्षा का प्रसारः–

किसानों में शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए जिससे वे कृषि की नवीन तकनीकों को समझने एवं प्रयोग करने में सक्षम बन सके।

(v) ग्रामीण कुटीर उद्योगो को बढ़ावा दिया जायेः–

कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करने के लिए गांवों में कुटीर उद्योगों एवं कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा दिया जाये जिससे ग्रामीण जनता के आय के स्रोत भी बढ़ेंगे और कृषि पर जनसंख्या का भार भी कम होगा।

(vi) कृषि के साथ–साथ वैकल्पिक रोजगार को बढ़ावा :–

किसानों को केवल कृषि पर निर्भर रहने की बजाय कृषि के साथ रोजगार के वैकल्पिक साधनों का उपयोग भी करना चाहिए जैसे– मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, दुधारू पशुपालन, खेतों के किनारे–किनारे फलों के वृक्ष रोपित करना आदि। इन कार्यों से एक और तो किसानों की आय बढ़ेगी, दूसरी तरफ किसी समय फसल की हानि होने पर भी उन्हें कर्ज की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इससे किसानों की दशा सुधरेगी और कृषि उत्पादकता भी बढ़ेगा।

(vii) कृषि भण्डारगृहों की स्थापनाः–

किसानों की उपज को सुरक्षित रखने के लिए यथोचित स्थान पर कृषि भण्डार गृहों की स्थापना की जाये।

(viii) जैविक खेती को बढ़ावा :–

भूमि की क्षीण होती उर्वरा शक्ति का मुख्य कारण रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग है। इससे बचाव के लिए जैविक खेती एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह एक ओर तो उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है तो दूसरी ओर स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए भी लाभप्रद है।

हरित क्रान्ति एवं श्वेत क्रान्ति

हरित क्रान्ति :–

तीसरी पंचवर्षीय योजना के शुरू से चौथी योजना के बीच (1961–69) के 8 वर्ष भारतीय कृषि के इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण वर्ष रहे हैं। यह वह अवधि थी जिसमें कृषि की नयी रणनीति प्रयोग में आई। पायलट प्रोजेक्ट के रूप में 7 जिलों में गहन कृषि जिला कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके बाद अधिक उपजाऊ किस्म के बीज प्रोग्राम को भी जोड़ दिया गया और इस विकास रणनीति को पूरे देश भर में विस्तार करने का लक्ष्य तय किया गया। यही रणनीति हरित क्रान्ति की शुरूआत थी।

हरित क्रान्ति का एक दृश्य

कृषि के परम्परागत तरीकों के स्थान पर नई तकनीक जिसमें रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाइयों, उन्नत बीजों, आधुनिक कृषि उपकरण, विस्तृत सिंचाई परियोजनाओं आदि के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए 1966–67 में खरीफ की फसल के साथ ही एक नए युग की शुरूआत हुई जिसे ''हरित क्रान्ति'' का नाम दिया गया। इसके जन्मदाता प्रो. ई. नोर्मन बॉरलोक है। लेकिन भारत में प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन को हरित क्रान्ति का जनक माना जाता है। इस क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य देश को खाद्यान्न संकट से बाहर निकाल कर कृषि उत्पादन में कम समय में विशेष वृद्धि करके उसे दीर्घकाल तक बनाए रखना तथा कृषि में व्यवसायिक दृष्टिकोण को अपनाना था।

हरित क्रान्ति के प्रमुख तत्व :–

(I) अधिक उपज देने वाली फसलों का कार्यक्रम – यह कार्यक्रम 1970–71 में 6 फसलों पर लागू किया गया जिसमें धान, गैहूं, मक्का, ज्वार, बाजरा व रागी आते हैं। गैहूं की मैक्सिन किस्में, चावल की चीनी व कुछ भारतीय विकसित किस्में तथा मक्का, ज्वार, बाजरा व रागी में देश में ही विकसित किस्में प्रयोग में ली गयी। इस कार्यक्रम में उन्नत किस्मों के साथ–साथ कीटनाशक दवाइयों तथा रासायनिक उर्वरकों का भी प्रयोग किया गया जिससे पैदावार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

इस कार्यक्रम में सर्वाधिक सफलता गेहूँ के क्षेत्र में प्राप्त हुई। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, केरल, तमिलनाडु, पं. बंगाल में यह कार्यक्रम काफी सफल रहा।

(ii) बहु–फसल कार्यक्रम :–

बहु–फसल कार्यक्रम के अन्तर्गत थोड़े समय में पक कर तैयार हो जाने वाली किस्में बोई जाती है जिससे एक वर्ष में एक ही भूमि पर एक से अधिक बार एक साथ कई फसलें बोई जा सके तथा उत्पादन को बढ़ाया जा सके।

(iii) लघु सिंचाई पर बल :–

हरित क्रान्ति की सफलता के लिए केवल उन्नत खाद व बीज ही काफी नहीं थे। इसके लिए सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था आवश्यक थी जो केवल बड़े बांधों से ही पूरी नहीं की जा सकती थी। अतः इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नलकूप, छोटी नहरें, तालाब, कुएँ, वाटर हार्वेस्टिंग तथा ट्यूबवैल द्वारा सिंचाई पर जोर दिया गया।

(iv) रासायनिक खाद :–

कृषि उपज को बढ़ाने के लिए यूरिया, पोटाश जैसी रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में तीव्र वृद्धि की गयी। जिससे फसलों के उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ाया जा सके।

(v) उन्नत बीज :–

अधिक उपज एवं कृषि गुणवता को बढ़ावा देने के लिए उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग को बढ़ावा दिया गया।

(vi) कृषि यन्त्रीकरण को बढ़ावा :–

हरित क्रान्ति में कृषि विकास हेतु नई तकनीकी के कृषि उपकरणों के प्रयोग को बढ़ावा दिया गया जिससे फसल बुवाई से लेकर कटाई तक के सभी कार्य कम समय में कुशलता पूर्वक किए जा सके।

(vii) पौध संरक्षण कार्यक्रम :–

इसके अन्तर्गत भूमि तथा फसलों पर दवा छिड़कने का कार्य प्रारम्भ किया गया। जिन वर्षों में टिड्डी दल आते हैं, उन वर्षों में टिड्डियों को नष्ट करने के अभियान चलाकर उन्हें भूमि पर या आकाश में ही नष्ट कर दिया गया जिससे फसलों को क्षति पहुँचाने से बचाया जा सके तथा उत्पादकता को बढ़ाया जा सके।

(viii) कृषि शिक्षा तथा शोध :–

कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए कृषि शिक्षा का विस्तार तथा शोध कार्यक्रम चालू किए गए।

(ix) भू–संरक्षण कार्यक्रम :–

भूसंरक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया गया तथा कृषि योग्य भूमि के क्षरण को रोकने तथा बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने हेतु शोध कार्यक्रम की व्यवस्था की गई।

(x) कृषि विकास हेतु विभिन्न संस्थाओं की स्थापना :–

कृषि विकास योजनाओं के कुशलतापूर्वक संचालन हेतु अनेक संस्थाओं की स्थापना की गयी। जैसे– राष्ट्रीय बीज निगम, उर्वरक निगम, नाबार्ड आदि।

(xi) कृषि मूल्य आयोग :–

कृषकों को उचित मूल्य की गारंटी देने के लिए कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की गई।

(xii) फसलों का बीमा :–

प्राकृतिक प्रकोपो से सुरक्षा हेतु कृषि फसलों के बीमा का प्रावधान भी किया गया।

हरित क्रान्ति का महत्व :–

कृषि के क्षेत्र में आई इस अभूतपूर्व क्रान्ति ने इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण प्रभाव डाले। इस क्रान्ति का महत्व निम्न तथ्यों से समझा जा सकता है:–

(i) फसलों के कुल उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि :–

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप फसलों के उत्पादन तथा उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जिससे देश में खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता की स्थिति बनी।

(ii) खेतिहर मजदूरों के लिए रोजगार :–

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप खेतिहर मजदूरों की स्थिति में सुधार हुआ। कृषि क्षेत्र में विस्तार तथा उत्पादन में वृद्धि से इनके रोजगार में भी वृद्धि हुई। बहुफसल तथा व्यापारिक फसलों के उत्पादन में श्रमिकों की अधिक आवश्यकता को भूमिहीन श्रमिकों ने पूरा किया, जिससे इनकी आर्थिक दशा में सुधार हुआ।

(iii) ग्रामीण निर्धनता में कमी :–

हरित क्रान्ति के कारण ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों को रोजगार मिलने तथा बहु–फसली कार्यक्रमों से किसानों की आय में वृद्धि से उनकी निर्धनता को कम किया।

(iv) यन्त्रीकरण :–

हरित क्रान्ति से यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिला जिससे परम्परागत औजारों की जगह अब आधुनिक उपकरण प्रयोग में लिए जाने लगे।

(v) उन्नत किस्मों का उत्पादन :–

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप उन्नत बीज, कीटनाशक तथा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उन्नत किस्म की फसलों का उत्पादन बढ़ा।

(vi) व्यावसायिक दृष्टिकोण :–

कृषकों में परम्परावादी दृष्टिकोण के स्थान पर व्यावसायिक दृष्टिकोण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

(vii) आधुनिकीकरण :–

कृषि के आधुनिकीकरण को बढ़ावा मिला, जिससे किसानों की दशा में सुधार हुआ।

(viii) सुविधाएँ :–

कृषको को उचित मूल्य, भण्डारण, साख आदि सुविधाओं का लाभ मिलने से उनकी दशा में सुधार हुआ।

हरित क्रान्ति की सीमाएं:–

हरित क्रान्ति कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण क्रान्ति रही किन्तु इसकी कुछ कमियां तथा सीमाएं भी सामने आई जो निम्न प्रकार से है:–

(i) चुनिन्दा फसलों तक सीमित :–

हरित क्रान्ति का प्रभाव विशेषकर गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा तथा मक्का के उत्पादन पर ही अधिक पड़ा। इसकी मुख्य सफलता तो गेहूँ के क्षेत्र में प्राप्त हुई। इसलिए इसे गेहूँ की क्रान्ति भी कहा जा सकता है। इन फसलों के अलावा अन्य फसलों पर इसका प्रभाव काफी कम रहा।

(ii) सीमित क्षेत्रों पर ही प्रभावी :–

हरित क्रान्ति का प्रभाव सिंचित क्षेत्रों में ही अधिक देखने को मिला। कृषि कार्यों में पिछड़े तथा असिंचित क्षेत्रों में यह क्रान्ति सफल सिद्ध नहीं हो सकी। यही कारण है कि पंजाब तथा हरियाणा जैसे सिंचित राज्यों में इसका सर्वश्रेष्ठ प्रभाव देखने को मिला।

(iii) यंत्रीकरण के दुष्परिणाम :–

हरित क्रान्ति के प्रारम्भ में खेतीहर श्रमिकों के रोजगार में बढ़ोतरी हुई किन्तु धीरे–धीरे यंत्रीकरण को बढ़ावा देने के कारण श्रमिकों का कार्य यंत्रों द्वारा किया जाने लगा जिससे, इनमें बेरोजगारी बढ़ी।

(iv) आय की असमानता में वृद्धि :–

हरित क्रान्ति का लाभ धनी तथा सम्पन्न कृषकों को ही अधिक मिला क्योंकि कृषि की नयी विधियों को अपनाने के लिए धन की आवश्यकता थी जो छोटे एवं गरीब किसानों के लिए सम्भव नहीं था। इस कारण धनी कृषकों ने इसका लाभ उठाकर अधिक सम्पन्नता हासिल की। दूसरी ओर विभिन्न प्रदेशों के बीच भी आय की असमानता बढ़ी, क्योंकि जिन प्रदेशों में हरित क्रान्ति सफल रही है, वहां के किसान सम्पन्न हुए तथा शेष राज्यों के किसानों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ।

(v) उर्वरकों के प्रयोग का दुष्परिणाम :–

हरित क्रान्ति में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग पर अधिक बल दिया। रसायनिक उर्वरको एवं कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग ने भूमि को अनुपजाऊ बना दिया, इसके साथ भूजल, पर्यावरण तथा जीवों को हानि पहुंची।

(vi) भू–जल स्तर में कमी :–

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप नलकूपों, ट्यूब वैलों के माध्यम से भूजल का अत्यधिक दोहन किया जाने लगा जिससे भूजल स्तर में गिरावट आई।

(vii) पूंजीवादी खेती को बढ़ावा :–

उन्नत बीज, रासायनिक खाद, कृषि औजार आदि सभी बहुत खर्चीले थे जिसके कारण खेती में पूंजीवादिता को बढ़ावा मिला।

(viii) संस्थागत परिवर्तनों की उपेक्षा :–

इस क्रान्ति में केवल तकनीकी परिवर्तनों पर जोर दिया गया तथा भूमि सुधारों को अनदेखा कर दिया गया।

इस प्रकार हरित क्रान्ति ने कृषि क्षेत्र के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया तथा तात्कालिक खाद्यान्न संकट को दूर कर देश को न केवल खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया बल्कि कृषिगत वस्तुओं का निर्यात भी किया जाने लगा।

श्वेत क्रांति

पशु धन उत्पादन और कृषि परस्पर सम्बद्ध है और ये एक–दूसरे पर निर्भर है और दोनों समग्र रूप से खाद्य सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। विश्व में सर्वाधिक पशु भारत में पाये जाते हैं और विश्व में सर्वाधिक दूध उत्पादन भी भारत में ही होता है किन्तु भारत में पशु नस्ल दयनीय स्थिति में है। इस कारण दूध उत्पादकता काफी कम है तथा लागत ऊँची आती है। इसमें सुधार के लिए सरकार द्वारा श्वेत क्रान्ति के रूप में एक सघन कार्यक्रम चालू किया गया।

वर्ष 1964–65 में भारतीय कृषकों के लिए सघन पशु विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत देश में दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिए पशुपालकों को पशुपालन के उन्नत एवं विकसित तरीकों का प्रशिक्षण प्रदान किया गया। इसमें पशुपालकों को उन्नत किस्म की गाय तथा भैंसे प्रदान की गई तथा कृत्रिम गर्भाधान के तरीके विकसित किए गए।

दूध के उत्पादन में तीव्र वृद्धि को ही श्वेत क्रान्ति कहा जाता है। सन् 1970 में राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने गुजरात के आणद गाँव से श्वेत क्रान्ति की शुरूआत की, जिसे ऑपरेशन फ्लड का नाम दिया गया। इसके जन्मदाता तथा सूत्रधार डॉ. वर्गीज कुरियन है। ऑपरेशन फ्लड विश्व का सबसे बड़ा समन्वित डेयरी विकास कार्यक्रम है।

श्वेत क्रान्ति का महत्व

(I) दूध उत्पादन में वृद्धि :–

श्वेत क्रान्ति के परिणामस्वरूप दूध के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश है तथा भारत में दूध का कुल वार्षिक उत्पादन सन् 2013–14 में 137.69 मीट्रिक टन है। प्रतिवर्ष दूध उत्पादन में वृद्धि होती जा रही है। 2013–14 में प्रति व्यक्ति 307 ग्राम प्रतिदिन दूध की उपलब्धता प्राप्त हुई।

(ii) कृषकों को आय :–

डेयरी व्यवसाय लाखों ग्रामीण परिवारों की आय का एक महत्वपूर्ण द्वितीय स्रोत बन गया है और लाखों लोगों विशेष रूप से महिला तथा सीमान्त किसानों के लिए आय के अवसर जुटाने में इसकी मुख्य भूमिका रही है।

(iii) ग्रामीण बेरोजगारों के लिए रोजगार :–

ग्रामीण व भूमिहीन लोगों तथा खेतीहर मजदूरों को पशुपालन के रूप में एक स्थायी तथा स्वनियोजित रोजगार उपलब्ध हुआ। डेयरी विकास से इन्हें इस क्षेत्र में व्यापक रोजगार मिला। देश में अधिकांश दूध उत्पादन सीमान्त तथा भूमिहीन मजदूरों द्वारा ही किया जाता है। इस कार्य में देश के 90 लाख किसान परिवार लगे हुए हैं।

(iv) सन्तुलित ग्रामीण विकास को बढ़ावा :–

डेयरी विकास के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी आधारभूत संरचना (सड़क, परिवहन, संचार, बैंकिंग) का विकास हुआ क्योंकि श्वेत क्रान्ति के सफल क्रियान्वन के लिए इनका विकास आवश्यक था।

(v) शहरी क्षेत्रों को दूध की उपलब्धता :–

ऑपरेशन फ्लड के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों से अतिरिक्त उत्पादित दूध शहरी क्षेत्रों में पहुंचाया गया जिससे शहरी क्षेत्र के लोगों को न केवल दूध बल्कि दही, छाछ, घी, पनीर तथा मक्खन जैसे दूध निर्मित पदार्थ सरलता से उपलब्ध होने लगे।

(vi) पशु नस्ल में सुधार :–

ऑपरेशन फ्लड के परिणामस्वरूप पशुओं की नस्ल सुधार तथा उनकी बीमारियों की रोकथाम के समुचित प्रबन्धन से भारत में पशु नस्ल में भी सुधार हुआ है।

इस प्रकार श्वेत क्रान्ति ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था की काया ही पलट दी। हरित क्रान्ति ने किसानों के कृषि सुधार कर उनके मुख्य व्यवसाय की सुरक्षा की तो श्वेत क्रान्ति ने पशुपालन व दूध उत्पादन में सुधारात्मक सहयोग कर उन्हें एक अतिरिक्त रोजगार एवं आय का आधार प्रदान किया।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग, नींव एवं रीढ़ है।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्वपूर्ण योगदान निम्न क्षेत्रों में रहा हैः–
   (I) राष्ट्रीय आय
   (ii) रोजगार उपलब्ध करवाना
   (iii) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में योगदान
   (iv) औद्योगिक विकास में योगदान
   (v) खाद्यान्न एवं चारा आपूर्ति में योगदान
   (vi) निर्धनता उन्मूलन में योगदान
   (vii) राजस्व में योगदान
   (viii) अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास में योगदान
   (ix) पशुधन विकास
3. कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत नवीन प्रवृत्तियां :–
   (I) खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि
   (ii) प्रमुख फसलों के अन्तर्गत उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि
   (iii) भूमि सुधार कार्यक्रम का क्रियान्वयन
   (iv) सिंचाई को बढ़ावा
   (v) कृषि जोतों का पुनर्गठन
   (vi) खाद, उर्वरक कीटनाशकों का प्रयोग
   (vii) उन्नत बीजों का प्रयोग
   (viii) कृषि यन्त्रीकरण को बढ़ावा
   (ix) कृषि उपजों का न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण
   (x) कृषि साख को बढ़ावा
   (xi) किसान क्रेडिट कार्ड योजना का क्रियान्वन
   (xii) कृषि बीमा कार्यक्रम को बढ़ावा
4. कृषि उत्पादकता से तात्पर्य है एक इकाई से प्राप्त होने वाले उत्पादन की मात्रा जिसे प्रति हैक्टेयर उत्पादन के रूप में प्रकट किया जाता है।
5. भारत में अनेक विकास कार्यक्रमों के बाद भी आज कृषि क्षेत्र में उत्पादकता काफी कम बनी हुई है।
6. कृषि क्षेत्र में कम उत्पादकता के कारण हैः–
   (i) प्राकृतिक (ii) संस्थागत (iii) तकनीकी व अन्य
7. भारत में सिंचाई के तीन प्रमुख स्रोत हैः– नहरें, कुएं व तालाब
8. भारत में कृषि क्षेत्र में निम्न समस्याएं बनी हुई हैं:–
   (i) प्राकृतिक विपदाएं
   (ii) जोतों का आकार छोटा होना
   (iii) कृषि वित्त का अभाव
   (iv) कृषि आगतों का अभाव
   (v) सिंचाई सुविधाओं का अभाव
   (vi) भूमि की शक्ति का ह्रास
   (vii) कृषि विपणन की समस्या
   (viii) किसानों की रूढिवादिता
   (ix) किसानों की निरक्षरता
   (x) भू–सुधार कार्यक्रमों का उचित क्रियान्वन नहीं होना
   (xi) उचित मूल्य का अभाव।
9. कृषि क्षेत्र की समस्याओं के सुधार हेतु निम्न उपायों को अपनाना चाहिएः–
   (I) भू–सुधार कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण ढ़ंग से लागू किया जाए।
   (ii) कृषकों को अनुदानित कृषि आगते उपलब्ध करवायी जावे।
   (iii) सूखी खेती की विधियों का प्रसार किया जावे।
   (iv) कृषि भण्डार गृहों की स्थापना की जाये।
   (v) जैविक कृषि को बढ़ावा दिया जाये।
   (vi) ग्रामीण कुटीर एवं कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा दिया जाये।
   (vii) कृषि के साथ रोजगार के वैकल्पिक स्रोतों को बढ़ाया जाये।
   (viii) शिक्षा का प्रसार किया जाए।
10. हरित क्रान्ति से तात्पर्य है कि कम समय में कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि होना तथा यह वृद्धि लम्बे समय तक बनाए रखना।

11. हरित क्रान्ति का प्रारम्भ सन् 1966–67 के बीच हुआ।

12. हरित क्रान्ति के प्रमुख तत्व निम्न हैः–

. (I) अधिक उपज देने वाली फसलों का कार्यक्रम

(ii) बहु–फसल कार्यक्रम

(iii) लघु सिंचाई पर बल

(iv) रासायनिक खाद के प्रयोग पर बल

(v) उन्नत बीजों का प्रयोग

(vi) कृषि में यन्त्रीकरण को बढ़ावा

(vii) पौध संरक्षण कार्यक्रम

(viii) कृषि शिक्षा तथा शोध को बढ़ावा

(ix) भूसंरक्षण कार्यक्रम

(x) कृषि विकास हेतु विभिन्न संस्थाओं की स्थापना

(xi) मूल्य आयोग की स्थापना

(xii) फसल बीमा कार्यक्रम

13. हरित क्रान्ति का महत्वः–

(i) फसलों के उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि हुई।

(ii) खेतीहर मजदूरों को रोजगार में वृद्धि हुई।

(iii) ग्रामीण निर्धनता में कमी आई।

(iv) कृषि में यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिला।

(v) उन्नत किस्मों का उत्पादन बढ़ा।

(vi) कृषि में व्यावसायिक दृष्टिकोण का विकास हुआ।

(vii) कृषि में आधुनिकीरण को बढ़ावा मिला।

14. हरित क्रान्ति की सीमाएँः–

(i) चुनिन्दा फसलों तक ही सीमित।

(ii) सीमित क्षेत्रों तक ही प्रभावी।

(iii) यन्त्रीकरण के दुष्परिणाम

(iv) आय की असमानता में वृद्धि

(v) उर्वरकों के प्रयोग के दुष्परिणाम

(vi) भू–जल स्तर में कमी

(vii) पूंजीवादी खेती को बढ़ावा

(viii) संस्थागत परिवर्तनों की उपेक्षा

15. दूध उत्पादन में तीव्र वृद्धि श्वेत क्रान्ति के नाम से जानी जाती है।

16. श्वेत क्रान्ति के जन्मदाता डॉ. वर्गीज कुरियन है।

17. श्वेत क्रान्ति का महत्वः–

(i) दूध उत्पादन में वृद्धि

(ii) कृषकों की आय में वृद्धि

(iii) ग्रामीण बेरोजगारों के लिए रोजगार

(iv) सन्तुलित ग्रामीण विकास को बढ़ावा

(v) शहरी क्षेत्रों को दूध उपलब्धता

(vi) पशु नस्ल में सुधार

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. भारत में रोजगार का प्रमुख आधार हैः–
   (क) कृषि (ख) उद्योग
   (ग) सेवा क्षेत्र (घ) पशुपालन
2. अल्पकालीन ऋणों की अवधि कितनी होती है ?
   (क) 15 महीने से कम (ख) 2 वर्ष से कम
   (ग) 5 वर्ष से कम (घ) 10 वर्ष से कम
3. हरित क्रान्ति का सर्वाधिक लाभ किस राज्य को मिला ?
   (क) गुजरात (ख) पंजाब
   (ग) केरल (घ) जम्मू कश्मीर
4. श्वेत क्रान्ति का सम्बन्ध किस क्षेत्र में है ?
   (क) मत्स्य पालन (ख) पशुपालन
   (ग) बागवानी (घ) कोई नही

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कृषि की सहायक क्रियाएं कौन–कौन सी है ?
2. जायद फसलें किसे कहते है ?
3. लघु सिंचाई परियोजना क्या है ?
4. कृषि जोत किसे कहते है ?
5. उर्वरकों में मुख्य रूप से किन उर्वरकों का प्रयोग होता है ?
6. कृषि साख के गैर संस्थागत स्रोत कौन–कौन से है ?
7. निर्यातों में कृषि उत्पादों का कितना हिस्सा हैं ?
8. हरित क्रान्ति किसे कहते है ?
9. अधिक उपज देने वाली फसल कार्यक्रम को किन फसलों पर लागू किया गया ?
10. भारत मश्वेत क्रान्ति के जन्मदाता कौन है ?

11. पायलट प्रोजेक्ट के रूप में किस कार्यक्रम को शुरू किया गया ?

12. सर्वाधिक पशुधन किस देश में पाया जाता है ?

13. विश्व का सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम कौनसा है ?

14. हरित क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य क्या था ?

15.गहन कृषि जिला कार्यक्रम कितने जिलों में शुरू किया गया?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कृषि यन्त्रीकरण किसे कहते हैं ?

2. किसान क्रेडिट कार्ड योजना क्या है ?

3. व्यापारिक फसलें किसे कहा जाता है ?

4.कृषि उत्पादकता में कमी के प्राकृतिक कारण कौन–कौन है?

5. जोतों का उपविभाजन एवं अपखण्डन से आप क्या समझते है?

6. समर्थन मूल्य किसे कहते हैं ?

7. भारतीय कृषि को मानसून का जुआ क्यों कहा जाता है ?

8. पशुधन विकास में कृषि का महत्व समझाइए।

9. एच.वाई.वी.पी. कार्यक्रम क्या है ?

10. लघु सिंचाई कार्यक्रम को समझाइये ?

11. पौध संरक्षण कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं ?

12. श्वेत क्रान्ति के तीन लाभ बताइये ?

13. रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के दुष्परिणाम बताइये ?

14. भूजल स्तर में कमी के क्या कारण है ?

15. हरित क्रान्ति व श्वेत क्रान्ति में क्या अन्तर है ?

16. सघन पशु विकास कार्यक्रम को समझाइये ?

17. शहरों की दूध आवश्यकता को श्वेत क्रान्ति ने किस प्रकार पूरा किया ?

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व को समझाइयें ?

2. भारत की कृषि विकास की समस्याएँ व निराकरण के उपाय समझाइये ?

3. हरित क्रान्ति का अर्थ बताते हुए उसकी प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन कीजिए ?

4. श्वेत क्रान्ति से आप क्या समझते है ? इससे विभिन्न वर्गों को क्या–क्या लाभ प्राप्त हुए ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर :–

(1) क (2) क (3) ख (4) ख

अध्याय 18

व्यवसाय एवं वाणिज्यिक क्रियाएं

व्यवसाय की अवधारणा भारत के लिए कोई नई नहीं है। आज के समृद्ध समझे जाने वाले देश अमेरिका और ब्रिटेन का इतिहास 700–800 वर्षों से ज्यादा पुराना नहीं है जबकि उससे पूर्व भारतीय व्यापारी समुद्र मार्ग से सुदूर देशों में माल लेकर जाया करते थे तथा विनिमय में स्वर्ण लेकर आते थे। भारत एक उत्पादक व व्यावसायिक देश होने के कारण व्यापार विनिमय में लाये गये स्वर्ण को अपने आस्था के केन्द्र मन्दिरों को स्वर्णजड़ित बनाते थे। उसी से आकर्षित होकर पश्चिम के लुटेरों ने भारत के इन स्वर्ण मन्दिरों को लूटने का उद्देश्य बनाया। सोमनाथ (गुजरात) का स्वर्ण निर्मित मन्दिर इसका उदाहरण है। ढाका की मलमल, भारत की लोहे की ढलाई, स्वर्ण आभूषण व अद्भुत भवन स्थापत्य कला का विश्व में कोई सानी नहीं है। भारत जो कि एक निर्यातक देश हुआ करता था, सैकड़ों सालों की गुलामी के कारण व्यवसाय की दृष्टि से एक कमजोर राष्ट्र बन गया, यद्यपि हालांकि आजादी के पश्चात् भारत ने आर्थिक व व्यावसायिक गतिविधियों में उल्लेखनीय प्रगति की है।

मनुष्य अपने तथा अपने परिवार की जीविका चलाने के लिए अर्थात् धनार्जन करने के लिए अनेक प्रकार की आर्थिक क्रियााएँ करता है। ऐसी समस्त क्रियाओं को हम व्यवसाय कह सकते हैं। हम मानवीय क्रियाओं को दो वर्गों में बांट सकते है।–

(अ) गैर आर्थिक क्रियाएँ– वह कार्य जिनका अर्थोपार्जन से सम्बन्ध नहीं होता है अर्थात् जो कार्य आपसी सम्बन्ध, सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्य, देशप्रेम आदि भावनाओं से प्रेरित होकर किये जाते है, गैर आर्थिक कार्य कहलाते हैं। जैसे– एक गृहणी द्वारा अपने परिवार के लिए भोजन बनाना , अपने बच्चों को पढ़ाना, जबकि वही गृहणी किसी विद्यालय में शिक्षिका है तो उसे उस कार्य का पारिश्रमिक मिलेगा और वह उसकी आर्थिक क्रिया कहलाएगी। समाज, जनता की भलाई के निमित नि:शुल्क कार्य करना गैर–आर्थिक क्रियाओं में सम्मिलित होते हैं।

(ब) आर्थिक क्रियाएँ– वह सभी कार्य जो मनुष्य द्वारा धन कमाने के उद्देश्य से किये जाते हैं, आर्थिक क्रियाएं कहलाती हैं।

आर्थिक क्रियाओं में वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण से सम्बंधित होता है। फेक्ट्री में वस्तुओं का उत्पादन करना, वहां से थोक व्यापारी द्वारा खुदरा व्यापारियों को माल बेचना तथा खुदरा (फुटकर) व्यापारियों द्वारा सीधे ग्राहकों को माल बेचना, उत्पादन से लेकर ग्राहकों को माल बेचने तक विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अपनी सेवाएं दी जाती है। उन सेवाओं के बदले उनको वेतन, कमीशन, लाभ आदि के रूप में धन की प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ अध्यापक द्वारा विद्यालय में पढ़कर अपना वेतन लेना आदि सभी आर्थिक क्रियाओं में आता है।

आर्थिक क्रियाओं को हम तीन वर्गों में बांट सकते हैं–

1.वृत्ति एवं पेशा– अपने विशिष्ट अध्ययन से प्राप्त योग्यता के आधार पर अपनी व्यक्तिगत सेवाएं उपलब्ध करवाना तथा अपने द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं के बदले शुल्क लेना वृत्ति एवं पेशा कहलाता है। जैसे– डॉक्टर, वकील, चार्टर्ड अकाउंटेंट, आर्किटेक्ट आदि अपनी विशिष्ट सेवाओं को प्रदान करते हैं तथा उसके बदले शुल्क या फीस लेते हैं।

2.नौकरी अथवा रोजगार– व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन –यापन के लिए अपनी सेवायें प्रदान करना नौकरी अथवा मजदूरी करना कहलाता है। नियोक्ता (नौकरी देने वाला) के साथ किये गये समझौते अथवा सेवा नियमों के अन्तर्गत व्यक्तियों द्वारा किसी कार्य को करना अथवा अपनी दी गयी सेवाओं के बदले में नियोक्ता से वेतन अथवा मजदूरी के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त करना, नौकरी अथवा मजदूरी करना कहलाता है। जैसे– विद्यालय में शिक्षण कार्य करना, अस्पताल में डॉक्टर व नर्स, सरकारी व गैर सरकारी कार्यालयों में कार्य करना, कारखाने में मजदूर का मजदूरी करना, भवन निर्माण आदि कार्यों में मजदूरी करना है।

3.व्यवसाय– व्यवसाय को एक आर्थिक क्रिया के रूप में

परिभाषित किया जाता है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय तथा सेवाओं को प्रदान करना सम्मिलित है। उपर्युक्त व्यावसायिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य समाज में मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करके धन का अर्जन करना है।

अतः व्यवसाय को निम्नलिखित शब्दों मे पारिभाषित किया जा सकता है– ''व्यवसाय के अन्तर्गत वे समस्त वैध मानवीय आर्थिक क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो वस्तुओं एवं सेवाओं के नियमित उत्पादन एवं वितरण के लिए की जाती हैं तथा जिनका उद्देश्य पारस्परिक हित एवं सामाजिक संतुष्टि है, जिसके परिणामस्वरूप समाज के जीवन स्तर में वृद्धि होती है।''

4. व्यवसाय की विशेषताएं– सामान्यतया व्यवसाय की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैः–

(i) मानवीय आर्थिक क्रियाएं– व्यवसाय में केवल मनुष्य द्वारा वैध तरीके से धन कमाने के उद्देश्य से की गई समस्त आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। धनोपार्जन क्रियाएं मनुष्य द्वारा ही की जा सकती है, पशु–पक्षियों द्वारा नहीं की जा सकती है। बिना धन कमाने के उद्देश्य से की गई सेवाओं को अनार्थिक क्रियाएँ कहते हैं, जैसे– साधु–सन्यासियों, धर्म–प्रचारकों द्वारा की जाने वाली सेवाएं, गरीब व्यक्तियों को निःशुल्क भोजन करवाना व्यवसाय की श्रेणी में नहीं आता है।

(ii) वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन– बाजार में उपभोक्ताओं को वस्तुएं उपलब्ध करवाने के लिए विभिन्न उत्पादन इकाइयों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन करना तत्पश्चात् व्यापारियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का क्रय कर उनकों ग्राहकों को विक्रय करना आदि है। जैसे– फ्रिज, कपड़े, टी.वी. गहने, मोटर साईकिल, कार आदि वस्तुओं का उत्पादन करना तथा परिवहन, बैंक ,बीमा, संचार आदि द्वारा सेवाएं प्रदान करना है।

(iii) वस्तुओं और सेवाओं का नियमित रूप से विनिमय– व्यवसाय के अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं का नियमित विनिमय व वितरण होते रहना चाहिए। जैसेकि बाजार में व्यापारी लोग नियमित रूप से अपनी दुकान या फैक्ट्री में वस्तुओं और सेवाओं का व्यापार करते हैं। यदि कोई व्यक्ति विशेष अपना पुराना टी.वी. बाजार में बेचता है तो इसे हम व्यापार नहीं कह सकते हैं।

(iv) व्यवसाय की निरन्तरता –बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं का व्यापार प्रतिदिन नियमित रूप से किया जाता है, वही व्यवसाय कहलाता है। कोई व्यक्ति कभी –कभार किसी वस्तु या सेवा का उत्पादन एवं वितरण करे, उसे हम व्यवसाय नहीं कह सकते हैं।

(v) लाभ अर्जन करना व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य होता है– व्यवसाय या विनिमय का अर्थ है किसी प्रतिफल के बदले वस्तु एवं सेवा का उत्पादन, क्रय–विक्रय करना तथा उससे लाभ प्राप्ति करना। बिना लाभ की कामना के उसे व्यवसाय नहीं कह सकते है। बिना लाभ के व्यवसाय निरन्तर रुप से नहीं चलाया जा सकता है।

(vi) प्रतिफल की अनिश्चितता– इसका अभिप्राय व्यवसाय में एक निश्चित समय में होने वाले लाभ की अस्थिरता से है। प्रत्येक व्यवसाय के परिचालन में व्यवसायी कुछ धन (पूँजी) का विनियोग लाभ प्राप्ति के लिए करता है लेकिन यह निश्चित नहीं होता है कि उसे कितना लाभ प्राप्त होगा अथवा हानि होगी। अतः व्यवसास में लाभ की अनिश्चितता बनी रहती है।

(vii) वैधानिकता – अवैधानिक तरीके से की जाने वाली व्यावसायिक क्रियाएं व्यवसाय नहीं कहलायी जा सकतीं, जैसे– चोरी, सट्टा, तस्करी, कालाबाजारी करके धन अर्जन करना। उपरोक्त क्रियाएं अवैधानिक है।

(viii) जोखिम की विद्यमानता– जोखिम का अर्थ है लाभ प्राप्ति की अनिश्चितता। अर्थात् व्यवसाय में हानि होने की भी संभावना रहती है, जिसे हम जोखिम कहते हैं और बिना जोखिम की कल्पना किये लाभ प्राप्ति नहीं होती हैं।

व्यवसायी व्यवसाय लाभ अर्जन के लिए करता है। परन्तु बाजार में जोखिम हमेशा विद्यमान रहता है। जैसे ग्राहकों की पसंद, फैशन परिवर्तन, उत्पादन

विधियों में परिवर्तन, फैक्ट्री में हड़ताल, तालाबंदी, बाजार प्रतिस्पर्धा, आग, चोरी, दुर्घटना, प्राकृतिक आपदाएं आदि।

(ix) सामाजिक परिवर्तन का साधन– व्यवसाय की सहायता से लोगों के जीवन निर्वाह के साधनों में वांछित परिवर्तन करके उनके जीवन स्तर को उन्नत किया जा सकता है तथा उनके विचारों को समाज की आवश्यकता के अनुरूप किया जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पश्चिमी देशों में हुई औद्योगिक क्रान्ति से अनेक सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन देखने को मिले है।

(x) उपयोगिता का सृजन– जिस प्रकार एक कहावत प्रचलित है, आवश्यकता आविष्कार की जननी है, उसी प्रकार व्यावसायिक क्रियाओं के माध्यम से जनता के बीच वस्तुओं की उपयोगिता का सृजन किया जाता है। उदाहरणार्थ–मोबाईल फोन के आविष्कार से पूर्व भी लोगों में संदेश व संचार का कार्य होता था परन्तु मोबाईल फोन के आविष्कार से जनता के बीच उसकी उपयोगिता का सृजन हुआ और आज मोबाईल फोन तथा उस माध्यम से संचार सेवा प्रदाताओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ी है।

5.व्यवसाय का उद्देश्य– मनुष्य द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है, चाहे व क्रिया आर्थिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक हो अथवा राजनैतिक । व्यवसाय लाभ प्राप्ति के लिए किया जाता है तथा व्यवसायी स्वयं भी यह दर्शाते है कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन या वितरण करने में उनका मुख्य लक्ष्य लाभ कमाना ही है। समस्त व्यवसाय की लागत से अधिक कमाने का व्यवसायियों का प्रयास रहता है। दूसरे शब्दों में, व्यवसाय का उद्देश्य लाभ अर्जित करना है जो कि लागत व आगम का आधिक्य है। यद्यपि व्यवसाय की सफलता के लिए लाभ महत्वपूर्ण है फिर भी वर्तमान प्रतिस्पर्धा के युग में लाभ अर्जित करने के एकमात्र उद्देश्य को लेकर व्यवसाय लम्बे समय तक नहीं किया जा सकता है परन्तु आज के युग में यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है कि व्यावसायिक इकाइयां समाज का एक अंग हैं और उनके कुछ उद्देश्य सामाजिक उत्तरदायित्वों सहित होने चाहिए ताकि वह जनता का विश्वास अर्जित कर लम्बे समय तक चल सके तथा प्रगति कर सके। इसलिए हम कह सकते हैं कि लाभ अग्रणी उद्देश्य होता है लेकिन एकमात्र नहीं।

(अ) लाभ उद्देश्य– प्रत्येक व्यवसाय का यह प्रयत्न होता है कि जो भी उसने निवेश किया है उससे अधिक प्राप्त किया जाये। लागत से आगम का आधिक्य लाभ कहलाता है। लाभ व्यवसाय का विभिन्न कारणों से एक आवश्यक उद्देश्य माना जाता है, अर्थात्–

(i) यह व्यवसायी के लिए आय का स्रोत है।

(ii) यह व्यवसाय के विस्तार के लिए आवश्यक वित्त का स्रोत है।

(iii) यह व्यवसाय की कुशल कार्यशैली का द्योतक है।

(iv) यह व्यवसाय का समाज के लिए उपयोग होने की स्वीकारोक्ति भी हो सकता है तथा

(v) यह एक व्यावसायिक इकाई की प्रतिष्ठा को बढ़ाता है।

(ब) सेवा उद्देश्य– वर्तमान ग्राहकोन्मुखी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं को पूर्ण संतुष्टि के साथ सेवाएं उपलब्ध करवाना ही व्यावसायिक सफलता का आधार है। इस हेतु व्यवसायी लाभ के स्थान पर सेवा उद्देश्य को अधिक महत्व देने लगे हैं। पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, ''ग्राहक को संतुष्ट करना प्रत्येक व्यवसाय का उद्देश्य है।'' इस प्रकार ग्राहक को संतुष्टि प्रदान कर उचित लाभ कमाना ही सेवा उद्देश्य है। इसकी पूर्ति हेतु की जाने वाली प्रमुख क्रियाएं निम्न है–

(i) ग्राहकों को आवश्यकतानुसार वस्तुएं प्रदान करना।

(ii) उचित मूल्य पर उन्नत किस्म की वस्तुएं उपलब्ध करवाना।

(iii) मुनाफाखोरी व अनुचित व्यवहार न करना।

(iv) विक्रय पश्चात् सेवाएं प्रदान करना।

(v) मिथ्या व भ्रमित करने वाले विज्ञापन नहीं देना।

(vi) नव प्रवर्तन अथवा नवाचार करना।

(स) मानवीय उद्देश्य– व्यवसाय के दौरान अनेक मानवीय समूहों से व्यवसायी का काम पड़ता है। उन सभी के प्रति उचित व्यवहार रखते हुए उनके हितों की रक्षा करना एवं उनमें उचित

सामंजस्य स्थापित करना ही मानवीय उद्देश्य है। मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति की जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण क्रियाएँ इस प्रकार हैं–

(i) राष्ट्रीय हितों व प्राथमिकताओं को ध्यान में रखना।

(ii) पर्याप्त वेतन एवं अच्छी कार्यदशा प्रदान करना।

(iii) श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना।

(iv) श्रमिकों की समस्याओं का यथाशीघ्र निपटारा करना।

(v) कर्मचारियों को पदोन्नति तथा विकास के अवसर प्रदान करना।

(vi) निवेशकर्ताओं के लिए उचित लाभ की व्यवस्था करना।

(vii) विनियोजित धन की सुरक्षा सुनिश्चित करना।

(viii) पूर्तिकर्त्ताओं के प्रति सहयोगी होना एवं उनके उत्पाद का उचित मूल्य देना।

(ix) अधिकाधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाना।

(x) श्रमिकों व कर्मचारियों के प्रति मानवीय व्यवहार करना।

6. व्यवसाय का क्षेत्र

व्यवसाय एक विस्तृत शब्द है। वे सभी क्रियाएं जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण से सम्बन्ध रखती हैं, उन्हें व्यवसाय के क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है।

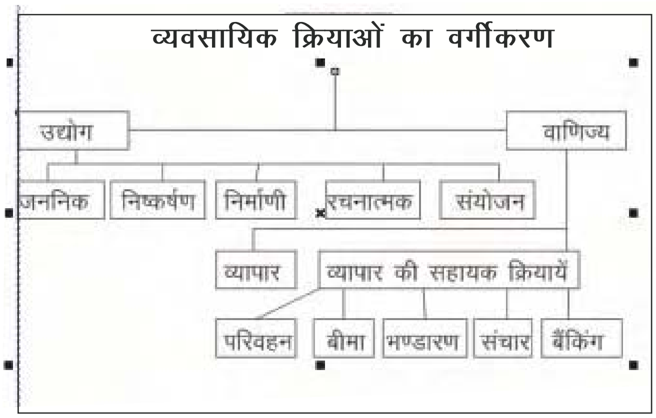

इस प्रकार व्यावसायिक क्रियाओं को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में उत्पादन से सम्बंधित क्रियाओं को उद्योग तथा द्वितीय वर्ग में क्रय–विक्रय एवं वितरण सम्बन्धी क्रियाओं को वाणिज्य कहा जाता हैं।

(I) उद्योग– उद्योग का आशय उन व्यावसायिक क्रियाओं से है जिनके द्वारा भौतिक संसाधनों के प्रयोग से आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं का उत्पादन होता है। उद्योग प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हुए उनके रूप में परिवर्तन कर उन्हें उपभोग योग्य बनाते हैं। इस प्रकार ओद्यौगिक क्रियाओं का उद्देश्य वस्तुओं को उस रूप में उपलब्ध कराना हैं जिस रूप में वे उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा उद्देश्यों के अनुकूल सिद्ध हो सकें जिससे ग्राहक उन वस्तुओं का उपयोग करेंगे। अतः उद्योग उपयोगिता का सृजन करते हैं। कार्य की प्रकृति के आधार पर हम उद्योगों का निम्नानुसार वर्गीकरण कर सकते है–

(क) जननिक उद्योग– इस वर्ग में उन उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है, जिनका सम्बन्ध उत्पत्ति से होता है, जैसे –कृषि, बागवानी, पशु–पालन, मत्स्य–पालन, मुर्गी–पालन, वन संवर्धन आदि।

(ख) निष्कर्षण उद्योग– इस वर्ग में उन उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध प्राकृतिक संसाधनों, जैसे भूमि, वन, जल आदि से विभिन्न प्रकार के पदार्थ प्राप्त करना होता है, जैसे–खनन द्वारा भूमि से कोयला , लोहा, तांबा, खनिज, तेल, गैस आदि निकालना, समुद्र से मछली पकड़ना, वन सम्पदा का दोहन कर लकड़ी, जड़ी–बूटियां, लाख, गोंद, रबर आदि एकत्र करना आदि निष्कर्षण उद्योग की श्रेणी में आते है।

(ग) निर्माणी उद्योग– इस वर्ग में उन उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है जो कच्चे माल और अर्द्धनिर्मित माल को पक्के माल में रूपान्तरित कर उपभोग योग्य बनाते हैं, जैसे–गन्ने से चीनी बनाना, सूत से कपड़ा बनाना, लकड़ी से फर्नीचर बनाना आदि। सीमेन्ट उद्योग, कागज उद्योग, साबुन उद्योग, जूट उद्योग आदि भी निर्माणी उद्योग के उदाहरण है।

(घ) रचनात्मक उद्योग– इस वर्ग में उन उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है जो साधनों को मानवहित के लिए अधिक उपयोगी एवं सुविधाजनक बना देते हैं जैसे–सड़क, पुल, नहर, बांध, भवन आदि का निर्माण करना। रचनात्मक उद्योगों के उत्पाद सामान्यतः स्थायी होते हैं। एक निश्चित स्थान पर ही इनका निर्माण या संरचना की जाती है।

(ङ) संयोजन उद्योग–इस वर्ग में वे उद्योग आते हैं जिनमें छोटे–बड़े कलपुर्जे जोड़कर उपयोग योग्य उत्पाद का निर्माण किया जाता है, जैसे –कम्प्युटर, कार, घड़ी आदि।

उद्योग के उदाहरण

जननिक	निष्कर्षण	निर्माणी	रचनात्मक	संयोजना
कृषि	खनन	चीनी	सड़क	कम्प्यूटर
बागवानी	मछली पकड़ना	सीमेंट	पुल	कार
पशुपालन	वन सम्पदा	कपड़ा	नहरें	स्कूटर
मत्स्य पालन	का दोहन	लोहा	बांध	घड़ी
वन संवर्द्धन	शिकार करना	जूट	भवन	

(ii) वाणिज्य

औद्योगिक क्रियाओं का सम्बन्ध आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वस्तुओं के उत्पादन से होता है। उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उचित स्थान व समय पर, उचित ढंग से, उचित मात्रा में, उचित मूल्य पर उपभोक्ताओं एवं ग्राहकों तक पहुंचाने के कार्य वाणिज्य करता है। इस प्रकार वाणिज्य का सम्बन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण से है। निर्मित माल को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने में कई बांधायें आती हैं, जैसे –समय, स्थान, जोखिम, सूचना वित्त आदि। वाणिज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं के उपभोक्ताओं तक निरन्तर एवं निर्विघ्न प्रवाह हेतु की जाने वाली सभी क्रियायें वाणिज्य में सम्मिलित की जाती है। वाणिज्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(I) वाणिज्य उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुंचाने का कार्य करता है।

(ii) वाणिज्य वितरण सम्बन्धी बाधाओं को दूर कर वस्तुओं के विनिमय को सुगम बनाता है।

(iii) वाणिज्य द्वारा समय, स्थान एवं अधिकार उपयोगिताओं का सृजन होता है।

(iv)वाणिज्य में व्यापार एवं व्यापार की सहायक क्रियायें सम्मिलित की जाती हैं।

अतः वाणिज्य व्यवसाय का एक अंग है। वाणिज्य से सम्बंधित सभी क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–(क) व्यापार (ख) व्यापार की सहायक क्रियाएं।

(क) व्यापार – लाभ कमाने के उद्देश्य से वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय–विक्रय को व्यापार कहा जाता है किन्तु वर्तमान प्रतिस्पर्धा के युग में ऐसे क्रय–विक्रय का उद्देश्य पारस्परिक हित होना चाहिए। अतः व्यापार के आशय वस्तुओं के ऐसे क्रय–विक्रय से है जो क्रेता एवं विक्रेता दोनो के पारस्परिक हित के लिए किया जाता है। व्यापार द्वारा स्वामित्व या अधिकार उपयोगिता का सृजन होता है तथा व्यापार में संलग्न व्यक्ति को व्यापारी के नाम से जाना जाता है। व्यापार की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

(1) व्यापार मे वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय–विक्रय सम्मिलित है।

(2)व्यापार का उद्देश्य क्रेता एवं विक्रेता का पारस्परिक हित होता है।

(3)व्यापार में वस्तुओं व सेवाओं का विक्रय प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से (मध्यस्थों द्वारा) किया जा सकता है।

(4) व्यापार द्वारा अधिकार उपयोगिता का सृजन होता है।

(5) व्यापार वाणिज्य का अंग है।

(ख) व्यापार की सहायक क्रियाएं– वे सभी कार्य जो वस्तुओं एवं सेवाओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुंचाने में सहायता करते हैं, व्यापार की सहायक क्रियाओं के अन्तर्गत आते हैं। ये कार्य परिवहन, भण्डारण, बीमा, बैंकिंग, संचार, विज्ञापन आदि सेवाओं के माध्यम से सम्पन्न किये जाते हैं। इन सभी क्रियाओं द्वारा व्यवसाय में स्थान व समय उपयोगिताओं का सृजन होता है।

व्यापार वाणिज्य एवं उद्योग में अन्तर

अन्तर का आधार	व्यापार	वाणिज्य	उद्योग
अर्थ	वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रतिफल के बदले क्रय–विक्रय व्यापार कहलाता है।	व्यापार तथा व्यापार की सहायक क्रियायें वाणिज्य के अन्तर्गत आती हैं।	वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को उद्योग कहते हैं।
उद्देश्य	वस्तुओं एवं सेवाओं का विक्रय करना।	वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय में आने वाली बाधाओं को दूर करना।	वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करा।
क्षेत्र	व्यापार का क्षेत्र सीमित है। इसमें केवल वस्तुओं का क्रय–विक्रय ही सम्मिलित होता है।	वाणिज्य का क्षेत्र व्यापक है। इसमें व्यापार तथा व्यापार की सहायक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।	उद्योग में सभी तरह की उत्पादन सम्बंधी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।
उपयोगिता का सृजन	अधिकार उपयोगिता का सृजन होता है।	समय, स्थान एवं अधिकार उपयोगिताओं का सृजन होता है।	रूप उपयोगिता का सृजन होता है।
परस्पर निर्भरता	व्यापार का आधार उद्योग होता है।	वाणिज्य का आधार व्यापार होता है।	उद्योग का आधार वाणिज्य होता है।

बैंक वह संस्था है जो मुद्रा एवं साख का व्यवसाय करती है। बैंक लोगों की जमाएं स्वीकार करती है तथा ऋण देने व कटौती की सुविधा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में ग्राहकों की सुविधा का ध्यान में रखते हुए उनकी ओर से अभिकर्ता सम्बंधी कार्य करती है। आज इन्टरनेट बैंकिंग द्वारा किसी भी स्थान से अपने खाते का संचालन किया जा सकता है तथा 24 घंटे बैंकिंग अर्थात् एटीएम मशीन से 24 घंटे में कभी भी ग्राहक पैसा निकाल सकता है तथा जमा करवा सकता है।

भारतीय बैंकिंग अधिनियम, 1949 के अनुसार , ''बैंक कम्पनी वह है जो बैंकिंग का व्यवसाय करे।'' बैंकिंग से तात्पर्य ऋण देने या निवेश के लिए जनता से धन के रुप में जमा करना है, जो मांग पर देय होगा तथा चैक, ड्राफ्ट या किसी अन्य प्रकार से निकाला जा सकेगा।

1. बैंक के कार्य–

(अ) प्राथमिक कार्य– बैंक इन दो कार्यों के रूप से जाने जाते हैं, जो कि प्रत्येक बैंक को अनिवार्य रूप से करने पड़ते हैं–

(क) जमाएं स्वीकार करना तथा (ख) ऋण देना

(क) जमाएं स्वीकार करना– आधुनिक बैंकों का एक प्रमुख कार्य जनता से निक्षेप या जमाएं प्राप्त करना है। समाज के विभिन्न वर्ग जो बचत करते हैं, उसे वे बैंकों में जमा करवा देते हैं। इस प्रकार जनता के धन की सुरक्षा भी हो जाती है तथा उन्हें अपनी जमाओं पर कुछ ब्याज भी प्राप्त हो जाता है तथा जनता जो धन बैंकों में जमा करवाती है, बैंक उसको देश के निर्माण में विभिन्न प्रकार से विनियोग करते हैं। इस प्रकार जनता में बचत की आदतें डालते हैं तथा देश में पूंजी निर्माण कर आर्थिक विकास में मदद करते हैं। व्यापारिक बैंक निम्न खातों द्वारा धनराशि जमा कराने की सुविधा प्रदान करते हैं–

(I) सावधि जमा खाता– इस खाते में एक निश्चित अवधि के लिए धन जमा कराया जाता है। जमा अवधि ग्राहक अपनी सुविधानुसार निर्धारित करता हैं तथा बैंक इस पर अधिक मात्रा में ब्याज देती है। सामान्यतया सावधि जमा खाते में जमा राशि देय तिथि को मिलती है। जमाकर्ता की सुविधा के लिए बैंक सावधि जमा की जमानत पर ऋण भी प्रदान करता है तथा ब्याज की दर में कुछ कटौती कर देय तिथि से पूर्व जमा धन निकालने की सुविधा भी प्रदान करता है।

(ii) बचत बैंक खाता–यह खाता अल्प एवं मध्य आय वर्ग के व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी होता है। इसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपनी छोटी–छोटी बचतों को बैंक में जमा करवा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर वापस निकाल सकता है। इस खाते में जमा धन पर कम मात्रा में ब्याज भी मिलता है तथा जनता में बचत की भावना को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) चालू खाता– यह खाता सामान्यतया व्यापारी वर्ग के लिए उपयोगी होता है। इस खाते में किसी भी कार्य दिवस को कितनी भी बार धन जमा करवाया जा सकता है तथा धन निकाला जा सकता हैं। इस खाते में जमा रकम मांग पर देय होती है। इसलिए इस खाते पर बैंक कोई ब्याज नहीं देता है। इस पर बैंक अधिविकर्ष की सुविधा भी प्रदान करता है।

(iv) आवर्ती जमा खाता– यह खाता मुख्य रूप से उन जमाकर्त्ताओं के लिए है जो अपनी छोटी–छोटी बचतों के माध्यम से एक निश्चित उद्देश्य के लिए एकमुश्त राशि प्राप्त करना चाहते हैं। यह खाता खोलने वाले व्यक्ति को एक निश्चित रकम निश्चित अन्तराल से नियमित जमा करवानी पड़ती है। इस खाते की अवधि 1 वर्ष से 10 वर्ष की हो सकती हैं।

(v) अन्य बचत खाते – व्यापारिक बैंकों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के अनुरूप गृह बचत खाता, प्रतिदिन बचत जमा योजना, मासिक ब्याज आय जमा योजना, अवयस्क बचत योजना, कृषि जमा योजना आदि हैं।

(ख) ऋण देना– बैंकों का दूसरा प्रमुख कार्य ऋण देना है। बैंक के पास जो धन जमाकर्त्ताओं से प्राप्त होता है, वह उसे व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा अन्य लोगों को उधार देता है। बैंक अपने द्वारा दिये ऋण पर अपने जमाकर्त्ताओं को दिये जाने वाले ब्याज से अधिक दर से ब्याज वसूल करता है। इन्हीं ब्याज दरों का अन्तर बैंक का लाभ होता है। बैंक द्वारा ऋण सुविधा निम्न प्रकार दी जाती है–

(I) नकद साख– इस पद्धति के अन्तर्गत बैंक प्रार्थी के लिए ऋण लेने की एक सीमा निर्धारित कर देता हैं। बैंक यह ऋण सामान्यतः व्यापारियों की जमानत पर स्वीकृत करता है। व्यापारी अपनी आवश्यकतानुसार जब चाहे निर्धारित

सीमा तक राशि बैंक से निकाल सकता है। ब्याज केवल निकाली गयी राशि पर ही वसूल किया जाता है।

(ii) अधिविकर्ष– बैंक में चालू खाता रखने वाले व्यापारियों को उनके खाते से जमा रकम से अधिक रकम निकालने की सुविधा अधिविकर्ष कहलाती है। यह सुविधा बैंक द्वारा अल्पकाल तथा आकस्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दी जाती है। अधिविकर्ष की सीमा का निर्धारण व्यापारी की साख पर निर्भर होता है।

(iii) ऋण एवं अग्रिम – बैंक द्वारा ऋण देने का यह सामान्य रूप है। बैंक प्रार्थी को उचित जमानत के आधार पर ऋण स्वीकृत कर उस राशि को एक पृथक ऋण खाते में जमा कर देता हैं। ऋण स्वीकृत करते समय ही बैंक व प्रार्थी के मध्य ब्याज की दर एवं भुगतान की शर्तें तय हो जाती हैं। निर्धारित समय अवधि में ऋण का भुगतान न होने पर जमानत में रखी सम्पत्ति बेचकर रकम वसूल करने का अधिकार बैंक के पास होता है। ऋण पर ब्याज की दर ऋण के उद्देश्य, अवधि, जमानत तथा ग्राहक के व्यवसाय पर निर्भर करती है।

(iv) विनिमय विपत्रों की कटौती– इस विधि के अन्तर्गत बैंक सावधि विनिमय विपत्रों का बिल की तिथि से पूर्व ही भुगतान कर व्यापारियों को साख सुविधा प्रदान करते हैं। इस कार्य के लिए बैंक कुछ बट्टा (छूट) लेते हैं जो उस अवधि के ब्याज के बराबर होता है।

आ. अभिकर्त्ता सम्बन्धी कार्यः– बैंक अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए अपने ग्राहक के अभिकर्त्ता के रूप में भी अनेक कार्य करता है, जो निम्नलिखित हैं–

I. चैक विनिमय विपत्र आदि का संग्रहण– बैंक अपने ग्राहकों द्वारा जमा करवाये गये चैक, विनिमय विपत्र, ड्राफ्ट, प्रतिज्ञापत्र, हुण्डी आदि का संग्रहण कर ग्राहक के खाते में जमा करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस कार्य के लिए बैंक निर्धारित शुल्क लेता है।

ii. चैक विनिमय विपत्र आदि का भुगतान – बैंक अपने ग्राहकों द्वारा लिखे गये चैकों का भुगतान करते हैं। बैंक अपने ग्राहकों की ओर से बिल स्वीकार करने एवं उनका भुगतान करने का कार्य भी करते हैं।

iii. ग्राहक के आदेशानुसार भुगतान करना– बैंक ग्राहक के स्थायी आदेश के अन्तर्गत उसकी ओर से बीमा प्रीमियम, मकान किराया, ब्याज, ऋण की किश्त, टेलिफोन बिल, कर आदि का भुगतान करते हैं।

iv. धन प्रेषण सुविधा– बैंक अपने ग्राहकों का धन एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की सुविधा प्रदान करते हैं। यह सुविधा ड्राफ्ट, डाक व तार अन्तरण द्वारा तथा ऑनलाईन बैकिंग द्वारा सैकण्डों में धन का अन्तरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर किया जाता है।

v. प्रतिभूतियों का क्रय –विक्रय– बैंक अपने ग्राहकों की ओर से अंशों, ऋणपत्रों, सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय भी करते हैं।

vi. प्रन्यासी एवं प्रबन्धक के रूप में कार्य –ग्राहक के आदेश पर बैंक उसकी सम्पति की व्यवस्था, विभाजन एवं प्रबन्धन हेतु प्रन्यासी, प्रबन्धक एवं निष्पादन का कार्य भी करते हैं।

vii. प्रतिनिधि सम्बन्धी कार्य– बैंक अपने ग्राहकों के आदेश पर उनके लिए पासपोर्ट, विदेश यात्रा हेतु विनिमय एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवाने का कार्य भी करते हैं।

viii. एटीएम मशीन द्वारा 24 घण्टे धन निकासी व जमा करवाने की सुविधा प्रदान करना– आधुनिक युग में बैंकों में धन जमा करवाने व निकालने के लिए बैंक की शाखा में जाकर धन जमा करवाना व निकालने की आवश्यकता नहीं हैं। बैंक ग्राहको को उसके जमा खाते पर डेबिट कार्ड तथा खाता नहीं भी हो तो क्रेडिट कार्ड प्रदान करता है। इस प्लास्टिक के कार्ड से ग्राहक अपने शहर में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश में कहीं भी कार्ड के माध्यम से एटीएम मशीन से 24 घण्टे धन निकलवा सकता है तथा जमा करवा सकता है। डेबिट कार्ड के माध्यम से धन निकालने पर कोई ब्याज नहीं देना पड़ता जबकि क्रेडिट कार्ड से धन निकालने पर निश्चित ब्याज चुकाना पड़ता है।

इ. सामान्य उपयोगी कार्य– बैंक अपने ग्राहक के लिए अन्य उपयोगी कार्य भी करता है, जो निम्न हैं–

i. आर्थिक स्थिति की जानकारी देना– कभी–कभी व्यापारी बैंकों से अपने नवीन व्यापारी ग्राहकों की साख के बारे में पूछताछ करते हैं ताकि वह उनके लिए साख सीमा

निर्धारित कर सके। बैंक अपने ग्राहकों के लिए यह जानकारी प्राप्त करते हैं तथा अपने ग्राहक की आर्थिक स्थिति की जानकारी अन्य व्यापारियों को देते हैं।

ii. **लॉकर्स उपलब्ध करवाना–** ग्राहकों की बहुमूल्य सामग्री जैसे कि आभूषण, महत्वपूर्ण दस्तावेज, प्रतिभूतियाँ आदि सुरक्षित रखने के लिए बैंक ग्राहकों को लॉकर्स या सेफ डिपॉजिट वाल्ट्स उपलब्ध करवाते हैं ताकि ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुएं सुरक्षित रह सकें।

iii. **यात्री चैक की व्यवस्था–** बैंक अपने ग्राहकों से बहुत ही कम शुल्क लेकर यात्री चेक जारी करते हैं। इससे यात्री को अपनी यात्रा के दौरान नकद धन साथ ले जाने की जोखिम से मुक्ति मिल जाती है।

iv. **अभिगोपन कार्य–** बैंक व्यापारिक प्रतिष्ठानों, कम्पनियों के अंश एवं ऋणपत्रों के अभिगोपन का कार्य (अर्थात् यदि बाजार में अंश नहीं खरीदे जाये तो बैंक द्वारा खरीदना) भी करते हैं। इस कार्य के लिए बैंक कमीशन लेते हैं।

v. **वित्तीय सलाहकार का कार्य –** बैंक अपने ग्राहकों को समय–समय पर वित्तीय एवं आर्थिक विषयों पर परामर्श देने का कार्य भी करते हैं। इस सुविधा से ग्राहकों को अपने व्यवसाय में निर्णय लेने में सुविधा प्राप्त होती है।

vi. **समाशोधन गृहों की व्यवस्था–** बैंक पारस्परिक भुगतानों के निपटारे के लिए बैंक समाशोधन गृहों के प्रबन्धन का कार्य भी करते हैं।

vii. **सार्वजनिक ऋणों की व्यवस्था करना–** व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के प्रतिनिधि के रूप में सरकार द्वारा जारी ऋण पत्रों की बिक्री की व्यवस्था भी करते हैं।

viii. **विदेशी विनिमय व्यवस्था–** व्यापारिक बैंक विदेशी व्यापार के लिए साख उपलब्ध करवाने जैसा महत्वपूर्ण कार्य भी करते हैं। इस हेतु विदेशी विनिमय बिलों का बट्टा भी करते हैं।

ix. **आर्थिक सूचनाएं एकत्रित करना तथा उन्हें प्रदर्शित करना–** बैंक अपने देश की आर्थिक एवं व्यापारिक गतिविधियों के सम्बंध में सूचनाएं एकत्र करने एवं प्रकाशित करवाने का कार्य भी करते हैं। इससे व्यापारियों, अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों व शोधार्थियों को भी लाभ होता है।

x. **अन्य सहायक कार्य–** उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त बैंक कुछ अन्य सहायक कार्य जैसे गारण्टी देना, साख प्रमाण पत्र देना, उपहार चैक जारी करना आदि भी करते हैं।

xi. **साख सृजन–** बैंक केवल मुद्रा के व्यापारी ही नहीं बल्कि मुद्रा का निर्माण भी करते हैं। ये जमाओं, व्युत्पन्न जमाओं तथा विनिमय बिलों की कटौती द्वारा साख सृजन करते हैं।

बैंकों के प्रकार

आर्थिक विकास की बढ़ती गति के साथ मुद्रा एवं साख की आवश्यकता में भी वृद्धि हुई है। इस कारण बैंकों के विभिन्न स्वरूप विकसित हुए हैं। बैंकों में भी विशिष्टीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, परिणामस्वरूप कुछ विशिश्ट कार्यों के लिए साख एवं अन्य सुविधा प्रदान करने हेतु विशेष प्रकार के बैंकों की स्थापना की गयी। कार्य प्रकृति के आधार पर बैंकों के विभिन्न प्रकार निम्नानुसार हैः–

(i) **केन्द्रीय बैंक–** प्रत्येक देश के बैंकिंग ढांचे में सर्वोच्च संस्था के रूप में केन्द्रीय बैंक होता है। यह बैंक साख का नियमन एवं नियंत्रण, देश की बैंकिंग व्यवस्था पर प्रभावी नियंत्रण, नोट निर्गमन तथा सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया केन्द्रीय बैंक के रूप में कार्य कर रहा है।

(ii) **व्यापारिक बैंक–** जो बैंक सामान्य बैंकिंग का कार्य करते हैं उन्हें व्यापारिक बैंक कहा जाता है। ये बैंक धन जमा करने, ऋण देने, ग्राहक के अभिकर्ता के रूप में उसके धन का प्रेषण करने, चैक, बिल आदि का संग्रहण व भुगतान करने, साख पत्र जारी करने सम्बंधी अनेक कार्य करते हैं। भारत में व्यापारिक बैंक सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। भारत में स्टेट बैंक समूह सहित 27 व्यापारिक बैंक सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत है।

(iii) **सहकारी बैंक–** भारत में सहकारी बैंक विशेष रूप से कृषि साख की आवश्यकता को पूरा करने का कार्य करते हैं। ये बैंक सहकारिता के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। भारत में सहकारी बैंकों का ढांचा त्रिस्तरीय हैं। राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक, जिला स्तर

पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा ग्राम स्तर पर प्राथमिक सहकारी कृषि साख समितियाँ कार्यरत हैं। कृषि हेतु दीर्घकालीन साख उपलब्ध करवाने के लिए राज्य स्तार पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक स्थापित किये गये हैं।

(iv) औद्योगिक विकास बैंक– ये बैंक उद्योगों के आधारभूत ढांचे के विकास के लिए दीर्घकालीन एवं आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाते हैं। ये बैंक प्रबन्धकीय, तकनीकी , विपणन आदि के लिए मार्गदर्शन भी प्रदान करते हैं। भारत में आजादी के बाद अनेक विकास बैंकों की स्थापना की गई हैं। राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय औद्योगिक वित्त निगम 1948, भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम 1955, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक 1964, भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक 1985 तथा राज्य स्तर पर राज्य वित्त निगम कार्यरत हैं।

(v) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक– भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में साख आपूर्ति की समुचित व्यवस्था हेतु क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। प्रथम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना 2 अक्टूबर, 1975 को की गई। वर्तमान में देश में 516 जिलों में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 14000 से अधिक शाखाएँ सक्रिय हैं।

(vi) निर्यात–आयात बैंक– इस बैंक की स्थापना विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए की गयी। यह निर्यातकों एवं आयातकों को साख–सुविधाएं प्रदान करता है। भारत में निर्यात–आयात बैंक जनवरी, 1982 से कार्यरत हैं।

(vii) विनियोग बैंक – इन बैंकों का कार्य देश में बिखरी हुई बचतों को एकत्रित कर उसका लाभप्रद विनियोजन करना है। भारत में जीवन बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, म्युचुअल फण्ड आदि विनियोग बैंक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(viii) बचत बैंक– पश्चिमी देशों में सामान्य वर्ग के लोगों की छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहन देने के लिए अलग से बचत बैंक स्थापित किये गये हैं। भारत में व्यापारिक बैंक ही यह कार्य करते हैं।

(ix) अन्तर्राष्ट्रीय बैंक– द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विभिन्न देशों में बिगड़ी अर्थव्यवस्था को ठीक करने तथा तीव्र आर्थिक विकास हेतु 1944 में अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक की स्थापना की गई, जिसे विश्व बैंक भी कहते हैं। इस बैंक की दो सहायक संस्थायें हैं।

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ एवं

(आ) अर्न्तराष्ट्रीय वित्त निगम।

(x) देशी या अनौपचारिक बैंकर्स– देशी या अनौपचारिक बैंकर्स भारत के सभी भागों में पाये जाते हैं। ये कृषि व व्यापार के लिए वित्त व्यवस्था करते हैं। इन्हें महाजन, साहूकार, सर्राफ आदि नामों से भी जाना जाता है।

बैंकों के प्रमुख प्रलेख

सामान्यतः बैंकिंग व्यवहारों में सबसे अधिक प्रयोग में आने वाले प्रलेख हैं– चैंक, बैंक ड्राफ्ट तथा पे ऑर्डर (बैंकर्स चैक)

1. **चैक** – चैक किसी बैंक को दिया गया शर्त रहित लिखित आदेश होता है जिसमें एक निश्चित राशि किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा आदेशित व्यक्ति को अथवा विलेख के वाहक को मांग पर देय होती हैं।

   भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 6 के अनुसार,'' चैक एक ऐसा विनिमय पत्र हैं जो किसी विशेष बैंक पर लिखा जाता है और जिसका भुगतान स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता है।''

चैक के आवश्यक तत्व–

i. चैक सदैव लिखित आदेश होता है, यह कभी भी मौखिक नहीं होता।

ii. चैक ग्राहक द्वारा स्वयं के बैंक को ही लिखा जाता है।

iii. चैक में कोई शर्त नहीं हो सकती।

iv. चैक द्वारा निश्चित राशि का भुगतान होता है जो चैक में लिखी होती है।

v. चैक का भुगतान किसी निश्चित व्यक्ति या संस्था को ही होगा जिसका नाम चैक पर लिखा होता है या

उसका आदेशित है। इसका भुगतान वाहक को भी किया जा सकता है

vi. चैक का भुगतान प्रापक के मांगने पर होगा। इसके भुगतान की तिथि ग्राहक द्वारा निर्धारित की जाती है।

vii. चैक पर ग्राहक के हस्ताक्षर होने चाहिए तथा इसका मिलान बैंक के नमूने के हस्ताक्षर से होना चाहिए।

viii. चैक पर खाता संख्या व दिनांक का होना आवश्यक है।

ix. बैंक द्वारा निर्धारित प्रारूप में छपे हुए चैक ही प्रयोग में लाये जाते हैं।

चैक का नमूना

चैक के पक्षकार

(क) आहर्ता या लेखक– आहर्ता वही व्यक्ति हो सकता है जिसका बैंक में खाता हो। बैंक में खाता रखने वाले ग्राहक को ही चैक लिखने व हस्ताक्षर करने का अधिकार होता है।

(ख) आहर्ती या देनदार – आहर्ती सदैव बैंक ही होता है जिस पर ग्राहक चैक लिखता है।

(ग) आदाता या प्रापक – जिसके नाम से चैक लिखा जाता है, वह चैक का आदाता होता है। चैक स्वयं के नाम से भी लिखा जा सकता है। यदि चैक का बेचान कर दिया जाता है तो वाहक आदाता होता है। इस प्रकार जो पक्षकार चैक का भुगतान बैंक से प्राप्त करने के लिए अधिकृत होता है, आदाता कहलाता है।

2. बैंक ड्राफ्ट– पक्षकार विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 85 (ए) के अनुसार बैंक ड्राफ्ट किसी ''बैंक की शाखा द्वारा उसी बैंक की दूसरी शाखा के नाम लिखा गया एक आदेश है, जिसमें लिखी हुई रकम को आदेशानुसार व्यक्ति द्वारा मांगने पर भुगतान करने का आदेश दिया जाता है।''

बैंक ड्राफ्ट एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन प्रेषण का एक सरल, सुरक्षित एवं मितव्ययी उपाय है जिसे बैंक द्वारा पूरा मूल्य एवं कमीशन प्राप्त करने के बाद जारी किया जाता है।

बैंक ड्राफ्ट के पक्षकार

(क) निर्गमक बैंक – बैंक ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक को निर्गमक बैंक कहा जाता है। जो निर्धारित शुल्क या कमीशन लेकर बैंक ड्राफ्ट बनाता है। ड्राफ्ट के माध्यम से निर्गमक बैंक शोधी बैंक को आदेश देता है कि प्रेषक द्वारा ड्राफ्ट प्रस्तुत करने पर उसकी राशि का भुगतान कर दिया जावे।

(ख) क्रेता– जो व्यक्ति ड्राफ्ट बनवाता है, उसे ड्राफ्ट का क्रेता कहा जाता है। क्रेता को कमीशन व ड्रफ्ट की राशि सहित निर्धारित प्रपत्र भरकर निगर्मक बैंक में जमा करवाना होता है।

(ग) आदाता या प्रापक– ड्राफ्ट जिस व्यक्ति या संस्था के पक्ष में लिखा जाता है, उसे ड्राफ्ट का आदाता कहते हैं। शोधी बैंक आदाता या प्रापक को ड्राफ्ट का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होता है।

(घ) शोधी बैंक– जिस बैंक को ड्राफ्ट का भुगतान करने का आदेश दिया जाता है, उसे शोधी बैंक कहा जाता है।

बैंक ड्राफ्ट का नमूना

3. पे–ऑर्डर (बैंकर्स चैक)– पे–ऑर्डर बैंक की ओर से स्थानीय ग्राहकों को भुगतान करने के लिए जारी किया जाता है। क्रेता द्वारा पे–ऑर्डर की राशि व कमीशन बैंक में निर्धारित प्रपत्र के साथ जमा करवाने पर बैंक द्वारा इसे जारी किया जाता हैं जिसका भुगतान उसी बैंक द्वारा पे–ऑर्डर को प्रस्तुत करने पर प्रापक को कर दिया जाता है। पे–ऑर्डर पर बैंक ड्राफ्ट के नियम ही लागू होते हैं किन्तु इसका शुल्क बैंक ड्राफ्ट की तुलना में कम होता है।

(आ) बीमा

प्राचीनकाल से ही भारत में मानव के जोखिम की रक्षा हेतु अनेक प्रकार से प्रयास किये जाते रहे हैं। राजा–महाराजाओं व बड़े व्यवसायी भी अपने यहाँ कार्य करने वाले कार्मिकों की सुरक्षा हेतु अनेक उपाय करते थे। उनके कार्य के दौरान अपाहिज, मृत्यु व बुजुर्ग अवस्था होने पर उनके परिवार के पालन–पोषण तथा उनके परिवारजनों को नियुक्ति व आर्थिक सम्बल प्रदान करते थे। अतः मनुष्य उस काल में अपने भविष्य की घटनाओं से सुरक्षा महसूस करता था तथा पूर्ण मनोयोग से कार्य करता था। यह बीमा का प्राचीन रूप ही है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से सुख, समृद्धि, सम्पन्नता एवं सुरक्षा चाहता है। वह विपत्ति, दुःख एवं आपदाओं से सुरक्षा चाहता है। अतः वह इन संकटों को कम करने या समाप्त करने के सभी प्रयत्न करता है, किन्तु उसके प्रयास इन घटनाओं के सामने निष्फल हो जाते हैं। इसे विभिन्न आपदाओं के कारण सामान्य से लेकर गम्भीर नुकसान उठाना पड़ जाता है। परिवार के मुखिया या कमाऊ व्यक्ति की असामयिक मृत्यु हो जाने पर आश्रितों को, दुकान या गोदाम में आग लग जाने पर , जहाज डूब जाने पर या चोरी हो जाने पर व्यापारी को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण मानव जीवन व वातावरण अनिश्चितताओं व जोखिमों से भरा पड़ा है। इन्हीं जोखिमों से सुरक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता ने ही **बीमा** को जन्म दिया है।

बीमा संविदा 'परम सद्विश्वास' के सिद्धान्त पर आधारित है। दोनों पक्षों (बीमाकर्त्ता एवं बीमित) के मध्य पारस्परिक सद्विश्वास के अभाव में बीमा संविदा व्यर्थ हो जाती है।

बीमा की परिभाषा– विभिन्न विद्वानों द्वारा बीमा की जो परिभाषाएं दी गई हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

सर विलियम बेवरीज के अनुसार " बीमा जोखिमों के सामूहिक वहन को कहते है।"

न्यायमूर्ति टिण्डल के अनुसार "बीमा एक अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत बीमित बीमाकर्त्ता को एक निश्चित अंशदान एक निश्चित घटना के घटित होने की जोखिम उठाने के प्रतिफल के रूप में देता है।"

विभिन्न विद्वानों द्वारा बीमा की दी गई इन परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि बीमा एक अनुबन्ध है जिसमें बीमाकर्ता एक निश्चित प्रतिफल के बदले बीमित को किन्हीं पूर्व निर्धारित कारणों से हानि होने पर एक निश्चित धनराशि देने का वचन देता है।

बीमा की विशेषताएं– विभिन्न विद्वानों द्वारा बीमा की दी गई इन परिभाषाओं से इसकी निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैः–

(i) बीमा एक अनुबन्ध है– बीमा एक अनुबन्ध है जिसमें बीमाकर्त्ता एक निश्चित प्रतिफल के बदले बीमित को किन्ही पूर्व निर्धारित कारणों से हानि होने पर क्षतिपूर्ति करने या एक निश्चित धनराशि का भुगतान करने का वचन देता है। इसमें दो पक्षकार होते हैं– बीमाकर्त्ता एवं बीमित।

(ii) क्षतिपूर्ति का साधन–बीमा संकटों से होने वाली आर्थिक हानि का प्रतिकार करने का एक प्रभावी साधन है अर्थात् बीमा क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करने का श्रेष्ठ उपाय है। जीवन बीमा पर क्षतिपूर्ति का यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है क्योंकि जीवन का मूल्य मौद्रिक रूप में नहीं आंका जा सकता है और उसकी क्षतिपूर्ति भी नहीं की जा सकती है।

(iii) निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित– बीमा करते समय कुछ निश्चित सिद्धान्तों को अपनाया जाता है, जिनमें परम सद्विश्वास का सिद्धान्त, बीमा योग्य हित का सिद्धान्त, सहकारिता का सिद्धान्त, आश्वासन सिद्धान्त एवं अंशदान का सिद्धान्त मुख्य हैं।

(iv) शुद्ध जोखिमों के लिए बीमा– बीमा शुद्ध जोखिमों का ही करवाया जा सकता है। अर्थात् शुद्ध जोखिमों से तात्पर्य उन जोखिमों से है जिनमें केवल हानि होने की संभावना होती है, लाभ की नहीं जैसे–मृत्यु , दुर्घटना , अग्नि से उत्पन्न होने वाली हानि आदि।

(v) सहकारिता की भावना– बीमा में 'सब एक के लिए और एक सबके लिए' की भावना निहितार्थ होती है। यह व्यक्तियों के पारस्परिक सहयोग एवं विश्वास पर आधारित है।

(vi) विज्ञान एवं कला – बीमा में सम्भावितता सिद्धान्त के आधार पर हानि के कारण एवं प्रभावों का अनेक

गणितीय विधियों एवं सांख्यिकीय सूत्रों की सहायता से अंश राशि (प्रिमियम) का निर्धारण किया जाता है , अतः यह एक विज्ञान है। लोगों को जागरूक बनाकर बीमा के प्रति आकर्षित करने व संभावित हानि को किस व्यक्तिगत चातुर्यता से न्यूनतम किया जा सकता है, की प्रबन्ध प्रणाली के कारण बीमा एक कला भी है।

(vii) बीमा जुआ और दान से पृथक्– बीमा एक क्षतिपूर्ति की व्यवस्था है, जिसमें लाभ नहीं होता है, जबकि जुआ मे लाभ के अवसर भी विद्यामान है। बीमा जोखिम से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए करवाया जाता है जबकि जुए में लाभ व हानि तत्व विद्यामान हैं। बीमाकर्त्ता बीमित को जो राशि देता है वह कोई दान के रूप में नहीं देता है बल्कि बीमित द्वारा चुकाये गये अंशदान के बदले देता है। अतः यह कोई दान नहीं है।

(viii) घटना के घटित होने पर भुगतान– बीमा में सामान्यतया एक निश्चित अवधि या घटना के घटित होने के पश्चात् बीमित व्यक्ति या उसके उत्तराधिकारियों या नामित व्यक्ति को एक निश्चित राशि का भुगतान किया जाता है। जीवन बीमा में बीमा की परिपक्वता या व्यक्ति की मृत्यु पर तथा अग्नि एवं सामुद्रिक बीमा में बीमित घटना के कारण नुकसान होने पर ही भुगतान किया जाता है।

(ix) बीमा एक प्रक्रिया है– बीमा ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत बीमा कम्पनी ऐसे कदम उठाती है, जिससे निश्चितता स्थापित की जा सके। इसीलिए ही बीमा को अनिश्चितताओं के स्थान पर निश्चितता स्थापित करने की प्रक्रिया कहा गया है।

(x) बचत की भावना– बीमा करवाने पर व्यक्ति को समयानुसार प्रीमियम का भुगतान करना पड़ता है, जिससे व्यक्ति में बचत की भावना का विकास होता है।

(xi) विभिन्न तत्वों का समावेश– बीमा में कई तत्व निहित होते हैं, जैसे–बीमाकर्त्ता, बीमित, बीमा पॉलिसी या शर्तें, प्रीमियम आदि।

(xii) विस्तृत क्षेत्र– बीमा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें मुख्यतया जीवन बीमा, अग्नि बीमा, दुर्घटना बीमा, सामुद्रिक बीमा, कृषि बीमा, पशु बीमा, चिकित्सा बीमा, चोरी बीमा आदि सम्मिलित हैं।

बीमा की उपयोगिता– जीवन में जितनी अधिक अनिश्चितताएं एवं जोखिम हैं, बीमा का महत्व उतना ही अधिक हो जाता है। आज समाज के सभी वर्गों के लिए बीमा एक अनिवार्य आवश्यकता है। भारत सरकार द्वारा आम जनता के लिए बहुत कम प्रीमियम पर बीमा सुविधा प्रदान की गई है। बीमा की उपादेयता का निम्न दृष्टिकोणों से अध्ययन कर सकते हैं–

1. वैयक्तिक एवं पारिवारिक दृष्टि से उपयोगिता

A. जोखिमों से आर्थिक सुरक्षा

B. बचत एवं विनियोग की भावना का विकास

C.कार्यक्षमता में वृद्धि

D. भविष्य की आवश्यकताओं का नियोजन

E. करों में छूट

F. सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धता

2. व्यवसायिक एवं आर्थिक दृष्टि से उपयोगिता

A. जोखिमों से सुरक्षा

B. पूंजी एवं साख की सुविधा

C. अनुसंधान एवं नवप्रवर्तन को प्रोत्साहन

D. विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन

E. आर्थिक स्थायित्व

3. समाजिक दृष्टि से उपयोगिता

A. पारिवारिक जीवन में स्थिरता एवं खुशहाली

B. जोखिम का विभाजन

C. रोजगार के अवसरों में वृद्धि

D. शिक्षा को बढ़ावा

E. करों में छूट

F. आधारभूत सुविधाओं के विस्तार में योगदान

4. राष्ट्रीय दृश्टि से उपयोगिता

A. राष्ट्रीय बचत में वृद्धि

B. विदेशी व्यापार में सहायक

C. कर्मचारी कल्याण में वृद्धि

D. मुद्रास्फीति पर नियंत्रण

E. राष्ट्रीय आय में वृद्धि

F. पूंजी का अनुकूलतम उपयोग

बीमा के प्रकार— आधुनिक समय में बीमा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। जोखिम से सम्बंधित सभी क्षेत्रों का बीमा करवाया जा सकता है। भारत एक विकासशील देश है तथा विकसित होने की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा है। जो देश जितना अधिक विकसित है, वहां उतने ही अधिक बीमा के प्रकार प्रचलन में हैं। बीमा की प्रकृति के आधार पर बीमा को निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

बीमा

जीवन बीमा	अग्नि बीमा	समुद्री बीमा	सामाजिक बीमा	विविध बीमा

बीमा से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण शब्दावली

- बीमाकर्त्ता— वह व्यक्ति या संस्था जो बीमित को अंशदान स्वीकार करके जोखिमों से होने वाली क्षति की पूर्ति करने का वचन देता है।
- बीमित— वह व्यक्ति जो बीमाकर्त्ता को अंशदान (प्रीमियम) का भुगतान कर बीमा की विषयवस्तु को जोखिम होने पर वचन प्राप्त करता है तथा क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार रखता है।
- बीमा की विषयवस्तु— जिस सम्पति या जीवन का बीमा किया जाता है, वह बीमा की विषयवस्तु कहलाती है।
- बीमा राशि — बीमा अनुबन्ध द्वारा निर्धारित वह अधिकतम राशि जो बीमाकृत घटना के घटित होने पर या निर्धारित अवधि के समाप्त होने पर बीमित या उसके उत्तराधिकारी को क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त की जानी है।
- प्रीमियम— बीमित द्वारा बीमाकर्त्ता को दिया जाने वाला अंशदान, जिसके बदले उसे हानि से सुरक्षा का वचन मिलता है, प्रीमियम या अंशदान कहलाता है।

(इ) भण्डारण

व्यापार में सहायक क्रियाओं में भण्डारण का विशेष महत्त्व है। जिस वस्तु का व्यापार किया जाता है, उसको संग्रहित कर उसका भण्डार करने से व्यापार में लाभ की संभावना बढ़ जाती है, लेकिन भण्डारण करते समय उसकी सुरक्षा का भी ध्यान रखना होता है तथा समय के साथ उस वस्तु की उपलब्धता भी निश्चित करनी होती है।

(ई) परिवहन

उत्पादन की गई सभी वस्तुओं का उपयोग उत्पादन केन्द्रों या उनके निकटवर्ती स्थानों पर संभव नहीं होता है। इसलिए उत्पादित वस्तुओं को उनके उत्पादन केन्द्रों से उन स्थानों तक पहुंचाना होता है, जहां उनकी मांग है। उत्पादित वस्तुओं को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने से सम्बंधित कार्य को परिवहन कहते हैं। परिवहन में किराया आधारित सेवाएं एवं उनकी समर्थक व सहायक सेवाएं सम्मिलित हैं, जो परिवहन के सभी माध्यम अर्थात् रेल, सड़क, वायु परिवहन एवं समुद्री वाहन द्वारा माल एवं यात्रियों को ढोने से सम्बंधित है। इनकी सेवाएं व्यवसाय के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती हैं क्योंकि प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यावसायिक लेन—देनों के लिए गति अत्यावश्यक है। परिवहन स्थान सम्बंधी बाधाओं को दूर कर स्थान उपयोगिता का सृजन करता है। हमें अपनी अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवहन प्रणाली को विकसित करना है, इस हेतु हमें और अच्छी, चौड़ी व बेहतरीन सड़कों की आवश्यकता है, साथ ही रेल मार्ग को भी ओर बेहतर बनाने की आवश्यकता है। हमारे देश में बन्दरगाह भी कम हैं तथा इन बन्दरगाहों में भी भीड़ है। इसके अलावा आंतरिक जल परिवहन भी बहुत कम है। अतः सरकार एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों को सक्रिय हो जाना चाहिए तथा यह समझना चाहिए कि परिवहन सेवा का प्रभावी संचालन व्यवसाय के लिए जीवन रेखा का काम करता है। कृषि, खाद्य एवं निर्माण क्षेत्रों में परिवहन के दौरान उत्पादों की भारी हानि होती है। इस ओर ध्यान देकर परिवहन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करना होगा। अध्ययन की सुविधानुसार परिवहन का अध्ययन निम्न वर्गों में बांटकर किया जा सकता है—

1. भू— परिवहन—सड़क परिवहन, रेल परिवहन
2. वायु परिवहन—हवाई जहाज
3. जल परिवहन—जहाजरानी परिवहन, आन्तरिक जल परिवहन

(उ) संचार

अपने भावों, विचारों, संदेशों एवं सूचनाओं को दूसरे तक प्रेषित करना संचार कहलाता है। कम्प्युटर व इन्टरनेट मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप कर संचार का सशक्त माध्यम बन चुका है। आज कम्प्युटर व इन्टरनेट का महत्व इतना अधिक हो गया है कि मानव जीवन की प्रत्येक

गतिविधियां एवं कार्य अपने स्वयं से भी अधिक कम्प्युटर एवं इन्टरनेट द्वारा सम्पादित किये जा रहे है। सही संचार के लिए यह आवश्यक है कि संदेश प्राप्तकर्त्ता व्यक्ति उस संदेश का वही अर्थ समझे जो कि संदेशदाता का है। साथ ही संदेश के महत्व के अनुसार उसे उचित समय पर प्रेषण भी संचार के मुख्य उद्देश्य के अन्तर्गत आता है।

संचार के साधन– संचार के साधनों को अध्ययन की सुविधानुसार दो वर्गों में बांटा जा सकता है।– (क) डाकघर सेवाएं (ख) शीघ्र संचार के साधन।

(क) डाकघर सेवाएं– डाकघर दूरस्थ स्थानों पर संदेश के साथ वस्तुएँ एवं धन प्रेषण की सुविधा भी प्रदान करता है। डाकघर सेवाओं को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) समाचार प्रेषण– डाकघर संदेश प्रेषण के लिए निम्न सुविधाए प्रदान करता है।

i. **पोस्टकार्ड–** कम समाचार तथा गोपनीय प्रकृति के समाचार न होने की स्थिति में पोस्टकार्ड संदेश प्रेषण का सबसे सस्ता व सुलभ माध्यम है। वर्तमान में मात्र 50 पैसे देकर इसे किसी भी डाकघर से प्राप्त किया जा सकता है।

ii. **मुद्रित पोस्टकार्ड–** इस तरह के पोस्टकार्ड का उपयोग मुख्यतया व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है। व्यावसायिक संस्थाएं अपने विज्ञापन हेतु स्वयं के पोस्टकार्ड छपवा सकती है। इस पोस्टकार्ड पर नियमानुसार डाक टिकट लगाना पड़ता है। प्रतियोगिता पोस्टकार्ड भी इसी श्रेणी में आते हैं। प्रतियोगिता पोस्टकार्ड भी डाकघर द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

iii. **अन्तर्देशीय पत्र –** गोपनीय व अधिक समाचार लिखने हेतु अन्तर्देशीय पत्र की सुविधा उपलब्ध है।

iv. **लिफाफा–** विस्तृत व गोपनीय समाचार अलग कागज पर लिखने के लिए डाक विभाग द्वारा लिफाफे उपलब्ध कराये जाते हैं, जिसका वर्तमान मूल्य 5 रूपए है। यदि लिफाफे में 20 ग्राम से अधिक वजन है तो प्रति 20 ग्राम या उसके भाग के लिए वर्तमान में 5 रूपए अतिरिक्त शुल्क देना पड़ता है। व्यक्तियों तथा व्यावसायिक संस्थानों द्वारा स्वयं के मुद्रित लिफाफे भी काम में लिये जाते है। अति गोपनीय व महत्वपूर्ण पत्रों, कानूनी एवं व्यापारिक प्रलेखों को सुरक्षित भेजने हेतु रजिस्टर्ड पत्र की सुविधा भी उपलब्ध है। शीघ्र डाक पहुंचाने हेतु स्पीड पोस्ट सुविधा भी डाकघर द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। इसका वर्तमान में न्यूनतम शुल्क 25 रूपए है।

(2)वस्तु प्रेषण– हल्की और मूल्यवान वस्तुएँ जो 20 किलोग्राम तक की हैं, डाक द्वारा प्रेषित की जा सकती हैं। इन्हें पंजीकृत व अपंजीकृत दोनों प्रकार से भेज सकते है। इसका शुल्क पार्सल के वजन के आधार पर तय है। इन वस्तुओं का कुछ अतिरिक्त शुल्क देकर बीमा भी करवाने की सुविधा डाकघर द्वारा उपलब्ध है। बुक–पोस्ट के माध्यम से मुद्रित पुस्तकें, पत्र–पत्रिकायें, नमूने के पैकेट आदि रियायती दर पर भेजने की सुविधा भी प्रदान की गयी है। यदि पार्सल प्राप्तकर्ता से उस वस्तु की कीमत भी माल सुपुर्दगी के समय वसूल करनी है तो इसे वी.पी.पी. के माध्यम से भेजा जा सकता है। वर्तमान में वस्तुओं के प्रेषण में कूरियर सेवाओं वाला काम भी किया जा रहा है।

(3) धन प्रेषण– डाकघर द्वारा धनप्रेषण के लिए मनीऑर्डर, पोस्टल–ऑर्डर तथा बीमा–पत्र की सुविधा प्रदान की जाती है।

(ख) शीघ्र संचार के साधन

1.टेलीग्राम या तार – कुछ समय पहले तक कोई भी संदेश लिखित माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर टेलीग्राम (तार) द्वारा भेजे जाते थे। यह साधारण तथा शीघ्र दोनों प्रकार के होते थे। शीघ्र तार का शुल्क साधारण तार से दुगुना होता था लेकिन वर्तमान में अत्याधुनिक तकनीकों के विकास हो जाने के फलस्वरूप इसे पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया है।

2.टेलिफोन– इस यंत्र की सहायता से घर बैठे देश व विदेश के किसी भी व्यक्ति से बात की जा सकती है। दूर संचार कम्पनियां यह सुविधाएं सशुल्क उपलब्ध कराती हैं। आज संचार क्रान्ति ने मोबाईल फोन की सुविधा प्रदान की है। ये फोन तारविहीन होते हैं। अतः चलते–फिरते किसी भी स्थान पर बात की जा सकती हैं। मोबाईल से इंटरनेट, बेबसाईट, ई–मेल आदि कई अत्याधुनिक सुविधाओं के होने से संचार क्षेत्र में नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है।

3.फैक्स– यह टेलिफोन लाईन से जुड़ा एक छोटा सा यंत्र होता है जो किसी पत्र पर लिखित, मुद्रित एवं चित्रित संदेश टेलिफोन लाईन की सहायता से कुछ ही क्षणों में दूसरे स्थान

पर प्रेषित किया जा सकता है। भेजे गये स्थान पर स्थित फैक्स मशीन उसे पुनः उसी रूप में मुद्रित एवं चित्रित कर देती है।

4. **इन्टरनेट–** आज के इस युग में इन्टरनेट का महत्व बहुत बढ़ गया है। आज छोटी सी छोटी और बड़ी से बड़ी जरूरत का सर्वोत्तम विकल्प इन्टरनेट है। चाहे पत्र लिखना हो, अपने किसी परिचित से बात करनी हो, या किसी पुस्तक का क्रयादेश देना हो, इन्टरनेट हमेशा तैयार रहता है लेकिन वास्तव में यह है क्या? वस्तुतः यह एक नेटवर्कों का जाल या नेटवर्क है। यह दुनियाभर के कम्प्यूटरों को मॉडम के द्वारा एक सूत्र में पिरोता है और एक–दूसरे से जोड़ता है। माउस की सहायता से तुरन्त वांछित बिन्दु पर पहुंचा जा सकता है। आज भी कम्पनियां या सरकारी संस्थान स्वयं की वेबसाइट के रूप में इन्टरनेट पर उपलब्ध हैं। इसी से अन्दाज लगाया जा सकता है कि इन्टरनेट कितना महत्वपूर्ण है। कुछ ही समय में इन्टरनेट पर लाखों वेबसाइटें खुल चुकी हैं।

4.1 वेबसाइट क्या है–वास्तव में इन्टरनेट सूचनाओं का भण्डार है लेकिन इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप इस भण्डार से किसी भी प्रकार की सूचना सीधी प्राप्त कर सकते हैं। यहां वेबसाइट एक माध्यम है। कम्प्युटर पर कोई सूचना प्राप्त करनी हो तो आप उससे सम्बंधित अध्याय अर्थात् साइट का नाम अंकित करें, जैसे अगर आपको पर्यावरण के क्षेत्र में देखना हो तो आप http://www.envi.com टाईप करें, सीधे वहाँ पहुंचा जाता है और वह मॉनिटर पर उपलब्ध होगी।

5. **ई–मेल–** ई–मेल अब बहुत ही लोकप्रिय हो चुकी है तथा छोटे से बड़े सभी इसके नाम से परिचित हो गये हैं। यह सुविधा अब कई वेबसाइटों पर भी उपलब्ध है। इससे दुनिया के किसी भी कोने में क्षण भर में अपना संदेश या पत्र इसके द्वारा भेजा एवं प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक नहीं है कि दोनों व्यक्तियों के पास एक ही वेबसाइट का पता हो। किसी वेबसाईट से किसी अन्य वेबसाइट पर पत्र भेजा एवं प्राप्त किया जा सकता है। कुछ वेबसाईट यथा– yahoo, Google, indiya हैं, जो दुनिया को ई–मेल की निःशुल्क सुविधा प्रदान करा रही हैं। आजकल तो कुछ देशों में सारा पत्र–व्यवहार इसके द्वारा ही हो रहा है। पुस्तकालय में प्राप्त नहीं होने वाली पत्रिकाओं या पत्रिकाओं के क्रयादेश, बीजक मंगवाना, यहाँ तक कि पुस्तकों का क्रय–विक्रय भी इसके द्वारा होने लगा है।

6. **वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग**–कम्प्युटर द्वारा ऑनलाईन बातचीत से विभिन्न देशों में बैठे हुए समान रूचि वाले व्यक्तियों के बीच आपस में संचार सुविधा उपलब्ध है। ऑनलाईन बातचीत का अवसर प्रदान करने वाली किसी भी साईट को खोलकर कोई भी व्यक्ति माउस की सहायता से अपने संदेश, प्रश्नोत्तर अवलोकन, विचार आदि को टाईप कर सकता है। यह बातचीत स्क्रीन पर दिखाई देती है। इसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति भी भाग ले सकते हैं। अर्थात् इस पर संगोष्ठि भी की जा सकती है। टी.वी या मॉनीटर पर जुड़कर आमने–सामने बात भी हो सकती है।

(ऊ) कम्प्युटर :– सूचना प्रौद्योगिकी

1. **परिचयः–** आज से लगभग 55 वर्ष पूर्व किसी ने भी यह नहीं सोचा होगा कि सूचना तकनीकी के क्षेत्र में इतना विकास होगा कि मानव इस पर निर्भर हो जायेगा। आज मानव कम्प्युटर के अभाव में अपने आपको अधूरा समझता है। कम्प्युटर पर उसे वह सब कुछ प्राप्त होता है जो उसे चाहिए। अर्थात् उसे भूत, वर्तमान व भविष्य आदि सभी की जानकारी इससे प्राप्त होती है। इसके लिए उसे कहीं पर भी जाने की जरूरत नहीं होती ।

आज वैज्ञानिकों ने सूचना तकनीकी व प्रौद्योगिकी क्षेत्र में इतना विकास कर लिया है कि हवाई जहाज, उपग्रह, मौसम की जानकारी यहां तक कि डॉक्टरों को बीमारी व ऑपरेशन के बारे में भी सारी जानकारी कम्प्युटर के द्वारा प्राप्त होती है। वस्तु को क्रय व विक्रय करने के आदेश भी आज ई–कॉमर्स द्वारा होने लगे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले समय में व्यक्ति को व्यक्ति के पास आने की जरूरत ही नहीं होंगी क्योंकि उसका सारा काम कम्प्युटर ही कर देगा। कम्प्युटर से जुड़ी हुई सूचना प्रणाली संचार का अनूठा माध्यम हो गयी है। कम्प्युटर डिस्केट, सी.डी. रोम, मल्टीमीडिया, इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन, इन्टरनेट, ऑनलाईन पत्रिकाएँ, ई–मेल, होम पेज, बुलेटिन बोर्ड प्रणाली, डिजीटल विडियो डिस्क आदि अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं। पुस्तकालय में कम्प्यूटर के अनुप्रयोग से पुस्तकालय सेवाएं कम्प्यूटरीकृत

की जाने लगी हैं तथा सेवाएं द्रुतगति से प्रदान की जा रही है।

2.सी.डी.रोम– इसमें सूचना को केवल पढ़ा जा सकता है। इसमें किसी भी प्रकार का कोई फेरबदल नहीं कर सकते। इस छोटी सी डिस्क में हजारों पृष्ठों को संग्रहित किया जा सकता है। आजकल अनेकों पुस्तकों, विश्वकोष व पत्रिकाओं की सी.डी. उपलब्ध हैं जिसे कम्प्युटर पर देख सकते हैं, पढ़ा जा सकता है और उसका प्रिन्ट लिया जा सकता है। यहाँ तक कि सी.डी. टॉवर द्वारा एक से अधिक सी.डी. एक साथ कम्प्युटर पर पढ़ी जा सकती है। .

3. बहुमाध्यम – बहुमाध्यम शब्द यह बोध कराता है कि इसके द्वारा कई तरीकों से सूचनाओं को देखा, भेजा व प्राप्त किया जा सकता है। पहले के कुछ बहुमाध्यम ये हैं– मुद्रण, रेडियो, टेलीग्राफ, टेलीविजन आदि लेकिन आज के युग में बहुमाध्यम में टेलीविजन, सेटेलाईट, टेप रिकॉर्डर, वीसीडी, सीडी व डिस्क हैं।

बहुमाध्यम वास्तव में संयुक्त रूप से पाठ्यसामग्री, चित्र, दृश्य, श्रव्य, ऐनीमेशन, सिमूलेशन या आपसी सम्पर्क या इंटर एक्टीविटी के कम्प्युटर के माध्यम से किये जाने वाले उपयोग के रूप में जाना जाता है। इससे प्रयोगकर्ता आपस में सम्पर्क कर सकते हैं और कुछ नया सृजित कर सकते हैं।

(ए) सेवा क्षेत्र

सेवा क्षेत्र को हम मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) व्यावसायिक सेवाएं– इसके तहत बैंकिंग, बीमा, परिवहन और संचार एवं प्रौद्योगिकी सेवाएं आती हैं, जिनका वर्णन पूर्व में कर चुके हैं।

(ख) सामाजिक सेवाएं – ये सेवाएं कुछ सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वेच्छा से प्रदान की जाती हैं। जैसे– समाज के कमजोर वर्ग के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना, उनके बच्चों की शिक्षा व पोषण की व्यवस्था करना तथा कच्ची बस्तियों में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी कार्य करना। साधारणतः ये सेवाएं स्वेच्छिक संगठनों द्वारा प्रदान की जाती हैं जो इसके बदले कुछ राशि लेते हैं ताकि वे लागत पूरी कर सकें। उदाहरणतः कुछ गैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ) एवं सरकारी एजेंसियों के द्वारा प्रदत्त स्वास्थ्य, शिक्षा एवं स्वच्छता सम्बंधी सेवाएँ।

(ग) व्यक्तिगत सेवाएं – वर्तमान समय कड़ी प्रतियोगिता का युग है अर्थात् जो सर्वथा योग्य है, वही टिक पाता है। ये वे सेवायें हैं जिनका अनुभव विभिन्न ग्राहकों द्वारा अलग–अलग तरीके से होता है। इनमें एकरूपता का अभाव होता है। ये सेवा प्रदाता के अनुसार भिन्न–भिन्न होती हैं। साथ ही ये ग्राहकों की पसन्द एवं आवश्यकता पर भी निर्भर करती हैं। इसके उदाहरण हैं– पर्यटन, जलपान गृह एवं मनोरंजन सेवाएं आदि।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मानवीय क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– गैर आर्थिक क्रियाएं एवं आर्थिक क्रियाएं।
2. मानव की आर्थिक क्रियाओं को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं – वृत्ति या पेशा, नौकरी एवं व्यवसाय।
3. वे सभी मानवीय आर्थिक क्रियाएं जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण से सम्बंधित हैं तथा जिनका उद्देश्य पारस्परिक हित एवं संतुष्टि है, व्यवसाय कहलाती है।
4. समाज के विभिन्न वर्गों को संतुष्ट रखने के लिए व्यवसाय– लाभ उद्देश्य, सेवा उद्देश्य एवं मानवीय उद्देश्य को ध्यान में रखकर कार्य करता है।
5. व्यावसायिक क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है– प्रथम वर्ग में उत्पादन सम्बंधी क्रियाओं को उद्योग तथा द्वितीय वर्ग में वितरण सम्बंधी क्रियाओं को वाणिज्य कहा जाता है।
6. भौतिक संसाधनों के प्रयोग द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि करने वाली वस्तुओं का उत्पादन करना ही उद्योग है।
7. उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तुओं एवं सेवाओं के निरन्तर एवं निर्विघ्न प्रवाह हेतु की जाने वाली सभी क्रियाएं वाणिज्य में सम्मिलित की जाती हैं। वाणिज्य से सम्बंधित क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है– व्यापार एवं व्यापार की सहायक क्रियाएं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किसी व्यवसाय का उद्देश्य होना चाहिए—
   (अ) अधिकतम लाभ कमाना
   (ब) केवल सेवा करना
   (स) संस्था के कर्मचारियों का कल्याण करना
   (द) ग्राहक संतुष्टि द्वारा समाज सेवा करते हुए लाभ कमाना
2. व्यापार का आशय है—
   (अ) वस्तुओं का निर्माण
   (ब) वस्तुओं का क्रय—विक्रय
   (स) वस्तुओं का विज्ञापन
   (द) कोई भी आर्थिक क्रिया
3. व्यवसाय में सम्मिलित किया जाता है—
   (अ) वस्तुओं का उत्पादन (ब) सेवाओं का वितरण
   (स) वस्तुओं का वितरण
   (द) वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण
4. निम्नलिखित में से सही नहीं है—
   (अ)व्यापार का सम्बन्ध वस्तुओं के क्रय—विक्रय से है।
   (ब) वाणिज्य व्यवसाय का अंग है।
   (स) व्यवसाय उद्योग का अंग है।
   (द) व्यापार को सुगम बनाने वाली क्रियाओं को व्यापार की सहायक क्रियाएं कहते हैं।
5. प्राचीन काल में भारत में मन्दिर स्वर्ण जड़ित बनवाये जाते थे क्योंकि—
   (अ) उस समय यह परम्परा प्रचलित थी।
   (ब) भारत के व्यापारी विदेशों में माल बेचकर स्वर्ण व स्वर्ण मुद्रायें लेकर आते थे।
   (स) भक्तों को स्वर्ण मन्दिर प्रिय थे।
   (द) स्वर्ण मन्दिर दिखने में सुन्दर लगते थे।
6. बैंक के प्रमुख कार्य हैं—
   (अ) ऋण देना
   (ब) जमा स्वीकार करना
   (स) जमायें स्वीकार करना व ऋण देना
   (द) व्यापार करना।
7. क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त लागू नहीं होता है—
   (अ) समुद्री बीमा में (ब) वाहन बीमा में
   (स) जीवन बीमा में (द) अग्नि बीमा में
8. विनियोग तत्व होता है—
   (अ) समुद्री बीमा में (ब) जीवन बीमा में
   (स) अग्नि बीमा में (द) फसल बीमा में
9. बीमा अनुबन्ध में परम सद्विश्वास से आशय है—
   (अ) बीमा पत्र की शर्तों में विश्वास
   (ब) बीमित का बीमा कम्पनी में विश्वास
   (स) बीमित एवं बीमाकर्त्ता में परस्पर विश्वास
   (द) बीमित का बीमित वस्तु के महत्वपूर्ण तथ्यों का प्रकटीकरण
10. निम्न में से कौनसा साधन मुद्रित एवं चित्रित संदेश को उसी रूप में भेजने का श्रेष्ठ साधन है—
   (अ) टेलिफोन
   (ब) तार
   (स) टैलेक्स
   (द) फैक्स

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यवसाय से क्या आशा है?
2. वृत्ति या पेशा का अर्थ बताइए।
3. निम्नलिखित क्रियाओं का उद्योग के किस वर्ग से सम्बन्ध है—

क्रिया	उद्योग
समुद्र से मछली पकड़ना	————————————
कपड़ा बुनना	————————————
पशु—पालन	————————————
बांध का निर्माण	————————————

4. दूरी सम्बंधी बाधा किस सहयोगी क्रिया से दूर की जा सकती है?
5. जोखिम सम्बंधी बाधा को दूर करने के लिए किस सहायक क्रिया का सहयोग लिया जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यवसाय की कोई चार विशेषताएं बताइए।
2. वाणिज्य में कौनसी गतिविधियां सम्मिलित हैं?
3. व्यापार वाणिज्य से किस प्रकार भिन्न है?
4. कार्य की प्रकृति के आधार पर उद्योगों के प्रकार बताइए।
5. व्यवसाय के उद्देश्य की कोई चार क्रियाएं बताईये।
6. मानवीय उद्देश्य की कोई चार क्रियाएं बताईये।
7. परिवहन कितने प्रकार के है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यवसाय का अर्थ समझाइए और उसकी प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. व्यवसाय के उद्देश्य से आप क्या समझते है? व्यवसाय के उद्देश्यों को विस्तार से समझाइए।
3. व्यवसाय के क्षेत्र पर एक निबन्ध लिखिए।
4. व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. उद्योग से क्या आशय है?उद्योगों के विभिन्न प्रकार बताइए।
6. बैंकों के प्रकार पर संक्षिप्त विवरण दीजिए।
7. चेक किसे कहते हैं तथा चेक के आवश्यक तत्व बताइए।
8. संचार के साधनों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द) 2. (ब) 3. (द) 4.(स) 5. (ब)

6. (स) 7. (स) 8. (ब) 9.(स) 10. (द)

अध्याय 19

पुस्तपालन–बहीखाता

जैसा कि हम जानते हैं कि वाणिज्य, व्यापार व व्यवसाय प्राचीनकाल से ही प्रचलित मानव सभ्यता के विकास के क्रम में जैसे–जैसे मनुष्य की समझ बढ़ी, उसने अपने सौदों का हिसाब–किताब रखना शुरू कर दिया था परन्तु मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ जब व्यापार व्यवसाय–वाणिज्य बढ़ने लगा तो हिसाब–किताब को व्यवस्थित रखने के लिये पुस्तकों में उनका लेखन किया जाने लगा। शनैः–शनैः उसे ही हम पुस्तपालन, बहीखाता या लेखांकन कहने लगे हैं।

पुस्तपालन या लेखांकन उतना ही प्राचीन है जितनी की मुद्रा। लिपिबद्ध इतिहास काल से पूर्व भी भारत में आय–व्यय के लेखांकन के संकेत मिलते हैं। वैदिक काल (5000 ई.पू. से 1000 ई.पू.) में लेखा–जोखा रखने की परम्परा विद्यमान थी। लेखांकन तथा लाभ सम्बंधी अवधारणा का मनु संहिता (200 ई. पू. से 200 ई. तक) में भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। लेखांकन इतिहासकारों ने वेदों, रामायण, महाभारत में भी लेखांकन अभिलेखों का उल्लेख पाया है। शुक्रनीति एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उस समय की उन्नत लेखांकन पद्धति का वर्णन है, जो मुख्यतः राज व्यवस्था से सम्बंधित थी। परन्तु तत्कालीन लेखांकन सीमित स्मरण शक्ति के कारण सौदों को दर्ज करने का माध्यम मात्र था। वही लेखांकन आज ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा बन गया है। प्राचीन समय में मात्र अपने स्वामी के प्रति उत्तरदायी समझा जाने वाला लेखांकन वर्तमान युग में सम्पूर्ण समाज के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है।

लेखांकन के पुरातन स्वरूप का विकास मुख्य रूप से व्यावसायिक इकाइयों के बाह्य पक्षों के साथ सम्बन्ध दर्शाने, अपनी सम्पतियों का सूचीबद्ध करने तथा व्यवसाय के संचालन से सम्बंधित विभिन्न पक्षकारों से बकाया राशियों के सही निर्धारण की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर हुआ। पिछले कुछ वर्षों से बड़े पैमाने पर उत्पादन, प्रतिस्पर्धा, बाजारों के विस्तार एवं तकनीकी परिवर्तनों ने लेखांकन के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन किया है।

लेखांकन को हम विज्ञान व कला दोनों रूपों में जान सकते हैं। जिस प्रकार विज्ञान सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध, नियमबद्ध अध्ययन है, उसी प्रकार लेखांकन भी निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों पर आधारित है और किसी कार्य को सर्वोत्तम रूप से करने को कला कहा जाता है और यही हम लेखांकन में भी करते हैं क्योंकि लेखांकन में सिद्धान्तों का उपयोग उचित योग्यता एवं निपुणता से किया जाता है ताकि लेखांकन के उददेश्यों को प्राप्त किया जा सके। अतः लेखांकन कला भी है और विज्ञान भी है।

लेखांकन का अर्थ एवं परिभाषा

आर.एन. एन्थोनी के अनुसार, ''लेखांकन प्रणाली व्यवसाय से सम्बंधित सूचनाओं को मौद्रिक शब्दों में एकत्रित करने, सारांशित करने और सूचित करने का एक साधन है।''

अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ सर्टिफाइड पब्लिक अकाउण्टेन्ट्स ने लेखांकन की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है–''लेखांकन व्यवसाय के लेखे एवं घटनाओं को जो पूर्णतः या आंशिक रूप में वित्तीय प्रकृति के होते हैं, मुद्रा में प्रभावपूर्ण विधि से लिखने, वर्गीकृत करने और सारांश में व्यक्त करने एवं उनके परिणामों की आलोचनात्मक विधि से व्याख्या करने की कला है।''

लेखांकन की विशेषताएं

1. लेखांकन एक सतत् कार्यकलाप है।
2. यह व्यावसायिक लेन–देनों एवं घटनाओं को लिखने एवं वर्गीकृत करने की कला एवं विज्ञान है।
3. जो व्यवहार वित्तीय प्रकृति के होते हैं तथा जिन्हें मुद्रा में व्यक्त किया जा सकता है, उन्हीं का लेखांकन किया जा सकता है।
4. लेखांकन से सारांश लिखने, उसका विश्लेषण और निर्वचन करने में मदद मिलती है।
5. सम्बंधित पक्षकारों को परिमाणात्मक वित्तीय सूचनायें लेखांकन के माध्यम से प्रदान की जाती है।

6. लेखांकन की मदद से व्यक्ति व संस्थाएं उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से तर्कसम्मत एवं सर्वोत्तम विकल्प चुनना संभव होता है।
7. मापन, वर्गीकरण व सारांश लेखन के विभिन्न सूचनाओं की सभी मदों की उचित ढंग से एकत्रीकरण करके सम्बंधित पक्षकारों को दिया जा सकता है।
8. लेखांकन सूचना प्रणाली के रूप में अभिनिर्णयन प्रक्रिया के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।
9. लेखांकन आर्थिक क्रियाकलापों को प्रतिरूपित करने की ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा है।

पुस्तपालन एवं लेखांकन

पुस्तपालन का अर्थ– पुस्तपालन अंग्रेजी के दो शब्द बुक + कीपिंग से बना है, जिसका अर्थ ''पुस्तकें रखना''। पुस्तकें रखने का अभिप्राय व्यावसायिक लेखे–जोखों को निश्चित नियम एवं विधि के अनुसार पूर्ण लिखित लेखा रखने के लिए लेखा पुस्तकों का रखना है। लेखा पुस्तकों को रखने का तात्पर्य पुस्तकों में नियमानुसार लेन–देनों को उन पुस्तकों में लिखने से है। पुस्तपालन की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार है–

जे. आर. बाटलीबॉय के अनुसार ''पुस्तपालन व्यापारिक लेन–देनों को उचित खाते के अन्तर्गत दर्ज करने का विज्ञान और कला है।''

प्रो. कोटलर के अनुसार, ''एक पूर्व वैचारिक योजना के अनुसार व्यवहारों के विश्लेषण , वर्गीकरण तथा लेखांकन की प्रक्रिया को पुस्तपालन कहते हैं।''

अतः हम कह सकते हैं कि पुस्तपालन किसी व्यक्ति अथवा व्यावसायिक संगठन द्वारा व्यापार के समस्त लेन–देनों को लेखा पुस्तकों में निश्चित विधि तथा सिद्धान्तों के आधार पर शुद्धतापूर्वक लिखने का एक विज्ञान एवं कला है जिससे किसी भी निश्चित समय में व्यापार द्वारा होने वाले लाभ अथवा हानि को जाना जा सके तथा व्यापार की आर्थिक स्थिति का भी ज्ञान हो सके।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुस्तपालन लेखांकन का ही प्राथमिक चरण है फिर भी इन दोनों का अन्तर निम्नलिखित आधार पर और स्पष्ट किया जा सकता है –

लेखांकन के उद्देश्य

1. समस्त आर्थिक व्यवहारों का लेखा।
2. लाभ–हानि का निर्धारण।

पुस्तपालन तथा लेखांकन में अन्तर

क्षेत्र	पुस्तपालन	लेखांकन
1. क्षेत्र	इसका क्षेत्र सीमित होता है। और केवल व्यापारिक व्यवहारों का लेखा करने तक ही सीमित होता है, यह लेखांकन का प्रारंभिक चरण है।	इसका क्षेत्र पुस्तपालन की तुलना में विस्तृत होता है। लेखांकन में पुस्तपालन सम्मिलित होता है।
2. उद्देश्य	पुस्तपालन का उद्देश्य लेखों की मौलिक पुस्तकें तैयार करना है। यह जर्नल, लेखों, सहायक पुस्तकों खाताबही तक ही सीमित रहती है।	लेखांकन का उद्देश्य, व्यावसायिक व्यवहारों का लेखांकन, विश्लेषण एवं निर्वाचन करन होता है।
3. कार्य का स्तर	इसका कार्य प्रारम्भिक स्तर पर होता है। और प्रमुख रूप से लेखा लिपिक द्वारा किया जाता है।	लेखांकन का सम्बन्ध निचले, मध्यम एवं उच्च स्तर पर होता है। प्रारम्भिक स्तर पर लिपिक खातों में प्रविष्टि करते है। मध्यवर्ती स्तर पर लेखाकार इनकी रिपोर्ट तैयार करते हैं और उच्च स्तर पर प्रबंधकोय लेखाकार इसका विश्लेषण व निर्वचन करते हैं।
4. पारस्परिक निर्भरता	पुस्तपालन प्रारम्भिक स्तर पर लेखा करने की कला है।	लेखांकन इसे अर्थपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण बनाता है अर्थात् लेखांकन और पुस्तपालन में आपसी निर्भरता है।
5. वित्तीय व्यवहारों का परिणाम	इससे व्यवसाय की वित्तीय स्थिति की जानकारी नही हो पाती है।	लेखांकन व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को तथा व्यवसाय की लाभ–हानि एवं सम्पति तथा दायित्वों को प्रकट करता है।
6. लेखांकन के सिद्धान्त	पुस्तपालन में लेखांकन के सिद्धान्तों को सभी व्यवसाय समान रूप से अपनाते हैं।	लेखांकन के तथ्यों की रिपोर्ट विश्लेषण एवं निर्वचन के तरीकों में विभिन्न व्यवसायों में थोड़ी बहुत भिन्नता होती है।

3. वित्तीय स्थिति का चित्रण।
4. व्यवसाय पर प्रभावी नियंत्रण ।
5. व्यवसाय में हित रखने वाले पक्षों को सूचनाएं उपलब्ध करवाना।
6. कर सम्बंधी सूचनाएं तैयार करना।
7. वित्तीय संस्थाओं को आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध करना।

लेखांकन की विधियां

व्यावसायिक गतिविधियों के साथ–साथ लेखांकन की भी विभिन्न गतिविधियों का भी विकास हुआ है। व्यवसाय की प्रकृति, आकार, लागत, लाभ, कानूनी आवश्यकता, सूचनाओं की आवश्यकता आदि को ध्यान में रखकर व्यवसाय इन्हें अपनाता है। भारत में मुख्य रूप से तीन विधियां लेखांकन के लिए अपनाई गई हैं, इनका विवरण निम्न प्रकार हैः–

1. इकहरा लेखा विधि–

इकहरा लेखांकन पद्धति में लेखांकन के द्विपक्षीय सिद्धान्त का ध्यान नहीं रखा जाता है। व्यावसायिक संस्थाएं अपनी आवश्यकतानुसार तथा सुविधानुसार अपनाती हैं। कुछ संस्थाएं केवल लेनदेनों के व्यक्तिगत पक्ष का ही लेखा–जोखा करती हैं तथा रोकड़ को छोड़कर अन्य अव्यक्तिगत पक्षों पर कोई ध्यान नहीं देती हैं तो कुछ संस्थाएं अन्य कुछ अव्यक्तिगत पक्षों का भी हिसाब रखती है। परिणामस्वरूप कुछ लेनदेनों का दोहरा लेखा हो जाता है तो कुछ का इकहरा लेखा व कुछ लेन–देनों का लेखा ही नहीं हो पाता है। अतः इकहरा लेखा विधि के कोई आवश्यक एवं औपचारिक सिद्धान्त नहीं होते हैं और न ही कोई लेनदेनों का लेखा करने के निश्चित नियम ही होते हैं। इस प्रकार यह कोई निश्चित पद्धति नहीं है।

सामान्यतया इसे बहुत ही छोटे व्यापारी वर्गों द्वारा प्रयोग में लिया जाता है। बही रखी जाती है जिसमें व्यापार की प्राप्तियों एवं भुगतानों का लेखा करते हैं। सामान्यतः बिक्री रोकड़ आधार पर ही की जाती है। उधार बिक्री की दशा में स्मरण पुस्तक या कच्चा रोजनामचा रख लेते है। इस प्रकार व्यापारिक लेन–देनों को लिखने की यह अपूर्ण एवं अव्यावहारिक विधि है तथा व्यापारी वर्ग भी इस विधि का प्रयोग नहीं करते हैं।

2. दोहरा लेखा विधि –

दोहरा लेखा इस तथ्य पर आधारित है कि प्रत्येक वित्तीय व्यवहार अथवा लेन–देन के दो पक्ष होते हैं तथा प्रत्येक व्यवहार का लेखा दो खातों में करना होता है। एक खाते के बायें पक्ष जिसे डेबिट (Dr.) कहते हैं और दूसरे खाते के दायें पक्ष जिसे क्रेडिट (Cr.) कहते हैं, उसके पक्ष में लेखा किया जाता है। यह स्वयं में पूर्ण एक ऐसी सर्वोत्तम एवं वैज्ञानिक विधि है जिसके अपने निश्चित नियम एवं सिद्धान्त होते हैं। इसके अन्तर्गत न केवल व्यापार के समस्त व्यवहारों का ही अपितु प्रत्येक व्यवहार का डेबिट एवं क्रेडिट दोनों ही पहलुओं का लेखा किया जाता है।

Ledger of ....
..................................account

Credit | | | | | | | Debit

Date	Particulars	JF	Rs.	Date	Particulars	JF	Rs.

दोहरा लेखा विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि प्रत्येक लेन–देन में एक पक्ष कुछ देता है तथा दूसरा पक्ष कुछ लेता है इसलिये प्रत्येक लेन–देन के दोनों पक्षों में दर्ज किया जाता है और यही कारण है कि इस विधि को दोहरा–लेखा विधि कहते हैं। वर्तमान में यह प्रणाली पूरे विश्व में प्रचलित है और लेखांकन का अर्थ इसी विधि से दर्ज व्यवहारों के आधार पर लिया जाता है। इस विधि के द्वारा व्यक्तिगत, वास्तविक तथा अवास्तविक समस्त खातों में नियमानुसार लेखा करने पर अन्तिम खाते आसानी से तैयार हो जाते हैं तथा आर्थिक परिणाम व वित्तीय स्थिति का सही–सही पता चल जाता है।

दोहरा लेखा पद्धति का उद्‌भव एवं विकास

दोहरा लेखा प्रणाली का जन्म लगभग 500 वर्ष पूर्व इटली में हुआ था, इसलिए इसे इटालियन प्रणाली भी कहते हैं। इस प्रणाली के सिद्धान्तों का वर्णन सन् 1494 में लुकास पैसीयोली नामक व्यक्ति ने **'डी कम्पोसेट स्क्रिपचर्स'** नामक पुस्तक में किया। इसी पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद लूज ओल्ड कैंसिल ने लंदन में 1543 ई. में प्रकाशित किया। बाद में सन् 1795 में एडवर्ड जोन्स ने बुक कीपिंग की अंग्रेजी प्रणाली **"दी इंगलिश सिस्टम ऑफ बुक कीपिंग"** नामक पुस्तक लिखी। बाद में शनैः शनैः इसमें कितने सुधार हुए तथा आज यह पूर्ण एवं वैज्ञानिक प्रणाली है। भारत में इसका प्रारंभ व विकास अंग्रेजों के शासनकाल में हुआ।

दोहरा लेखा पद्धति का अर्थ

प्रत्येक व्यावसायिक लेन–देनों के दो पक्ष होते है। यदि कोई कुछ प्राप्त करने वाला होता है तो दूसरा देने वाला होता है, यदि कोई क्रेता है तो दूसरा अवश्य विक्रेता होता है, यदि कोई वस्तु अथवा सम्पति किसी के पास आती है तो वह दूसरे के पास से अवश्य जाती है। इसी प्रकार एक व्यवसाय के लिए कुछ व्यय है तो दूसरे किसी दूसरे के लिए वह आय होगी। व्यवसायिक लेनदेनों के इस दोहरे पहलू को लेखा पुस्तकों में क्रमबद्ध नियमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से लिखने की क्रिया को दोहरा लेखा पद्धति, प्रणाली या विधि कहते हैं।

दोहरा लेखा प्रणाली की विशेषताएं

1. प्रत्येक लेन–देन में दो प्रकार के पक्षकार होते हैं तथा लेखा प्रविष्टि में एक पक्ष को डेबिट किया जाता है तथा दूसरे पक्ष को क्रेडिट।
2. इसी प्रकार प्रत्येक खाते में भी दो पक्ष होते हैं। नाम पक्ष व जमा पक्ष (क्रेडिट व डेबिट)। खातों से सम्बंधित लेनदेनों को खातों के डेबिट तथा क्रेडिट पक्ष में लिखते हैं।
3. प्रत्येक लेनदेन की प्रविष्टि दो खातों में एक दूसरे से विपरीत पक्ष में की जाती है। खातों के दोनों पक्षों में समान राशि से डेबिट व क्रेडिट किया जाता है।
4. खाता बही एक प्रमुख लेखा पुस्तक होती है। इसमें व्यवसाय से सम्बंधित सभी खाते होते हैं।
5. खाता बही में खोले गये खातों के शेष निकाल कर तलपट तैयार किया जाता है जिसमें खातों के लेखा संबंधी शुद्धता की जांच की जाती है।

दोहरा लेखा पद्धति के सिद्धान्त

दोहरा लेखा पद्धति निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होती हैः–

1. **प्रत्येक वित्तीय व्यवहार (सौदे) के दो पक्षकार**– प्रत्येक व्यापारिक लेन–देन के दो पक्ष होते हैं। इसमें एक लाभ प्राप्त करने वाला पक्ष होता है दूसरा लाभ देने वाला पक्ष होता है। यह व्यवहार रोकड़, वस्तु या सेवा के आदान–प्रदान के रूप में होता है।
2. **दोनों पक्षों पर व्यवहार का प्रभाव**– प्रत्येक व्यापारिक व्यवहार का दोनों पक्षों पर बराबर प्रभाव पड़ता है।
3. **दोनों पक्षों में लेखा**– प्रत्येक लेन–देन का प्रभाव दोनों पक्षों पर पड़ता है, अतः इनका लेखा भी दोनों पक्षों में किया जाना आवश्यक है।
4. **दोनों पक्षों पर विपरीत प्रभाव**– प्रत्येक व्यवहार का प्रभाव एक पक्ष के क्रेडिट तथा दूसरे पक्ष के डेबिट पर ही पड़ेगा।

दोहरा लेखा प्रणाली की विभिन्न अवस्थाएं–

दोहरा लेखा विधि के अन्तर्गत पुस्तपालन एवं लेखांकन संबंधी समस्त कार्यों के प्रमुख रूप से तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है, यही इसकी विभिन्न अवस्थाएं हैं। ये अवस्थाएं एक के बाद दूसरी आती है। ये निम्न प्रकार हैं–

1. **प्रारम्भिक लेखा**– व्यापारिक लेन–देन का व्यवहार होते ही उसे तुरन्त लिख लेने की अवस्था को प्रारम्भिक लेखे की अवस्था कहते हैं। इसलिए इनका लेखा जिन पुस्तकों में किया जाता है उनको 'प्रारम्भिक लेखे की पुस्तकें' कहते हैं। छोटा व्यापारी सभी सौदों का लेखा एक ही पुस्तक में करता है जिसे जर्नल कहते हैं परन्तु बड़े व्यापारी एक जर्नल रखने के स्थान पर लेन–देनों की प्रकृति के अनुसार विभिन्न जर्नल अर्थात् सहायक पुस्तकें जिनमें क्रय पुस्तक, विक्रय वापसी पुस्तक, प्राप्त बिल पुस्तक, देय बिल पुस्तक, रोकड़ पुस्तक एवं प्रमुख जर्नल में नियमानुसार लेखे करते हैं। ये सभी पुस्तकें जर्नल के भाग है।
2. **वर्गीकरण एवं खतौनी**– प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों में सौदों का लेखा हो जाने मात्र से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती है। प्रारम्भिक लेखा तो समस्त व्यापारिक लेनदेनों को स्मरण करने के लिये लिखित रूप में देने का एक साधन मात्र है, इससे यह पता नहीं लगाया जा सकता कि किस व्यापारी से कितना रूपया लेना है? किसको कितना देना है? किसी विशेष अवधि में कितने रूपयों का माल क्रय किया गया या विक्रय किया गया? किस मद पर कितना व्यय हुआ और किन किन मदों से कितनी आय हुई? इसका कारण यह है कि प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों में एक मद से सम्बंधित व्यवहार एक स्थान पर नहीं लिखे जाते बल्कि वे विभिन्न तिथियों में फैले हुए होते हैं। जब तक सब व्यवहारों को एक स्थान पर लाकर उनका सामूहिक परिणाम न देखा जाये तब तक उपर्युक्त जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती।

दोहरा लेखा पद्धति के अन्तर्गत लेखांकन की दूसरी अवस्था की प्रमुख लेखा पुस्तक खाताबही है। खाताबही में प्रत्येक पक्ष का एक खाता अर्थात् विभिन्न व्यक्तियों, वस्तुओं तथा आय–व्यय से संबंधित खाते खोले जाते हैं। इन सभी व्यवहारों को छांटकर सम्बंधित खातों के सही पक्ष में उनका लेखा कर दिया जाता हैं। छांटने के इस कार्य को वर्गीकरण तथा खाते में लिखने के कार्य को खतौनी कहा जाता है। खाताबही व्यापार की प्रमुख लेखा पुस्तक होती है जिससे व्यापार के बारे में विभिन्न सूचनाएं आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

3. **सारांश या अन्तिम खाते बनाना–** खाते बहियों में बहुत खाते होते हैं। इनको देखने से यह ज्ञान नहीं हो सकता कि व्यापार में कितना लाभ या हानि हुई? व्यापार की आर्थिक स्थिति कैसी है? इसकी जानकारी हेतु खाता बही के समस्त खातों से कार्य के अन्त में शेष निकाल कर तलपट बनाया जाता है। इसी तलपट की सहायता से व्यापार खाता लाभ–हानि खाता तथा चिट्ठा या तुलना पत्र बनाया जाता है जिन्हें व्यापार के अन्तिम खाते कहते हैं। व्यापार के अन्तिम खातों से व्यापार का लाभ या हानि तथा आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। यही पुस्तपालन एवं लेखांकन की तृतीय अवस्था है।

दोहरा लेखा पद्धति के लाभ–

दोहरा लेखा प्रणाली हिसाब–किताब की एक पूर्ण एवं वैज्ञानिक प्रणाली है जिसका प्रयोग विश्व के अधिकांश देशों में किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग करने पर व्यवसाय को निम्नलिखित लाभ होते हैंः–

1. **पूर्ण एवं वैज्ञानिक आधार पर लेखा–** दोहरा लेखा प्रणाली लेखांकन की एक पूर्ण प्रणाली है। इसमें व्यक्तिगत, वस्तुगत एवं आय–व्यय से संबंधित सभी खाते रखे जाते हैं जिससे व्यापार का हिसाब पूर्ण रहता है। यह प्रणाली निश्चित सिद्धान्तों एवं नियमों पर आधारित होने से पूर्ण वैज्ञानिक हैं। इसमें प्रत्येक लेन–देन का दोहरा लेखा रहने से त्रुटि की संभावना नहीं रहती है। यदि कोई त्रुटि रह जाये तो शीघ्र ही पकड़ में आ जाती है।

2. **विश्वसनीय आधार पर लेखा–** यह प्रणाली पूर्ण रूप से विश्वसनीय है क्योंकि प्रत्येक लेन–देन को कम से कम दो खातों में लिखा जाता है। एक के नाम पक्ष की ओर तथा दूसरे के जमा पक्ष की ओर। अतः जितनी रकम नाम पक्ष में लिखी जायेगी उतनी ही जमा पक्ष में। इस नियम से खाता बही के खातों का शेष निकाल कर तलपट बनाकर पुस्तकों की शुद्धता की जांच की जाती है। इससे खातों की शुद्धता प्रमाणित हो जाती है और इसी कारण यह विश्वसनीय है।

3. **लाभ–हानि की जानकारी–** इस प्रणाली के अन्तर्गत सभी आय–व्यय तथा लाभ–हानि से सम्बंधित व्यवहारों का लेखा किया जाता है जिससे व्यापारी जब भी चाहे लाभ–हानि खाता बनाकर सम्बंधित अवधि के शुद्ध लाभ या हानि की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

4. **आर्थिक स्थिति का ज्ञान–** इस प्रणाली में सभी सम्पतियों एवं दायित्वों का पृथक् –पृथक लेखा रखा जाता है। व्यापार के स्वामी के निजी व्यवहारों का लेखा तथा समायोजन प्रविष्टियां भी की जाती है। जिनसे व्यापारी व्यापार का चिट्ठा बना सकता है। अतः इस प्रणाली के आधार पर व्यवसाय की एक निश्चित तिथि को सही आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

5. **सूचना प्राप्ति में सुगमता–** व्यवसाय के क्रय–विक्रय, आय–व्यय, लेनदार–देनदार, विभिन्न सम्पतियों एवं दायित्वों सम्बंधी सूचनाएं सुगमता, सरलता एवं तत्परता से उपलब्ध हो जाती है। बाहरी पक्षकारों को चुकाई जाने वाली तथा उनसे प्राप्त की जाने वाली राशियों की आसानी से सही गणना की जा सकती है।

6. **धोखाधड़ी व जालसाजी की कम संभावना–** इस प्रणाली में प्रत्येक लेन–देन को दो खातों में लिखा जाता है, इसलिये बेईमानी तथा धोखेबाजी की कम संभावना रहती है, इसलिये कोई कर्मचारी यदि बेईमानी करता है तो उसे पकड़ा जा सकता है।

7. **तुलनात्मक अध्ययन–** यह पद्धति पूर्ण है तथा इसके अन्तर्गत वर्ष की समाप्ति पर व्यापार खाता, लाभ–हानि खाता एवं चिट्ठा बनाया जाता है। विगत वर्ष के अन्तिम खातों की तुलना वर्तमान खातों से की जाकर व्यापार की प्रगति एवं लाभ की योजनाएं बनाई जा सकती है तथा यदि हानि होती है तो उस पर अंकुश लगाया जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न वर्षों के परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन संभव हो जाता है।

8. **वैधानिक मान्यता–** दोहरा लेखा प्रणाली के पूर्णतया वैज्ञानिक होने से हमारे देश में कम्पनी अधिनियम एवं अन्य अधिनियमों द्वारा इसको वैधानिक मान्यता प्राप्त है। बैंक,

बीमा एवं बड़ी–बड़ी कम्पनियों को इस प्रणाली के अनुसार अपने लेखे रखना कानूनन अनिवार्य है।

दोहरा लेखा पद्धति की सीमाएं अथवा दोष– यद्यपि लेखांकन की दोहरा लेखा पद्धति पूर्ण वैज्ञानिक प्रणाली है, तथापि इसकी कुछ सीमाएं व दोष हैं जो निम्नलिखित हैः–

1. **लेखों के छूट जाने पर कोई प्रभाव नहीं**–यदि कोई लेखा प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों में लिखने से ही रह जाता है तो इस अशुद्धि का कोई पता नहीं लगाया जा सकता है। जैसे सुनिल को 1000 रूपए माल बेचा। यह उधार का सौदा है जिसे विक्रय बही में लिखा जाना चाहिये किन्तु लिपिक की भूल से उक्त सौदा विक्रय बही में नहीं लिखा जा सका तो इसकी खतौनी न तो सुनिल के खाते में होगी और न ही विक्रय खाते में। इस प्रकार तलपट पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।
2. **गलत रकम लिखने पर भी गलती का पता नहीं लगना**– यदि किसी व्यवहार का प्रारंभिक लेखा करते समय गलत रकम लिख दी गई है तो खाताबही से प्रभावित होने वाले खातों में गलत राशि ही लिखी जायेगी, जिससे तलपट पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे सोहन को 5000 रूपए का माल बेचा किन्तु विक्रय पुस्तक में प्रविष्टि 500 रूपए से ही की गई है तो खतौनी में भी सोहन एवं विक्रय खाते में 500 रूपए ही लिखे जायेंगे।
3. **क्षतिपूरक अशुद्धियों को खोजना कठिन**– कभी–कभी खतौनी में जितनी राशि का अन्तर किसी खाते के डेबिट पक्ष में हो जाता है उतना ही अन्तर किसी अन्य खाते अथवा कुछ खातों के क्रेडिट पक्ष में भी हो जाता है तो ऐसी अशुद्धि तलपट को प्रभावित नहीं करती, जिससे उसको ज्ञात करना कठिन हो जाता है।
4. **गलत खाते के सही पक्ष में खतौनी का प्रभाव नहीं**– कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है कि गलत खाते के सही पक्ष मे ंकोई पक्ष की खतौनी कर दी जाती है तो इस अशुद्धि का पता नहीं चलता, जैसे सोहन के खाते को 5000 रूपए से डेबिट करने के बजाय मोहन के खाते को 5000 रूपए से डेबिट कर दिया जावे।
5. **खर्चीली प्रणाली** – यह प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक खर्चीली है क्योंकि भारी भरकम रजिस्टरों पर बहियों के कारण अधिक व्यय करना पड़ता है, किन्तु बड़े व्यवसायों में उसकी उपयोगिता की दृष्टि से यह व्यय बहुत बड़ा दोष नहीं है।
6. **योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता** – इस प्रणाली में योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति ही हिसाब की पुस्तकें लिखने में सक्षम होते हैं। कम पढ़े–लिखे लोग इस प्रणाली के अन्तर्गत कार्य में अक्षम होते हैं। अंग्रेजी में यदि पुस्तकें रखी जाती हैं तो विशेष शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

महाजनी बहीखाता पद्धति

महाजनी बहीखाता पद्धति भी अंग्रेजी बहीखाता पद्धति की ही भांति पूर्ण तथा वैज्ञानिक है, किन्तु इसके विषय में अधिक साहित्य तथा खोज के अभाव में यह विकसित नहीं हो सकी। फिर अंग्रेजी शासन में इसको कोई प्रोत्साहन भी नहीं मिल सका था क्योंकि वे अंग्रेजी बहीखाता पद्धति को ही प्राथमिकता तथा प्रोत्साहन देते थे। इस स्थिति में इसको वह स्थान पूर्णतः प्राप्त नहीं हो सका जो अंग्रेजी बहीखाता प्रणाली को प्राप्त है। इस पद्धति पर विस्तृत जानकारी के लिए कोई उत्तम पुस्तकें भी नहीं लिखी गई ताकि व्यापारियों को उनका अध्ययन करने का अवसर मिल सके, किन्तु फिर भी यह पद्धति भारत में बहुत अधिक प्रयोग में लाई जाती है। अतः भारतीय विद्यार्थियों को इस पद्धति के अनुसार हिसाब–किताब रखने का पूर्ण ज्ञान का होना परमावश्यक है।

महाजनी बहीखाता पद्धति की विशेषताएं

1. यह पद्धति अंग्रेजी बहीखाता प्रणाली की तरह ही पूर्ण तथा वैज्ञानिक है।
2. इसमें दोहरा लेखा के सिद्धान्तों का पालन किया जाता है।
3. इसमें हिसाब–किताब लिखने के लिए बहियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें मोटे तथा चिकने कागज होते हैं। यह आकार में बहुत लम्बी होती है और उनके उपर पतला गत्ता व लाल कपड़ा चढ़ा होता है। यह एक ओर से मजबूत डोरी से सिली रहती है। लम्बी होने के कारण इनको बीच में से मोड़ने की सुविधा होती है।
4. बहियों में रजिस्टरों की भांति लाईन नहीं खींची जाती बल्कि लाईन के स्थान पर पन्नों को मोड़कर सल डाल दिये जाते है।
5. बहियों में प्रविष्टि नीली और लाल स्याही के स्थान पर अधिकतर काली स्याही से की जाती है।

6. इस पद्धति से हिसाब–किताब हिन्दी, गुजराती, मराठी, गुरूमुखी, सिन्धी, उर्दू तथा अन्य भाषाओं में अपनी सुविधानुसार रखा जा सकता है। लेखों की गोपनीयता रखने के लिए कई व्यापारी हिसाब सर्राफा अथवा मुड़िया लिपि में भी रखते हैं।
7. इस पद्धति में रकम प्रारम्भ में लिखी जाती है और रकम में रूपए पैसे के खाने न बनाकर भारतीय तरीके से लिखा जाता है। जैसे–ृरूपए लिखने के बाद अर्द्ध कोष्ठक जैसा निशान लगाया जाता है। अगर नये पैसे लिखने हों तो रूपए कोष्ठक में तथा पैसे कोष्ठक से बाहर लिखे जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हमें 25 रूपये 55 पैसे लिखने हैं तो इस प्रकार लिखे जायेंगे 25)55
8. इस पद्धति में हिन्दी तिथि तथा अंग्रेजी तारीखें दोनों लिखी जाती है।

महाजनी बहीखाता पद्धति के अनुसार लेखा रखने की विधिः–

इस पद्धति में भी अंग्रेजी बहीखाता पद्धति की भांति प्रत्येक लेन–देन का दोहरा लेखा किया जाता है और व्यापारिक लेन–देनों को उसी प्रकार तीन अवस्थाओं में रखा जाता है–

(1) प्रारम्भिक प्रविष्टि – प्रथम स्तर पर स्मरण के लिए प्रत्येक व्यवहार की तिथि क्रमानुसार बहियों में सविस्तार प्रविष्टि की जाती है। प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों में प्रविष्टि करने को जमा–खर्च करना कहते हैं।

प्रत्येक व्यवहार की तिथि क्रमानुसार बहियों में सविस्तार प्रविष्टि की जाती है। प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों में प्रविष्टि करने को जमा–खर्च करना कहते हैं।

(2) वर्गीकरण तथा संग्रह करना– द्वितीय अवस्था में प्रारम्भिक लेखे की प्रत्येक प्रविष्टि को उसके स्वभावानुसार वर्गीकरण कर सम्बंधित खाते में क्रमवार संग्रह किया जाता है। संग्रह करने की इस प्रक्रिया को 'खतौनी करना' अथवा 'खताना' कहते हैं। जिस पुस्तक में समस्त खातों का संग्रह किया जाता है उसे 'खाताबही' कहते हैं।

महाजनी बही खाता पद्धति में अंग्रेजी " दोहरा–लेखा पद्धति" की भांति ही तीन प्रकार के खाते रखे जाते हैं– (अ) व्यक्तिगत अथवा – 'धनीवार' खाते (ब) वस्तुगत खाते, तथा (स) हानि–लाभगत खाते।

'माल खाता' केवल एक ही रखा जाता है। अंग्रेजी पद्धति की भांति 'क्रय', 'विक्रय, ' क्रय–वापसी' तथा विक्रय–वापसी' को खातों में विभाजित नहीं किया जाता। माल पर किये जाने वाले प्रत्येक व्यय जैसे चुंगी, गाड़ी भाड़ा आदि के लिए पृथक खाते नहीं खोले जाते। इन सबकों माल खाते में ही लिख देते हैं।

(3) सारांश अथवा अन्तिम खाते तैयार करना– अन्तिम और तृतीय अवस्था में एक निश्चित अवधि के समस्त व्यवहारों का परिणाम दो दृष्टिकोणों से ज्ञात किया जाता है–

(अ) लाभ–हानि के दृष्टिकोण से लाभ–हानि खाता तैयार करना।

(ब) आर्थिक स्थिति जानने के दृष्टिकोण से आंकड़ा तैयार करना।

बहियों में प्रविष्टि के नियम– महाजनी बहीखाता पद्धति के अनुसार बहियों मे प्रविष्टि करने के लिए नियम वही हैं, जो दोहरा लेखा पद्धति के हैं।

महाजनी बहीखाता पद्धति तथा अंग्रेजी पद्धति की तुलना– हम पहले बता चुके हैं कि सिद्धान्ततः बहीखाते की महाजनी पद्धति अंग्रेजी पद्धति से मिलती–जुलती है क्योंकि दोनों पद्धतियों में प्रविष्टि करने का आधार दोहरा लेखा प्रणाली है और दोनों पद्धतियों में हिसाब–किताब तीन अवस्थाओं में (प्रारम्भिक प्रविष्टि, वर्गीकरण एवं संग्रह और सारांश लेखन) में रखा जाता है। जहां दोनों पद्धतियों में सिद्धान्त की समानता है। वहां इनके व्यावहारिक प्रयोग में काफी भिन्नता भी है। अतः यह उचित होगा कि विद्यार्थियों को इन दो प्रमुख पद्धतियों की समानताओं तथा असमानताओं का भली प्रकार ज्ञान हो।

महाजनी बहीखाता पद्धति और अंग्रेजी पद्धति की समानताएं

1. दोनों पद्धतियां दोहरा लेखा प्रणाली के सिद्धान्त पर आधारित हैं।
2. दोनों पद्धतियों में हिसाब–किताब को तीन अवस्थाओं में रखा जाता है–

   (अ) प्रारम्भिक प्रविष्टि (ब) वर्गीकरण तथा संग्रह एवं

   (स) सारांश
3. दोनों पद्धतियों में तलपट तैयार करके खाताबही के खातों की गणित सम्बंधी शुद्धता जांची जाती है।

4. दोनों पद्धतियों में एक निश्चित अवधि के पश्चात् लाभ–हानि खाता बनाकर व्यापार का लाभ हानि तथा चिट्ठा (आंकड़ा) बनाकर व्यापार की आर्थिक स्थिति जानी जाती है।
5. दोनों पद्धतियों में खातों को नाम तथा जमा करने के नियम समान हैं।
6. दोनो पद्धतियां पूर्णतः वैज्ञानिक हैं।

महाजनी बहीखाता प्रणाली के गुण

1. इस पद्धति में प्रयोग की जाने वाली बहियां सस्ती, मजबूत तथा टिकाऊ होती है। इसमें लाईने खींचने की परेशानी भी नहीं करनी पड़ती है क्योंकि पन्नों को जोड़कर सीने से पहले ही उसमें सल डाल दिये जाते हैं।
2. इस पद्धति में खतौनी की विधि भी सरल होती है क्योंकि प्रारम्भिक प्रविष्टि की बहियों से खतौनी उसी पक्ष में की जाती है, विपरीत पक्ष में नहीं।
3. खतौनी करते समय खाते में केवल प्रारम्भिक प्रविष्टि की बही का पन्ना नम्बर व मिती लिखी जाती हैं, दूसरे खाते का नाम नहीं लिखा जाता। अतः खतौनी और भी आसान हो जाती है।
4. प्रारम्भिक प्रविष्टि की अधिक बहियां रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि छोटे व्यापारी केवल एक रोकड़ बही में ही उधार तथा रोकड़ी समस्त लेनदेनों की प्रविष्टि कर लेते हैं।
5. इस पद्धति में लेनदेन की राशि एक बार 'सिरे' में तथा दुबारा 'पेटे' के विवरण में लिखी जाती है, अतः गलती की कम संभावना रहती है।
6. यह विधि भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल है। यह किसी भी प्रादेशिक भाषा में अपनी सुविधानुसार लिखी जा सकती है और आवश्यकतानुसार कम या अधिक सहायक बहियों का लचीलापन है। इस गुण के कारण यही पद्धति हमारे देश में, जहां विभिन्न प्रदेशों की परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न है, अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।
7. इस विधि के अनुसार हिसाब रखने के लिए किसी विशेष योग्यता अथवा प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः कोई भी व्यक्ति इसे आसानी से सीख सकता है।
8. इस विधि के अनुसार हिसाब रखने वाले लेखाकार कम वेतन पर ही मिल जाते हैं क्योंकि उनको प्रशिक्षण में अधिक व्यय नहीं करना पड़ता।
9. इस विधि में काली स्याही का प्रयोग किया जाता है

महाजनी बहीखाता प्रणाली में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली

(1) बहियां – भारतीय बहीखाता प्रणाली में जिन पुस्तकों में लेखा किया जाता है। उन्हें बहियां कहा जाता है। ये बहियां अंग्रेजी विधि में रखे जाने वाले रजिस्टरों से भिन्न होती है।

(2) जमा और नाम – भारतीय बहीखाता प्रणाली में रोकड़ बही एवं खाताबही के पन्ने दो बराबर भागों में विभक्त होते हैं– बायें हाथ की ओर का चार सलवटों वाला भाग जमा पक्ष तथा दाहिनी ओर का चार सलवटों वाला भाग नाम पक्ष कहलाता है। यह अंग्रेजी बहीखाता प्रणाली के बिल्कुल विपरीत होता है।

के बिल्कुल विपरीत होता है।

(3) सिरा और पेटा– प्रत्येक बही के जमा व नाम पक्ष के चार खानों में पहला खाना सिरा कहलाता है, तथा शेष बचे तीन खाने पेटा कहलाते है। सिरे वाले खाने सौदों का लेखा करते समय रकम को लिखते हैं तथा पेटे के खानों में सौदे का विवरण लिखा जाता है। पेटे के प्रथम खाने का उपयोग रकम लिखने के लिए भीतरी खाने के रूप में भी किया जाता है।

महाजनी बहीखाते का प्रारूप

1	2	3	4	1	2	3	4
सिरा	पेटा	पेटा	पेटा	सिरा	पेटा	पेटा	पेटा

(4) सल – भारतीय बहीखाता प्रणाली में व्यापारिक बहियां चिकने सफेद या पीले कागज की बनी होती है। इन कागजों की आवश्यकतानुसार मोड़ देते है। जिन्हें सल कहा जाता है। एक कागज या पन्ने में आवश्यकतानुसार 6,8,12 या 16 सल होते हैं। इन सलों का प्रयोग बहियों में सौदों की राशि एवं विवरण को लिखने हेतु किया जाता है।

(5) सिरे चढ़ाना– सिरे के खाने में सौदे की राशि लिखी जाता है। सिरे वाले खाने में राशि लिखने की क्रिया को सिरे चढ़ाना कहा जाता है।

(6) जमा– खर्च करना – व्यवसाय में होने वाले लेन–देन को नियमानुसार बहियों में लिखने को जमा–खर्च करना कहते हैं।

(7) सतैड़ी – यह एक प्रकार का चिन्ह है जिसे रूपए व पैसे के बीच में प्रयोग किया जाता है, जैसे– यदि सिरे पर 158 रूपए 80 पैसे लिखना है तो इसे 158)80 लिखेंगे और यदि केवल 185 रूपए लिखना है तो इसे 185) लिखेंगे। सतैड़ी का निशान लगाने के बाद 'रू' शब्द लिखने की आवश्यकता नहीं हैं।

(8) विध मिलाना – व्यापारी प्रतिदिन रोकड़ सम्बंधी लेन–देनों को रोकड़ बही में लिखता है व सायंकाल रोकड़ बही के नाम व जमा पक्ष के अन्तर को गल्ले में पड़ी हुई रोकड़ से मिलान करना है। रोकड़ बही के शेष का गल्ले की राशि से मिलान करना ही विध मिलाना कहलाता है।

(9) ड्योढ़ा करना– खाता बही के खातों के दोनों पक्षों का योग लगाकर उन्हें बन्द किया जाता है या अन्तिम खातों में स्थानान्तरित किया जाता है। इस क्रिया को खातों में ड्योढ़ा करना कहते हैं।

(10) रोकड़ पोते बाकी – प्रत्येक दिन दुकान बन्द करते समय जो रोकड़ी रूपया व्यवसाय के गल्ले में आता है, उसे रोकड़ पोते बाकी कहते हैं।

(11) वलता– रोकड़ बही में लेखा किये जाने वाले ऐसे व्यवहार जिनके दोनों पक्षों का लेखा रोकड़ बही में किया जाता है उन्हें वलता कहते है। इसे अंग्रेजी पद्धति में प्रविष्टि कहते हैं। रोकड़ एवं बैंक के व्यवहारों की प्रविष्टि जो रोकड़ बही के दोनों पक्षों में की जाती है उसे भी वलता कहते है।

(12) पड़त– पड़त का अर्थ है माल का भाव या माल की दर से है, जैसे–चावल का भाव 20 रूपये प्रति किलो है तो इसे भारतीय बहीखाता प्रणाली में चावल पड़त 20) प्रति किलो कहेंगे।

(13) भरत– माल भरने के पात्र में जितना वजन माल का होता है उसे 'भरत' कहते हैं। व्यवसायी अपने माल को समान वजन या तोल में बोरियों , पीपों आदि में भरते है, जैसे– बोरी में एक क्विंटल माल तथा पीपों में 15 लीटर तेल। जैसे–गेहूँ की 35 बोरी भरत एक क्विंटल प्रति बोरी है। अर्थात् बोरी में एक क्विंटल से 35 बोरियों में 35 क्विंटल गेहूँ है।

(14) बन्द बही– इस बही को स्मरणार्थ बही रोजनामचा बही भी कहा जाता है। व्यवसायी ग्राहकों की भीड़ एवं लेन–देन में व्यस्तता के कारण प्रत्येक लेन–देन को सम्बंधित बही में तुरन्त नहीं लिख पाता है। अतः व्यवसायी समस्त व्यवहारों को उनके होते ही तुरन्त बाद बही में लिख लेता है तथा सुविधानुसार उन्हें फुर्सत में सम्बंधित बहियों में लिख देता है। इस बन्द बही में भी जमा एवं नाम दो पक्ष होते हैं।

(15) कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष– प्रत्येक हिन्दी माह में दो पक्ष होते है। एक कृष्ण पक्ष व दूसरा शुक्ल पक्ष। प्रत्येक पक्ष में एक से पन्द्रह तक दिन होते हैं, जिसे तिथि कहते है । कृष्ण पक्ष को वदी तथा शुक्ल पक्ष को सुदी भी कहते है।

(16) मिति–भारतीय तरीके से तिथि दर्शाने को मिति कहते है। इस शब्द का प्रयोग माह के नाम से पहले किया जाता है यथा– मिति कार्तिक वदी 2 संवत् 2058। यहां सम्वत् वर्ष की संख्या है। अंक अंग्रेजी में नहीं लिखकर हिन्दी के अंक लिखे जाते है।

(17) मेल– भारतीय बहीखाता प्रणाली में प्रारम्भिक लेखे की पुस्तकों में प्रतिदिन व्यवहारों को लिखने से पूर्व व्यापारी उस दिन की तिथि, माह एवं सम्वत् लिखता है तथा अपने इष्टदेव का नाम एवं बही का नाम भी लिखता है, जैसे यदि व्यापारी चैत्र शुक्ला 1 सम्वत् 2058 दिनांक 5 अप्रैल 2001 गुरूवार के दिन की रोकड़ बही प्रारम्भ करेगा तो वह लिखेगा– श्री गणेशाय नमः मेल रोकड़ का श्री शुभ मिती चैत्र शुक्ला 1 सम्वत् 2058 दिनांक 5 अप्रैल 2001 गुरूवार। इस प्रकार मिति व दिनांक आदि के लेखन को ही मेल कहते है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पुस्तपालन एवं लेखांकन की सबसे अधिक वैज्ञानिक विधि है–

   (अ) इकहरा लेखा विधि

   (ब) रोकड़ विधि

   (स) महाजनी विधि

   (द)दोहरा लेखा विधि

2. दोहरे लेखे का अर्थ है, किसी लेन–देन की –

   (अ) एक खाते के दोनें पक्षों में लेखा करना।

   (ब) दो खातों के नाम पक्ष में लेखा करना।

   (स) दो खाते के जमा पक्ष में लेखा करना ।

   (द) एक खाते के नाम पक्ष में तथा दूसरे खाते के जमा पक्ष में लेखा करना।

3. दोहरा लेखा प्रणाली की जिस अवस्था से व्यापार की आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है, वह है–

(अ) वर्गीकरण (ब) सारांश

(स) प्रारम्भिक लेखा (द) खतौनी

4 व्यापार प्रारम्भ करते समय व्यापार का स्वामी जो धनराशि लाता है , उसे कहते है–

(अ)सम्पत्ति (ब) आहरण

(स) पूँजी (द) दायित्व

5. महाजनी लेखा विधि आधारित है–

(अ) इकहरा लेखा विधि पर

(ब) रोकड़ प्रणाली पर

(स) दोहरा लेखा विधि पर

(द) उपर्युक्त किसी पर नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. महाजनी बही में कितनी सलवटें होती हैं?
2. पक्की रोकड़ बही किससे बनाई जाती है?
3. खाताबही में लेखा करने को क्या कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पुस्तपालन की दोहरा लेखा प्रणाली के तीन गुण और दो दोष बताइए।
2. पुस्तपालन की दोहरा लेखा विधि की प्रथम अवस्था की बहियों के नाम बताइए।
3. लेखांकन की परिभाषा दीजिए।
4. लेखांकन के कोई तीन उद्देश्य बताइए।
5. लेखांकन सिद्धान्त की परिभाषा दीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. लेखांकन क्या है? इसके मुख्य उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. दोहरा लेखा प्रणाली के सिद्धान्तों के अनुसार 'प्रत्येक नाम के रकम के लिए उतनी ही जमा रकम होती है, इसको स्पष्टतया समझाइए तथा इसकी विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
3. लेखांकन की दोहरा लेखा विधि के लाभ व दोष सविस्तार बताइए।
4. पुस्तपालन एवं बहीखाता से आप क्या समझते हैं? दोनों में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
5. लेखांकन के कार्यों को सविस्तार समझाइए।
6. महाजनी बही खाता पद्धति किसे कहते है? इसकी क्या विशेषताएं हैं?
7. ''महाजनी बहीखाता पद्धति के पूर्ण तथा वैज्ञानिक पद्धति है।'' इस पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द) 2.(द) 3.(द) 4. (ब) 5.(स) 6. (स)

अध्याय 20

आपदाएं एवं प्रबन्धन

उत्पति के आधार पर आपदाएं दो तरह की होती है, यथा– 1. प्राकृतिक आपदाएं एवं 2. मानव जनित आपदाएं। इन दोनों आपदाओं से जन–धन की अपार क्षति होती है। इस क्षति से बचाव, सुरक्षा एवं प्रबन्ध की दृष्टि से दोनों आपदाओं का विवरण इस प्रकार है:–

प्राकृतिक आपदाएं –

परिवर्तन प्रकृति की सतत् प्रक्रिया है। ऐसे परिवर्तन जिनका प्रभाव मानव के हित में होता है उन्हें प्रकृति का वरदान कहा जाता है लेकिन जब परिवर्तनों का प्रभाव मानव समाज का अहित करता है तो इन्हें प्राकृतिक आपदा कहा जाता है।

प्राकृतिक आपदा प्रकृति में कुछ ही समय में घट जाने वाली घटना या परिवर्तन है। ऐसी घटनाओं के घट जाने के बाद मानव समाज को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वे समस्याएं संकट मानी जाती है।

प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति के कारण

किसी भी प्राकृतिक आपदा के लिए एक नहीं अनेक कारण संयुक्त रूप से जिम्मेदार होते हैं। पृथ्वी की आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों अथवा बलों का प्रभाव कुछ आपदाओं को सीधे प्रभावित करता है जैसे –भूकम्प, ज्वालामुखी आदि। मानव के अनवरत प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण विदोहन तथा बढ़ती जनसंख्या ने भूमि उपयोग के स्वरूप को विकृत किया है फलस्वरूप वनों का विनाश, भूमि का क्षरण व जल संकट जैसी समस्याओं ने पर्यावरण को संकट में डाल दिया है। इससे ग्लोबल वार्मिंग की समस्या पैदा होती जा रही है, जो कहीं न कहीं प्राकृतिक आपदाओं को उत्पन्न कर रही है। मानव को उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने अन्धाधुन्ध विकास के लिए प्राकृतिक संतुलन को हानि पहुँचा रहा है। मानव के ये कार्य प्राकृतिक आपदाओं को अप्रत्यक्ष रूप में आमंत्रण दे रहे हैं।

प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण

उत्पत्ति के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–:–

1. स्थलाकृतिक आपदाएं – इनमें वे प्राकृतिक आपदाएं सम्मिलित की जाती है जो स्थलाकृतिक स्वरूप में अचानक परिवर्तन होने से उत्पन्न होती हैं जैसे– भूकम्प, भूस्खलन, हिमस्खलन, व ज्वालामुखी। भारत में ज्वालामुखी सक्रिय नहीं है।

2. मौसमी आपदाएं – इनमें वे प्राकृतिक आपदाएं सम्मिलित की जाती है जो मौसमी परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं, जैसे– चक्रवात, सुनामी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि।

3. जीवों द्वारा उत्पन्न आपदाएं – इनमें वे प्राकृतिक आपदाएं सम्मिलित की जाती है जो जीवों व जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होती हैं, जैसे – टिड्डी दल का आक्रमण, महामारियां, मृत पशु, प्लेग, मलेरिया इत्यादि।

प्राकृतिक आपदाएं व प्रबन्धन

प्रबन्धन से आशय है, संकट से राहत पाने के लिए प्रत्येक स्तर पर जो जिम्मेदारी निर्धारित है उसके अनुसार समयबद्ध कर्त्तव्य का पालन किया जाना । देश व समाज के चरित्र का परिचय प्राकृतिक आपदा के बाद मानव सेवा में उनके द्वारा किये गये कार्यों से मिलता है। प्रबन्धन को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं–

1. आर्थिक स्थिति
2. व्यक्ति की सकारात्मक सोच
3. सहयोग की भावना
4. सामाजिक ईमानदारी व निष्ठा
5. भौगोलिक परिस्थितियां
6. परिवहन व संचार के साधनों की स्थिति
7. जनसंख्या का घनत्व

उपर्युक्त तीनों प्राकृतिक आपदाओं में से कतिपय प्रमुख

आपदाओं तथा इनका मुकाबला करने से सम्बंधित प्रबन्धन का विवरण इस प्रकार हैः–

भूकम्प

पृथ्वी के आन्तरिक भाग में होने वाली किसी घटना से जब पृथ्वी के किसी भी भाग में कम्पन्न होता है तो उसे भूकम्प कहते हैं। भूकम्प प्राकृतिक आपदाओं में बहुत विनाशकारी आपदा है। इसमें कुछ ही क्षणों में विनाशकारी परिवर्तन हो जाता हैं।

भूकम्प की तीव्रता सीस्मोग्राफ यंत्र के द्वारा रिक्टर पैमाने पर मापा जाता है। इस पैमाने को चार्ल्स रिक्टर ने विकसित किया था। इन्हीं के नाम से निर्मित इस यंत्र का नाम 'रिक्टर' है। इस रिक्टर पैमाने पर भूकम्प की तीव्रता 1 से 12 तक मापी जाती है। रिक्टर पैमाने पर भूकम्प की तरंगों की तीव्रता 5 तक मापी जाये तो इसे सामान्य भूकम्प कहा जाता है। जैसे–जैसे तीव्रता की मात्रा बढ़ती जाती है, भूकम्प महाविनाशकारी रूप लेता जाता है।

भूकम्प उत्पति के कारण –

भूकम्प पृथ्वी की विवर्तनिक गतियों का परिणाम है। विवर्तनिक गतियों में भू प्लेटों का प्रवाह भूकम्प का कारण बनता है। पृथ्वी पर संतुलन की प्रक्रिया के निरन्तर जारी रहने से भी भूकम्प की उत्पति होती है। इस प्रक्रिया में भू पटल पर भ्रंश व उत्थान होते रहते हैं। पृथ्वी से निरन्तर निकलने वाली उष्मा से उसमें संकुचन होता है। यद्यपि यह प्रक्रिया बहुत लम्बे काल तक चलती है पर यह संकुचन भी भूकम्प की उत्पति का कारण बनता है।

भूकम्प प्रवृत क्षेत्र

भारत में आए प्रमुख भूकम्पों को देखा जाये तो ज्ञात होता है कि उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र व उसकी तलहटी में सर्वाधिक नवीन मोड़दार पर्वत है। हिमालय नवीन मोड़दार पर्वत का हिस्सा है जो अभी भी उत्थान की अवस्था में है। हिमालय क्षेत्र में अभी भी संतुलन की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है, अतः इस क्षेत्र में भूकम्प सर्वाधिक आते हैं। प्रायद्वीप पठार को स्थिर भूभाग माना जाता रहा है लेकिन कोयना व लातूर के भूकम्पों के बाद इस क्षेत्र को भी भूकम्प क्षेत्र माना गया है। यही स्थिति गुजरात के कच्छ–भुज क्षेत्र की है।

भूकम्प – एक संकट

भूकम्प एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जो कुछ ही क्षणों में विनाशकारी परिवर्तनों का ऐसा स्वरूप मानव समाज के सम्मुख उपस्थित कर देती है कि ह्रदय दहल जाता है। भूकम्प आने से हजारों जानें काल की ग्रास बन जाती हैं। पृथ्वी की सतह पर दरारें पड़ जाती है, आवागमन के मार्ग टूट जाते हैं, भवन रेत के ढेर की तरह भरभरा कर गिर जाते हैं, नहरों, पुलों व बांधों को क्षति पहुंचती हैं, ये भविष्य में खतरे का पर्याय बनती है।

भूकम्प से बचाव व प्रबन्धन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाओं के उपरान्त सभी सरकारें तत्काल राहत व सहायता उपलब्ध करवाती है। भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या का घनत्व अधिक है जनहानि अधिक होती है। अतः आवश्यक है कि देश में भूकम्प लेखन या मापन यंत्रों का जाल बिछा दिया जाये ताकि भूगर्भ में होने वाली हलचलों का ज्ञान होता रहे। जब कभी तीव्र गति के भूकम्प आने की संभावना बने तो क्षेत्र विशेष के लोगों को प्रचार माध्यमों के द्वारा सजग कर दिया जाये।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – भूकम्प आने का अहसास होने पर व्यक्तिगत स्तर पर तत्काल कुछ निर्णय लेने चाहिए, जैसे – सभी को घर से बाहर खुली जगहों पर जाने को कहना, बिजली तथा गैस बन्द कर देनी चाहिए। पालतु जीवों को बन्धन मुक्त कर देना चाहिए। ये उपाय इसलिए किए जाने सम्भव है कि तीव्र भूकम्प आने से पहले कुछ समय तक हल्के झटके लगते हैं जिससे मानव को भूकम्प आने का आभास हो जाता है।

संकट की घड़ी में व्यक्ति को एकता का परिचय देना आवश्यक हो जाता है। जाति, धर्म व सम्प्रदाय के बन्धनों में मुक्त होकर मानवीय संवेदना के कारण मुक्त हस्त से तन–मन–धन से सहायता करनी चाहिए। इससे मानवीय सम्बन्ध और प्रगाढ़ होते हैं। भारत में लोगों ने मिलकर सदैव पीड़ितों की सहायता करने के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

भूस्खलन

मिट्टी तथा चट्टानों का ढ़लान पर ऊपर से नीचे की ओर खिसकने, लुढ़कने तथा गिरने की प्रक्रिया को भूस्खलन कहते हैं। भूस्खलन यदि बहुत बड़े परिमाण में होता है, तो उस क्षेत्र में गड़गड़ाहट की आवाज धीरे–धीरे शुरू होती है बाद में तेज आवाज के साथ मलबा नीचे की ओर गिरता है।

भूस्खलन के कारण

भूस्खलन के लिए किसी एक कारण को उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है अपितु कई कारक मिलकर भूस्खलन जैसी आपदा को जन्म देते हैं।

1. प्राकृतिक कारण – इसमें चट्टानों की संरचना, भूमि का ढ़ाल, चट्टानों में वलन व भ्रंशन, वर्षा की मात्रा व वनस्पति का अनावरण आदि कारक प्रमुख है। नवीन मोड़दार पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन अधिक होते है क्योंकि वहां उत्थान की सत्त प्रक्रिया के कारण चट्टानों के जोड़ कमजोर होते रहते है व ढ़ाल भी अधिक होता है ऐसे में वर्षा तीव्र हो जाये तो वह स्नेहन का काम करती है।

2. मानवीय कारण – भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदा को मानव ने अनियंत्रित विकास के कारण और अधिक बढ़ा दिया है। वन विनाश से चट्टानों व मिट्टियों पर वृक्षों की जड़ें अपनी मजबूत पकड़ को छोड़ देती हैं, अतः मृदा अपरदन प्रारम्भ हो जाता है। यही मृदा अपरदन धीरे–धीरे भूस्खलन का रूप ले लेता है। सड़के, रेल मार्ग, सुरंगों के निर्माण तथा खनन के रूप में मानव भूस्खलन को बढ़ावा देता है।

भूस्खलन प्रवृत क्षेत्र

भारत में भूस्खलन हिमालय क्षेत्र में अधिक होता है इसके बाद पश्चिमी घाट क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में जहाँ नदियों के प्रवाहित क्षेत्र है, वहां भूस्खलन अधिक होते हैं। पूर्वोत्तर भारत व जम्मू–कश्मीर क्षेत्र में जहां नई सड़कों का निर्माण कार्य हुआ है उन क्षेत्रों में भी भूस्खलन अधिक होते हैं। समुद्री किनारों पर सागरीय लहरों के अपरदन के कारण भी भूस्खलन होते हैं।

भूस्खलन

भूस्खलन – एक संकट

भूस्खलन नदियों के मार्ग अवरूद्ध कर देता है तो कहीं आवागमन के मार्गों को अवरूद्ध कर देता है। मार्ग अवरूद्ध होने से जनजीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। मांग व पूर्ति का संतुलन बिगड़ जाता है। भूस्खलन आबादी वाले क्षेत्रों में होता है तो उससे जन व धन दोनों की हानि होती है। लोग मकान के मलबे के ढेर में दब जाते है। उत्तरांचल में भी भूस्खलनों से भारी जन–धन की हानि प्रायः होती रहती है।

भूस्खलनों से नदियों के मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं तथा वहाँ अस्थायी झील बन जाती है। यह झील जब कभी टूटती है तो बाढ़ से जन–धन की हानि होती है। केदारनाथ में आयी बाढ़ इसका उदाहरण है।

भूस्खलन व प्रबन्धन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – भारत में होने वाले भूस्खलनों का 90 प्रतिशत से अधिक भूस्खलन वर्षा ऋतु में होता है। अतः पर्वतीय क्षेत्रों में जहां कहीं भी परिवहन मार्गों का निर्माण हुआ है, उन मार्गों के दोनों ओर वर्षा जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। मार्गों के निर्माण के दोनों ओर 45^0 के कोण तक के मलबे को निर्माण के दौरान ही हटा देना चाहिए। यदि हटाना सम्भव न हो तो मजबूत दीवार बनाकर चट्टानों को सहारा दे देना चाहिये।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – स्वयं के वाहनों पर जाते समय यदि भूस्खलन सम्भावित क्षेत्र में वर्षा प्रारम्भ हो गई हो तो वाहन को एक किनारे रोक दिया जाये। पर्वतीय क्षेत्रों में मकान मजबूत धरातल पर बनाए जाए। पर्वतीय क्षेत्रों में नदी तटों पर मकान न बनाए जाए। भूस्खलन से मार्ग अवरूद्ध होने पर फंसे हुए व्यक्तियों की दिल से हर तरह की हर सम्भव मदद की जाए।

बाढ़

जब भारी अथवा निरन्तर वर्षा के कारण नदियों का जल अपने तटबन्धों को तोड़कर बहुत बड़े क्षेत्र में फैल जाता है तो उसे बाढ़ कहते हैं। वर्षा ऋतु में वर्षा का यह असमान वितरण भारत में प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनती है। प्रत्येक वर्ष भारत के किसी न किसी क्षेत्र में बाढ़ आती है। भारत में 4 करोड़ हैक्टर क्षेत्र को बाढ़ प्रभावित क्षेत्र माना जाता है।

अपने विशाल आकार एवं मानसूनी जलवायु के कारण ये दोनों प्राकृतिक आपदाएं भारत को प्रभावित करती हैं। भारतीय जनमानस अपने स्वभाव व सहज संतोषी वृत्ति के कारण ईश्वरीय प्रकोप मानकर सदियों से इन आपदाओं को सहता आ रहा है।

बाढ़ का दृश्य

बाढ़ के कारण

भारी वर्षा के चलते नदी जलग्रहण क्षेत्र में प्रवाहित जल को पर्याप्त प्रवाह मार्ग उपलब्ध नहीं होने से अतिरिक्त वर्षा जल चारों ओर फैलने लगता है। वर्षा ऋतु में पानी के साथ बहकर आये अवसाद नदी मार्ग को संकड़ा व उथला कर देते हैं जिसके कारण पानी किनारों के बाहर फैल कर बाढ़ की शक्ल ले लेता है। धरातल से वनों का व चरागाहों के लगातार विनाश भी इसके लिए जिम्मेदार है। इनके अतिरिक्त नदी प्रवाह मार्गों पर आबादी की बसावट, अविवेकपूर्ण तरीके से आवागमन मार्गों का निर्माण, परम्परागत जलग्रहण क्षेत्रों को नष्ट करना तथा प्राकृतिक रूप से जल प्रवाह स्वरूप की उपेक्षा कर निर्माण कार्य करना बाढ़ के कारण बनते है।

भारत में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र

भारत के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र वर्षा के वितरण से निर्धारित है। भारत में बाढ़ों से होने वाली 90 प्रतिशत से अधिक क्षति उत्तरी एवं उत्तरी पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में होती है। भारत के उत्तर–पश्चिम में बहने वाली नदियां सतलज, व्यास, रावी, चिनाब व झेलम से बाढ़ की भयंकरता कम होती है जबकि पूर्व में बहने वाली गंगा, यमुना, गोमती, घाघरा व गंडक आदि नदियों से अपेक्षाकृत अधिक बाढ़ आती है। कोसी व दामोदर नदियों में बाढ़ें महाविनाशकारी होती है। इसीलिए कोसी नदी को 'बिहार का शोक' व दामोदर नदी को 'बंगाल का शोक' कहा जाता है।

देश के उत्तर–पूर्वी भाग में ब्रह्मपुत्र नदी घाटी है। इस नदी घाटी में भी प्रति वर्ष बाढ़ आती है। इस क्षेत्र में वर्षा भी औसत 250 से.मी. से अधिक होती है।

बाढ़ : समस्या व आपदा

भारत में बाढ़ से प्रति वर्ष 2000 से अधिक जानें जाती हैं। 80 लाख हैक्टर क्षेत्र बाढ़ से सर्वाधिक प्रभावित होता है। 35 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फसलें नष्ट हो जाती है। 3 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। आर्थिक रूप से लगभग एक हजार करोड़ रूपयों की हानि प्रतिवर्ष देश में होती है। बाढ़ का सर्वाधिक प्रभाव पशुधन पर पड़ता है। लगभग 12 लाख पशुधन को हानि उठानी पड़ती है। 12 लाख से अधिक मकान क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

भारत में बाढ़ से होने वाली 60 प्रतिशत से अधिक क्षति केवल उत्तर प्रदेश व बिहार में होती है। इसके बाद पश्चिमी बंगाल, आसाम व उड़ीसा को नुकसान उठाना पड़ता है।

बाढ़ की समस्या जीवन को अस्त–व्यस्त कर देती है। मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं तथा फसलें नष्ट हो जाती हैं। पानी के स्रोत खराब व दूषित हो जाते हैं। संचार के साधन बिगड़ जाते हैं। प्रभावित क्षेत्र में गंदगी बढ़ने से महामारी फैलने का भय रहता है। बांधों, तालाबों व नहरों को क्षति होती है।

बाढ़ : प्रबंधन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – देश में बाढ़ की विकरालता के मध्यनजर सबसे पहले इसके रोकथाम की आवश्यकता के प्रयास प्रारम्भ हुए। इस दिशा में सन् 1954 में राष्ट्रीय बाढ़ नियंत्रण योजना शुरू की गई। इस योजना में नदी तटबन्धों का निर्माण व जल–प्रवाह नालिकाओं का निर्माण करने के निर्णय लिये गये। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में बहुउद्देशीय योजनाओं के अन्तर्गत बांध बनाने का कार्य भी किया गया। इस संदर्भ में महानदी, दामोदर, सतलज, व्यास, चम्बल, नर्मदा नदियों पर बांध बनाये गये हैं।

बाढ़ों पर नियन्त्रण के लिए नदी उद्गम क्षेत्रों एवं जल ग्रहण क्षेत्रों में वनों का लगाया जाना अति आवश्यक है। इससे मृदा अपरदन रूकने से नदी पेटे में अवसाद के अभाव में कमी आयेगी। अतः जरूरी है कि वृक्षारोपण के साथ–साथ वनों के अविवेकपूर्ण दोहन को रोका जाये।

यातायात मार्गों के निर्माण के समय यह ध्यान रखा जाये कि इससे जल के प्राकृतिक प्रवाह में अवरोध उत्पन्न न हों।

वर्षा के पहले नदी की जल ग्रहण क्षमता को बढ़ाया जाये। अवसाद को निकालकर तटबन्धों पर डलवाया जाये। इससे दोहरा लाभ होगा। एक नदी की जलग्रहण क्षमता बढ़ेगी व तटबन्ध ऊँचे व मजबूत होंगे।

बाढ़ की समस्या से होने वाली हानि से बचने के लिए 1954 ई. में बाढ़ पूर्वानुमान संगठन की स्थापना की गई है। वर्तमान में प्रत्येक जिला मुख्यालय पर बाढ़ नियन्त्रण कक्ष की स्थापना की गई है। मौसम एवं सिंचाई विभाग वर्षा ऋतु में उस समय होने वाली वर्षा की मात्रा एवं जल प्रवाह की राशि का सतर्कता से अवलोकन करते रहते हैं। संचार साधनों से सदैव जनता को स्थिति से अवगत कराया जाता है।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – व्यक्तियों को चाहिए कि वे वर्षा ऋतु में रेडियो व दूरदर्शन से लगातार समाचार सुनते रहें। यदि वे बाढ़ सम्भावित क्षेत्र में रह रहे हैं तो सरकारी आदेशों व सलाहों

की अनिवार्यतः पालना करें। बिजली उपकरणों को बंद कर दें। घर में कीमती सामान, कपड़े व भोजन सामग्री को सुरक्षित स्थान पर ले जायें, ताकि जब तक बाढ़ का पानी उतरे नहीं तब तक स्वयं का व अन्य लोगों का भी ध्यान रखा जा सके। वाहनों व पालतु पशुओं को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाएं। मकान में यदि जल खतरे के निशान से ऊपर जाने लगे तो सुरक्षित स्थान पर यथाशीघ्र पहुंचने का प्रयास करें।

सूखा (अनावृष्टि, अकाल)

किसी भू–भाग में सामान्यतः जितनी वर्षा होती है, वहाँ वर्षा इतनी कम हो कि फसलों को पर्याप्त उत्पादन न हो पाये, साथ ही मानव व पशुओं के पीने हेतु जल उपलब्ध न हो तो वह क्षेत्र सूखा प्रभावित क्षेत्र माना जाता है। सूखा एक प्राकृतिक आपदा है, इसका सम्बन्ध वर्षा की न्यूनता से है। मानसूनी जलवायु क्षेत्र होने के कारण भारत में कुछ क्षेत्रों में सूखा पड़ना सामान्य है। भारत सरकार के सिंचाई आयोग ने 10 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले भागों को शुष्क क्षेत्र माना है।

सूखा के कारण

सूखे के लिए सबसे प्रमुख कारण पर्याप्त वर्षा नहीं होना है। वर्षा की कमी, असमानता व अनिश्चितता मानसूनी जलवायु की दशाओं के कारण होती है। जिससे भूमिगत जल स्तर में कमी आती है। वन विनाश के कारण भी वर्षा कम होती हैं व भूमि में जल की मात्रा कम प्रवेश कर पाती है। वर्षा का जल अवरोध न होने के कारण बहकर नदियों में चला जाता है। प्राकृतिक जल संचय स्रोतों को नष्ट करने से भी भूमिगत जल स्तर कम होता है। स्थाई जल नीति न होने से जल का समुचित दोहन व उपयोग नहीं होता है। लगातार बढ़ती जनसंख्या भी जल स्रोतों पर विपरीत प्रभाव डालती है।

भारत के सूखा प्रभावित क्षेत्र

देश के 30 प्रतिशत क्षेत्र में सूखे का प्रभाव प्रतिवर्ष पड़ता है तथा औसत 5 करोड़ लोग प्रति वर्ष सूखे से प्रभावित होते हैं। भारत के सिंचाई विभाग ने सूखा क्षेत्रों को दो भागों में बांटा है– प्रथम, सामान्य से 25 प्रतिशत अधिक अनिश्चिता वाले भू–भाग, इसमें पश्चिमी राजस्थान व पश्चिमी गुजरात को शामिल किया गया है। द्वितीय, सामान्य से 25 प्रतिशत तक अनिश्चितता वाले भू–भाग, इसमें पूर्वी गुजरात, पूर्वी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, पश्चिमी मध्य–प्रदेश, मध्य महाराष्ट्र, आन्तरिक कर्नाटक, दक्षिणी आन्ध्र–प्रदेश, मध्यवर्ती कर्नाटक, उत्तरी–पश्चिमी बिहार, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व उड़ीसा को शामिल किया गया है। भारत के लगभग 77 जिलों को अकाल प्रवृत माना गया है तथा इनमें से अधिकांश जिले भारत के पश्चिमी भाग में स्थित हैं।

सूखा – समस्या व संकट

सूखे से सबसे बड़ा संकट अकाल के रूप में उपस्थित होता है। जल की उपलब्धता जितनी कम होती है, अकाल उतना ही विकराल रूप ले लेता है। सूखे के कारण अकाल के तीन स्वरूप स्पष्ट होते हैं। प्रथम, यदि वर्षा इतनी कम हुई है कि फसलें बर्बाद हो गई हैं व अन्न का उत्पादन पर्याप्त नहीं हो पा रहा है तो वह अन्न का अकाल कहा जाता है। द्वितीय, यदि वर्षा इतनी कम हुई है कि न तो पर्याप्त अन्न हुआ है न ही पर्याप्त चारा उपजा है तो वह अन्न व चारे दोनों का अकाल कहलाता है। इसे द्विकाल भी कहते हैं। तृतीय, यदि वर्षा इतनी कम हुई है कि न तो उन्न उपजा है, न चारा व न ही पीने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध है तो इसे त्रिकाल कहते है।

विक्रम संवत् 1956 (ई.सन् 1900) का त्रिकाल जिसे छप्पन का अकाल भी कहते हैं, अब तक का भीषणतम अकाल माना जाता है।

सूखा : प्रबन्धन

1. सरकारी व सामाजिक स्तर पर – सूखे का सम्बन्ध जल की कम उपलब्धता से है। क्षेत्र में जल की उपलब्धता कैसे विकसित की जा सकती है, यह समाज के प्रयासों पर निर्भर करता है। इसके लिए गाँव–गाँव में जल संग्रहण क्षेत्रों का संरक्षण व विकास किया जाना चाहिए। गाँवों में भूमिगत जलस्तर सुधारने के लिए ढाल के अनुसार छोटे–छोटे एनिकट बनवाये जाने चाहिए। लोगों में इस तरह की प्रवृति का विकास किया जाना चाहिए कि वे जल संचय क्षेत्रों को बनाने में सरकार को सहयोग दें व श्रमदान जैसी परम्पराओं को पुनः स्थापित करें।

दीर्घकालीन प्रबन्धन के रूप में नदियों को जोड़ने जैसे भागीरथी, कार्यों को प्रारम्भ किया जाना आवश्यक है। इससे दो तरफा लाभ होंगे, एक जिन क्षेत्रों में वर्षा जल की उपलब्धता ज्यादा है व नदियों में बाढ़ आती रहती है, वहां यह समस्या कम होगी। दूसरा, यह अतिरिक्त जल उन क्षेत्रों में उपयोगी होगा जहां वर्षा व भूमिगत जल कम उपलब्ध है। भू–पृष्ठीय जल के इस तरह के उचित उपयोग से धीरे–धीरे भूमिगत जलस्तर भी बढ़ेगा। यह बढ़ा हुआ जल स्तर अप्रत्यक्ष रूप से कालांतर में हरियाली को विकसित करने में सहयोगी होगा।

2. व्यक्तिगत स्तर पर – इस क्षेत्र में सबसे जरूरी है कि व्यक्ति जल के महत्व को समझें। जल के संचयन व संग्रहण के प्रयासों में व्यक्तिगत रूचि लें। नागरिक अपने घरों में जल संग्रह के लिए टैंक (टांका) बनवाएं। पक्के टैंक वर्षा जल का वर्ष भर उपयोग करने के लिए उपयोगी होंगे व कच्चे टैंक भूमिगत जल स्तर को बढ़ाने के लिए भी उपयोगी होंगे। ग्रामीण क्षेत्र के नागरिक अपने खेतों में मेढ़ बनाकर जल को रोकें। यह जल कुछ समय में ही भूमि में समा जायेगा। इससे गांवों में भू–जल स्तर बढेगा। अन्न उत्पादन के लिए ऐसी फसलों व बीजों का चयन किया जाए कि कम जल व कम समय में समुचित उत्पादन लिया जा सके। सूखे के समय प्रत्येक नागरिक एक–दूसरे की सहायता करें। यह भावना अकाल को सुकाल में बदल देगी।

समुद्री तूफान

समुद्री तूफान को भारत में चक्रवात भी कहते हैं। ये चक्रवात उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में विचरण करते हैं, अतः इन्हें उष्णकटिबन्धीय चक्रवात कहते हैं। भारत में उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात समुद्री क्षेत्र में उत्पन्न होकर बंगाल की खाड़ी व अरब सागर से भारत में प्रवेश करते हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात समुद्र में उत्पन्न होते हैं। अतः इनमें आर्द्रता की मात्रा बहुत होती है। तटीय क्षेत्रों में प्रवेश करने पर ये बहुत वर्षा करते हैं। तटीय क्षेत्रों पर इनकी गति भी तेज होती है। जैसे–जैसे ये आन्तरिक भागों में प्रवेश करते है इनकी गति व वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती जाती है। अपनी तेज गति व अधिक वर्षा के कारण तटीय क्षेत्रों में इनसे जन–धन की हानि होती है।

समुद्री तूफान : उत्पत्ति के कारण

गर्मी में संवहन क्रिया के अन्तर्गत सागरों के ऊपर अधिक ताप के कारण वायु हल्की होकर ऊपर की ओर उठती है, उससे बने कम वायुदाब के क्षेत्र को भरने के लिए चारों ओर से हवाएं आती हैं। इन वायुमण्डलीय विक्षोभ से चक्रवात अथवा समुद्री तूफान या आंधी की उत्पति होती है। देश के भीतरी भागों में ये तूफान कितना अन्दर तक प्रवेश करेंगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उत्तरी –पश्चिमी भारत में तापमान कितना अधिक है व इस कारण न्यून वायुदाब का केन्द्र कितना प्रभावशाली बनता है।

उत्तरी–पश्चिमी भारत में शीतकाल में भी चक्रवाती तूफान आते हैं, लेकिन ये शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात होते हैं। ये भारत में पश्चिम व उत्तर–पश्चिम दिशा से प्रवेश करते हैं। इनसे उत्तरी–पश्चिमी भारत में शीतकालीन वर्षा (मावठ) होती है जो रबी की फसलों के लिए बहुत उपयोगी है।

समुद्री तूफान : प्रभावित क्षेत्र

समुद्री तूफानों से पश्चिमी व पूर्वी समुद्र तटीय व उनसे लगते आन्तरिक क्षेत्र प्रभावित होते हैं। अरब सागर के समुद्री तूफान प्रायः अप्रैल से जून तक पैदा होते हैं। इनका मार्ग सामान्यतः तट के समानान्तर होता है। गुजरात तट से ये भारत में प्रवेश करते हैं। बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात सामान्यतः अक्टूबर से दिसम्बर तक पैदा होते हैं। ये चक्रवात आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना, उड़ीसा व पश्चिमी बंगाल को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं।

समुद्री तूफान : समस्या व संकट

समुद्री तूफान की उत्पति के समय इनका आकार कम होता है लेकिन समुद्री क्षेत्र में निर्बाध आगे बढ़ते रहने के साथ इनका आकार व वायु की गति बढ़ती जाती है। इन चक्रवातों की गति लगभग 15 कि.मी. प्रति घंटा होती है। जल क्षेत्र से आने के कारण इनमें बहुत नमी होती है। तटीय क्षेत्रों में ये तेज हवा के साथ तेज गति से वर्षा करते हैं। वर्षा इतनी भारी होती है कि बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पवनों की गति तेज होने से वृक्ष उखड़ जाते हैं, विद्युत के खम्भे व संचार के साधनों के खम्भे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। कच्चे मकान ढह जाते हैं व झोपड़ियां उड़ जाती है। तेज हवा के कारण तटीय क्षेत्र में समुद्री लहरें अन्दर तक प्रवेश कर जाती है। इनसे भी काफी विनाश होता है। नावें उलट जाती हैं व नाविकों का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

समुद्री तूफान : प्रबंधन

1. सरकार व सामाजिक स्तर पर – समुद्री तूफानों के सम्बन्ध में अग्रिम सूचना तंत्र का विकास अवश्य होना चाहिए। उपग्रह के चित्रों तथा उससे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर तूफान के मार्ग, पवन की गति व वर्षा की मात्रा की जानकारी होती रहनी चाहिए। इन सूचनाओं को रेडियो व अन्य संचार माध्यमों से बार–बार प्रसारित किया जाना चाहिए। नागरिकों को सुरक्षित क्षेत्र की जानकारी दी जाये ताकि वे वहां पहुँच सकें। इस तरह जनहानि को बचाया जा सकता है।

तूफान की गति कम करने के लिए तटीय क्षेत्रों में सघन वृक्षारोपण अभियान चलाये जाने चाहिए। मछुआरों को तूफान की अवधि के समय समुद्र में प्रवेश करने से रोकने की सलाह व प्रयास किये जाने चाहिए। तूफान प्रभावित क्षेत्रों में सामूहिक बीमा जैसी योजनाएं चलाई जानी चाहिए।

समुद्री तूफान का एक दृश्य

2. व्यक्तिगत स्तर पर – संकट के समय जितने भी प्रबन्ध किये जाते हैं, वे व्यक्तिगत ईमानदारी व निष्ठा के बिना सफल नहीं हो सकते हैं। व्यक्तियों को चाहिए कि तूफान के बारे में जो भी सूचनाएं मिल रही हैं उनके आधार पर नागरिक स्वयं सुरक्षित स्थानों पर पहुँचें तथा वृद्धों, बालकों व महिलाओं को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाएं। सरकार व सामाजिक संस्थाओं द्वारा दी जा रही राहत सामग्री का उपयोग मिल बांट कर करें।

मानव जनित आपदाएं

आग लगना

मानव जनित आपदाओं में आग अत्यन्त विनाशकारी आपदा के रूप में प्रतिवर्ष लाखों लोगों की जान लील ले लेती है। कुछ ही क्षणों में जान–माल राख में बदल जाते हैं। प्राकृतिक आपदाओं (भूकम्प, बाढ़ व चक्रवातों) में जितनी जानें नहीं जाती है, उससे कई ज्यादा जानें आग में चली जाती है। शहरों में विद्युत उपकरणों के उपयोग में बरती जाने वाली असावधानियां जिम्मेदार है तो ग्रामीण क्षेत्रों में ज्वलनशील पदार्थों (बीड़ी, सिगरेट) का असावधानीपूर्वक उपयोगी जिम्मेदार है। शहरों व गांवों में अतिशबाजी से भी आग लगती है।

सुरक्षा के उपाय

विद्युत उपकरण अक्सर आग लगने का कारण बनते हैं। इनके असावधानीपूर्वक उपयोग से आग की सम्भावना में वृद्धि हो जाती है। घरों में खाना बनाते वक्त रसोई गैस के लापरवाहीपूर्वक उपयोग से देश में हजारों गृहणियों की जान चली जाती है। बड़े घरों व व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में विद्युत की जटिल वायरिंग भी भीषण आग के लिए जिम्मेदार होती है। आपूर्ति से अधिक विद्युत भार भी शार्ट सर्किट का कारण बनता है। शहरों में भीषण अग्नि काण्ड इन्हीं कारणों से होते हैं। व्यावसायिक स्थलों व घरों में बेकार वस्तुओं व कूड़ाकरकट का नियमित निस्तारण सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है। सर्दियों में अलाव भी आग का एक कारण है। पैकिंग सामग्री, गैस सिलेण्डर, ज्वलनशील रसायन आतिशबाजी की सामग्री, विस्फोटक पदार्थ आदि को किसी अन्य परिसर में सुरक्षित रखना चाहिए।

सड़क दुर्घटनाएं

सम्पर्क तथा बेहतर सेवा–सुविधाओं हेतु पूरे विश्व में तेजी से सड़कों का निर्माण हुआ हैं। जैसे–जैसे सड़कों के जाल का विस्तार हुआ, सड़क दुर्घटनाओं की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। इसी के मध्यनजर यातायात नियमों का निर्धारण भी किया गया परन्तु इन प्रयासों के बावजूद यातायात नियमों के उल्लंघन, तेज गति से गाड़ी चलाना, शराब पीकर वाहन चलाने और वाहनों व मार्गों के रखरखाव के अभाव के कारण प्रतिवर्ष सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। इन सड़क दुर्घटनाओं से अकेले भारत में प्रतिवर्ष 1 लाख 25 हजार लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं।

सुरक्षा उपाय

दुर्घटनाओं से बचने के लिए सड़क की निर्धारित लेन में चलें। सड़क पर लगे चिन्हों का पालन करें। अपनी गति निर्धारित सीमा से तेज न होने दें। रात्रि व वर्षा में वाहन अतिरिक्त सावधानी से चलायें। निर्धारित उम्र से कम उम्र के बच्चों को वाहन न चलाने दें। यातायात नियमों का अनिवार्यतः पालन करें।

हवाई दुर्घटनाएं

वायुयान ने भौगोलिक दूरियाँ कम कर दी हैं। हवाई यात्राओं की सुविधा ने विश्व को छोटा कर दिया है परन्तु यह हवाई यात्रा जितनी तीव्र गति युक्त है, उसमें उतनी ही तकनीकी सावधानियों की आवश्यकता है। किसी भी स्तर पर हुई लापरवाही व असावधानी से एक ही क्षत्र में सैंकड़ों लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते है। वायुयान अपने आप में जटिल विशिष्ट तकनीकी का संयोग है। उसमें तकनीकी गड़बड़ी की आशंका सदैव बनी रहती है। जहाज का जमीन पर उतरना व उड़ान भरने के समय पूरी सावधानी आवश्यक हैं। इस वक्त हवाई अड्डों की सुरक्षा, विमान अपहरण व आतंकवादी आक्रमणों ने मानव जीवन को जोखिम में डाल दिया है। वायुयान का पक्षी से टकराना भी दुर्घटना का कारण बनता है।

सुरक्षा उपाय

वायुयान चालक दल सदैव सतर्क तथा प्रदत्त निर्देशों का पालन करें। यात्री अपनी सीट बेल्ट बांधे। दुर्घटना के वक्त आपातकालीन दरवाजा जीवन रक्षा की अन्तिम उम्मीद होता है, उसकी स्थिति व उपयोग आपके सुरक्षित उतरने में मदद कर सकता है। वायुयान के उड़ान भरते ही परिचालिकाओं द्वारा

सुरक्षा के निर्देश दिये जाते हैं, उनका अनिवार्यतः पालना करें।

रेल दुर्घटनाएं

स्थल मार्गों पर यातायात व माल ढुलाई के विकल्प के रूप में रेल इस सदी के सबसे अधिक उपयोगी साधन के रूप में उभरा है। लम्बी दूरी व अधिक मात्रा में सामान व यात्रियों के परिवहन हेतु इससे सस्ता साधन और कोई नहीं हैं, परन्तु रेल मार्गों पर बढ़ते दबाव ने दुर्घटनाओं की सम्भावनाओं को भी बढ़ा दिया है। अकेले भारत में प्रतिवर्ष लगभग 15,000 से ज्यादा लोग रेल दुर्घटनाओं में अपनी जान गंवाते हैं। रेल दुर्घटनाओं के लिए तकनीकी खराबी व रेल संचालन से जुड़े लोगों की लापरवाही ही अधिकतर मामलों में जिम्मेदार होती है। आजकल गलत शण्टिंग, आतंकवादी व तोड़–फोड़ की कार्यवाही भी दुर्घटना का एक मुख्य कारण बनती जा रही है।

सुरक्षा के उपाय

रेलवे फाटक पर सदैव ध्यान से क्रासिंग पार करें। कभी भी फाटक के नीचे से न निकलें। रेल में ज्वलनशील सामग्री लेकर न चलें। रेल गाड़ी में दरवाजे पर खड़े न रहें। चलती ट्रेन से चढ़ने व उतरने से बचें। रेलगाड़ी में बीड़ी–सिगरेट न पीएं। आपातकालीन जंजीर आवश्यकता होने पर ही खींचे।

मानव जनित आपदाओं में सड़क, रेल, वायुयान व आग की दुर्घटनाओं के बाद नाभिकीय, रसायनिक, औद्योगिक और जैविक दुघर्टनाओं की संख्या भी बढ़ रही है, यथा–

जनविनाशकारी आयुध

जनविनाशकारी आयुधों के प्रथम प्रयोग पर विवाद है। लेकिन सन् 1937 में स्पेन पर हवाई आक्रमण व 1945 ई. में जापान पर आणविक आक्रमण के पश्चात् इनका अधिकाधिक उपयोग होने लगा है। इन्होंने जल्द ही पारम्परिक युद्ध प्रणाली का स्थान ले लिया है। इन आयुधों के जुड़ने से युद्ध अधिक विनाशकारी हो गये हैं। इनसे न केवल मानवता को क्षति होती है ,वरन् पूरे के पूरे शहर कुछ ही क्षणों में राख के टीलों में बदल जाते हैं। सब कुछ वापस नया खड़ा करने में बरसों लग जाते हैं।

नाभिकीय दुर्घटनाएं

मानव द्वारा निर्मित आधुनिक आयुधों में नाभिकीय आयुध विस्फोट सर्वाधिक विनाशकारी है। छोटा व कम मात्रा का नाभिकीय आयुध बड़े पारम्परिक विस्फोटों से ज्यादा शक्तिशाली व विनाशकारी होता है। एक अकेला आयुध कई किलोमीटर क्षेत्र को पूरी तरह से नष्ट कर देता है।

नाभिकीय आयुध मुख्यतः दो प्रकार के होते है। प्रथम जिन्हें हम परमाणु बम कहते हैं, इनकी विस्फोटक ऊर्जा नाभिकीय विखंडन की प्रतिक्रिया से पैदा होती है। द्वितीय, जिन्हें हाइड्रोजन बम कहते हैं, इनमें आयुध नाभिकीय संलयन प्रतिक्रिया के द्वारा भारी मात्रा में ऊर्जा पैदा करते है। वे विखण्डन बमों की तुलना में ज्यादा विनाशकारी होते हैं।

सुरक्षा के उपाय

आक्रमण की स्थिति में धैर्य रखें, घबरायें नहीं। नाभिकीय विस्फोट से कुकुरमुत्ते जैसे बादल बन जाते हैं। लोगों को उबकाई, चक्कर व उल्टी होने लगती है। कुछ ही समय में व्यक्ति की स्मृति कमजोर होने लगती है। रेडियोधर्मिता के कारण आंखों की रोशनी चली जाती है। ऐसी हालत में तुरन्त खिड़की व दरवाजे बन्द करने चाहिये क्योंकि रेडियोएक्टिवता ठोस संरचनाओं में प्रवेश नहीं कर पाती है लेकिन आग घरों को जला सकती है। विस्फोट के पश्चात् भोजन–पानी को ढंक दे क्योंकि इन पर रेडियोएक्टिवता का सबसे पहले प्रभाव पड़ता है।

रासायनिक व औद्योगिक दुर्घटनाएं

विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग भी तेजी से बढ़ा हैं। फसलों की सुरक्षा हेतु रासायनिक खाद, पेयजल की शुद्धता, तथा घरों के लिए विभिन्न प्रकार के रंगों व फसल उत्पादन वृद्धि हेतु कीटनाशकों का निर्माण किया जाता है लेकिन दुविधा यह है कि विकास की अंधी दौड़ में सामान्य से लगने वाले ये रसायन मनुष्य व पर्यावरण के लिए संकट खड़ा कर रहे हैं।

कुछ खतरनाक रसायनों का प्रयोग हमारे दैनिक जीवन में इतना अधिक बढ़ गया है कि जरा–सी असावधानी से हम भंयकर दुर्घटना के शिकार हो सकते हैं। कुछ खतरनाक रसायन हर घर में पाये जाते है जैसे – हेयर स्प्रे, डियोडीरैंट, नेल पालिश, नेल व हेयर रिमूवर, टायलेट क्लिनर आदि।

कुछ अत्यन्त ज्वलनशील रसायनों की आसान उपलब्धता से कुछ असन्तुष्ट व भटके लोग जनविनाशक आयुध बहुत आसानी से बना कर मानवता का खून बहा रहे हैं। इनके अनुचित भंडारण, उपयोग व परिवहन से भी बड़ी दुर्घटनाएं होती है।

रसायनों का असुरक्षित ढंग से स्वार्थपूर्ण उपयोग व उनका रिसाव पूरे समुदाय के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं।

भारत में सन् 1984 में भोपाल शहर में यूनियन कारबाईड के कीटनाशक बनाने के कारखाने से जहरीली गैस के रिसाव से कुछ ही घन्टों में लगभग 3000 लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे थे, जो बचे थे वे आज भी उसके दुष्परिणामों को भुगत रहे है।

सुरक्षा के उपाय –

ऐसे उद्योगों की स्थापना बस्तियों से दूर की जाये। निकट रहने वाले समुदाय के लोगों को बनने वाले रसायन तथा उनके आकस्मिक रिसाव से उन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की स्वयं प्रशासन जानकारी दे। किसी भी विकट परिस्थिति में किये जाने वाले सभी सुरक्षा उपायों से लोगों को शिक्षित किया जाना चाहिये। उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों का बेहतर नियोजन होना चाहिये, ताकि पर्यावरण को नुकसान न हो। उद्योगों का बीमा व सुरक्षा कानून सख्ती से लागू होने चाहिये।

जैविक आपदाएं

जैविक आयुधों को गरीबों का नाभिकीय बम कहा जाता है। इनका निर्माण सरल है तथा इसको बिना परिष्कृत प्रणाली के लक्ष्य तक भेजा जा सकता है। इनकी मारक क्षमता अधिक व अचूक है। इनमें विषैले जीवाणु व अन्य जहरीली गैस छोटे वायुयान या फसलों पर दवाई छिड़ने वाले साधनों एवं यंत्रों से भी आसानी से छिड़की जा सकती है। प्लेग व चेचक जैसी बीमारियों की समय पर पहचान न हो सकने पर तेजी से फैलती है। यहां तक कि डॉक्टर व स्वास्थ्यकर्मी भी नहीं बचते हैं। सन् 2001 में संयुक्त राज्य अमेरिका में दो डाककर्मियों की अस्पष्ट कारणों से मृत्यु हो गई। जांच में मृत्यु के कारणों में एन्थ्रैक्स की आशंका प्रकट की गई। वैज्ञानिकों का यह मानना है कि 100 ग्राम ऐन्थ्रैक्स से किसी नगर के 30 लाख लोगों की मृत्यु हो सकती है।

सुरक्षा के उपाय –

जैविक आक्रमण की जानकारी मिलते ही तुरन्त स्वास्थ्य कर्मियों व प्रशासन को जानकारी दी जानी चाहिये। जैविक पदार्थ हवाओं में छोड़ दिये जाते हैं तो श्वास के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते है। खरोंच से त्वचा में व भोजन से शरीर के भीतर पहुँच जाते है। संचार के विभिन्न माध्यमों से लोगों तक सही–सही जानकारी पहुँचानी चाहिये, जिससे अफवाहों पर विराम लग सके।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. प्रकृति में परिवर्तन सदैव होते रहते हैं। जिन प्राकृतिक परिवर्तनों का दुष्प्रभाव मानव समाज पर पड़ता है, उन्हें प्राकृतिक आपदाएँ कहते हैं। मनुष्य की गलती से घटित आपदाएं मानव जनित आपदाएं कहलाती है।
2. भारत में प्राकृतिक आपदाओं को प्राकृतिक प्रकोप भी कहते है।
3. प्रबन्धन से यहां आशय उन कार्यों, निर्णयों व जिम्मेदारियों से है जो प्राकृतिक आपदाओं की विकरालता को कम करने में सहायक हों तथा विपत्ति आने पर सफलतापूर्वक उनका सामना कर सकें।
4. भूकम्प की तीव्रता को रिक्टर पैमाने पर मापा जाता है।
5. पृथ्वी के कम्पन को भूकम्प कहते है।
6. समुद्री क्षेत्र में भूकम्प आने पर सुनामी लहरों की उत्पति का खतरा रहता है। ये लहरें उत्पन्न होने पर तटीय क्षेत्रों में महाविनाश लाती है।
7. भूस्खलन वर्षा ऋतु में अधिक आते हैं। मिट्टी व चट्टानों के ढलान पर नीचे खिसकने की प्रक्रिया को भूस्खलन कहते है।
8. जब वर्षा का जल नदी तटबन्धों को तोड़कर बहुत बड़े क्षेत्र में फैल जाता है, उसे बाढ़ कहते है।
9. मूसलाधार वर्षा, नदी पेटे में अवसाद का जमाव व अनियोजित बसावट बाढ़ के प्रमुख कारण हैं।
10. कोसी नदी को बिहार का शोक व दामोदर नदी को बंगाल का शोक कहते हैं।
11. बाढ़ नियन्त्रण के लिए वनों का विकास, नदी पेटे की सफाई व तटबन्धों को मजबूत किया जाना चाहिए।
12. सूखे का सम्बन्ध वर्षा कम होने अथवा वर्षा की अनिश्चितता सूखे का प्रमुख कारण है।
13. जब न पर्याप्त अन्न उपजे, न चारा पैदा हो तथा न पर्याप्त पेयजल उपलब्ध हो, ऐसे सूखे को त्रिकाल कहते है।
14. सूखे के मुकाबले के लिए परम्परागत जल स्रोतों का विकास होना चाहिए व भूमिगत जल स्तर बढ़ाने के लिए प्रत्येक गांव व कस्बें में एनिकट बनाये जाने चाहिए।
15. भारत में उष्णकटिबन्धीय चक्रवात समुद्र में उत्पन्न होकर बंगाल की खाड़ी व अरब सागर की ओर से देश में प्रवेश करते हैं।

16.समुद्री तूफानों से तटीय क्षेत्र अधिक प्रभावित होते है। समुद्री तूफान तेज गति के होने पर कम समय में तटीय क्षेत्रों में अधिक तबाही मचा देते है।

17. मानव जनित आपदाओं में आग, सड़क, हवाई व रेल दुर्घटनाएं मुख्य है। जनविनाशकारी आयुध, नाभिकीय दुर्घटनाएं, रसायनिक दुर्घटनाएं भी मानवजनित आपदाएं है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत का जिस प्राकृतिक आपदा से सम्बन्ध नहीं है, वह है –

(अ) भूकम्प (ब) बाढ़

(स) भूस्खलन (द) ज्वालामुखी

2. भारत में भूकम्प जिस क्षेत्र में अधिक आते हैं, वह हैं–

(अ) दक्षिण के पठार (ब) हिमालय

(स) मध्य भारत (द) तटीय भारत

3. भारत में निम्नलिखित में से जिस पर्वतीय क्षेत्र में भूस्खलन की घटनाएँ अधिक होती हैं, वह है –

(अ) अरावली (ब) हिमालय

(स) सतपुड़ा (द) विन्ध्याचल।

4. बंगाल का शोक जिस नदी को कहते हैं, वह है –

(अ) कोसी (ब) दामोदर

(स) गंगा (द) स्वर्णरेखा

5. भारत के जिस क्षेत्र में सूखा अधिक पड़ता है, वह है –

(अ) उत्तर का मैदान (ब) पूर्वोत्तर क्षेत्र

(स) पश्चिमी क्षेत्र (द) तटीय क्षेत्र

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक आपदाएँ किसे कहते है ?
2. भूकम्प किसे कहते है ?
3. भूस्खलन से आप क्या समझते है ?
4. बाढ़ किसे कहते हैं ?
5. बिहार का शोक किस नदी को कहते है ?
6. सूखे का प्रमुख कारण क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रबन्धन से क्या आशय है ?
2. भारत के किस क्षेत्र में अधिक भूकम्प आते हैं व क्यों ?
3. भारत में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र कौन–कौनसे हैं ?
4. त्रिकाल को समझाये।
5. सन् 1984 में भारत के किस शहर में रसायनिक गैस रिसाव से बड़ी दुर्घटना हुई थी।
6. सर्वप्रथम एन्थ्रैक्स से मौतें किस देश में हुई थी।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक आपदा भूकम्प का सामना किस प्रकार किया जा सकता है।
2. भूस्खलन के प्रमुख कारकों को वर्गीकृत कीजिये।
3. भारत में बाढ़ अधिक आने के कारणों की विवेचना कीजिए।
4. अकाल के मुकाबले के लिए किस तरह के प्रबन्धन किये जाने चाहिए ?
5. बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की समस्याओं व उनके समाधान पर प्रकाश डालिए।
6. मानव जनित आपदाओं का वर्णन किजिए।

आंकिक

1. भारत के मानचित्र में भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों को दर्शाइए।
2. भारत के मानचित्र में भूस्खलन क्षेत्रों को अंकित कीजिये।
3. भारत के मानचित्र में बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों को दर्शाइये।
4. भारत के मानचित्र में सूखे के क्षेत्रों को अंकित कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द) 2. (ब) 3. (ब) 4. (ब) 5. (स)

अध्याय 21

सड़क सुरक्षा : शिक्षा

1. भूगोल : अपवाह (Drainage)

नक्शा पाठन एवं नौयात्रा कौशल प्राप्त करना

मुख्य राजधानी शहर जैसे दिल्ली, कोलकाता, चैन्नई या वित्तीय राजधानी मुंबई में जब मानसून आता है तब आवागमन स्थिर हो जाता है, पानी जमा हो जाता है और हर तरफ लम्बा जाम लग जाता है। दुर्घटनाएं होती हैं, महत्वपूर्ण कार्य व समय का नुकसान होता है तथा सड़क पर पानी भर जाता है। कभी–कभी करंट से मृत्यु भी हो जाती है। ये सभी अनचाहे हादसे मौसम के आनन्द को समाप्त कर देते है और यह तनाव, उग्रता चालक के लिए सड़क दुर्घटना का कारण बन जाता है। हमें भारत के जिम्मेदार नागरिक की तरह आलोचना करने के स्थान पर कुछ प्रभावशाली समाधानों के साथ पेश आना चाहिए।

प्रत्येक सड़क के दोनों ओर जमीन के सामान्य ढलान के अनुसरण में उथली, सँकड़ी/चौड़ी (क्षेत्र में मानसून की तीव्रता के अनुरूप) अपवाहों का निर्माण, फुटपाथ और मुख्य सड़क के बीच करना चाहिए। बच्चों को खतरा नहीं हो इसको ध्यान में रखकर अपवाहिका की गहराई रखी जानी चाहिए। इस प्रकार अपवाहिका का निर्माण सभी प्रकार की सड़कों, यथा– राष्ट्रीय राजमार्ग, रिंग रोड़, शहर को जोड़ने वाली सड़क आदि पर किया जाना चाहिए।

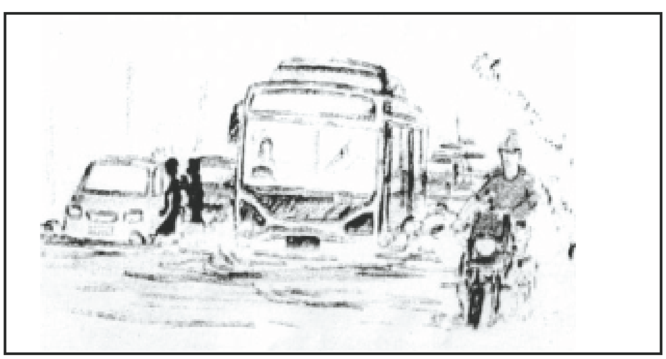

प्रत्येक सड़क के अंतिम छोर पर गहरा जलाशय बनाकर ठीक ढ़ंग से दिया जाना चाहिए। इस तरह हम **वर्षा जल संरक्षण** (Rain Water Harvesting) को सही मायने में सफल बना पाएंगे। ऐसे जमा पानी का उपयोग पानी की समस्या का हल करने के काम आएगा, जैसे विशेष स्थानीय क्षेत्र को गहरा बनाने के लिए जल का प्रयोग किया जा सकेगा तथा सामुदायिक निर्माण कार्य आदि में भी जल का प्रयोग किया जा सकेगा।

ट्रैफिक सिग्नल के कार्य करते समय लोगों को इन्तजार से उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए सकारात्मक भावुक गीत जो सिग्नल के कार्य करते समय स्वचलित हों, सुनाए जाने चाहिए।

आपके घर से स्कूल जाने वाले मार्ग का नक्शा बनाईए। मानसून के समय समस्या वाले क्षेत्र को चुनिए तथा उस क्षेत्र की समस्या को हल करने के लिए सुझाव दीजिए।

अपने क्षेत्र के शहर/कस्बे/गांव की सड़कों की वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाली किन्हीं तीन समस्याओं को जानिए तथा कक्षा वार्ता या लिखित कार्य के रूप में 3 प्रभावशाली समाधान के साथ समझाइए।

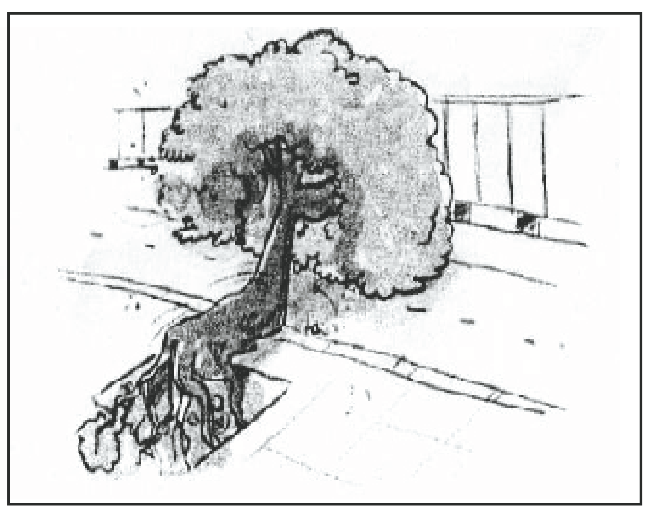

2. अर्थशास्त्र : निर्धनता

उद्देश्य

दुर्घटना को कम करने या सड़क पर होने वाले अनचाहे अपराध को रोकने के लिए समाज को उपलब्ध संसाधन के प्रति जागरूक करना।

विषयवस्तु : निर्धनता निरक्षरता की ओर ले जाती है। जिससे सड़क सुरक्षा कानून व नियमों के प्रति जागरूकता की कमी हो जाती है जो बच्चों व बड़ों की दुर्घटना का कारण बनती है।

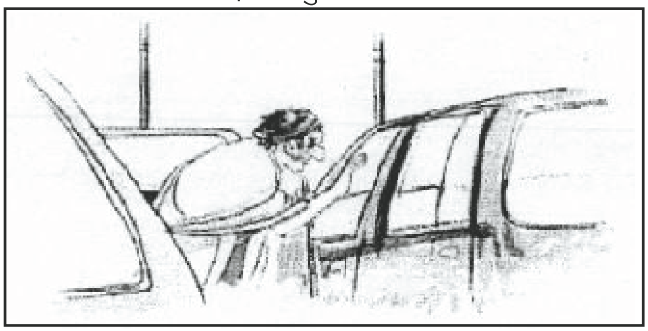

निर्धनता जन्म देती है मानव संसाधन के विकास की कमी व बेरोजगारी को (जहां बेरोजगारी, गरीबी का कारण होने के साथ इसका परिणाम भी है)। यह विवश करती है गरीबों के विशेष वर्ग को खास कर शहरी क्षेत्र के बच्चों को कि वे ट्रेफिक सिग्नल पर जाए। व कोमल सौम्य छोटी आयु में भीख मांगे। यह सामना कराती है उनका ट्रैफिक सिग्नल पर पूरे दिन वाहनों द्वारा छोड़े गये धुंए से जो उनके कमजोर शरीर को और अधिक कमजोर बनाती है। इसके अलावा अनावश्यक दुर्घटना का भी सामना करना पड़ता है। कभी–कभी अपशब्दों के कारण इनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

''अक्टूबर 2012 में सरकार द्वारा अध्ययन व प्रसारित कानून में अंकित किया कि बच्चों का अपराध की तरफ जाने का मुख्य कारण गरीबी है। अध्ययन का शीर्षक था 'भारत में बच्चे 2012'–जिसमें कहा गया था कि गत वर्ष 33887 बच्चों में से 57%: बच्चे जो अपराध में शामिल थे, उन परिवारों से सम्बंधित थे जिनकी वार्षिक आय 25,000 से कम थी।'' आंकड़ें बताते है कि अधिकतर बच्चों ने अपराध, पैसों के लिए किया था।

निर्धनता व बेरोजगारी की समस्या के कारण कई आपराधिक मामलों के हादसे सड़क पर होते हैं, जैसे चेन/पर्स छीनना लड़कियों को छेड़ना, बलात्कार आदि। ऐसे समूह को सरकार द्वारा काण्ट्रेक्ट के आधार पर प्रभावशाली तरीके से रोजगार दिया जाता है। इनका कार्य पुलिस बल की कमी के कारण शहर व कस्बे में सहायता समूह के रूप में हो सकता है।

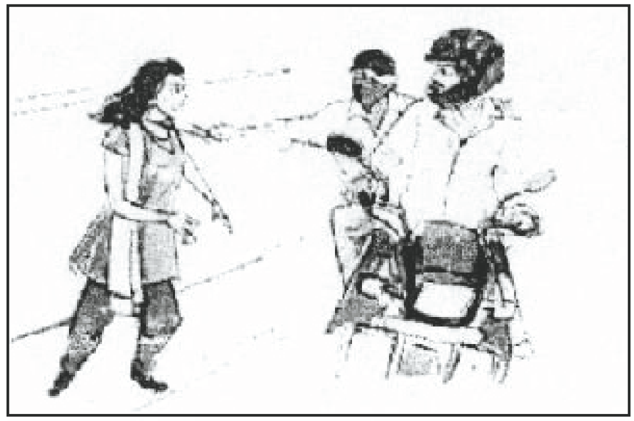

अभ्यासः

समाचार पत्र की कटिंग को जमा कीजिए या 5/10 ऐसी दुर्घटनाओं या अपराध लिखिए जो सड़क पर हुए हों तथा ऐसे मामले में सुझाव दीजिए की किस तरह इन हादसों से बचा जा सकता है।

गतिविधिः

स्थानीय संसाधनों की ऐसी सूची बनाइए जो उपलब्ध किये जा सकते हों जिससे स्थानीय अपराध को रोका जा सकता हो।

3.नागरिक शास्त्रः प्रजातान्त्रिक अधिकार

1. विद्यार्थियों को यह समझना चाहिए कि जिम्मेदार नागरिक होने के कारण दूसरों के अधिकार व उनके कर्त्तव्य का महत्व क्या है?

2. विद्यार्थियों को सड़क नियम की जानकारी देना।

जब हम जनतन्त्रात्मक अधिकार की बात करते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि अधिकार व कर्त्तव्य साथ–साथ चलते हैं। एक का अधिकार निश्चित रूप से दूसरे का कर्त्तव्य होता है।

उदाहरण के लिए जब हम यह मानते हैं कि सड़क पर गाड़ी चलाना हमारा अधिकार है तो हमें पैदल चलने वालों का भी ध्यान रखना चाहिए। हममें इतनी शिष्टता व नागरिक समझ होनी चाहिए कि हम सड़क नियम के अन्तर्गत दूसरों को भी रास्ता दें।

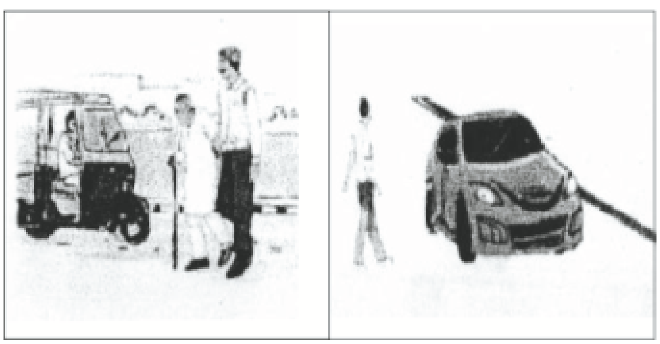

हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हम बड़ों विकलांग और बहुत छोटे बच्चों के प्रति भी सजग रहें। हमें घमण्ड से चूर नहीं होना चाहिए तथा वाहन को उच्च स्तर का प्रतीक नहीं मानना चाहिए। हमें गैर जिम्मेदारी का व्यवहार प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए विशेषकर बड़े वाहन चालकों को।

जबकि हमें एक जिम्मेदार नागरिक की तरह समाज के प्रति सहनशील होना चाहिए तथा कार पूलिंग प्रणाली के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।

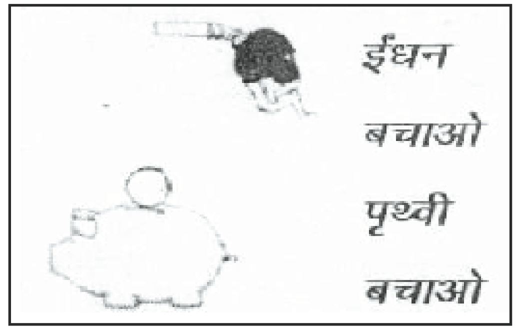

1. क्या आप अपने विद्यालय के साथियों व अध्यापकों को बरामदे में चलते समय रास्ता देते है?
2. आप 'कार पूलिंग से क्या समझते है?
3. उपमार्ग (Subway) क्या है?
4. पेट्रोल की कीमत कैसे निर्धारित की जाती है। विशेष अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक तत्व का नाम बनाइए।

****

1. विद्यार्थी परिषद बनाइए जो अपने विद्यालय के साथियों को शिक्षित करे और समझाएं कि स्कूल बस/वैन से घर लौटते समय सुरक्षा के लिए कौन–कौन सी सावधानियां रखनी चाहिए।
2. अपने शहर में पेट्रोल की कीमत जानिए तथा समूह बनाकर विचार–विमर्श कीजिए कि किस तरह ईंधन के प्रयोग में कमी की जा सकती है। इस अनमोल प्राकृतिक संसाधन को कैसे समाज को उपलब्ध कराया जा सकता है?

3.सुरक्षा के प्रति जागरूकता हमारा पहला ध्येय होना चाहिए।' अपने इस कथन को नीचे दिए गए चित्र के माध्यम से न्यायोचित कीजिए।